



श्रीः ।

श्रीमनुस्मृतिः

(अन्वयाङ्कसमेता)

तथा च

श्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेचिरोचितया—

मनूक्तभाषाविवृतिरुत्तम्या भाषाटीकया समेता ।

सेयं

क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८२६, संवत् १९६१.

सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्राधिकारिणे

स्वाधीन स्वस्वाहै.



## सूचना.

प्रगट होय कि, यह मानवधर्मशास्त्र अति उत्तम है. इसमें मनुजीने अति उत्तम रीतिपूर्वक सृष्टिके क्रमसे आरंभकारि सब वर्णोंकी उत्पत्ति और उनके संस्कार, आचार आदि सब स्फुट करके उत्तमरीतिके अनुसार कहे हैं यह "मनुस्मृति" ग्रंथ हमारे सब धर्मशास्त्रके स्मृति आदि ग्रंथोंका शिरोमणि है। बहुधा कोई स्मृति इससे विरुद्ध नहीं है और जो कदाचित् कोई किसी अंशमें विरुद्ध है तौ उसकी प्रशंसा नहीं है. कारण यह है कि, ये मनुजी संपूर्ण वेदार्थके तत्त्वको अति उत्तम रीतिसे जानते थे सो इन्होंने वेदार्थहीका अपनी स्मृतिमें उत्तमतासे वर्णन किया है। सोई लिखा है ॥ "वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्रामाण्यं हि मनोस्मृतम् ॥ मनुस्मृतिविरुद्धा या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते" ॥ इति। अर्थ—वेदार्थके अनुसार कहनेके कारण मनुका प्रामाण्य है और मनुस्मृतिसे विरुद्ध जो स्मृति है उसकी प्रशंसा नहीं है और भी उपनिषद्में लिखा है ॥ "यथा यद्म मनुर्वदत्तद्वेषजतायाः" इति। अर्थ—निश्चयकारि जो मनुने कहा है वह भेषजताका भेषज है अर्थात् औषधकीभी औषध है इत्यादि वचनोंसे भी मनुस्मृतिकी सर्वोत्तमता प्रकट होती है. अब देखिये ऐसे उत्तम ग्रंथको सहस्रशः मनुष्य संस्कृत विद्यामें व्युत्पत्ति न होनेके कारण कुछ नहीं समझ सकते इस निमित्त मैंने श्रीकुल्लूलभट्टकृत टीकाके अनुसार बडेश्रमसे सरल मनुष्य भाषामें सबोंके समझने योग्य यह टीका श्रीपण्डित केशवप्रसादशर्मा द्विवेदी आगरा कॉलेजके पेनूशिनर हेडपण्डित पश्चात् संस्कृत प्रोफेसर सेन्टजान्स कॉलेज आगरा इन्होंने बनवाई है. यद्यपि औरभी दो तीनि इसकी भाषाटीका बनी हैं परन्तु उनमें किसी २ ने तौ बहुतही अनर्गल लिखा है कि, मूलका कुछ आशय है और टीकामें कुछ औरही लिखा है. धन्य हैं वे टीका बनाने और छापनेवालेको उनकी प्रशंसा नहीं हो सकती और दो एकमें पहलेसे तौ आरम्भ अच्छा है परन्तु पीछेसे केवल श्लोकहीका संक्षिप्त आशय लिखा है अब देखिये यह धर्मशास्त्रका ग्रंथ है जो मूलहीसे काम चलता तौ इसपर गोविन्दराज मेधातिथि आदि आचार्य टीका बनानेका श्रम क्यों करते इन सब बातोंको शोचि समझके उक्त पंडीतजीने यह कलकत्तेकी छपी हुई कुल्लूकभट्टकी बनई टीका जो इन दिनोंमें बहुधा प्रचलित है और सब विद्वन्मण्डलीमें प्रतिष्ठित है उसके अनुसार आद्योपांत ग्रंथ बनाया है। जिस किसीको शंका होय वह ग्रंथ भरमें जहाके चाहे वहांके श्लोक टीकासे मिलाले कि यह उक्त भट्टजीकी टीकाके अनुसार है वा नहीं देखलें और इस सटीक पुस्तकको पंडितजीने बनाके शुद्धकरि यह पुस्तक रजिस्टरी आदि सब अधिकार सहित मेरेको दिया। इस पुस्तकको मैंने बंबईमें स्वकीय "श्रीविद्धेश्वर" मुद्रणालयमें छापके सर्वजनसौख्यार्थ प्रकाशित किया है. सर्व सज्जनों, इस पुस्तकका अवश्य संग्रह करना और सिवाय हमारे अन्य कोई यंत्राधिप या व्यापारी इस पुस्तकके छापनेका उद्योग न करे इति। संवत् १९६१, शके १८२६.

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीविद्धेश्वर" (सीम्) यन्त्रालयाध्यक्षः—बंबई.



## टीकाकारप्रस्तावः ।



ब्रह्मावर्तात्प्रतीच्यां सुरताटिनितटे वर्त्तते राधनाख्यो ग्रामस्तस्मिन्दि जातो द्विजकुलातिलकः श्रीभवानीप्रसादः ॥ तत्सूनुः श्रीद्विवेदी समजानि विदितो देवमण्याख्यया यस्तस्माज्जातस्सुबुद्धिः परमसुख इति ख्यातिमान् पण्डिताग्र्यः ॥ १ ॥ तस्यात्मजः केशवपूर्वकोऽहं प्रसादनामा बहुधा प्रसिद्धः ॥ अफारि येनेह मनुप्रणीतशास्त्रस्य टीकानृगिराऽऽगराख्ये ॥ २ ॥

टीका—ब्रह्मावर्त जिसको विदूर कहते हैं उससे पश्चिमदिशामें गंगाजीके तट पर राधननाम ग्रामहै उसमें ब्राह्मणोंके कुलमें श्रेष्ठ श्रीयुक्तभवानीप्रसाद उत्पन्न हुए उनके पुत्र देवमणि नामसे विदित द्विवेदी हुए उनसे सुंदरबुद्धिवाले पण्डितोंमें मुख्य परमसुख इस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र केशवप्रसादनाम मैं बहुधा प्रसिद्धहूँ जिसने मनुजीके बनाये हुए शास्त्रकी यह टीका मनुष्योंकी भाषामें आगरानाम नगरमें बनाई ॥ २ ॥ इति ॥



श्रीः ।

## अथ मनुस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृ०	श्लो०	विषय.	पृ०	श्लो०
टीकाकारका मंगल ....	१	१	अंडज ....	११	४४
टीकाकारका विनय ....	१	२	स्वेदज ...	११	४५
<b>अथ प्रथमोऽध्यायः १.</b>			उद्भिज्ज ....	११	४६
मनुसे मुनियोंने धर्मपूछा	१	१	वनस्पति और वृक्ष ....	११	४७
मनु उनसे बोले ....	३	४	गुच्छ गुल्म आदि ....	११	४८
जगतकी उत्पत्तिका करना	३	५	महाप्रलय " ....	१३	५४
पहले जलसृष्टि ....	४	८	जीविका निकलना ....	१३	५५
ब्रह्माकी उत्पत्ति ....	४	९	दूसरी देहका ग्रहणकरना	१३	५६
नारायण शब्दका अर्थ	४	१०	इसशास्त्रके प्रचारका कहना	१३	५८
ब्रह्मका स्वरूप कथन ...	४	११	मन्वन्तरका कहना ....	१४	६१
स्वर्गभूमि आदिकी सृष्टि	५	१३	अहोरात्रआदिके प्रमाणकहना	१४	६४
महत आदिके क्रमसे जग- त्की उत्पत्ति ....	५	१४	पितरोंके रातिदिनका कहना	१५	६६
देवगण आदिकी सृष्टि ...	७	२२	देवताओंके दिनरातिकाकहना	१५	६७
तीनों वेदोंकी सृष्टि ....	७	२३	चारों युगोंका प्रमाण ....	१५	६९
काल आदिकी सृष्टि ...	७	२४	देवताओंके युगका प्रमाण	१६	७१
काम क्रोध आदिकी सृष्टि	७	२५	ब्रह्माके दिनरातिका प्रमाण	१६	७२
धर्माधर्मविवेक ....	७	२६	मनुसे आकाशका प्रकटहोना	१६	७५
सूक्ष्मस्थूलआदिकीउत्पत्ति	८	२७	आकाशसेवायुका उत्पन्नहोना	१६	७६
कर्मकी सापेक्ष सृष्टि ....	८	२८	वायुसे तेजका प्रकटहोना	१७	७७
ब्राह्मणादिक सृष्टि ....	८	३१	तेजसे जल औरजलसेपृथिवी	१७	७८
स्त्रीपुरुषकी सृष्टि ....	९	३२	मन्वन्तरका प्रमाण ....	१७	७९
मनुकी उत्पत्ति....	९	३३	सत्य युगमें चारि पाँव धर्म	१७	८१
मरीचि आदिकी उत्पत्ति	९	३४	और युगोंमें धर्मके पादयाद कीहानि ....	१७	८२
यक्षगंधर्व आदिकी उत्पत्ति	९	३७	युगयुगमें आयुकाप्रमाण	१८	८३
मेघ आदिकी सृष्टि ....	१०	३८	युगयुगमें धर्मकी विलक्षणता	१८	८५
पशुपक्षी आदिकी सृष्टि	१०	३९	ब्राह्मणका कर्म कहतेहैं ....	१८	८८
कृमिकीट आदिकी उत्पत्ति	१०	४०	क्षत्रियका कर्म कहतेहैं ....	१९	८९
जरायुज....	११	४३	वैश्यका कर्म कहतेहैं ....	१९	९०

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
शूद्रका कर्म कहतेहैं ....	१९	९१	उस देशके ब्राह्मणोंसे सदा-		
ब्राह्मणका श्रेष्ठत्व ....	१९	९२	चार सीवै ....	२७	२०
ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ	२०	९७	मध्य देश कहतेहैं ...	२७	२१
यह शास्त्र ब्राह्मणको पढना			आर्योवर्त्त कहतेहैं ....	२७	२२
चाहिये ....	२१	१०३	यज्ञकरनेयोग्य कहतेहैं ....	२७	२३
इस शास्त्रके पढनेका फल	२१	१०४	वर्णोंके धर्म आदि कहतेहैं	२८	२५
आचार मुख्य धर्म हैं ....	२१	१०८	द्विजोंका वैदिकमंत्रोंसे गर्भा		
ग्रंथके विषयोंकी अनुक्रमणिका	२२	१११	धानआदि करनेचाहिये	२८	२६
<b>अथ द्वितीयोऽध्यायः २.</b>			गर्भाधानादिकोंकी पापके		
धर्मका सामान्य लक्षण....	२४	१	क्षय कारणपन कहतेहैं	२८	२७
कामात्मताका निषेध. ....	२४	२	स्वाध्याय आदिको मोक्ष		
व्रत आदि संकल्पसे उत्पन्नहै	२४	३	कारणपन कहतेहैं ...	२८	२८
अकामकी कोई क्रियानहींहोती	२४	४	जातकर्म कहतेहैं ...	२८	२९
धर्मके प्रमाण कहतेहैं ....	२४	६	नामकरण कहतेहैं ...	२८	३०
धर्मका वेद मूलपन कहतेहैं	२५	७	उपपदका नियम कहतेहैं	२९	२९
श्रुति स्मृतिकारि कहा हुआ			स्त्रियोंका नामकरण ...	२९	३३
धर्म करना चाहिये....	२५	९	निष्क्रमण और अन्नप्राशन	२९	३४
श्रुति स्मृतिका परिचय	२५	१०	चूडाकरणका समय ...	२९	३५
नास्तिककी निंदा ....	२५	११	यज्ञोपवीतका काल ....	२९	३६
चारप्रकारसे धर्मका प्रमाण			यज्ञोपवीतकालकीविधि ....	३०	३६
कहते हैं ....	२५	१२	व्रात्य कहते हैं ....	३०	३९
श्रुतिके स्मृतिके विरोधमें			कृष्णमृगचर्मआदिकाधारण	३०	४१
श्रुति बलवती ....	२६	१३	मौंजीआदिका धारण ...	३०	४२
श्रुतिके द्वैविध्यमें दोनोंप्रमाण	२६	१४	मौंजिके न मिलनेमें कुश		
श्रुतिके द्वैधमें दृष्टान्त कहतेहैं	२६	१५	आदिकी मेखला करनीचाहिये	३०	४३
दशकर्मोंकारि युक्तका इसमें			यज्ञोपवीत कहतेहैं ....	३१	४४
अधिकार है ....	२६	१६	दंड कहतेहैं ...	३१	४५
धर्मकरनेके योग्य देशोंको			भिक्षा कहते हैं ...	३१	४९
कहते हैं ....	२६	१७	पहली भिक्षाका नियम....	३१	५०
ब्रह्मावर्त्त देशको सदाचार	२६	१८	पूर्वाभिमुख आदिकाम्य		
कुरुक्षेत्र आदि ब्रह्मर्षि देशों-			भोजनका फल ....	३२	५२
को कहतेहैं ....	२७	१९	भोजनके आदि और अंतमें		
			आचमन ....	३२	५३

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
श्रद्धासे अन्नका भोजन करे	३२	५४	प्रणव व्याहृति तथा सावि-		
अश्रद्धाके भोजनका निषेध	३२	५५	त्रीकी प्रशंसा ...	३७	८१
भोजनमें नियम ...	३२	५६	प्रणवणकी प्रशंसा....	३७	८४
अतिभोजनका निषेध ...	३३	५७	मानसजपकी अधिकता	३७	८५
ब्राह्म आदि तीर्थसे आच-			इन्द्रियोंका संयम ...	३८	८८
मन पितृतीर्थसे निषेध	३३	५८	ग्यारह इन्द्रिये ...	३८	८९
ब्राह्म आदि तीर्थ कहतेहैं	३३	५९	इन्द्रियोंके संयमसे सिद्धि		
आचमनविधि ...	३३	६०	होती है भोगसे नहीं....	३८	९३
आचमनके जलकाप्रमाण	३३	६१	विषयोंकी उपेक्षा करने		
अनुष्णआदिजलका नि-			वाला श्रेष्ठ ...	३८	९४
यम कहतेहैं ...	३३	६२	इन्द्रियोंके संयमका		
सव्यअपसव्यकहतेहैं ...	३४	६३	उपाय कहते हैं ...	३९	९६
पहलीमेखलाआदिके नष्टहोनेपर			काममें आसक्तकी यज्ञ-		
दूसरी ग्रहण करनी चाहिये	३४	६४	आदि फल देनेवाले		
केशान्त नाम संस्कार ...	३४	६५	नहीं होते हैं ....	३९	९७
स्त्रियोंका संस्कार मंत्ररहित	३४	६६	जितेंद्रियका स्वरूप कहते हैं	३९	९८
स्त्रियोंकी विवाहविधि वैदिक-			एक इंद्रियका असंयम		
मंत्रोंसे होनी चाहिये	३४	६७	भी निवारण करने		
उपनीतके कर्म कहतेहैं	३५	६९	योग्य है ...	३९	९९
वेदपढनेकी विधि कहतेहैं	३५	७०	इन्द्रियोंका संयम पुरु-		
गुरुके प्रणामकी विधि	३५	७२	पार्यका कारण है ...	३९	१००
गुरुकी आज्ञासे पढना			तीनों कालका संध्यावंदन	३९	१०१
और बंदहोना ...	३५	७३	संध्याहीन शूद्रके तुल्य ...	४०	१०३
अध्ययनकी आदि तथा अंतमें			वेद पाठकी अशक्तिमें		
ओंकारका उच्चारण	३५	७४	सावित्रीमात्रका जप	४०	१०४
प्राणायाम कहतेहैं ...	३६	७५	नित्यकर्म आदिमें अन-		
प्रणव आदिकी उत्पत्ति	३६	७६	ध्याय नहीं है ...	४०	१०५
सावित्रीकी उत्पत्ति ....	३६	७७	जपयज्ञका फल ...	४०	१०७
सावित्रीके जपका फल ....	३६	७८	ब्रह्मचर्यसे गृहस्थ होने-		
सावित्रीके हजार जपकाफल	३६	७९	तक होमआदिकरना		
सावित्रीके जपकरनेमें निंदा	३६	८०	चाहिये ...	४०	१०८

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
कैसाशिष्य पढाना चाहिये	४१	१०९	वन्दनाकरने योग्यहै ...	४५	१३५
विना पूछे वेद न कहै	४१	११०	वित्त आदि सामान्यता		
निषेधके उल्लंघनमें दोष	४१	१११	करनेवालेहै ...	४५	१३६
जुरे शिष्यको विद्या न			रथ आदिसे चढे हुएको		
देनी चाहिये	४१	११२	मार्ग देना चाहिये	४५	१३८
अच्छे शिष्यको देनी चाहिये	४२	११५	स्नातकको राजाकारिभी		
अध्यापककी आज्ञाविनादूस-			मार्ग देना चाहिये	४५	१३९
रसे पढनेका निषेधनहीं	४२	११६	अथ आचार्य ... ..	४६	१४०
अध्यापकोंका मान्यत्वकहतेहैं	४२	११७	अथ उपाध्याय ...	४६	१४१
विहितके न करनेमें निंदा	४२	११८	गुरु .... ..	४६	१४२
गुरुके अभिवादन आदिमें	४२	११९	ऋत्विक् ... ..	४६	१४३
बृद्ध अभिवादनमें ...	४२	१२०	अध्यापककी प्रशंसा ...	४६	१४४
अभिवादनका फल ...	४३	१२१	माता आदिका उत्कर्ष	४६	१४५
अभिवादनकी विधि ...	४३	१२२	वेद पढानेवालेकी श्रेष्ठता	४७	१४८
बदलेके अभिवादनमें ...	४३	१२३	बालकभी आचार्य		
बदलेके अभिवादन जान-			पिताके समान ....	४७	१४९
नेका दोष ... ..	४३	१२६	इसमें दृष्टान्त देतेहैं ....	४७	१५१
कुशल पूछने आदिमें ....	४३	१२७	वर्णके क्रमसे ज्ञान आदिसे		
दीक्षित आदिके नामले-			जेठपन .... ..	४८	१५५
नेका निषेध ...	४४	१२८	मूर्खकी निंदा .... ..	४८	१५७
पराई स्त्री आदिके नामले-			शिष्यसे मीठी वाणी		
नेका निषेध ...	४४	१२९	कहनी चाहिये ...	४८	१५९
छोटे मामा आदिके वंद-			मनुष्यके वाणी और मत्तके		
नका निषेध ...	४४	१३०	रोकनेकी कहतेहैं ...	४८	१६०
मावसी आदि गुरुकी			परके द्रोह आदिका निषेध	४८	१६१
स्त्रीके समान पूज्य ...	४४	१३१	परकारि अपमान करने		
भाईकी स्त्री आदिके			परभी क्षमाकरनी चाहिये	४९	१६२
अभिवादनमें ...	४४	१३२	अपमान करनेवालेका दोष	४९	१६३
फूफ्ती आदिके अभिवादनमें	४४	१३३	इस विधिसे वेद पढना चाहिये	४९	१६४
पुरवासियोंके सख्यआदिमें	४५	१३४	वेदके अभ्यासकी श्रेष्ठता	४९	१६६
दशवर्षका भी ब्राह्मण क्षत्रिय			वेदाभ्यासकी स्तुति ...	४९	१६७
आदिकों करि पिताके तुल्य					

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
वेदको न पढ़ वेदांग अविद्याके पढ़नेका निषेध	५०	१६८	गुरुके सोने पर सोना आदि	५३	१९४
द्विजत्व निरूपणके लिये-कहतेहैं ....	५०	१६९	गुरुकी आज्ञा करनेका प्रकार	५३	१९५
यज्ञोपवीत किये हुएका-अनधिकार ....	५०	१७१	गुरुके समीप चंचलताका निषेध ... ..	५४	१९८
यज्ञोपवीत किए हुएका वेदपढ़ना... ..	५०	१७३	गुरुकानाम ग्रहण आदि न करना ... ..	५४	१९९
गोदानआदिमेंनवीनदंड-आदि ....	५०	१७४	गुरुकी निंदा सुनने निषेध	५४	२००
येनियम करने योग्यहैं ...	५०	१७५	गुरुके अपवादकरनेका फल	५४	२०१
नित्यस्नानतर्पण और होम ब्रह्मचारीके नियम ...	५१	१७६	समीपजाके गुरुका पूजनकरै	५५	२०२
कामसे वीर्यपातका निषेध स्वप्नमें वीर्यपात होनेमें प्रायश्चित्त ....	५१	१८१	गुरुआदिकेपीछे कुछ न कहै	५५	२०३
आचार्यके लिये जलकुश आदिका लाना ...	५२	१८२	यान आदिमें गुरुके साथ बैठनेमें ... ..	५५	२०४
वेद तथा यज्ञोपवीत युक्त घरोंसेभिक्षालेनी योग्यहै	५२	१८३	गुरुकेगुरुमेंगुरुकेहीवृत्तिरवत्तै	५५	२०५
गुरुकुल आदिकी भिक्षामें	५२	१८४	विद्यागुरुके विषयमें ...	५५	२०६
कलंकयुक्तसे भिक्षाकानिषेध	५२	१८५	गुरु पुत्रके विषयमें ...	५५	२०७
संध्या तथा प्रातःकालके होमकी समिध ...	५२	१८६	गुरुकी स्त्रीके मध्ये ...	५६	२१०
होम आदिके न करनेमें एक घरसे भिक्षाका निषेध	५२	१८८	स्त्रीके स्वभावका कहना	५६	२१३
निर्मंत्रितको एकका अन्न खाना चाहिये ...	५३	१८९	माता आदिकोंकेसाथ एकांतबैठनेका निषेध	५६	२१५
क्षत्रिय तथा वैश्यके एक अन्नके भोजनको निषेध	५३	१९०	तरुणी गुरुकी स्त्रीके प्रणाम-करनेमें ... ..	५७	२१६
अध्ययन तथा गुरुके हितमें यत्न करै ... ..	५३	१९१	गुरुकी सेवाकाफल ....	५७	२१८
गुरुकी आज्ञा करना कहतेहैं	५३	१९२	ब्रह्मचारीके तीनिप्रकार-कहतेहैं ... ..	५७	२१९
			सूर्यके उदय और अस्तकालकेसोनेमें ....	५७	२२०
			संध्योपासन अवश्य करना	५७	२२२
			स्त्री आदिके श्रेयकरनेमें	५८	२२३
			त्रिवर्ग कहते हैं ... ..	५८	२२३
			पितृ आचार्य आदि अपमान योग्य नहीं है ...	५८	२२५
			उनकी सेवा करने आदिमें	५८	२२८

( १० )

## मनुस्मृति-

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
उनके अनादरकी निंदा	५९	२३४	ब्राह्मण और क्षत्रियकोशू-		
माता आदिकी सेवाकी-			द्राक्षीका निषेध ...	६४	१४
मुख्यता... ..	६०	२३५	हीन जातिके विवाहकानि-		
नीच आदिकोंसे भी विद्या-			षेध ... ..	६५	१५
लेना ... ..	६०	२३८	शूद्राके विवाहके मध्ये	६५	१६
आपत्तिमें क्षत्रिय आदिसेभी			आठ विवाहके प्रकार	६५	२०
वेदपढ़ना परंतु उनके पाँव			वर्णोंके धर्मसंबंधी विवाह-		
धोनाआदि न करै	६०	२४१	कहतेहैं ... ..	६५	२२
क्षत्रिय आदि गुरुमें अतिवा-			पैशाच तथा आसुर विवाह-		
सकानिषेध ... ..	६०	२४२	की निंदा ....	६६	२५
जीवन पर्यंत गुरुकी सेवामें	६१	२४३	ब्राह्मणविवाहका लक्षण	६६	२७
गुरुकी दक्षिणा आदिमें	६१	२४५	दैव विवाहका लक्षण	६६	२८
आचार्यके मरने पर उसके			आर्ष विवाहका लक्षण	६७	२९
पुत्र आदिकी सेवा	६१	२४७	प्राजापत्य विवाहका लक्षण	६७	३०
जीवनपर्यंत गुरुकुलकी से-			आसुर विवाहका लक्षण	६७	३१
वाका फल ....	६२	२४९	गांधर्व विवाहका लक्षण	६७	३२
			राक्षस विवाहका लक्षण	६७	३३
			पैशाच विवाहका लक्षण	६७	३४
			जलके देनेसे ब्राह्मणका-		
			विवाह :... ..	६७	३५
			ब्राह्म विवाहका फल...	६८	३७
			ब्राह्म आदि विवाहमें उत्तम		
			संततिकी उत्पत्ति	६८	३९
			निंदित विवाहमें निंदित सं-		
			ततिकी उत्पत्ति ...	६८	४१
			सवर्णा विवाह विधि ...	६९	४३
			असवर्णा विवाह विधि	६९	४४
			स्त्रीके गमनमें ...	६९	४५
			ऋतुकालकी विधि ...	६९	४६
			स्त्री गमनमें निंदित काल	६९	४७
			युग्म तिथिमें पुत्रकी उत्पत्ति	६९	४८

## अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ ब्रह्मचर्यकी विधि	६२	१
गृहस्थाश्रमका वासकहतेहैं	६२	२
वेद ग्रहण करने वालेका पि-		
ताआदि करिपूजन	६३	३
ब्रह्मचर्यकी पूराकरि विवा-		
हकर ... ..	६३	४
असपिंडआदि विवाहने योग्य	६३	५
विवाहमें निंदित कुल	६३	६
अथ कन्याके दोष ...	६३	८
कन्याके लक्षण . ...	६४	१०
पुत्रिका विवाहकी निन्दा	६४	११
सवर्णा स्त्री उत्तमा ...	६४	१२
चारोंवर्णोंकी स्त्रियोंकाग्रहण	६४	१३

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
स्त्री पुरुष तथा नपुंसककी			गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा ...	७४	७७
उत्पत्तिमें कारण ...	७०	४९	ऋषि आदिकोंका पूजन		
वानप्रस्थको भी ऋतुकालमें			अवश्य करना चाहिये	७४	८०
गमन करते हैं ....	७०	५०	नित्यश्राद्ध कहते हैं ...	७५	८३
कन्याके वेचनेमें दोष ...	७०	५१	पितरोंके लिये ब्राह्मण-		
स्त्री वनके लेनेमें दोष ...	७०	५२	भोजनमें ...	७५	८३
वरसे कुछ थोडा भी न लेना			वालि वैश्वदेवकर्म कहते हैं	७५	८४
चाहिये ...	७०	५३	वालि वैश्वदेवका फल कहते हैं	७६	९३
कन्याके लिये धनका देना			भिक्षाका देना ....	७७	९५
कहते हैं ...	७०	५४	सत्कार करिके भिक्षा देना	७७	९६
वस्त्र अलंकार आदिसे कन्या			अपात्रका दान निष्फल ...	७७	९७
शोभित करने योग्य ....	७१	५५	सत्पात्रमें देनेका फल ...	७७	९८
कन्या आदिके पूजन करने			अतिथिके सत्कारमें ...	७७	९९
तथा न करनेका फल	७१	५६	अतिथिके न पूजनेकी निंदा	७७	१००
उत्सवोंमें विशेष करि पूज्य है	७१	५९	मीठे वचन जल आसन		
स्त्री पुरुषके संतोषका फल	७१	६०	आदि के देनेमें	७८	१०१
स्त्रीका अलंकार आदिके देने			अतिथिका लक्षण कहते हैं	७८	१०२
न देनेमें ...	७१	६१	पराये पाकमें रुचिका निषेध	७८	१०४
कुल घटनेके कर्म ...	७२	६३	अतिथि नहीं मनें करने		
कुल घटनेके कर्म कहते हैं	७२	६६	योग्य है ...	७८	१०५
पांच महायज्ञोंका करना			अतिथि भोजन कराये बिना		
कहते हैं ...	७२	६७	आप न खाना चाहिये	७८	१०६
पांच भूना ( वधस्थान )			बहुत अतिथि होनेपर यथायां-		
कहते हैं ...	७२	६८	ग्यसेवा करनी चाहिये	७९	१०७
पांच यज्ञ नित्य करने चाहिये	७३	६९	अतिथिके लिये फिरि पाक		
पांच यज्ञोंको कहते हैं ...	७३	७०	करिके वलि कर्म करै	७९	१०८
पांच यज्ञ न करने की निंदा	७३	७२	भोजनके लिये कुल तथा		
पांचौ यज्ञोंके दूसरे नाम	७३	७३	गोत्र न कहै ....	७९	१०९
असामर्थ्यमें ब्रह्मयज्ञ तथा			ब्राह्मणके क्षत्रिय आदि अ-		
होम करने चाहिये ...	७४	७५	तिथि नहीं होते ...	७९	११०
होमसे वृष्टि आदिकी उत्पत्ति	७४	७६	पीछे क्षत्रिय आदिकी भोजन		
			करावै ...	७९	१११



विषय	पृ.	श्लो.
रिक्तादिकोंको सत्कार करिकै		
भोजन करावै ... ..	८०	११३
पहले गर्भिणी आदि भोजन		
कराने योग्य है ... ..	८०	११४
गृहस्थको पहले भोजनका		
निषेध .... ..	८०	११५
स्त्री तथा पतिको सबसे पीछे		
भोजन ... ..	८०	११६
अपने लिये पापका निषेध	८०	११८
घरमें आये हुए राजा आ-		
दिकी पूजा कहते हैं ... ..	८१	११९
राजा और ब्रह्मचारीकी पू-		
जामें संकोच कहते हैं ... ..	८१	१२०
स्त्रीको विना मंत्रके बलि		
करनी चाहिये ... ..	८१	१२१
अथ अमवास्यामें पार्वण		
श्राद्ध कहते हैं ... ..	८१	१२२
मांसकरिकै श्राद्धकरना चाहिये	८१	१२३
पार्वण आदिमें भोजनयोग्य		
ब्राह्मणोंकी संख्या ... ..	८१	१२५
ब्राह्मणोंका विस्तार न करै	८२	१२६
पार्वणके अवश्य कर्म ....	८२	१२७
देवताओं और पितरोंके अन्न		
श्रोत्रियको देने चाहिये ... ..	८२	१२८
श्रोत्रियकी प्रशंसा ... ..	८२	१२९
मंत्ररहित ब्राह्मणका निषेध	८३	१३३
ज्ञाननिष्ठोंको कव्य आदि देने		
चाहिये ... ..	८३	१३५
श्रोत्रियको पुत्रकी प्राप्ति ... ..	८३	१३६
श्राद्धमें मित्र आदिके भोजन-		
का निषेध ... ..	८३	१३८

विषय	पृ.	श्लो.
मूर्खमें श्राद्धका दान निष्फल	८४	१४२
पंडितमें दक्षिणा देना फल		
देनेवाला है ... ..	८४	१४३
विद्वान् ब्राह्मणके न होनेमें		
मित्रको भोजन करावै		
क्षत्रुको नहीं ... ..	८४	१४४
वेदपारगामी आदिको यत्न-		
से भोजन करावै ... ..	८५	१४५
श्राद्धमें मातामह आदिकोभी:		
भोजन करावै ... ..	८५	१४८
ब्राह्मणोंकी परीक्षामें ... ..	८५	१४९
स्तेनपतित आदि निषिद्ध हैं ... ..	८५	१५०
श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण ... ..	८५	१५१
अध्ययनशून्य ब्राह्मणकी		
निंदा ... ..	८६	१६८
अपांक्त्यके देनेमें निषिद्ध फल ... ..	८९	१६९
परिवेत्तादि लक्षण कहते हैं ... ..	८९	१७१
परिवेदनके संबंधियोंका फल		
कहते हैं ... ..	८९	१७२
दिधिपुत्रिका लक्षण ... ..	८९	१७३
कुंड और गोलक कहते हैं ... ..	८९	१७४
उनको दानका निषेध ... ..	९०	१७५
जैसे स्तेन आदि न देखें		
ऐसे ब्राह्मणभोजन होना		
चाहिये ... ..	९०	१७६
शूद्रयाजकका निषेध ... ..	९०	१७५
शूद्रयाजकसे दान लेनेका		
निषेध ... ..	९०	१७९
सोमविक्रय आदिका भोजन		
तथा दानमें निषिद्ध फल है ... ..	९०	१८०
पंक्तिपावनोंको कहते हैं ... ..	९१	१८३

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
ब्राह्मणके निमंत्रणमें ...	९२	१८७	पितृ ब्राह्मण आदिके भोज-		
निमंत्रितके नियम ...	९२	१८८	नकी विधि ...	९७	२२३
न्योता मानिके भोजन न			परोसनेकी विधि ....	९८	२२४
करनेमें दोष ....	९२	१९०	व्यंजन आदिके दानमें	९८	२२६
न्योते हुएको स्नागमनमें	९३	१९१	रीना औरक्रोधआदिनकरना	९८	२२९
भोजनकरनेवाले और श्राद्ध-			ब्राह्मणके चाहे हुए व्यंजन-		
करनेवालेको क्रोध आदि			आदिका देना ...	९९	२३१
न करने चाहिये ...	९३	१९२	वेद आदि ब्राह्मणको सुनावै	९९	२३२
पितृगणकी उत्पत्ति ...	९३	१९३	ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै...	९९	२३३
पितरोंको चांदीका पात्रउत्तम	९४	२०२	दौहित्रको श्राद्धमें यत्नसे		
देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट	९४	२०३	भोजनकरावै ...	९९	२३४
दैवकार्य पितृकार्यका अंगहै	९४	२०४	दौहित्र तिल कुतुप आदिश्रेष्ठ	९९	२३५
पितृकार्यके अंतमें दैवकार्य			उष्ण अन्नका भोजन तथा हवि-		
होताहै ... ..	९५	२०५	के ग्रहण आदिकानकहना	९९	२३६
अथ श्राद्धके देश ...	९५	२०६	भोजनमें पगडी आदिका		
निमंत्रितोंको आसन आदिदेना	९५	२०८	निषेध ... ..	१००	२३८
गंध पुष्पआदिसे उनका पूजन	९५	२०९	भोजनके समय ब्राह्मणोंको		
उनकारिके आज्ञा दिया हु-			- चांडाल आदि न देखै	१००	२३९
आ होमकरै ...	९५	२१०	कुत्ताकीदृष्टिआदिकानिषेध	१००	२४१
अग्निके न होनेमें पितरोंके			उस स्थानसे खंज आदि		
हाथमें होम ...	९६	२१२	दूरि करने योग्यहै	१००	२४२
अपसव्यसे अग्रैकरण आदि	९६	२१४	भिक्षुक आदिके भोजनमें	१०१	२४३
पिंडदान आदिकी विधि	९६	२१५	अग्निदग्धके अन्नदानमें	१०१	२४४
कुशोंकेमूलमें हाथोंको पोछना	९६	२१६	भूमिगत और उच्छेपण दा-		
ऋतुओंको नमस्कार आदि	९६	२१७	सका अंश है ....	१०१	२४६
प्रत्यवनेजनआदि ...	९६	२१८	सर्पिंडन पर्यंत विश्वेदेव-		
पितृआदिके ब्राह्मणोंका			आदि रहित श्राद्ध ...	१०१	२४७
भोजन करावै ...	९७	२१९	सर्पिंडी करनेके पीछे पार्वण-		
पिताके जीवते पितामह-			की विधिसे श्राद्ध	१०१	२४८
आदिका पार्वण ...	९७	२२०	श्राद्धमें उच्छिष्ट शूद्रको न		
पिताके मरनेपर पितामह-			देना चाहिये ...	१०१	२४९
आदिका पार्वण ...	९७	२२१			

विषय	पृ.	श्लो.
श्राद्धमें भोजन करनेवालेको- स्त्रीगमनका निषेध	१०१	२५०
भोजन किये हुए ब्राह्मणोंको आचमन करावे ...	१०२	२५१
वे ब्राह्मण स्वधाहो ऐसे कहें	१०२	२५२
उनकी आज्ञासे बाकीके अन्नका विनियोग करै	१०२	२५३
एकोद्दिष्ट आदिकी विधिको- कहतेहैं ... ..	१०२	२५४
अपरा आदि ...	१०२	२५५
श्राद्धमें कहेहुए अन्नआदि	१०३	२५७
ब्राह्मणोंका विसर्जन कर- नेकी प्रार्थना ...	१०३	२५८
पिण्डोंकोगौआदिकेलियेदे	१०३	२६०
पुत्र चाहनेवाली स्त्रीको पितामह- का पिण्ड खानाचाहिये	१०३	२६२
फिर जाति आदिकी भोजन करावे ... ..	१०४	२६४
बाकी अन्नसे गृहवलि- का कार्य ... ..	१०४	२६५
तिल आदि पितरोंको मासपर्यन्त वृत्ति देनेवालेहैं ....	१०४	२६७
मांस आदिके भेदसे वृत्तिकालके अवधिकी नियम	१०४	२६८
मघा आदि श्राद्धोंमें मधुमिश्रित अन्नके दानका फल	१०५	२७३
गजकीच्छायामें दानकाफल	१०५	२७४
श्रद्धासे दानका फल	१०५	२७५
पितृपक्षमें उत्तमतिथि	१०६	२७६
युग्मतिथितथानक्षत्रउत्तमहैं	१०६	२७७
कृष्णपक्ष और अपराह्न काल उत्तमहैं ...	१०६	२७८

विषय	पृ.	श्लो.
कुशाग्रहण पूर्वक अपसव्यसे पितृकर्म ...	१०६	२७९
रात्रिश्राद्धका निषेध	१०६	२८०
प्रत्येकमास श्राद्ध करनेकी असमर्थ हो तो वर्षमें तीनरे वार करै	१०६	२८१
साधिकी अशौचकरणमें	१०६	२८२
तर्पणका फल ....	१०७	२८३
पितरोंकी प्रशंसा ....	१०७	२८४
ब्राह्मणभुक्तशेष और यज्ञ- शेषका भोजन करै	१०७	२८५
<b>अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.</b>		
ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्यका काल कहतेहैं ....	१०८	१
शिलउञ्छ आदिवृत्तिसे निर्वाह करै ...	१०८	२
वचित धनका संग्रह करै	१०८	३
आपद रहित कालमें जीवि- काका उपाय कहतेहैं	१०८	४
ऋतु अमृत आदि शब्दोंका अर्थ कहतेहैं ....	१०८	५
कितने धनका संचय करै इसविषयमें कहतेहैं	१०९	७
एक दिनसे अधिक भोज- नान्न रखनेवालेकी प्रशंसा	१०९	८
याजन अध्यापन आदिसे जीविका करै ...	१०९	९
शिल, उञ्छसे जीविकामें विधान ....	१०९	१०
निन्दित जीविका न करै	११०	११
सन्तोषकी प्रशंसा ...	११०	१२
व्रतका करना ....	११०	१३
वेदोक्त कर्म करने योग्यहैं	११०	१४

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
गीत आदिसे धनके सञ्चयका निषेध ... .. ११०	१५		सूर्यके दर्शनका निषेध - ११५	३७	
विषयोंमें आसक्त होनेका निषेध ... .. १११	१६		बच्चेकी रस्तीका लंघन- और जलमें अपनी छा- याके दर्शनका निषेध ११५	३८	
वेदार्थ विरोधि कर्मोंका त्याग १११	१७		मार्गमें गा आदिको दक्षिण करे ... .. ११५	३९	
अवस्था कुल आदिके अनु- सार आचरण करै १११	१८		रजस्वलास्त्रीसे गमन आ- दिका निषेध .... ११५	४०	
नित्यप्रति शास्त्र आदिका देखना ... .... १११	१९		स्त्रीके साथ भोजन आदिका निषेध ... .. ११६	४३	
जवतक शक्ति हो तवतक पंचयज्ञोंका त्याग न करै ११२	२१		स्त्रीदर्शन न करनेके समय ११६	४४	
कोई इन्द्रियोंका संयम करते हैं ... .. ११२	२२		नग्न होके स्नान आदि कर- नेका निषेध .... .. ११६	४५	
कोई वाणीसे यज्ञ करतेहैं ११२	२३		मार्ग आदिमें मलमूत्रके त्यागका निषेध ... ११६	४६	
कोई ज्ञानसे यज्ञ करतेहैं ११२	२४		मलमूत्रके त्यागके समय सूर्या- दिके दर्शनका निषेध ११६	४८	
दोनों संध्यामें अग्निहोत्र और दर्शपौर्णमास करै ११२	२५		मलमूत्रके त्यागकी विधि ११६	४९	
सोमयाग आदिका करना ११२	२६		दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको मुख करना ११६	५०	
नवाचसे श्राद्ध न करने- का निषेध ... .. ११३	२७		अन्धकार आदिमेंचाहे जिस दिशाको मुख करे ११६	५१	
ययाशक्ति अतिथिका पूजन करै ... .. ११३	२९		अग्नि आदिके सम्मुख मल- मूत्र त्यागका निषेध ११६	५२	
पाखण्डी आदिके पूजनका निषेध... .. ११३	३०		अग्निमें पैरोंका तपाने आदि का निषेध ... ११७	५३	
श्रोत्रिय आदिका पूजन करै ११३	३१		अग्निके लंघन आदिका निषेध ... .. ११७	५५	
ब्रह्मचारी आदिके लिये अन्नदान .... .. ११४	३२		संध्याकालमें भोजन आदि- का निषेध ... ११७	५५	
क्षत्रिय आदिसे धन ग्रहण ११४	३३		जलमें मूत्र आदिटपकानेका निषेध, ... .. ११७	५६	
धन होनेपर क्षुधित न रहै ११४	३४				
पवित्र और वेदाध्ययन आ- दिसे युक्त रहै .... ११४	३५				
दण्डकमण्डलु आदिका धारण... .. ११४	३६				

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
शून्य घरमें शयन आदिका निषेध ... .. ११७	५७		जुआ खेलना आदि तथा शय्यापर स्थित होके भोजन आदिका निषेध १२०	७४	
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे बाहर करै ११७	५८		रात्रिमें तिलभोजन तथा नग्न होके शयन करने आदिका निषेध ... १२०	७५	
जल चाहनेवाली गौका नि- वारण न करै तथा इन्द्र- धनुषको न दिखावै ११८	५९		गीले पैरोंसे भोजन न करे १२०	७६	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मार्गमें एकाकी गमन आदिका निषेध ११८	६०		दुर्गगमन मलदर्शन नदी- तरणका निषेध ... १२०	७७	
शूद्र राज्य आदिमें निवा- सका निषेध ... ११८	६१		केश, भस्म, आदिपर स्थिति न करना ... .. १२०	७८	
अत्यंत भोजन आदिका निषेध ... .. ११८	६२		पतित आदिके साथ निवास न करै ... .. १२१	७९	
अञ्जलिसे जलपान आदि- का निषेध ... ११८	६३		शूद्रके लिये व्रतकथन आदि का निषेध .... .. १२१	८०	
नांचने आदिका निषेध ११८	६४		शिरका खुजालना तथा स्नान आदिके विषयमें १२१	८२	
कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन तथा फूटे आदि पात्रमें भोजनका निषेध ... ११८	६५		क्रोधसे शिरमहार केशग्रह- णके विषयमें .... १२१	८३	
दूसरेसे धारणकिये हुए यज्ञोपवीत आदिके धारणका निषेध ११९	६६		तेलसे स्नान किये हुएको फिर तेलके स्पर्शमें.... १२१	८३	
अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका निषेध .... ११९	६७		क्षत्रिय भिन्न राजा आदिसे प्रतिग्रहणका निषेध १२१	८४	
धुर्यका लक्षण कहते हैं ११९	६८		तेली आदिसे प्रतिग्रहका निषेध .... .. १२२	८५	
प्रेतघूमका तथा नख आ- दिके छेदनका निषेध ११९	६९		शास्त्रविरुद्ध मार्गमें चलने वाले राजासे प्रतिग्रहका निषेध १२२	८७	
तृण आदिके छेदनका निषेध ११९	७०		तामिस्र आदि इक्कीस नर- कोंको कहते हैं ... १२२	८८	
लोष्ठमर्दन आदिका निषेध ११९	७१		ब्राह्म सुहृत्तमें उठै ... १२३	९२	
मालाके धारण तथा वृषकी सवारी आदिके विषयमें ११९	७२		प्रातःकालमें कर्तव्य आदि १२३	९३	
द्वारके विना गृहगमन आ- दिका निषेध ... .. १२०	७३				

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
प्रातःकर्तव्यको आयुकीर्ति			तीनों वेदोंके देवताओंका		
आदिकी वर्द्धकता	१२३	९४	कथन ... ..	१२८	१२४
श्रावणीमें उपाकर्म करना			गायत्री जपके अनंतर वे-		
चाहिये ... ..	१२३	९५	दपाठ ... ..	१२८	१२५
पुष्यमें उत्सर्ग कर्म करै	१२३	९६	गौ आदिकोंके बीचमें नि-		
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय-			कलनेपर ... ..	१२८	१२६
काल ... ..	१२४	९७	शुद्ध देशमें शुद्ध होके पढ-		
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और			ना चाहिये ... ..	१२८	१२७
वेदांगोंको कृष्णपक्षमें पढै	१२४	९८	ऋतुकालमेंभी अमावास्या		
अस्पष्ट पाठ तथा निशाके			आदिमें स्त्री गमन नकरे	१२८	१२८
अन्तमें सोनेका निषेध	१२४	९९	आतुर आदिकोंको स्नानका		
गायत्री आदि नित्य पढै	१२४	१००	निषेध ... ..	१२८	१२९
अनध्यायोंको कहते हैं	१२४	१०१	गुरु आदिकी छायाका		
वर्षाकालके अनध्यायों-			लांघनेका दोष... ..	१२९	१३०
को कहते हैं ... ..	१२४	१०२	श्राद्धभोक्ताके चौराहेके		
अकालके अनध्यायको			जानसे ... ..	१२९	१३१
कहते हैं ... ..	१२४	१०३	रक्त कफ आदिके ऊपर		
सब कालके अनध्याय			न बैठै ... ..	१२९	१३२
को कहते हैं ... ..	१२५	१०५	शत्रु, चोर और पराई स्त्रीकी		
संध्याके गर्जने आदिमें	१२५	१०६	सेवाका निषेध... ..	१२९	१३३
नगर आदिमें नित्य			पराई स्त्रीकी निन्दा... ..	१२९	१३४
अनध्याय... ..	१२५	१०७	क्षत्रिय, सर्प तथा ब्राह्मण		
श्राद्धके भोजनमें और			अपमानके योग्यनहीं है	१२९	१३५
सूर्य चंद्र आदिके ग्रहणमें			अपने अपमानका निषेध	१२९	१३६
तीनिरात्रि अनध्याय	१२६	११०	प्यारा और सत्यवचन कहै	१३०	१३८
गंध तथा लेपयुक्त वेदको			वृथावक वाद न करै ... ..	१३०	१३९
न पढै ... ..	१२६	१११	प्रातःकाल आदिमें अज्ञा-		
शय्या आदिपर न पढै	१२६	११२	तके साथ न जाना		
अमावस्या आदिअध्यय-			चाहिये ... ..	१३०	१४०
नमें निषिद्ध है ... ..	१२६	११४	हीन अंग आदिकों पर		
सामदेवकी ध्वनि होने पर			आक्षेप ... ..	१३०	१४१
दूसरावेद न पढै... ..	१२८	१२३	उच्छिष्टके छूनेमें सूर्य आदि		
			के दर्शनमें ... ..	१३०	१४२
			अपने इंद्रियके छूने आदिमें	१३१	१४४

विषय.	पृ.	श्लो.	विषय.	पृ.	श्लो.
मङ्गलाचारयुक्त होय	१३१	१४५	हाथ पांपकी चपलताका		
वेदाध्ययनकी मुख्यता	१३१	१४६	निषेध ....	१३६	१७७
अष्टका श्राद्धआदिमें अब-			कुलके मार्गमें चलना	१३६	१७८
इय करना चाहिये	१३१	१५०	ऋत्विक् आदिसे वाद न करै	१३६	१७९
अग्निगृहसे दूर मूत्र आदि			इनके साथ विवादकी उ-		
का त्याग ...	१३२	१५१	पेक्षाका फल कहते हैं	१३७	१८१
पूर्वाह्नमें स्नानपूजादि	१३२	१५२	प्रतिग्रहकी निन्दा ....	१३७	१८६
पूर्वाम देवताआदिका दर्शन	१३२	१५३	विधिके विनाजाने प्रतिग्रह		
आये हुए वृद्ध आदिके			न करना चाहिये	१३७	१८७
सत्कारमें....	१३२	१५४	सूखे हो सोने आदिके		
श्रुतिस्मृतिमें कहा हुआ			लेनेमें ...	१३८	१८८
आचार करना चाहिये	१३२	१५५	वैडालव्रतिक आदिमें दा-		
आचारका फल ...	१३२	१५६	नका निषेध ....	१३८	१९२
दुराचारकी निन्दा ...	१३३	१५७	वैडालव्रतिकका लक्षण	१३९	१९५
आचारकी प्रशंसा ...	१३३	१५८	वक्त्रवृत्तिका लक्षण....	१३९	१९६
परवश कर्मके त्याग आदिमें	१३३	१५९	उन दोनोंकी निन्दा	१३९	१९७
मनका संतुष्ट करनेवाला			प्रायश्चित्तमें वंचना न क-		
कर्म करे ...	१३३	१६०	रनी चाहिये ....	१३९	१९८
आचार्य आदिकी हिंसा			छलसे व्रतके करनेमें	१४०	१९९
का निषेध ...	१३३	१६१	छलसे कर्मडलु आदिके		
नास्तिक्य आदिका निषेध	१३३	१६३	धारणमें ....	१४०	२००
अन्यके ताडन आदिका			पराई बनाई हुई पुष्कारि-		
निषेध ...	१३४	१६४	णीआदिके स्नानमें	१४०	२०१
ब्राह्मणके ताडनके उद्योगमें	१३४	१६५	विना दियेहुए यान आदि-		
ब्राह्मणके ताडनमें ....	१३४	१६६	के भोगका निषेध	१४०	२०२
ब्राह्मणके रुधिरनिकालनेमें	१३४	१६७	नदी आदिमें स्नान करना-		
अधर्म आदिको सुख नहीं	१३५	१७१	चाहिये... ..	१४०	२०३
अधर्ममें मन न लगावै	१३५	१७२	यम और नियम कहते हैं	१४०	२०४
हौलेर अधर्मके फलकी			अश्रोत्रिय यज्ञमें भोजन-		
उत्पत्ति होती है ....	१३५	१७३	का निषेध ....	१४१	२०५
शिष्य आदिके शासनमें	१३५	१७५	क्रुद्ध आदिका अन्न तथा		
अर्थ कामके त्यागमें	१३५	१७६	केशआदिसे मिलाहुआ		
			न भोजन करै ...	१४१	२०७

विषय	पृ.	श्लो.
रजस्वलाकरि छुएहुए अन्न		
आदिका निषेध ...	१४१	२०८
गऊ करि सूंघाहुआ और गणिका		
आदिके अन्नका निषेध १४१	२०९	
स्तेन आदिके अन्न अमोज्या-		
चहैं ... ..	१४१	२१०
राजा आदिके अन्न भोजनमें		
मंद फल... ..	१४३	२१८
उनके अन्नके भोजनमें प्राय-		
श्रित्त ... ..	१४३	२२२
शूद्रकरि पक्कअन्नका निषेध १४४	२२३	
कृपण श्रोत्रिय तथा व्याज खा-		
नेवालेका अन्न निषिद्ध १४४	२२४	
श्रद्धासे दियेहुए दाता तथा		
व्याज खानेवालेके अन्न १४४	२२५	
श्रद्धासे यज्ञ आदिकरै १४४	२२६	
श्रद्धासे दियेहुए दानका फल १४४	२२७	
जल भूमि दान आदिका फल १४४	२२८	
वेदके दानकी प्रशंसा ...	१४५	२३३
जिस २ भावसे दान देताहै उसी-		
को जन्मांतरमें पाताहै १४५	२३४	
विधिसे दानदेने तथा लेनेमें	१४६	२३५
द्विजकी निंदाका दानके		
कहनेका निषेध ....	१४६	२३६
अनृत आदिका फल... ..	१४६	२३७
हौले २ धर्मकरै ... ..	१४६	२३८
धर्मकी प्रशंसा ... ..	१४६	२३९
उंचोंसे संबंध करना		
हीनेसेनहीं .... ..	१४७	२४४
फल मूल आदिके लेनेमें	१४७	२४७
दुष्कृत कर्मकी शिक्षा लेना १४८	२४८	
शिक्षाके न लेनेमें ...	१४८	२४९

विषय	पृ.	श्लो.
विनामांगी भिक्षामें ...	१४८	२५०
कुटुंबकेलिये भिक्षा ...	१४८	२५१
अपनेलिये साधुभिक्षा	१४८	२५२
जिनका अन्न भोजनके योग्य		
ऐसे शूद्र... ..	१४८	२५३
शूद्रोंको अपना निवेदन कर-		
ना चाहिये ....	१४८	२५४
झूठ कहनेमें निन्दा ....	१४९	२५५
योग्य पुत्रको कुटुंबका		
भारदेनाचाहिये ....	१४९	२५७
ब्रह्मकी चिन्ता... ..	१४९	२५८
कहे हुएके फलका कहना १५०	२६०	

अथ पंचमोऽध्यायः ५.

मनुष्योंकी कैसे मृत्यु होती-		
है यह प्रश्न ...	१५०	२
मृत्युके पहुँचाने वालोंको-		
कहते हैं .... ..	१५१	३
लशुन आदि अभक्ष्य-		
कहते हैं ... ..	१५१	५
वृथा मांस आदिका निषेध १५१		७
अभक्ष्य दूध... ..	१५१	८
शुक्तोंमें दही आदि भक्ष्य १५२		१०
अथ अभक्ष्य पक्षी ...	१५२	११
सौन और मूखे मांस आदि १५२		१३
गाँवके शूकरमछली आदि १५२		१४
मछली खानेकी निन्दा १५३		१५
खानेयोग्य मछली कहतेहैं १५३		१६
सर्प वानर आदिका निषेध १५३		१७
खाने योग्य पंचनख-		
कहते हैं ....	१५३	१८
लशुन आदिके खानेमें		
प्रायश्चित्त ...	१५३	१९



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
यज्ञके लिये पशुहिंसा-			बालक आदिका आशौच	१६१	६७
की विधि ....	१५४	२२	दोवर्षसेन्यूनकाभूमिमेंगाड़ना	१६१	६८
वासी भी भक्ष्य ...	१५४	२४	इसके अग्निसंस्कार		
मांसके भक्षणमें ...	१५४	२७	आदि नहीं हैं .....	१६१	६९
प्रोक्षित मांस खानेकानियम	१५५	३१	बालकके जलदानमें	१६१	७०
वृथा मांस खानेका निषेध	१५५	३३	सहपाठीके मरनेमें ....	१६२	७१
श्राद्धमें मांसके न खानेमें			वाग्दत्ता स्त्रीका आशौच	१६२	७२
निन्दा ... ..	१५६	३५	हविष्यका भक्षण आदि	१६२	७३
अप्रोक्षित मांस न खाय	१५६	३६	अथ विदेशका आशौच	१६२	७५
यज्ञकेलिये वधकी प्रशंसा	१५६	३९	व्याचार्यके और उसके		
पशुकेमारनेमेंकालकानियम	१५७	४१	पुत्रके मरनेमें ....	१६३	८०
वेदमें न कहींहुई हिंसाकानि-			श्रोत्रिय तथा मामा		
षेध... ..	१५७	४३	आदिके मरनेमें ....	१६३	८१
अपने सुखकी इच्छासे			राजाके अद्यापक आदिके		
मारनेमें ... ..	१५७	४५	मरनेमें ... ..	१६३	८२
वध और बंधन न करना-			संपूर्ण आशौच कहतेहैं	१६३	८३
चाहिये ... ..	१५७	४६	अग्निहोत्रके लिये स्नानसे		
मांसके वर्जनमें ....	१५७	४८	शुद्धि ... ..	१६३	८४
अथ घातक काहिये मारने-			छूनेके कारण आशौच	१६४	८५
वाले ... ..	१५८	५१	आशौचके दर्शनमें ....	१६४	८६
मांसके वर्जनका फल ...	१५८	९३	मनुष्यके स्पर्शनमें ....	१६४	८६
सर्पिण्डोंका दशादिन आदि			ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिक		
आशौच ... ..	१५९	५८	प्रेतको जलदान आदि		
अथ सपिण्डता ...	१५९	६०	न करै... ..	१६४	८८
जननमें माताका न छूना	१६०	६२	पतित आदिकोंको जल-		
वीर्यके गिरने और परपूर्व-			दान न करै ....	१६४	८९
व्यपत्यके मरनेमें... ..	१६०	६३	व्यभिचारिणी आदिको		
शवके स्पर्श और समानोदकके			जलदान न करै ...	१६४	९०
मरनेमें ... ..	१६०	६४	ब्रह्मचारीको मृतपिता		
गुरुके मरनेका आशौच	१६१	६५	आदिके लेजनिमें	१६५	९१
गर्भस्त्राव होनेपर रजस्त्राव-			शूद्र आदिकोंके मृतकको		
की शुद्धिमें ... ..	१६१	६६	दक्षिण आदि पुरद्वारसे		
			निकालै .... ..	१६५	९२

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
राजा आदिकोंको आशौच न होनेमें ...	१६५	९३	चर्म बांसका पात्र शाकमू- ल तथा फलकी शुद्धिमें	१६९	११९
राजाकी शीघ्रही शुद्धता वज्र आदिसे मरे हुएकी शीघ्रही शुद्धता ...	१६५	९४	कंवल पट्टवस्त्रकी शुद्धिमें	१६९	१२०
राजाके आशौच न होनेकी स्तुति ...	१६५	९५	तृण काष्ठ गृह मृद्गाडकी शुद्धिमें ...	१६९	१२२
सत्रधर्मसे मारे हुएकी शीघ्रही शुद्धता ...	१६६	९६	रुधिर आदिसे दूषित मृद्गाडका त्याग ....	१७०	१२३
आशौचके धतका कृत्य	१६६	९९	भूमिकी शुद्धिमें ...	१७०	१२४
असर्पिडका आशौचकहते हैं	१६६	१००	पक्षीके साथे और गौके- सूँघे आदिमें ....	१७०	१२५
मृतक असर्पिडके लेजानेमें	१६६	१०१	गंधलेपयुक्त द्रव्यकी शु- द्धिमें ...	१७०	१२६
आशौचवालेका अन्नखानेमें	१६६	१०२	पवित्र कहते हैं ...	१७०	१२७
मृतक लेजानेवालोंके साथ जानेमें ...	१६७	१०३	जलकी शुद्धिमें ...	१७०	१२८
ब्राह्मणको शूद्रोंसे न उठवावै	१६७	१०४	नित्य शुद्ध कहते हैं	१७०	१२९
ज्ञान आदि शुद्धिके साधनहैं	१६७	१०५	छूनेमें नित्य शुद्ध ...	१७१	१३२
अर्थ कहिये धनमें शुद्धकी प्रशंसा ...	१६७	१०६	मूत्र आदिकेत्यागकी शुद्धि	१७१	१३४
समा दान जप तथा तप शोधनेवालेहैं ...	१६७	१०७	अथ वारह मल ....	१७२	१३५
मैली नदी स्त्री तथा द्विजकी शुद्धिमें ...	१६७	१०८	मिष्टी और जलके लेनेमें नियम ...	१७२	१३६
शरीर मन आत्मा बुद्धिकी शुद्धिमें ...	३६८	१०९	ब्रह्मचारी आदिको द्विगुण आदि आचमनके अनंतर इंद्रिय आदिका छूना	१७२	१३७
द्रव्य शुद्धि कहते हैं ...	१६८	११०	आचमनकी विधि ...	१७२	१३९
सुवर्ण आदि तथा मणिकी शुद्धिमें ....	१६८	१११	शूद्रोंको मासमें शिर मुढाना और द्विजोच्छिष्ट भोजन	१७२	१४०
घृत आदि शय्या आदि तथा फाणकी शुद्धिमें	१६८	११५	मुखके बिंदु और मूत्र आदि उच्छिष्ट नहीं हैं ...	१७२	१४१
यज्ञके पात्रोंकी शुद्धिमें	१६८	११६	पावोंमें गिरी कुल्लेकी वृंद शुद्ध है ....	१७३	१४२
धान्य तथा वस्त्रकी शुद्धिमें	१६९	११८	द्रव्यहस्तको उच्छिष्टके छूनेमें ...	१७३	१४३
			वसन विरेचन तथा मैथुन- की शुद्धिमें ....	१७३	१४४

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
निष्ठीवन क्षुधा भोजन आ- दिकी शुद्धिमें .... १७३	१४५		नीवार आदिका त्याग १७९	१५	
अथ स्त्री धर्मोको कहते हैं १७३	१४६		फालसे जुते हुए अन्नआ- दिकानिषेध.... १७९	१६	
स्त्रीकी स्वतंत्र होना न चाहिये १७३	१४७		अश्मकुट्ट आदि .. १७९	१७	
किसके वशमें रहे सो क- हते हैं ... १७३	१४८		तृण धान्य आदिके इकट्टे करनेमें ... १७९	१८	
प्रसन्न हो घरका काम करै १७४	१५०		भोजनके काल आदि ... १८०	१९	
स्वामीकी सेवा ... १७४	१५१		भूमि परिवर्तन आदि ... १८०	२२	
स्वामीपन का कारण कह- ते हैं ... १७४	१५२		ग्रीष्म आदि ऋतुशोका कृत्य... १८०	२३	
स्वामी की प्रशंसा ... १७४	१५३		अपने देहको सुरवाँवै ... १८०	२४	
स्त्रियोंके पृथक् यज्ञका निषेध ... १७४	१५५		अग्निहोत्रका समाप्त करना आदि ... १८१	२५	
स्वामीका अप्रिय न करै १७५	१५६		वृक्षोंके नीचे तथा भूमिमें सोना आदि... १८१	२६	
जिसका पति मरगया है उसके धर्म ... १७५	१५७		भिक्षा करनेमें ... १८१	२७	
पराये पुरुषसे गमनकी निंदा ... १७५	१६०		वेद पाठ आदि ... १८१	२९	
पतिव्रतापनका फल ... १७६	१६५		महाप्रस्थान ... १८१	३१	
भार्याके मरने पर श्रौत अग्निसे दाह .... १७६	१६७		संन्यासीका काल कहते हैं १८२	३३	
फिर स्त्रीके ग्रहणमें .... १७६	१६८		ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे संन्यास लैवै ... १८२	३४	
गृहस्थके कालकी अवाधे १७७	१६९		ऋणशोधे विना संन्यास न लैवै ... १८२	३५	
<b>अथ षष्ठोऽध्यायः ६.</b>			पुत्र विना उत्पन्न किये सं- न्यास न लैवै ... १८२	३६	
वानप्रस्थ आश्रम कहते हैं १७७	१		प्राजापत्य यज्ञ करिके सं- न्यास लैवै ... १८३	३८	
भार्या और अग्निहोत्र स- हित वनमें वसै ... १७७	३		अभय दानका फल ... १८३	३९	
फल मूलसे पंचयज्ञ करना १७८	५		वांछा रहितहोसंन्यास लैवै १८३	४१	
मृगचर्म चीर जटा आदि- का धारण .... १७८	६		अकेला मोक्षके लिये विचरै १८३	४२	
अतिथिचर्या ... १७८	७		संन्यासीके नियम .... १८४	४३	
वानप्रस्थके नियम ... १७८	८		मुक्तका लक्षण .... १८४	४४	
मद्युमांस आदिका वर्जन .. १७९	१४		जीवनके आदिकी कामना से रहित होवै ... १८४	४५	
आश्विनमें संचय किये हुए					

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
संन्यासीका आचार ...	१८४	४६	चारि आश्रम...	१९१	८७
भिक्षाके ग्रहणम ....	१८५	५०	सव आश्रमोंका फल...	१९१	८८
दंड कमंडलु आदि ....	१८५	५२	गृहस्थकी श्रेष्ठता ...	१९१	८९
भिक्षाके पात्र ...	१८५	५३	दशप्रकारका धर्म सेवन		
एककालमें भिक्षा करना	१८६	५५	करने योग्यहै ...	१९१	९१
भिक्षाका काल ....	१८६	५६	दशप्रकारके धर्म कहतेहैं	१९२	९३
मिलने न मिलनेमें हर्ष			वेदहीका अभ्यास करै	१९२	९५
विषाद न करै ....	१८६	५७	वेद संन्यासका फल ...	१९२	९६
पूजापूर्वक भिक्षाका					
निषेध ....	१८६	५८	<b>अथ सप्तमोऽध्यायः ७.</b>		
इन्द्रियोंका रोकना ....	१८६	५९	राजधर्मोंको कहतेहैं	१९३	१
संसारकी गतिका कथन	१८६	६१	संस्कार किये हुएका प्र-		
सुख दुःखके धर्म अधर्म			जाका रक्षण.....	१९३	२
कारणहैं ....	१८७	६४	रक्षाके लिये इंद्र आदिकों		
चिह्नमात्र धर्मका कारण			के अंशसे राजाकी		
नहींहैं ....	१८७	६६	उत्पत्ति ...	१९३	३
भूमिको देखके भ्रमण			राजाकी प्रशंसा ...	१९३	६
करै ...	१८७	६८	राजासे द्वेषकी निन्दा	१९४	१२
छोटे जीवोंकी हिंसाका			राजाके स्थापित धर्मको		
प्रायश्चित्त....	१८८	६९	न चलावै....	१९५	१३
प्राणायामकी प्रशंसा...	१८८	७०	दंडकी उत्पत्ति ...	१९५	१४
ध्यानके योगसे आत्मा-			दंडका करना....	१९५	१६
को देखै ...	१८८	७३	दंडकी प्रशंसा ...	१९५	१७
ब्रह्मके साक्षात्कारमें मुक्ति	१८८	७४	अयोग्य दंडका निषेध	१९६	१९
मोक्षके साधक कर्म ....	१८९	७५	दंडके योग्योंको दंड न		
देहका स्वरूप ...	१८९	७६	देनेमें निन्दा ...	१९६	२०
देहके त्यागम दृष्टांत कहतेहैं	१८९	७८	फिर दंडकी प्रशंसा ...	१९६	२२
प्रियअप्रियमें पुण्य पाप-			दंड देनेवाला कैसा होय		
का त्याग ...	१८९	७९	इसपर कहतेहैं ...	१९७	२६
विषयोंकी इच्छा न करनी	१८९	८०	अधर्म दंडमें राजा आदि		
आत्माका ध्यान ....	१९०	८२	कोंका दोष ...	१९७	२८
संन्यासका फल ...	१९०	८५	मुख्य आदिकोंको दंड देने-		
वेद संन्यासियोंकेकर्म कहतेहैं	१९०	८६	का निषेध ....	१९७	३०

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
सत्यप्रतिज्ञा वाले करि			माननेवालोंको नियतकरै	२०३	६२
दंड देना योग्यहै ...	१९८	३१	दूतका लक्षण ...	२०३	६३
शत्रु मित्र ब्राह्मण आदिमें			सेनापाति आदिका कार्य	२०४	६५
दंडकी विधि ...	१९८	३२	दूतकी प्रशंसा... ..	२०४	६६
न्यायमें चलनेवाले रा-			प्रत्येक राजाका वांछित-		
जाकी प्रशंसा ....	१९८	३३	दूतसे जानै ...	२०४	६७
राजाके कृत्यमें वृद्धकी			जंगल देशके आश्रयलेनेमें	२०४	६९
सेवा ... ..	१९८	३४	अथ दुर्गके प्रकार ....	२०४	७०
विनयका ग्रहण ....	१९९	३७	दुर्गको वस्त्र भन्न आदि-		
अविनयकी निन्दा ...	१९९	३९	सेपूर्ण करै.... ..	२०६	७५
यहां दृष्टांत कहतेहैं ...	१९९	४०	सुंदर स्त्रीसे विवाह करै	२०६	७७
विनयसे राज्य आदि			पुरोहित आदि ...	२०६	७८
पानेका दृष्टांत ...	१९९	४१	यज्ञ आदिका करना...	२०६	७९
विद्याका ग्रहण ...	१९९	४३	करके लेनेमें ...	२०६	८०
इन्द्रियोंका जीतना ...	१९९	४४	अथ अध्यक्ष ...	२०६	८१
काम क्रोधसे उत्पन्न व्य-			ब्राह्मणोंको जीविका देना	२०७	८२
सनका त्याग ....	२००	४५	ब्राह्मणोंको जीविका देनेकी		
कामसे उत्पन्न दशव्यसन			प्रशंसा ... ..	२०७	८३
कहतेहैं .... ..	२००	४७	पात्रमें दानकाफल कहतेहैं	२०७	८५
क्रोधसे उत्पन्न दशव्यसन			संग्राममें बुला हुआ नलैटै	२०८	८७
कहतेहैं ... ..	२००	४८	सन्मुख मरनेमें स्वर्गप्राप्ति	२०८	८९
सबोंके मूल लोभका			छलके अस्त्रआदि का निषेध	२०८	९०
त्याग ... ..	२००	४९	संग्राममें अवध्य कहतेहैं	२०८	९१
अतिदुःखके देनेवाले व्यस-			भीत आदिके मारनेमें दोष	२०८	९४
नहैं ... ..	२०१	५०	संग्राममें मारेहुएके मारनेमें		
व्यसनकी निन्दा ...	२०२	५३	दोष ... ..	२०९	९५
अथ सचिवकाहिये मंत्री			जिसने जो जीता वह उसी-		
मंत्रियोंके साथ विचार			का धन ... ..	२०९	९६
करिके हितकरना			श्रेष्ठ वस्तु राजाको देनी	२०९	९६
चाहिये ... ..	२०२	५६	हाथी घोड़े आदिका बढाना	२०९	९९
ब्राह्मण मंत्री ... ..	२०२	५८	नपाये हुएके पानेकी		
औरोंकोभी मंत्री करै....	२०३	६०	इच्छा कर ... ..	२०९	१०१
खानि आदि धनके उत्प-			घोड़े प्यादे आदिकी नित्य		
त्तिस्थानमें धर्मसे भय-			शिक्षा .... ..	२१०	१०२

विषयानुक्रमणिका ।

( २५ )

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
नित्य उद्यत दंडहीय	२१०	१०३	शिल्प आदि कर्म करवै	२१५	१३८
मंत्री आदिकोंमें माया			थोड़े बहुत अधिक कर		
नकरनी चाहिये ....	२१०	१०४	लेनेका निषेध ...	२१५	१३९
प्रजाका भेदआदिसे रक्षा			कार्यको देखकर तीक्ष्ण		
करना चाहिये ....	२१०	१०५	वा मृदु होय ...	२१५	१४०
अर्थ आदिकी चिन्ताकरनी	२१०	१०६	मंत्रीके साथ कार्यका		
विजयके विरोधी वश			विचार करै ....	२१६	१४१
करने चाहिये ....	२११	१०७	चोरोंको दंड देता रहै	२१६	१४३
सामदंडकी प्रशंसा ...	१११	१०९	प्रजापालनकी श्रेष्ठता ....	२१६	१४४
राजाकी रक्षा ....	१११	११०	सभा का काल ...	२१६	१४५
प्रजाके पीड़ा देनेमें दोष	२११	१११	एकान्तमें गुप्त मंत्र करै	२१७	१४७
प्रजाकी रक्षामें सुख ...	२१२	११३	मंत्र करनेके समय स्त्री		
ग्रामके अधिपति आदि	२१२	११५	आदिका हटा देना	२१७	१४९
ग्रामके दोषका कहना	२१२	११६	धर्मकाम आदिकी चिन्ता		
ग्रामके अधिकारिकी			करना ....	२१७	१५१
वृत्ति कहते हैं ....	२१२	११८	दूतोंको प्रेषण आदि ...	२१७	१५३
ग्रामके कार्य इसकरके			अथ प्रजाके प्रकार ...	२१९	१५६
करने योग्य हैं ...	२१२	१२०	शत्रुकी प्रकृतिको जानै	२१९	१५८
अर्थका चिंतवन करनेवाला			अथ छःगुण ....	२१९	१६०
होय ....	२१३	१२१	संधि आदिका प्रकार	२२०	१६२
उसके चरित्र को आपजानै	२१३	१२२	संधि विग्रहआदिके काल	२२१	१६९
घूस आदिके लेनेवाले का			बली राजाके आश्रयलेनेमें	२२२	१७५
शासन करना ...	२१३	१२३	आपको अधिक करै ...	२२२	१७७
प्रेष्य आदि वृत्तिकी			आनेवाले गुणदोषोंकी चिन्ता	२२२	१७८
कल्पना करना ...	२१३	१२५	राजाकी रक्षा ...	२२२	१८०
वनियोंसे कर लेनेमें ...	२१४	१२७	शत्रुके राज्यमें जानेकी विधि	२२३	१८१
थोड़ा थोड़ा करलेनेमें	२१४	१२९	शत्रुके सेवन करने वाले		
धान्यआदिकोंपर करलेनेमें	२१४	१३०	मित्रआदिमें सावधानी	२२४	१८६
श्रोत्रियसे कर न ग्रहण करै	२१५	१३३	सेनाके व्यूह बनानेमें	२२४	१८७
श्रोत्रियकी जीविका करनेमें	२१५	१३४	जलआदिमें युद्धका प्रकार	२२५	१९२
शाक आदि बेचनेवाले-			आगेकी सेनाके योग्योंको		
पर थोड़ा कर ...	२१५	१३७	कहते हैं ...	२२५	१९३

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
सेनाकी परीक्षा करना	२२५	१९४	अठारह विवादोंको कहते हैं	२३२	४
परायदेशके पीडा देनेमें	२२६	१९५	धर्मका आश्रय लेकर		
पराई प्रजाका भेद आदि	२२६	१९७	निर्णय करे ...	२३२	८
उपायके न हीनमें युद्धकरै	२२६	२००	आप असमर्थ होयती		
जीतिकरि ब्राह्मण आदि-			विद्वान्को नियत करै	२३२	९
का पूजन और प्रजा			वह तीन ब्राह्मणोंके साथ		
का अभय दान ...	२२७	२०१	कर्म देखै ....	२३२	१०
उसके वंशवालेको उसका			उस सभाकी प्रशंसा ...	२३३	११
राज्य देनेमें ...	२२७	२०२	अधर्ममें सभासदाका दोष	२३३	१२
करका लेना आदि ...	२३७	२०६	सभामें सत्यही बोलना		
मित्रकी प्रशंसा ...	२२८	२०७	चाहिये ...	२३३	१३
शत्रुके गुण ...	२२८	२१०	अधर्म वादिको दंड ...	२३३	१४
उदासीनके गुण ...	२२८	२११	धर्मके उलांघनमें दोष	२३३	१५
अपने लिये भूमि आदि			बुरेव्यवहारमें राजा		
का त्याग ...	२२८	२१२	आदिको अधर्म ...	२३४	१८
आपत्तिमें उपायोंका सोचना	२२९	२१४	अर्थी प्रत्यर्थीके पापमें	२३४	१९
राजाके भोजनमें ...	२२९	२१६	व्यवहारके देखनेमें शूद्रका		
बन्न आदिकी परीक्षा...	२२९	२१७	निषेध ....	२३४	२०
विहार आदिमें ...	२३०	२२१	जिसमें नास्तिक तथा शूद्र		
आयुध आदिका देखना	२३०	२२२	अधिक द्विज न्यून ऐसे		
संध्योपासन करके दूतके			देशका निषेध ...	२३५	२१
काम देखै ....	२३०	२२३	लोकपालोंको प्रमाण करि		
तिस पीछे रात्रिका भोजन			व्यवहारको देखै ...	२३५	२३
आदि करै ...	२३०	२२४	ब्राह्मण आदिके क्रमसे		
राजा स्वस्थ न होय तौ			व्यवहारको देखै ...	२३५	२४
श्रेष्ठ मंत्रीके आधीन करै	२३१	२२६	स्वर और वर्ण आदिसे		
अथ अष्टमोऽध्यायः ८.			अर्थी आदिकी परीक्षा		
राजा व्यवहारोंके देखनेकी			करै ...	२३५	२५
इच्छासे सभामें जाय	२३१	१	बालकका धन राजाकरि		
कुल तथा शास्त्र आदिसे			रक्षा करने योग्य है	२३६	२७
व्यवहारोंको देखै	२३१	३	प्रोषितपतिका आदिके		
			धनकी रक्षा करना	२३६	२८
			अपुत्राके धन लेनेवाले-		
			को शासन ...	२३६	२९

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
स्वामिरहित धनकी रक्षाका			बालक आदिके साक्ष्य		
काल ... .. २३६	३०		आदिमें ... .. २४३	७०	
द्रव्यके रूप और संख्या			साहस आदिमें साक्षीकी		
आदिका कहना ... २३६	३१		परीक्षा नहीं .... २४३	७२	
न कहनेमें दंड .... २३६	३२		साक्षियोंके दैधर्म्यमें .... २४३	७३	
नष्ट हुए द्रव्यसे छठा भाग			साक्षीका सत्य कहना .... २४४	७४	
लेना ... .. २३७	३३		झूठा साक्षी होनेमें दोष .... २४४	७५	
चोरका मरवाना ... .. २३७	३४		सुने हुए साक्षी ... .. २४४	७६	
निधि आदिमें छठा भाग लेना २३७	३५		धर्मज्ञ एकभी साक्षीहोता है २४४	७७	
पराई निधिमें झूठके बोलनेमें २३७	३६		साक्षीका स्वाभाविक बचन		
ब्राह्मणकी निधिके विषयमें २३७	३७		ग्रहण करै .... २४४	७८	
राजा निधि पाके धापी ब्राह्म-			साक्षियोंसे पूंछनेमें .... २४४	७९	
णोंको देवै ... .. २३७	३८		साक्षियोंको सत्य कहना		
चोरों करि लिया हुआ धन			चाहिये .... २४५	८१	
राजाको देना चाहिये .... २३८	४०		एकांतमें किये कामको		
जाति तथा देशके विरोध			आत्मा आदि जानना है २४५	८४	
विना करना चाहिये २३८	४१		ब्राह्मण आदि साक्षियोंसे		
राजाको विवादका उठाना			प्रश्नमें ... .. २४६	८७	
आदि न करना चाहिये २३८	४३		असत्य कहनेमें दोष .... २४६	८९	
अनुमानसे सत्यका निश्चय			सत्यकी प्रशंसा ... .. २४६	९२	
करै ... .. २३८	४४		असत्य कहनेका फल .... २४६	९३	
सत्य आदिसे व्यवहारको देखै २३९	४५		फिर सत्य कहनेकी प्रशंसा २४७	९६	
सदाचार करना चाहिये .... २३९	४६		विषयके भेदसे सत्यका फल २४७	९७	
ऋणके देनेमें .... २३९	४७		निंदित ब्राह्मणोंसे शूद्रकी		
अथ हीन ... .. २४०	५३		भाँति पूंछे ... .. २४८	१०२	
अभियोग करनेवालेका द			विषयके भेदसे झूठ कहनेमें		
ण्ड आदि ... .. २४१	५८		दोष ... .. २४८	१०३	
धन परिमाणके झूठ कहनेमें २४१	५९		झूठ कहनेमें प्रायश्चित्त २४८	१०५	
साक्षियोंसे निश्चय करना २४१	६०		तीनेपक्षतक साक्ष्य कह-		
अथ साक्षी ... .. २४१	६१		नेमें पराजय .... २४९	१०७	
साक्षी होनेमें निषिद्ध ... २४२	६४		साक्षियोंके भंगमें ... २४९	१०८	
स्त्री आदिकोंकी स्त्री साक्षी २४३	६८		विना साक्षीके विवादमें		
वादीके साक्षी ... .. २४३	६९		शपथ ... .. २४९	१०९	



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
वृथा शपथमें दोष	....२४९	१११	वृद्धिके प्रकार	....२५६	१५२
वृथा शपथका प्रतिप्रसव			फिर लेख्य करनेमें	....२५७	१५४.
कहते हैं	.... २४९	११२	देशकालकी वृद्धिमें	...२५७	१५६
ब्राह्मण आदिको सत्य कहना			दर्शनप्रतिभूके स्थलमें	....२५८	१५८
आदि शपथहै	...२५०	११३	जमानतका ऋण पुत्र न देवै	२५८	१६९
शूद्रके शपथमें	.... २५०	११४	दानप्रतिभूके स्थलमें	... २५८	१६०
शपथम शुद्ध कहते हैं	...२५०	११५	निरादिष्ट धनमे प्रतिभू		
अथ पुनर्वाद	.... २५०	११७	होनेपर	....२५८	१६२
लोभ आदिसे साक्ष्यमें दंड			क्रियेकी निवृत्तिमें	... २५९	१६३
विशेष	.... २५०	११८	कुटुंबके लिये किया अदेयहै	२५९	१६६
दंडके हाथ आदि दशस्था-			बलसे किया हुआ लौटाने-		
नहीं	.... २५१	१२४	योग्य है	.... २५९	१६८
अपराधकी अपेक्षा दंडदेना	२५१	१२६	प्रतिभू होने आदिका निषेध	२५९	१६९
अधर्म दंडकी निंदा	...२५२	१२७	अग्राह्य धनको न लेवै	...२६०	१७०
दंडयोग्यका परित्याग	....२५२	१२८	ग्रहण करने योग्यके त्याग-		
वाग्दंड धिग्दंड आदि	....२५२	१२९	में दोष	... २६०	१७१
त्रसरेणु आदि परिमाणोंको			निर्वलंकारक्षा करने आदिमें	२६०	१७२
कहते हैं	.... २५२	१३२	अधमसे कार्य करनेमें	.... २६०	१७४
प्रथम मध्यम उत्तम साहस	२५३	१३८	धर्मसे काम करना	.... २६०	१७५
ऋणदानमें दंडका नियम	२५४	१३९	धनिकसे धनके साधनमें	२६१	१७६
अथ वृद्धि कहिये व्याज	२५४	१४०	धन न होनेमें काम करके		
आधिके स्थलमें	.... २५४	१४३	ऋण शोधन करै	...२६१	१७७
बलसे आधिके भोगका			अथ निक्षेप कहिये धरोहरमें	२६१	१७९
निषेध	.... २५४	१४४	साक्षीके न होनेमें निक्षेपसे		
आधिके निक्षेप आदिमें	.... २५५	१४५	निर्णय	... २६२	१८२
गौ आदिके भोगनेपरभी			निक्षेपके देनेमें	... २६२	१८५
स्वत्वकी हानि नहीं होती	२५५	१४६	आपही निक्षेपके देनेमें	.... २६२	१८६
आधि सीमा आदिमें भोग-			सुदी हुई धरोहरमें	... २६३	१८८
नेपरभीस्वत्व हानिनहीं	२५५	१४७	धरोहरके चोरी होजाने पर	२६३	१८९
बलसे आधिके भोगनेमें			निक्षेपके सुकर जानेमें शपथ	२६३	१९०
आधि वृद्धि	... २५६	१४९	निक्षेपके अपहार आदिमें		
दुगुनेसे अधिक वृद्धि नहीं			दंड	.... २६३	१९१
होती	.... २५६	१५१	छलसे पराये धनके लेलेनेमें	२६४	१९३

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
धरोहरमें झूठ बोलनेसे दंड	२६४	१९४	धान्य नाश करनेवाले-		
धरोहरके देने लेनेमें ....	२६४	१९५	के दंडमें....	२७१	२३७
विना स्वामीके वेचनेमें	२६४	१९६	सीमा विवादके स्थलमें	२७३	२४५
आगमसहित भोगका प्रमाण	२६५	२००	सीमाके वृक्ष आदि	२७३	२४६
खुलाखुली वेचने तथा			नष्टकियेगये सीमाकेचिह्न	२७३	२४९
मूल्यके धरन लाभमें	२६५	२०१	भोगसे सीमाकानिर्णय करै	२७४	२५२
साझेकी वस्तुके वेचनेमें	२६५	२०२	सीमाके साक्षी ...	२७४	२५३
और कन्यादिस्त्राके औरसे			साक्ष्य युक्त सीमाको बाँधे	२७४	२५५
विवाहमें ... ..	२६५	२०४	साक्ष्य देनेकी विधि ....	२७४	२५६
जन्मत्त आदि कन्याके			अन्यथा कहनेमें दंड	२७५	२५७
विवाहमें ... ..	२६६	२०५	साक्षीके न होनेमें गाँवके		
पुरोहितकीदक्षिणा देनेमें	२६६	२०६	सामंत आदि ....	२७५	२५८
अध्वर्यु आदिकी दक्षिणा	२६६	२०९	सामंतोंके झूठ कहनेमें दंड	२७५	२६३
संभूयसमुत्थानमें ...	२६७	२११	गृह आदिके हार लेनेमेंदंड	२७६	२६४
दियेका मुकरजाना ....	२६७	२१२	राजा आप सीमाका निर्णय		
मरनेके स्थलमें ....	२६८	२१५	करै .... ..	२७६	२६५
प्रातिज्ञाके बदल जानेमें....	२६८	२१८	अथ वाकूपारुष्यमें दंड	२७६	२६६
वेचीहुई वस्तुमें पछतावा			ब्राह्मण आदिके गाली देनेमें	२७६	२६७
करना .... ..	२६९	२२२	बराबर वर्णके गाली देनेमें	२७६	२६०
विनाकहे दोष युक्त कन्या-			द्विजको शूद्रके गाली देनेमें	२७६	२७०
के दानमें .... ..	२६९	२२४	धर्मका उपदेश करनेवाले		
झूठ कन्याके दोष कहनेमें	२६९	२२५	शूद्रको दंड ....	२७७	२७२
दूषित कन्याकी निंदा	२६९	२२६	सुने हुए देश तथा जाति-		
अथ सप्तपदी ....	२७०	२२७	के आक्षेपमें ...	२७७	२७३
स्वामी और पालनेवालेका			काना आदि बुराई करनेमें	२७७	२७४
विवाद ... ..	२७०	२२९	माता आदिके बुरा कहनेमें	२७७	२७५
क्षीरकी भृतिके स्थलमें	२७०	२३१	आपसमें पतित होने योग्य		
पालनेवालेके दोषसे नष्ट			बुराई करनेमें ...	२७७	२७६
स्थलमें .... ..	२७०	२३२	अथ दंडपारुष्य ....	२७८	२७८
चौरके ले जानेपर ....	२७१	२३३	शूद्रको ब्राह्मण आदिके		
सौंग आदि चिह्न दिखाना	२७१	२३४	ताड़नेमें ...	२७८	२७९
भेडिया आदिके मारनेके			वडके साथ बैठनेमें ...	२७८	२८१
स्थलमें .... ..	२७१	२३५			

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
थूकने आदिमें ....	२७८	२८२	चुराने और प्याऊके		
बाल पकड़ने आदिमें	२७९	२८३	तोड़नेमें ....	२८५	३१९
त्वचाके फोड़ने और हड्डी- के तोड़ने आदिमें....	२७९	२८४	धान्य आदिके चुरानेमें	२८५	३२०
वनस्पतिके काटनेमें ....	२७९	२८५	सुवर्ण आदिके चुरानेमें	२८५	३०१
मनुष्योंके दुःखके अनुसार दंड ....	२७९	२८६	स्त्री पुरुष आदिके हरनमें	२८५	३२३
समुत्थानका खरच देनेमें	२७९	२८७	बड़े पशु आदिके चुराने आदिमें ....	२८५	३२४
द्रव्यकी हिंसामें ....	२७९	२८८	सूत कपास आदिके चुरानेमें	२८६	३२६
चमड़ेके भांड आदिमें	२८०	२८९	हरेधान्य आदिके चुरानेमें	२८६	३३०
यान आदिकी दशाओंका बदलना ....	२८०	२९०	निरन्वय सान्त्वय धान्य आदि ...	२८७	३३१
रथके स्वामी आदिके दंडदेनेमें ...	२८०	२९३	स्तेय साहसका लक्षण	२८७	३३२
भार्या आदिकी ताड़नामें	२८१	२९९	तीनों अप्रियोंके चुरानेमें	२८७	३३३
अन्यथा ताड़नमें दंड	२८१	३००	चोरका हाथ काटना आदि	२८७	३३४
चोरके दंड देनेमें ....	२८२	३०१	पिता आदिके दंडमें	२८७	३३५
चोर आदिसे अभय दानका फल ...	२८२	३०३	राजाके दण्डमें ...	२८७	३३६
राजा धर्म अधर्मके छठे भागका पानेवालाहै	२८२	३०४	विज्ञशूद्र आदिको आठ : गुना आदि दंड ...	२८८	३३७
रक्षा विना कर लेनेकी निंदा	२८३	३०७	अस्तेय कहतेहैं ...	२८८	३३९
पापीके दंड और साधुके संग्रहणमें	२८३	३१०	चोरके यजन कराने आदिमें	२८८	३४०
षालक वृद्ध आदिकोंकोक्षमा	२८३	३१२	मार्गमें स्थित दौड़खोंके लेनेमें ...	२८८	३४१
ब्राह्मणके सुवर्णके चोरीमें	२८४	३१४	दासाश्वआदिकेहरनेआदिमें	२८८	३४२
शासन न करनेमें राजाका दोष ...	२८४	३१६	अथ साहस कहतेहैं ...	२८९	३४४
पराये पापके लंगनेमें	२८४	३१७	साहसके योग्य निंश ...	२८९	३४६
राजदंडसे पापके नाश होनेपर ...	२८४	३१८	द्विजातिका शस्त्रग्रहणकाल	२८९	३४८
कुपपरसे घटरस्सी आदिके			आतवाधीके मारनेमें ....	२९०	३५०
			पराई स्त्रीके छेड़नेमें दंड	२९०	३५२
			पराई स्त्रीसे एकांतमें बात करनेमें ...	२९०	३५४
			स्त्रीसंग्रहणमें ...	२९१	३५८
			भिक्षुक आदिक पराई स्त्रीसे बोलनेमें ....	२९१	३६०

विषय	पृ.	श्लो.
पराई स्त्रीके साथ निषिद्ध		
संभाषणमें... ..	२९२	३६१
नट आदिकी स्त्रियोंसे		
संभाषणमें दोष ...	२९२	३६२
कन्याके दूषणमें ...	२९२	३६४
अंगुली आदिके डालनेमें	२९२	३६६
व्यभिचार करनेवालेस्त्री		
और जारको दंड	२९३	३७१
संवत्सरके अभिशस्त आदिमें	२९३	३७३
शूद्र आदिकी अरक्षित		
उत्कृष्ट आदिके गमनमें	२९४	३७४
ब्राह्मणगुप्ता विपाके गमनमें	२९४	३७८
ब्राह्मणको बघदंड नहीं है	२९५	३८०
गुप्ता वैश्या क्षत्रियोंके		
गमनमें .... ..	२९५	३८२
अगुप्ता क्षत्रिया आदिके		
गमनमें ... ..	२९५	३८४
साहसी आदिकोंसे शून्य		
राज्यकी प्रशंसा ....	२९६	३८६
कुल पुरोहित आदिके		
त्यागमें ... ..	२९६	३८८
माता आदिके त्यागमें	२९६	३८९
ब्राह्मणोंके वादमें राजा-		
का धर्म न कहना चाहिये	२९६	३९०
सामाजिक आदिके न भोजनमें	२९६	३९१
इसके उपरांत आकर रहित	२९७	३९४
धंभीके वस्त्र धोनेमें ...	२९७	३९६
कोलीके सूत लेलेनेमें	२९७	३९६
बेचने योग्य वस्तुके मौल		
करनेमें ... ..	२९७	३९८
राजाकारि निषिद्धों के		

विषय	पृ.	श्लो.
लेजानमें .... ..	२९८	३९९
अकालके विक्रय आदिमें	२९८	४००
विदेशके विक्रयमें ...	२९८	४०१
मूल्यके स्थापित करनेमें	२९८	४०२
तुलादिकी परीक्षा ...	२९८	४०३
नौकाकी उतराई - ....	२९८	४०४
गर्भिणी आदिकी नावकी		
उतराई ... ..	२९९	४०७
नाववालेके दोषसे वस्तुके		
नाशमें ... ..	२९९	४०८
वैश्य आदिके व्यापार न		
करक्षत्रिय और वैश्य		
दासकर्मके योग्य नहीं हैं	३००	४११
शूद्रसे दासकर्म करावे ....	३००	४१३
शूद्रदासपनसे नहीं छूटता है	३००	४१४
अब सत्रह दासोंके प्रकार	३००	४१५
भार्यादास आदि अधनेहैं	३००	४१६
वैश्य तथा शूद्रोंसे अपना		
काम कराना चाहिये	३०१	४१८
दिन दिन आयव्यय अर्थात्		
आमदनी और खरच		
देखै ... ..	३०१	४१९
अच्छी भांति व्यवहार दे-		
खनेका फल ... ..	३०१	४२०
<b>अथ नवमोऽध्यायः ९.</b>		
स्त्री पुरुषोंके धर्म ....	३०२	१
स्त्रीकी रक्षा ... ..	३०२	२
जायाशब्दके अर्थका कहना	३०३	८
स्त्रीकी रक्षाके उपाय ...	३०३	११
स्त्रीके स्वभाव... ..	३०४	१४
स्त्रियोंकी मंत्ररहित क्रिया	३०४	१८
व्यभिचारके प्रायश्चित्तमें	३०५	१९

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
स्त्रीस्वामीकेगुणयुक्तहोतेहैं	३०५	२२	धर्मकार्य सजातिकी स्त्री		
स्त्रीकी अशंसा...	३०६	२६	करै अन्य नहीं ....	३१६	८६
व्यभिचारन करनेका फल	३०६	२९	गुणीके लिये कन्यादान		
व्यभिचारका फल ...	३०६	३०	निर्गुणको नहीं ...	३१६	८८
बीज और क्षेत्रकाबलाबल	३०७	३२	स्वयंवरका काल ...	३१६	९०
पराई स्त्रियोंमें बीज वाने- कानिषेध ...	३०८	४१	स्वयंवरमें पिताके दिष्टे अलंकारकात्याग ...	३१७	९३
स्त्री और पुरुषका एकत्व	३०९	४५	रजस्वलाके विवाहमें शु- ल्कका देना नहीं ...	३१७	९३
एकवार अंशभाग आदि	३०९	४७	कन्या वरकी अवस्थाका नियम ...	३१७	९४
क्षेत्रकी प्रधानता ....	३०९	४८	विवाहकी आवश्यकता	३१७	९५
स्त्रीधर्म कहते हैं ...	३११	५६	मूल्य दी हुईके पतिके मरणमें ....	३१७	९७
भाईकी स्त्रीमें गमन कर- नेमें पतित होताहै...	३११	५७	मौल लेनेका निषेध ...	३१७	९८
नियोग कहते हैं ...	३११	५९	वचनसे कन्या देकर अन्यके लियेदान नहीं	३१८	९९
नियोगमें दूसरा पुत्र न उत्पन्न करै ...	३११	६०	स्त्रीपुरुषका अव्यभिचार	३१८	१०१
कामसे गमनका निषेध	३१२	६३	अथ दायभाग कहतेहैं	३१८	१०३
नियोगकी निन्दा ....	३१२	६४	विभागका काल ....	३१८	१०४
वर्णसंकरकाल....	३१२	६६	सामिल रहनेमें जेठकी प्रधानता ....	३१९	१०५
वाग्दत्ताके विषयमें ....	३१३	६९	ज्येष्ठकी अशंसा ....	३१९	१०६
कन्याके फिर देनेका निषेध	३१३	७१	ज्येष्ठकीज्येष्ठवृत्तिनहोनेपर	३१९	११०
सप्तपदीपूर्वक स्त्रीकेत्यागमें	३१३	७२	विभागमें हेतु कहतेहैं ....	३१९	१११
दोषयुक्त कन्याके दानमें	३१४	७३	ज्येष्ठ आदिके विंशोद्धारमें	३२०	११२
स्त्रीकी जीविका कल्पना कारिकै प्रवास करै...	३१४	७४	एकभी श्रेष्ठवस्तु ज्येष्ठको देवें ...	३२०	११४
प्रोषितभर्तृकाके नियम	३१४	७५	दशवस्तुओंमें समानोंका उद्धार नहीं है ...	३२०	११५
एकतक स्त्रीकीप्रतीक्षा करै	३१४	७७	सम तथा विषम विभाग	३२०	११६
रोग पीडितके अतिक्रममें	३१४	७८	अपने २ भागोंसेवाहिनके		
नपुंसक आदिको स्त्रीका त्याग नहीं ...	३१५	७९			
अधिवेदनमें ....	३१५	८०			
स्त्रीके मद्यपानमें ...	३१५	८४			

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
लिये देना चाहिये	३२१	११८	होनेपर ... ..	३२८	१६३
विषम बकरी भेड जेठेकीहै	३२१	११९	दत्तक आदि गोत्ररिक्थके		
क्षेत्रजके साथ विभागमें	३२१	१२०	भागीहैं ... ..	३२८	१६५
अनेक मातावालोंने ज्ये-			औरस आदि वारह		
ष्ठता .... ..	३२१	१२२	पुत्रोंके लक्षण ...	३२८	१६६
जन्मसे ज्येष्ठता ...	३२२	१२५	दांसी पुत्रको समभागित्व	३३०	१७९
पुत्रिका करनेमें ...	३२३	१२७	क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रति-		
पुत्रिकाका ग्राहित्व नहींहै	३२३	१३०	निधिहै .... ..	३३१	१८०
माताका स्त्रीधन कन्याकाहै	३२३	१३१	औरस होनेपर दत्तक		
पुत्रिकापुत्रका धन ग्राहित्वहै	३२३	१३२	आदि नहीं कर्तव्यहैं	३३१	१८१
पुत्रिका और औरसके			पुत्रिकापुत्रत्वका अतिदेश	३३१	१८२
विभागमें.... ..	३२३	१३४	वारह पुत्रोंमें पहिला २		
पुत्ररहित पुत्रिकाके धनमें	३२४	१३५	श्रेष्ठहै ... ..	३३१	१८४
पुत्रिका दो प्रकारकीहै	३२४	१३६	क्षेत्रज आदि रिक्थहरहैं	३३२	१८५
पौत्रप्रपौत्रका धनमें भाग	३२४	१३७	क्षेत्रज आदिकोंका पिता-		
पुत्रशब्दका अर्थ ...	३२४	१३८	महके धनमें ....	३३२	१८६
पुत्रिका पुत्रके किये श्राद्धमें	३२४	१४०	सपिंड आदि धन लेने-		
दत्तकके धनग्राहित्वमें	३२४	१४१	वाले होतेहैं ....	३३२	१८७
कामज आदिका धनग्राही			ब्राह्मणका अधिकारहै	३३२	१८८
नहींहै .... ..	३२५	१४३	राजाका अधिकारहै ...	३३२	१८९
क्षेत्रजके धन ग्राहित्वमें	३२५	१४५	मृतपतिका नियुक्त पुत्रका		
अनेकमातावालोंने विभाग	३२६	१४९	अधिकारहै ...	३३२	१९०
विनाव्याहे दुए शूद्रापुत्रके			औरस पौनर्भवके विभागमें	३३३	१९१
भागका निषेध ...	३२७	१५५	माताके धनके विभागमें	३३३	१९२
सजातीय अनेक मातावा-			स्त्रीधन कहतेहैं... ..	३३३	१९४
लोंका विभाग ...	३२७	१५६	संततिसहित स्त्रीके धना-		
शूद्रका समही भागहोताहै	३२७	१५७	धिकारी .... ..	३३३	१९५
दायाद अदायाद बांधव-			संतति रहित स्त्रीके धना-		
पनहै .... ..	३२७	१५८	धिकारी ... ..	३३३	१९६
कुपुत्रकी निंदा ...	३२८	१६१	साधारण स्त्रीधन न करै....	३३४	१९९
औरस और क्षेत्रजके वि-			स्त्रियोंका अलंकरण नहीं		
भागमें .... ..	३२८	१६२	वाँटने योग्यहै ...	३३४	२००
क्षेत्रजके पीछे औरस....					

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
अब अनंश कहतेहैं ...	३३४	२०१	दंड देनेकी असमर्थतामें	३३८	२२९
नंपुसक आदि क्षेत्रज अंश-			स्त्री बालक आदिके दंडमें	३३८	२३०
भागी होतेहैं ...	३३४	२०३	नियुक्तके काम विगाडनेमें	३३९	२३१
साझेके जोडे हुए धनमें	३३४	२०४	कूटसाक्ष और बालवध-		
विद्या आदि ...	३३५	२०६	आदि करनेमें ....	३३९	२३२
समर्थको भागकी उपेक्षामें	३३५	२०७	धर्मसे किये हुए व्यवहार-		
अविभाज्य धनमें ....	३३५	२०८	को न लौटावै ....	३३९	२३३
नष्टके उद्धारमें .....	३३५	२०९	अधर्मसे किया लौटाने		
मिलेहुर धनके विभागमें	३३५	२१०	योग्यहै ....	३३९	२३४
विदेश आदिमें गये हुएका			प्रायश्चित्त न करनेमें महा-		
भाग लोप नहीं होताहै	३१५	२११	पातकीका दण्ड ...	३३९	२३५
गुणशून्य ज्येष्ठ समान			प्रायश्चित्त करनेसे दागने-		
भाग पावै ...	३३६	२१३	योग्य नहींहै ...	३४०	२४०
विकर्ममें स्थित सब भ्राता			महापातकमें ब्राह्मणकोदंड	३४०	२४१
धनको नहीं पातेहैं			क्षत्रिय आदिका दंड	३४०	२४२
ज्येष्ठके असाधारण			महापातकीके धन लेनेमें	३४०	२४३
करनेमें ....	३३६	२१४	ब्राह्मणके पीडा देनेमें दंड	३४१	२४८
जिनका पिता जीवताहै			वधयोग्यके छुटानेमें दोष	३४१	२४९
उनका विभाग ....	३३६	२१५	राजा कंटकोंके उखाडनेमें		
विभागके पीछे उत्पन्नके			यत्नकरै ...	३४२	२५२
स्थलमें ....	३३६	२१६	आर्यकी रक्षाका फल	३४२	२५३
संतति रहित धनमें माता-			चोर आदिके दंड न देनेमें		
का अधिकार ....	३३६	२१७	दोष ...	३४२	२५४
ऋण और धनमें समान			निर्भय राज्य बढाना...	३४२	२५५
विभाग ....	३३६	२१८	प्रकट तथा गुप्त चोरोंका		
अविभाज्य कहतेहैं ...	३३७	२१९	ज्ञान ...	३४२	२५६
अब द्यूतसमाह्वयकहतेहैं	३३७	२२०	प्रकट तथा गुप्त तस्कर		
द्यूतसमाह्वयका निषेध	३३७	२२१	कहतेहैं ....	३४२	२५७
द्यूत समाह्वयका. अर्थ	३३७	२२३	उनका जानना ...	३४३	२६२
द्यूत आदि करनेवालोंका			चोरोंका रोकनेवाला दंडहीहै	३४४	२६३
दण्ड ....	३३७	२२४	चोरका दंडना ...	३४४	२६४
पारखंडी आदिकोंको देशसे			चोरीके चिह्नके न देखनेमें	७४५	२७०
निकालदे ....	३३८	२२५	चोरको आश्रम देनेवाले		

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
को दंड ....	३४५	२७१	इमशानकी अग्नि दूषित		
स्वधर्मसे भ्रष्टके दंड देनेमें	३४५	२७३	नहीं ऐसेही ब्राह्मण	३५३	३१८
चोर आदिके उपद्रवमें न			ब्राह्मण क्षत्रियको परस्पर		
दौड़नेवालेको दंड....	३४५	२७४	साहित्य है ....	३५३	३२२
राजाका खजाना लेनेवाले-			पुत्रको राज्यदे रणमें .		
को दंड ...	३४६	२७५	प्राणत्याग ...	३५४	३२३
संधिके फोड़नेमें ....	३४६	२७६	वैश्यके धर्मोंको कहतेहैं	३५४	३२६
गांठ काटनेमें ....	३४६	२७७	शूद्रके कर्मोंको कहतेहैं	३५५	३३४
चोरके चिह्न धारण आदिमें	३४६	२७८	<b>अथ दशमोऽध्याः १०.</b>		
तलाव तथा घरके फोड़नेमें	३४६	२७९	अध्यापन ब्राह्मणहीकाहै	३५६	१
राजमार्गमें मलमूत्रकरनेमें	३४६	२८२	वर्णोंका ब्राह्मण प्रभु है	३५६	३
भूठी चिकित्साकरनेमें दंड	३४७	२८४	अब द्विजवर्णका कथन	३५६	४
प्रतिमाके तोड़नेमें ....	३४७	२८५	अब सजातीय कहतेहैं	३५७	५
मणियों के अन्यथा छेद			पिताकी जातिके सदृश	३५७	६
करनेमें ...	३४७	२८६	अब वर्णसंकर कहतेहैं	३५७	८
विषव्यवहारमें ...	३४७	२८७	अब व्रात्य कहतेहैं ....	३५९	२०
बंधन स्थान राजमार्ग में	३४७	२८८	व्रात्योंसे उत्पन्न आदि		
परकोटके तोड़ने आदिमें	३४८	२८९	संकीर्ण ... ..	३६०	२१
अभिचारकर्ममें ....	३४८	२९०	उपनयन करने योग्य	३६३	४१
अवीजके वेचने आदिमें	३४८	२९१	वे सकर्मसे उत्कर्षकोप्राप्त		
सोनारके दंड देनेमें ....	३४८	२९२	होतेहैं ....	३६३	४२
हलके उपकरण चुरानेमें	३४८	२९३	क्रियाके लोपसे वृषलत्व-		
अब सात प्रकृति कहतेहैं	३४९	२९४	को प्राप्त होतेह ...	३६५	४३
अपनी और पराई शक्ति-			दस्यु कहतेहैं ....	३६४	४५
का देवना... ..	३४९	२९८	वर्णसंकरोंके कर्म कहतेहैं	३६४	४७
कामके धारभमें ...	३५०	२९९	चांडालका कर्म कहतेहैं	३६५	५१
राजाका गुगत्व कहना	३५०	३०१	कर्मसे पुरुषका ज्ञान ....	३६६	५७
इंद्र आदिकों के तेजको रा-			वर्णसंकरकी निन्दा ....	३६६	५९
जा धारण करताहै	३५०	३०३	इनका ब्राह्मणकोलियेप्राण		
इन उपायों से चोरका			त्यागना श्रेष्ठहै ....	३६६	६२
पकड़ना ... ..	३५२	३१२	साधारण कर्म कहतेहैं	३६७	६३
ब्राह्मणको कुपित न करै	३५२	३१३	सातवें जन्ममें ब्राह्मणत्व और		
ब्राह्मणकी प्रशंसा ...	३५२	३१४			



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
शूद्रत्व ... ..	३६७	६४	अथ एकादशोऽध्यायः ११.		
वर्णसंकरमें श्रेष्ठता ...	३६७	६७	स्नातकके प्रकार ...	३७९	१
वीज और क्षेत्रजका बलाबल	३७८	७०	नवीनस्नातकोंको अन्न देनेमें	३७९	२
षट्कर्म कहते हैं ...	३६९	७५	वेदवेत्ताओंको अन्न देना	३७९	४
ब्राह्मणकी जीविका ...	३६९	७६	भिक्षासे दूसरेव्याहकानिषेध	३८०	५
क्षत्रियतया वैश्यकर्म कहते हैं	३६९	७७	कुटुंबी ब्राह्मणके लिये दान	३८०	६
द्विजोंका श्रेष्ठ कर्म कहते हैं	३७०	८०	सौमयागके अधिकारी	३८०	७
आपत्तिका धर्म कहते हैं	३७०	८१	कुटुंबके नभरण करनेमें दोष	३८०	९
वेचनेमें वर्जित कहते हैं	३७१	८६	यज्ञशेष आदिके लिये वैश्या		
दूध आदिके वेचनेका फल	३७२	९२	आदिसे धन लेना ....	३८०	११
ज्यायसी वृत्तिका निषेध	३७२	९५	छः उपवासों के पीछे आहा-		
परायेधर्मसे जीवनेकी निंदा	३७२	९७	रखनेमें ....	३८१	१६
वैश्य शूद्रका आपद्धर्म ....	३७२	९८	ब्रह्मस्व आदिहरनेकानिषेध	३८१	१८
आपत्तिमें विप्रका हीन			असाधुओंका धन लेकर सा-		
याजन आदि ...	३७३	१०२	धुओं के देनेमें ....	३८२	१९
दान लेनेकी निंदा ...	३७४	१०९	यज्ञशील आदि धनकी		
याजनअध्यापनब्राह्मणका है	३७४	११०	प्रशंसा ... ..	३८२	२०
प्रतिग्रह आदिके पापनाशमें	३७४	१११	ब्राह्मणके यज्ञके लिये		
शिलोच्छसे जीवनेमें ...	३७४	११२	चोर आदिमें दंड ...	३८२	२१
धनके याचनेमें ....	३७५	११५	क्षुधासे पीड़ितकी वृत्ति-		
सात धनके आगम ...	३७५	११५	कल्पना करनेमें ...	३८२	२२
दश जीवनेके हेतु ....	३७५	११६	यज्ञके लिये शूद्रकी भिक्षा-		
व्याजसे जीवनेका निषेध	३७६	११७	कानिषेध ... ..	३८३	२४
राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं	३७६	११८	यज्ञके लिये धन मांगके न		
शूद्रका आपद्धर्म ...	३७७	१२१	रखाना चाये ...	३८३	२५
शूद्रको ब्राह्मणका आरा-			देवता और ब्राह्मणके धनहर-		
धनश्रेष्ठ ... ..	३७७	१२२	नेमें ... ..	३८३	२६
शूद्रकी वृत्तिकल्पना करना	३७३	१२४	सौमयागकी अशक्तिमें वै-		
शूद्रके संस्कार आदि नहीं	३७७	१२६	श्वानरयज्ञ ...	३८३	२७
शूद्रका विनामंत्रके धर्मकार्य	३७८	१२७	समर्थ के अनुकल्पकानिषेध	३८३	२८
शूद्रके धनके संचयकानिषेध	३७८	१२९	द्विजको शक्तिसे वैरीका जय	३८४	३१
			क्षत्रिय आदिका वाहुवल-		
			से शत्रुका जय ...	३८४	३४

विषय	पृ.	श्लो.	विषय.	पृ.	श्लो.
ब्राह्मणका अनिष्ट न कहें	३८४	३५	मद्यपानका प्रायश्चित्त ...	३९४	९१
अल्प विद्यावाला तथा स्त्री			सुराके प्रकार ....	३९४	९५
आदिका होतृत्वका			सुवर्णके चुरानेका प्रायश्चित्त	३९६	१००
निषेध है ... ..	३८४	३६	गुरुकी स्त्रीसे गमनका प्राय-		
अश्वकी दक्षिणा देनेमें	३८५	३८	श्चित्त .... ..	३९६	१०३
थोड़ी दक्षिणाके यज्ञकी			गोवध आदि उपपातकोंका		
निंदा ... ..	३८५	३९	प्रायश्चित्त....	३९७	१०८
अग्निहोत्रीको उसके न			अवकीर्णका प्रायश्चित्त	३९८	११८
करनेमें ... ..	३८५	४१	जातिभ्रंशकर प्रायश्चित्त	३९९	१२५
शूद्रसे प्राप्त धनसे अग्निहो-			संकरीकरण आदिका प्राय-		
त्रकी निंदा ....	३८५	४२	श्चित्त ... ..	३९९	१२६
विहितके न करने आदिमें			क्षत्रिय आदिके वधका		
प्रायश्चित्ती होता है...	३८६	५५	प्रायश्चित्त....	३९९	१२७
जाने विना जाने पापके			विलार आदिके वधका		
लिये....	३८६	४६	प्रायश्चित्त ....	४००	१३२
प्रायश्चित्तकेसंसर्गकानिषेध	३८६	४७	घोडे आदिके वधका प्राय-		
पहलेपापसें कुछी अंधे आदि			श्चित्त ....	४०१	१३७
होते हैं ... ..	६८६	४८	व्यभिचारित स्त्रीके वधमें		
प्रायश्चित्त अवश्य करना-			प्रायश्चित्त ... ..	४०१	१३८
चाहिये ... ..	३८७	५४	सर्प आदिके वधमें दानकी		
पांच महापातक कहते हैं	३८८	५५	आसक्ति होनेपर ...	४०२	१४०
ब्रह्महत्या आदिके समान			क्षुद्रजंतुओंके समूहके वधमें	४०२	१४१
कहते हैं ... ..	३८८	५६	वृक्ष आदिके काटनेमें...	४०२	१४३
उपपातक कहते हैं ...	३८८	६०	अन्नमें उत्पन्न जीवोंके वधमें	४०२	१४४
जातिभ्रंशकरनेवाले कहते हैं	३९०	६८	वृथा औषधी आदिके छेद-		
संकरीकरण कहते हैं ...	३९०	६९	नेमें ... ..	४०३	१४५
अपात्रीकरण कहते हैं...	३९०	७०	असुरख्य सुराके पानमें प्रा-		
मलिनीकरण कहते हैं ...	३९०	७१	यश्चित्त ... ..	४०३	१४७
अथ ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त	३९०	७३	सुराके पात्रमें स्थित जल		
गर्भ आत्रेयी और क्षत्र वैश्य			पीनेका प्रायश्चित्त...	४०३	१४८
के वधमें प्रायश्चित्त...	३९३	८८	शूद्रका उच्छिष्टजल पीनेमें	४०४	१४९
स्त्री तथा मित्रका वध धरोहर-			सुरागंधके मूँघनेमें ...	४०४	१५०
दवा लेनेका....	३९३	८९			

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
विष्ठा मूत्र मुरासे मिले भोजनमें ... .. ४०४	१५१		अगम्यागमनकप्रायश्चित्त	४०७	१७०
फिर संस्कार होनेमें दंड-आदिकी निवृत्ति... ४०४	१५२		घोडी तथा रजस्वला आदिके गमनमें .... ४०८	१७४	
अभोज्य अन्न स्त्री शूद्रके उच्छिष्ट और अभक्ष्य मांसके भक्षणमें ... ४०४	१५३		दिनमें भैथुनआदि करनमें ४०८	१७५	
शुक्त आदिके खानेमें... ४०४	१५४		चांडाली आदिके गमनमें ४०८	१७६	
शूकर आदिके विष्ठा मूत्रके भक्षणमें .... ४०५	१५५		व्यभिचारसे स्त्रियोंका प्रायश्चित्त ... .. ४०८	१७७	
सूखे मूना आदिमें स्थित अज्ञातमांसके भक्षणमें ४०५	१५६		चांडालीके गमनमें ... ४०९	१७९	
कुक्कुटनरसुकर आदि भक्षणमें ... .. ४०५	१५७		पतितोंकेसंसर्गकाप्रायश्चित्त ४०९	१८२	
मासिक अन्नके खानेका प्रायश्चित्त .... ४०५	१५८		पतितकीजीवतेहीप्रेतक्रिया ४०९	१८३	
ब्रह्मचारीके मधुमांस खानेमें ४०५	१५९		पतितके स्पर्श आदिकी निवृत्ति .... ४१०	१८५	
विलार आदिका उच्छिष्ट खानेमें .... ४०६	१६०		प्रायश्चित्त करनेवाले पतितका संसर्ग .... ४१०	१८७	
अभोज्य अन्न उतारना चाहिये ... .. ४०६	१६१		पतित स्त्रियोंको अन्न आदिदेना .... ४१०	१८९	
सजातीयके धान्य आदि चुरानेमें ... .. ४०६	१६३		पतितसंसर्गकानिषेधआदि ४१०	१९०	
मनष्यादिकोंके हरनेका प्रायश्चित्त ... .. ४०६	१६४		वालक मारनेवाले आदिका त्याग .... ४११	१९१	
रांगा सीसा आदिके चुरानेमें ... .. ४०६	१६५		ब्रात्य और वेद त्यागने-वालेका प्रायश्चित्त .... ४११	१९२	
भक्षयानशय्या आदिके हरनेमें ... .. ४०६	१६६		निंदित जोडे हुये धनका त्याग .... ४११	१९४	
सूखेअन्नगुड आदिकेलेनेमें ४०७	१६७		असत्प्रतिग्रहकाप्रायश्चित्त ४११	१९५	
मणि मोती चाँदी आदिके लेनेमें ... .. ४०७	१६८		प्रायश्चित्त किये हुएसे साम्य पृष्ठे .... ४११	१९६	
रुईकेबने वस्त्र चुरानेमें ४०७	१६९		गौओंके लिये घास देना और वहाँ संसर्ग ... ४११	१९७	
			ब्रात्यका याजन और पतितकी क्रिया कृत्य आदिमें ४११	१९८	
			वेदके शरणागतके त्यागमें ४१२	१९९	

विषय	पृ. श्लो.	विषय	पृ. श्लो.
कुत्ता आदिके काटनेका		क्षेत्रज्ञका परिचय ...	४२६ १२
प्रायश्चित्त ... ..४१२	२००	जीवात्माका परिचय ....	४२६ १३
अपांक्तिका प्रायश्चित्त ....४१२	२०१	जीवोंकी अनंतता ....	४२६ १५
ऊंट आदि यानका प्राय-		परलोकमें पंचभूतोंका शरीर	४२६ १६
श्चित्त .... ..४१२	२०२	मोगके अनंतर आत्मामें	
जलमें वा बिनाजलके मूत्र-		लीन हो जाताहै ...	४२७ १७
त्यागमें प्रायश्चित्त ....४१२	२०२	धर्म अधर्मकी अधिकतासे	
वेदमें कहे हुए कर्मके त्या-		भोग ... ..	४२७ २०
गमें ... ..	४१२ २०४	तीनिप्रकारके गुणोंका कहना	४२८ २४
ब्राह्मणसे तु करके बोलनमें	४१३ २०५	अधिक गुण प्रधान देहहै	४२८ २५
ब्राह्मणके धमकानेमें ....४१३	२०६	सत्व आदिके लक्षण कह-	
नहीं कहे हुये प्रायश्चित्तके		तेहैं... ..	४२९ २६
स्थलमें .... ..४१३	२१०	सात्विक गुणके लक्षण	४२९ ३१
प्राजापत्य आदि व्रतका		राजस गुणके लक्षण ...	४२९ ३२
निर्णय ... ..४१४	२१२	तामस गुणके लक्षण ...	४२९ ३३
व्रतके अंग कहतेहैं. ....४१६	२२३	संक्षेपसे तामस आदिके	
पाप न छिपाना चाहिये...४१७	२२८	लक्षण ... ..	२३० ३५
पापके पीछे पछतावै ....४१८	२३१	तीनोंगुणोंकी तीनि प्रका-	
पापवृत्तिकी निंदा ...४१८	२३३	रकी गति है ....	४३० ४०
मनके संतोषपर्यंत तपकरै	४१८ २३४	तीन प्रकारकी गतिके प्र-	
तपकी प्रशंसा ... ..४१८	२३५	कार ... ..	४३० ४१
वेदके अभ्यासकी प्रशंसा	४२० २४६	पापसे कुत्सित गति होतीहै	४३२ ५२
रहस्यका प्रायश्चित्त ...४२०	२४८	पाप विशेषसे योनि विशे-	
		षकी उत्पत्ति ....	४३२ ५३
<b>अथ द्वादशोऽध्यायः १२.</b>		पापकी प्रवीणतासे नरक आदि	४३२ ५४
शुभ अशुभ कर्मका फल	४२४ १	मोक्षके उपायषट्कर्म कहतेहैं	४३७ ८३
कर्मका मन प्रवर्तक है	४२४ ४	आत्मज्ञानकी प्रधानता ....	४३७ ८५
तीनिप्रकारके मानस कर्म	४२४ ५	वेदोक्त कर्मकी श्रेष्ठता ....	४३७ ८६
चारि प्रकारके वाचिककर्म	४२४ ६	वैदिककर्म दो प्रकारका है	४३७ ८८
तीनिप्रकारके शारीरिककर्म	४२५ ७	प्रवृत्तिनिमित्त कर्मका फल	४३८ ९०
मनबाकाय और कर्मके-		समदर्शन ... ..	४३८ ९१
भोगमें .... ..	४२५ ८	वेदके अभ्यास आदिमें... ..	४३८ ९२
त्रिदंडीका परिचय ....	४२५ १०	वेदबाह्य स्मृतिकी निंदा	४३९ ९५

( ४७ )

मनुस्मृति-

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
वेदकी प्रशंसा ....	४३९	९७	शिष्ट कहतेहैं ....	४४२	११०
वेदके ज्ञाताकी सेनापत्य आदि ...	४४०	१००	परिषत् कहिये सभा ...	४४२	११३
वेदके जाननेवालेकी प्रशंसा	४४०	१०१	मूर्खोंकी परिषत् नहीं होती ...	४४२	११४
वेदके व्यवसायीकी श्रेष्ठता	४४०	१०३	आत्मज्ञान पृथक् कहतेहैं	४४३	११८
तप और विद्यासे मोक्ष...	४४१	१०४	वायु आकाश आदिका लय कहते हैं ...	४४४	१२०
प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे प्रमाण ...	४४१	१०५	आत्माका स्वरूप कहतेहैं	४४४	१२२
धर्मका लक्षण...	४४१	१०८	आत्माका दर्शन अवश्य- करना चाहिये ...	४४५	१२५
विना कहे हुए धर्मके स्थलमें ...	४४२	१०९	इस संहिता पाठका फल	४४६	१२६

इति मनुस्मृत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना-मुंबई.

श्रीः ।

# \* मानवधर्मशास्त्रम् \*

( भाषाविवृतिसमेतम् )

अध्यायः प्रथमः १.

श्रीनारायणपादपद्मयुगलन्ध्यात्त्रापितुः पद्युगं स्मृत्वाश्रीमनुनाप्रणी-  
तमधुनाव्याख्यायते भाषया ॥ लोकानांचहितायकेशवइतिख्यातेन  
सम्यङ्मया तर्काब्ध्यङ्कनिशाकरैःपरिमिते श्रीवैक्रमे वत्सरे ॥ १ ॥  
यत्किञ्चित्स्खलितंभवेदिहाधियस्तत्क्षम्यतांसज्जनाएषावैममचार्यना  
ऽत्रविदुषामग्रेचिरन्तिष्ठतु ॥ ग्रंथोयंमनुभाषितोऽतिकठिनःसर्वैरपि  
ज्ञायतेतस्मात्साहसमद्यमेऽतिविपुलज्ञानंतुसर्व्वेबुधाः ॥ २ ॥

अथातःपरंभाषाव्याख्यासाहितामानवीयास्मृतिर्लिख्यते-

श्रीगणपतये नमः ।

मंतुमेकाग्रमासैनिमभिर्गम्य महर्षयः ॥

प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमभुवन् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते धर्ममूर्तये । गौडे नन्दनवासिनामि सुजनै-  
र्वन्द्ये वरेन्द्र्यां कुले श्रीमद्भट्टादिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत् । काश्यामुत्तर-  
वाहिजङ्घतनयातीरेसमं पाण्डितैस्तेनेयं क्रियते हिताय विदुषां मन्वर्थमुक्तावली ॥ १ ॥  
सर्वज्ञस्य मनोरसर्वविदपि व्याख्यामि यद्वाङ्मयं युक्त्या तद्बहुभिर्यतो मुनिवैरैरेतद्बहु  
व्याहृतम् । तां व्याख्यामधुनातनैरपि कृतां न्याय्यां ब्रुवाणस्य मे भक्त्या मानववा-  
ङ्मये भवमिदे भूयादशेषेश्वरः ॥ २ ॥ मीमांसे बहु सेवितासि सुहृदस्तर्काः समस्ताः  
स्थ मे वेदान्ताः परमात्मबोधगुरवो यूयं मयोपासिताः । जाता व्याकरणानि बालस-  
खिता युष्माभिरभ्यर्थये प्राप्नोऽयं समयो मनुक्तिविवृतौ साहाय्यमालम्ब्यताम् ॥ ३ ॥  
द्वेषादिदोषरहितस्य सतां हिताय मन्वर्थतत्त्वकथनाय ममोद्यतस्य । दैवाद्यदि क्वचि-

दिह स्वलनं तथापि निस्तारको भवतु मे जगदन्तरात्मा ॥ ४ ॥ मानववृत्तावस्यां ज्ञेया व्याख्या नवा मयोद्भिन्ना ॥ प्राचीना अपि रुचिरा व्याख्यातृणामशेषाणाम् ॥ ५ ॥ मनुमेकाग्रमासीनमित्यादि । अत्र महर्षीणां धर्मविषयमश्रमैः श्रूयतामित्युत्तरदानपर्यन्तश्लोकचतुष्टयेन तस्य शास्त्रस्य प्रेक्षावत्प्रवृत्त्युपयुक्तानि विषयसंबन्धप्रयोजनान्युक्तानि । तत्र धर्म एव विषयस्तेन सह वचनसंदर्भरूपस्य मानवशास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः संबन्धः । प्रमाणान्तरासंनिकृष्टस्य स्वर्गापवर्गादिसाधनस्य धर्मस्य शास्त्रैकगम्यत्वात् । प्रयोजनं तु स्वर्गापवर्गादि तस्य धर्माधीनत्वात् । यद्यपि पत्न्युपगमनादिरूपः कामोप्यत्राभिहितस्तथापि “ ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ” इति ऋतुकालादिनियमेन सोऽपि धर्म एव । एवंचार्यार्जनमपि ऋतानृताभ्यां जीवितेत्यादिनियमेन धर्म एवेत्यवगन्तव्यम् । मोक्षोपायत्वेनाभिहितस्यात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वाद्धर्माविषयत्वं मोक्षोपदेशकत्वं चास्य शास्त्रस्यापेक्षम् । पौरुषेयत्वेऽपि मनुवाक्यानामविगीतमहाजनपरिग्रहाच्छ्रुत्युपग्रहाच्च वेदमूलकतया प्रामाण्यम् । तथा च छांदोग्यब्राह्मणे श्रूयते । मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्भ्रंजं भेषजताया इति । बृहस्पतिरप्याह । वेदार्थोपनिबधृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च । धर्मार्थमोक्षोपदेश मनुर्व्यावन्न दृश्यते ॥ महाभारतेऽप्युक्तम् । पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः । विरोधिवैद्वादि-तर्केन हन्तव्यानि । अनुकूलस्तु मीमांसादितर्कः प्रवर्तनीय एव । अत एव वक्ष्यति । आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर इति । सकलवेदार्थादिमननान्मनुं महर्षय इदं द्वितीयश्लोकवाक्यरूपं उच्यते अनेनेति वचनमब्रुवन् । श्लोकस्यादौ मनुनिर्देशो मङ्गलार्थः । परमात्मन एव संसारस्थितये सर्वज्ञैश्वर्यादिसंपन्नमनुरुपेण प्रादुर्भूतत्वात्तदभिधानस्य मङ्गलातिशयत्वात् । वक्ष्यति हि । एनमेके वदन्त्यर्षिं मनुमन्ये प्रजापतिमिति । एकाग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम् । आसीनं सुखोपविष्टम् । ईदृशस्यैव महर्षिमश्रोत्तरदानयोर्योग्यत्वात् । अभिगम्य अभिसुखं गत्वा । महर्षयो महान्तश्च ते ऋषयश्चेति । तथा प्रतिपूज्य पूजयित्वा । यद्वा मनुना पूर्वं स्वागतासनदानादिना पूजितास्तस्य पूजां कृत्वेति प्रतिशब्दाद्बुद्धीयते । यथान्यायं येन न्यायेन विधानेन मश्रः कर्तुं युज्यते प्रणतिभक्तिश्रद्धातिशयादिना । वक्ष्यति च । नापृष्टः कस्यचिद्द्वयान्न चान्यायेन पृच्छत इति । अभिगम्य प्रतिपूज्य अनुवन्निति क्रियात्रयेऽपि मनुमित्येव कर्म । अनुवन्नित्यत्राकथितकर्मता । बुद्धातोर्द्विकर्मकत्वात् ॥ १॥

टीका-एकाग्रचित्तं सुखसे बैठे हुए मनुजीके सन्मुख जाके यथायोग्य उनका सत्कार करके न्यायपूर्वक अर्थात् प्रणतिभक्ति और श्रद्धाकी अधिकता आदिसे महर्षि यह वचन बोले ॥ १ ॥

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥

अन्तरप्रभवानाञ्च धर्मात्रो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

टीका—हे भगवन् ! अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्य्य करि सम्पन्न सब वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंका और अन्तरप्रभाव जो संकीर्ण जाति अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज अंबष्ठ क्षत्त्रु करण आदि जो अन्यजातिके स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पन्नहैं उन सबोंके धर्म यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्यहै सो क्रमसे अर्थात् पहले जातकर्म फिर नामकरण इत्यादिके रीतिसे हमसे कहनेको योग्यहो ॥ २ ॥

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

टीका—जिससे हे प्रभु ! तुम्हीं एक अचिन्त्य कहिये जो चिंतवनमें न आसकै और जिसका प्रमाण न होसकै ऐसे इस स्वयम्भू अर्थात् आपसे उत्पन्न हुए वेदमें लिखे हुए ज्योतिष्टोमआदि यज्ञ और ब्रह्मज्ञानके जाननेवाले हो ॥ ३ ॥

सं तैः पृष्टस्तथा सम्यग्गमितौजा महात्मभिः ॥

प्रत्युवाचार्च्यं तान्सर्वान्महर्षीञ्छूर्यतामिति ॥ ४ ॥

टीका—उन महात्माओं करिकै उक्तप्रकारसे अर्थात् प्रणय, भक्ति, और श्रद्धा की अधिकता आदिसे पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियोंका सत्कार करिकै यह बोले कि मुनिये ॥ ४ ॥

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

अप्रतर्क्यमविज्ञेयमप्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

टीका—यह जगत् अंधकार अर्थात् प्रकृतिमें लीन और अप्रज्ञात अर्थात् जो जाना न जाय और अलक्षण अर्थात् चिह्नरहित जिसका कुछभी चिह्न न जाना जाय और जिसमें कुछ तर्क न होसकै इसीसे अविज्ञेय कहिये जो कुछभी जाना न जाय और सर्वत्र सोये हुएके समान होता भया ॥ ५ ॥

ततःस्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥

महाभूर्तादि वृत्तोजाः प्रादुरासीत्तमोऽनुदः ॥ ६ ॥

टीका—अव्यक्त अर्थात् नेत्रादे इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष नहीं ऐसा स्वयम्भू परमात्मा इस महाभूत आदि आकाशादिकोंको प्रकाशित करता हुआ जिसका पराक्रम कहिये सृष्टिसामर्थ्य नहीं रुकी और प्रकृतिका प्रेरणा करनेवाला प्रकट हुआ ॥ ६ ॥



योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥  
सर्वभूतमयोऽर्चिन्त्यःस एव स्वयमुद्भूतौ ॥ ७ ॥

टीका-सब लोक वेद पुराण इतिहासादिकोमें प्रसिद्ध परमात्मा इन्द्रियोंके ज्ञानसे वाहर है अर्थात् केवल प्रसन्न मन करिके ग्रहण करनेयोग्य और अवयवोंकरिके रहित सूक्ष्मरूप तथा नित्य रहनेवाला और सब भूतोंका आत्मा और प्रमाण करनेके योग्य नहीं है वही आप प्रकाशित हुआ अर्थात् महत्त्व आदि कार्यरूपसे प्रकट हुआ ॥७॥

सोभिध्याय शरीरात्स्वात्सिद्धुर्विधाः प्रजाः ॥  
अप एव ससर्जादौ तासु वीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

टीका-नानाप्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छा करते हुए उस परमात्माने जल उत्पन्न होय ऐसे ध्यान करिके अपने शरीरसे आदिमें जलहीको उत्पन्न किया और उस जलमें अपना शक्तिरूप वीज स्थापित किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्भ्रमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥  
तस्मिन् जज्ञे स्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

टीका-वह वीज परमेश्वरकी इच्छासे सुवर्णकासा अंडा होयगा जिसकी कांति सूर्यकीसी थी उस अंडेमें सब लोकोंका उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मारूप वह परमात्मा आपही उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता अपो वै नरसूनुवः ॥  
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

टीका-जल नरसे उत्पन्नहै इस कारण उनका नाम नार है वेही नार इस परमात्माके प्रथम आश्रय अर्थात् निवासस्थानहै तिससे इस परमात्माका नाम नारायण हुआ ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥  
तद्विसृष्टः संपुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

टीका-जो वह लोक वेद आदि सबमें प्रसिद्ध परमात्मा सब उत्पन्न होनेवालोंका कारण और अव्यक्त अर्थात् वाहरी इन्द्रियों करि नहीं ग्रहण करनेयोग्य और उत्पत्ति विनाश रहित और सत् असत् का आत्माभूत है उस करिके उत्पन्न किया हुआ वह पुरुष ब्रह्म इस नामसे कहा जाता है ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्विधा ॥ १२ ॥

टीका—उस पहले कहे हुए अंडेमें उस भगवान्ने एक वर्षतक वसिके आपही अपने ध्यानसे उसके दो खंड किये ॥ १२ ॥

तौभ्यां सं शकलौभ्याञ्च दिवम्भूमिञ्च निर्ममे ॥

मध्येव्योम दिशश्चाष्टौवेषां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

टीका—उसने उस अंडेके दोनों खंडोंसे आकाश और पृथ्वीको अर्थात् ऊपरके खंडसे स्वर्गलोक और नीचेके खंडसे भूलोक बनाया और दोनोंके बीचमें आकाश तथा आठों दिशा और स्थिर जलोंका स्थान समुद्र बनाया ॥ १३ ॥

उद्व्रहर्तात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥

मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

टीका—अब महादादिकोंके क्रमहीसे जगत्की रचनाहै यह दिखानेके लिये उनकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माने परमात्मासे उसीरूपकगिके सत् असत् रूप मनको उत्पन्न किया और मनसे मैं इस अभिमानकार्य करिके युक्त कार्य करनेमें समर्थ अहंकार तत्त्वको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

महान्तमेव चार्त्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥

विपर्याणां ग्रहीतृणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

टीका—अविकाररूप प्रकृतिसहित परमात्माहीसे अहंकारसे प्रथम महत्तत्त्वको उत्पन्न किया फिर आत्माको उसके पश्चात् संपूर्ण सत्त्व रज तम युक्त सृष्टिको जिसका वर्णन पिछले श्लोकोंमें हो चुकाहै और आगे होगा उत्पन्न किया फिर शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ग्रहण करनेवाली श्रोत्र आदि पांच बुद्धीन्द्रियोंको और वायु आदि पांच कर्मेन्द्रियोंको और पांच शब्द तन्मात्रादिकोंको क्रमसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान् पण्णामप्यमितौजसाम् ॥

संनिर्वय्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

टीका—उन पहले कहे हुए अहङ्कार और तन्मात्राओंके जो सूक्ष्म अवयव हैं तिनको अपनी मात्राओंमें छः होके स्वविकारोंमें मिलाकर परमात्माने मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि सब भूत बनाये उनमें तन्मात्राओंका विकार पंचमहाभूत और अहङ्कारका विकार इन्द्रियहैं, पृथ्वी आदि पंच महाभूतोंका शरीररूपसे परिणामको प्राप्तहोनेपर तन्मात्रा और अहङ्कारको मिलाके सबकार्यके समूहकी रचना होती है, इसीसे ये अमितौजस अर्थात् अनंत कार्योंके बनानेसे अतिवीर्यसे शोभित हैं ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्यैमान्याश्रयन्ति पट् ॥  
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

टीका-मूर्तिं शरीरको कहते हैं उसके बनानेवाले अवयव सूक्ष्म तन्मात्रा अहङ्कार रूप ये छः प्रकृतिसहित उस ब्रह्मके वक्ष्यमाण पृथ्वी आदिभूत और पहले कही हुई श्रोत्र आदि इन्द्रियां कार्यभावसे आश्रितहैं क्योंकि तन्मात्राओंसे भूतोंकी और अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होनेसे उस ब्रह्मकी इन्द्रियादिक करिके शोभित मूर्तिको लोग शरीर कहते हैं. क्योंकि पञ्चतन्मात्रा और अहंकार इन छःका जो आश्रय करे वह शरीर है. इस व्युत्पत्तिसेभी वही भाव आया ॥ १७ ॥

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥  
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

टीका-फिर उस नाशरहित और सब भूतोंके करनेवाले ब्रह्मसे अपने अपने कार्योंके साथ आकाश आदि महाभूत और सूक्ष्म अवयवोंके साथ मन उत्पन्न हुआ आकाशका काम अवकाश देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका पिंडीकरण, पृथ्वीका धारण और मनका शुभ अशुभकी इच्छा है ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥  
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवंत्यव्ययाद्भ्ययम् ॥ १९ ॥

टीका-अपना कार्य करनेसे पराक्रमी उन अहंकार और पंचतन्मात्रारूप सातकी सूक्ष्ममात्रा अर्थात् शरीर बनानेवाले अविनाशी भागोंसे विनाश होनेवाला जगत् उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामर्वाप्नोति परःपरः ॥  
यो यो यार्वतिथश्चेषां सप्त तार्वद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

टीका-इनमें जो आदि आकाश आदि हैं तिनके शब्द आदि गुणोंको वायु आदि आगेके तत्त्व प्राप्त होते हैं इनके मध्यमें जो जौनसाहै वह उसके दूसरे आदिगुणों करि युक्त कहाहै जैसे आकाशका गुण शब्दहै, वायुके शब्द, स्पर्शहैं, तेजके शब्द स्पर्श, रूपहै, आपके शब्द, स्पर्श, रूप, रसहैं, और भूमिके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधहैं ॥ २० ॥

सर्वेषां तु सप्तानामानि कर्मणि च पृथक्पृथक् ॥  
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥

टीका-हिरण्यगर्भरूपसे स्थित उस परमात्माने सबोंके नाम जैसे गौकी जातिके गौ

और घोड़ेकी जातिका घोडा और कर्म जैसे ब्राह्मणके पढना आदि क्षत्रियके प्रजारक्षा आदि और लौकिकी व्यवस्था जैसा कुम्हारका घडा बनाना और कोलीका कपडा बुनना आदि वेदके शब्दोंहीसे मृष्टिकी आदिमें भिन्न भिन्न बनाये ॥ २१ ॥

कर्मात्मनार्थं देवानां सोऽसृजत्प्राणिनांम्प्रभुः ॥

साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैवं सनातनम् ॥ २२ ॥

टीका—उस ब्रह्माने देवताओंके गणको और इन्द्रादिक प्राणियोंको तथा कर्मस्वभावोंको अप्राणि पाषाणादिकोंको और साध्य जो देवता विशेषहैं तिनके समूहको ज्योतिष्टोम आदियज्ञोंको और सूक्ष्म साध्यनाम देवताविशेषके समूहको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्र्यम्ब्रह्म सनातनम् ॥

दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

टीका—सनातन ब्रह्मरूप अपनी बुद्धिमें स्थित ब्रह्माके ऋक्-यजु-सामनाम वेदोंको अग्नि, वायु और सूर्यसे यज्ञकी सिद्धिकेलिये गौके अयनमें स्थित दूधके समान निकाला ॥ २३ ॥

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥

सरितः सागरान् शैलान् समानि विपर्माणि च ॥ २४ ॥

टीका—फिर काल और कालविभागों अर्थात् मास ऋतु अयन ( जैसे उत्तरायण दक्षिणायन ) वर्षादिकोंको कृत्तिका आदिनक्षत्रोंको सूर्यादिक ग्रहोंको और नदी समुद्र पर्वत तथा समान और ऊँचे नीचे स्थानोंको बनाया ॥ २४ ॥

तपो वाचं रतिश्चैवं कामश्च क्रोधमेव च ॥

सृष्टिं संसृजत् चैवमां सष्टुमिच्छन्निर्माः प्रजाः ॥ २५ ॥

टीका—फिर इन प्रजाओंकी मृष्टिकी इच्छायुक्त उस ब्रह्माने तप अर्थात् प्राजापत्य आदिको, वाणीको, रति अर्थात् चित्तके संतोषको, काम अर्थात् इच्छाको और क्रोध अर्थात् चित्तके विकारको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥

कर्मणाश्च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवचरत् ॥

द्वन्द्वैरयोर्जयच्चैमांः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥

टीका—धर्म यज्ञ आदि जो करने योग्य और अधर्म ब्रह्महत्या आदि जो न करने योग्य इस प्रकार कर्मोंके विभाग करनेके लिये धर्म अधर्मको जुदा जुदा किया अर्थात् धर्मका फल सुख और अधर्मका फल दुःख यह विवेचना की

और आपसमें विरोध रखनेवाले सुख दुःखके जोड़ोंसे, इन प्रजाओंको युक्त किया अर्थात् उनके पीछे सुख दुःख लगा दिये, और आदिशब्दसे यह भाव है कि, काम क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा, पिपासा, इनकेभी जोड़ोंको पीछे लगादिया ॥ २६ ॥

अण्ड्योमात्राविनाशिन्यो दशाद्धानां तु याः स्मृताः ॥  
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवेत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

टीका-उन पंच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म पंच तन्मात्रारूप विनाश होनेवाली पंचमहाभूत रूपमें तिनके साथ सब जगत् क्रमसे अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे अतिस्थूल उत्पन्न होताहै इससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्माकी मानसी सृष्टि जानी गई ॥ २७ ॥

यन्तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमम्प्रभुः ॥  
स तदेवं स्वयम्भजे सृज्यमानः पुनःपुनः ॥ २८ ॥

टीका-उस प्रजापातिने जिस जातिविशेष अर्थात् व्याघ्र आदिको सृष्टिके आरम्भमें हरिणोंके मारने आदि जिसकाममें लगाया वार वार उत्पन्न होकर उस जातिविशेषका जीव वही कर्म आपही करने लगा ॥ २८ ॥

हिंसाहिंसे सृदुक्रूरे धर्माधर्मावृत्तानृते ॥  
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥

टीका-ब्रह्माने जिस जीवका जो कर्म जैसे हिंसाका कर्म सिंह आदिका हाथियोंका मारना, अहिंसा जैसे ब्रह्मणादिकोंका हरिणादिकोंपर दया करना, क्रूर जैसे क्षत्रियादिकोंका कर्म, धर्म जैसे ब्रह्मचारी आदिका गुरुकी सेवा करना, अधर्म जैसे ब्रह्मचारीको मांस मैथुन सेवा आदि, और ऋत अर्थात् सत्य सो बहुधा देवताओंको, और अनृत अर्थात् झूठ सोभी बहुत करके मनुष्योंको, ऐसे जो कर्म जिसकी नियत किये वह आपही उनकी करने लगा ॥ २९ ॥

यथर्त्तुलिङ्गानृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्यये ॥  
स्वानिस्वान्यभिर्पद्यन्ते तथा कर्माणि देहिर्नः ॥ ३० ॥

टीका-जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ समयमें अपने २ चिह्न आमके वौर आदिको प्राप्त होते हैं ऐसेही देहधारीभी हिंसा आदि अपने २ कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखवाहूरुपादतः ॥  
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् ॥ ३१ ॥

टीका-फिर उस परमेश्वरसे भूलोक आदिकी वृद्धिके लिये मुख बाहु ऊरु

तथा पाँचोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंको क्रमसे बनाया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

टीका—उस ब्रह्माने अपने देहके दो खंड करके आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे स्त्री उसमें मैथुनधर्मसे विरादनाम पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वाऽसृजद्वन्तुं स स्वयं पुरुषो विराट् ॥

॥ तं मां विर्तास्यै सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

टीका—मनु कहतेहैं कि, हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस विराट् पुरुषने तप करिकै जिसको आप उत्पन्न किया उसको इस सब जगत्की सृष्टि करनेवाले मुझ मनुको जानो ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिमृक्षुस्तु तपस्तप्त्वां सुदुश्चरम् ॥

पंतीन्प्रजांनामसृजं महर्षीनांदिता दश ॥ ३४ ॥

टीका—मैंने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे अत कठिन तप करकै पहले दश प्रजापति महर्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् ॥

प्राचेतसं वासिष्ठं भृगुर्नारदमेव च ॥ ३५ ॥

टीका—उनके नाम ये हैं मरीचि १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ प्रचेता ७ वासिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ॥ ३५ ॥

एते मनुस्तु सतान्यांसृजन् भूरितेजसः ॥

देवान् देवनिकांश्यांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

टीका—इन मरीचि आदि बड़े तेजवालोंने और बड़े तेजवाल सात मनुओंको तथा देवताओंको और देवताओंके निवासके स्थान स्वर्ग आदिकोंको तथा महर्षियोंको उत्पन्न किया यह मनुशब्द अधिकारका वाचीहै चौदह मन्वंतरोंमें जब जिसका सृष्टि करनेका अधिकार होताहै तब वही उस मन्वंतरमें स्वायम्भुव स्वारीचिप आदिनामोंसे मनु कहा जाताहै ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥

नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितृणांश्च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

टीका—इन्होंने यक्ष अर्थात् कुबेर, और उनके अनुचरोंको, तथा राक्षसों अर्थात् रावण आदिकोंको, और उनसे नीच अशुद्ध मरुदेशके रहनेवाले पिशाचोंको, चित्ररथ

आदि गंधर्वाँको, उर्वशी आदि अप्सराओंको, विरोचन आदि असुरोंको, वासुकी आदि नागोंको, अलगर्द आदि सर्पोंको गरुड आदि सुपर्णोंको और आज्यपा आदि पितरोंके समूहको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनुषि च ॥

उल्कानिर्घातकेतूँश्च ज्योतीष्युच्चार्वचानि च ॥ ३८ ॥

टीका-फिर इन्होंने विजली अर्थात् मेघमें चमकनेवाली ज्योतिकी, वज्र अर्थात् वृक्षादिकोंकी नाश करनेवाली ज्योतिकी, मेघोंको, रोहित नाम सीधे इन्द्र धनुषको, उसीप्रकारके टेढ़े धनुषाकार इन्द्र धनुषको, उल्का अर्थात् रेखाके आकार आकाशसे गिरती हुई ज्योतिकी, निर्घात कहिये पृथ्वी आकाशमें स्थित उत्पात शब्दको, केतु कहिये उत्पातरूप पृच्छवाले तारोंको, तथा औरभी ध्रुव अगस्त्य आदि नाना प्रकारकी छोटी बड़ी ज्योतियोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विधांश्च विहंगमान् ॥

पशून्मृगान्मुष्यांश्च व्यालान् श्रेभयतोदतः ॥ ३९ ॥

टीका-घुडमुहे किन्नरोंको वानरोंको मछलियोंको और नानाप्रकारके पक्षियोंको गौ आदि पशुओंको हरिण आदि सृगोंको व्याल अर्थात् सिंहादिकोंको और ऊपर नीचे दोनों ओरके दांतवाले घोड़े आदिको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

सर्व्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

टीका-कृमि छोटे कीड़ोंको और कीट अर्थात् कृमिसे कुछ मोटे कीड़ोंको पतंगोंको और जूं मक्खी तथा खटमलोंको और सब डांस मच्छरोंको और नानाप्रकारके स्थावर अर्थात् वृक्षलताआदिकोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

एवंमेतैरिदं सर्व्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ॥

यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

टीका-ऐसे इन मरीचि आदि दशमहर्षियोंने मेरी आज्ञा लेकर बड़ा तप करिके कर्मयोगसे अर्थात् जिसका जैसा कर्महै उसके अनुरूप देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशङ्कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥

तत्तथा वोऽभिधास्यामि कर्मयोगश्च जन्मनि ॥ ४२ ॥

टीका—इन जीवोंमें जिसका जो कर्म इस संसारमें पाहिले आचार्योंने कहाहै जैसे ओषधी फलपाकांत है और बहुत फल फूलोंकी देनेवाली है और ब्राह्मणादिकोंका पढ़ना आदि सो सब वैसाही और जन्मआदिके क्रमयोगको तुमसे कहूंगा ॥ ४२ ॥

पशंवश्च मृगांश्चैव व्यालांश्चोभयतोदतः ॥

रक्षांसि च पिशांचाश्च मनुष्यांश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

टीका—पशु, मृग, व्याल, दोनों ओर के दातवाले, राक्षस, पिशाच; और मनुष्य ये सब जरायुज हैं अर्थात् क्षिलीमें उत्पन्न होतेहैं फिर उस्से छूटते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पां नक्रां मत्स्यांश्च कच्छपाः ॥

यांनि चैवप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

टीका—पक्षी, सांप, मगर, मछली, कछुवे और इसप्रकार के जीव जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं जैसे गिरगट आदि और जो जलमें उत्पन्न शंख आदिहैं वे सब अंडजहैं अर्थात् पहिले अंडा उत्पन्न होता है फिर उस अंडेमेंसे वे जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

ऊष्मणश्चोपजायन्ते यज्ञान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

टीका—डांस मच्छड जूं मक्खी खट्मल ये सब स्वेदजहैं और जो ऐसेही भुनगे चेंटी आदिहैं वे सब ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ४५ ॥

उद्भिजास्त्वावरास्सर्व्वेबीजकाण्डप्ररोहिणः ॥

ओषधयः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

टीका—बीजके बीने और डालियोंके लगानेसे उगनेवाले सब उद्भिज्ज हैं अर्थात् बीजं और भूमिको फांडकर ऊपरको निकलतेहैं और फलोंके पकनेपर जिनका नाश होजाताहै अर्थात् सूखजातीहैं वे धान आदि सब औषधी हैं वे बहुतसे फूलफलोंकारि युक्त होती हैं ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्समृताः ॥

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयंतस्समृताः ॥ ४७ ॥

टीका—जिनमें फूलके बिना फल आता है वे बड, पीपल, पाकरी आदि वनस्पति कहाते हैं और जिनमें फूल फल दोनों होते हैं वे दोनों वृक्ष कहे गये हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुलमन्तुं विविधन्तथैव तृणजातयः ॥

बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ ४८ ॥



टीका-गुच्छ अर्थात् जिनमें जड़हीसे लताओंका समूह निकलता है शाखा नहीं होती हैं जैसे चमेली वेला आदि और गुल्म जैसे एक जड़से उगे हुए बहुतसे ईख सरपता आदिकी और तृण अर्थात् घास आदि और प्रतान जैसे तुंवी आदि तथा वल्ली जैसे गिलोय आदि येभी सब बीजके बोने और डालियोंके लगानेसे उगनेवालेहैं॥४८॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥

अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

टीका-ये वृक्ष आदि विचित्र दुःखहै फल जिसका और धर्मकर्म हैं कारण जिसके ऐसे तमोगुणसे घिरेहुएहैं और सुख दुःखकारि युक्त ये सब अन्तस्संज्ञा अर्थात् भीतर ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥

घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयौगिनि ॥ ५० ॥

टीका-प्राणियोंके जन्महोने और मरनेसे घोर अर्थात् दुःख देनेवाले तथा सदा नाश होनेवाले इस जगत्में ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक उत्पत्तियाँ कही ॥ ५० ॥

एवं सर्व्वं सँ सृष्ट्वँदं माँश्चाचिन्त्यपराक्रमः ॥

आत्मन्यन्तर्द्वेषे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

टीका-इस प्रकार सृष्टि काहिकै अब प्रलयकी दशा कहते हैं वह अचिन्त्यशक्ति प्रजापति ऐसे उक्त प्रकारसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को तथा मुझको उत्पन्न करके सृष्टिके कालको प्रलयमें नाश करता हुआ आत्मामें अंतर्धान होगया ॥ ५१ ॥

यदा सँ देवो जागति तदेदं चेषते जगत् ॥

यदा स्वपिपति शान्तात्मा तदा सर्व्वं निमीलति ॥ ५२ ॥

टीका-इसमें कारण कहते हैं जब वह प्रजापति जागता है अर्थात् सृष्टि और स्थितिकी इच्छा करता है तब यह जगत् श्वास और प्रश्वास और आहार आदिकी चेष्टाको प्राप्त होता है और जब सोता है अर्थात् इच्छारहित होता है तब यह जगत् लीन होजाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्मात्मानशरीरिणः ॥

स्वकर्मभ्यो निर्वर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

टीका-पहले कहेहुएहीको स्पष्ट करते हैं उस प्रजापतिके सोने अर्थात् इच्छारहित होनेपर तथा स्वस्थ कहिये मनका व्यापार समेट लेनेपर कर्मसे देह पानेवालेक्षेत्रज्ञ

अर्थात् प्राणी देहधारण करने आदि अपने कर्मोंसे निवृत्त होजाते हैं और सब इंद्रियोंसमेत मनभी अपनी वृत्तिसे रहित होजाता है ॥ ५३ ॥

युगंपत्तुं प्रलीयन्ते यदा तं मन्महात्मनि ॥

तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिपति निर्वृतः ॥ ५४ ॥

टीका—अब महाप्रलय कहते हैं एकही समयमें जब सब भूत उस परमात्मामें प्रलयको प्राप्त होते हैं तब यह सब भूतोंका आत्मा जाग्रत् और स्वप्नके व्यापारसे रहित हो सुखसे सोता है अर्थात् सोयासा होता है यद्यपि नित्य ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मामें सोना नहीं होसकता तिसपरभी जीवके धर्मका उपचार करते हैं ॥ ५४ ॥

तमोर्यन्तुं समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥

न च सं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तिर्तः ॥ ५५ ॥

टीका—अब प्रलयके प्रसंगसे जीवके निकलनेकोभी दो श्लोकोंमें कहते हैं यह जीव तम अर्थात् ज्ञानकी निवृत्तिको प्राप्त होके बहुतकालतक इंद्रिय आदिकों करि सहित स्थित रहता है और जब श्वास प्रश्वास आदि अपने कर्मोंको नहीं करसकता है तब मूर्ति जो प्रथम देह है तिस्से निकलजाता है ॥ ५५ ॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा वीजं स्थासु चरिष्णुं च ॥

समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

टीका—दूसरीदेहको कब धारण करता है सो कहते हैं जब जीव अणुमात्रिक अर्थात् भूत १ इंद्रिय २ मन ३ बुद्धि ४ वासना ५ कर्म ६ वायु ७ अविद्या ८ रूप इस पुर्यष्टक करि युक्त हो स्थासु कहिये स्थिररूप वृक्ष आदिके कारणमें प्रवेश करताहै तब वृक्ष आदिरूप स्थावर शरीरको धारण करताहै और जब चरिष्णु कहिये मनुष्य आदिके जंगमरूप बीजमें प्रवेश करताहै तब मनुष्य आदिके शरीरको कर्मके अनुसार धारण करताहै ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वञ्चराचरम् ॥

सर्जीवयति चार्जसं प्रमापयति चैव्ययः ॥ ५७ ॥

टीका—प्रसंगसे आये हुए जीवके उत्क्रमणको कहिकै मुख्यका कथन करते हैं इसप्रकार सदा अविनाशी वह ब्रह्मा जाग्रत् तथा स्वप्नसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को जिवाता है और मारता है ॥ ५७ ॥

इदं शौस्त्रन्तुं कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ॥

विधिर्वद्राहयामास मरीच्योर्दोस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८ ॥

टीका-पहिले ब्रह्माने इस शास्त्रको वनाकै सृष्टिकी आदिमें विधिपूर्वक मुझकोही पढाया और मैंने मरीचिआदि मुनियोंको पढाया ( शंका ) जो कहो कि, ब्रह्माके कहे हुए इस शास्त्रको मनुका कैसे कहते हो ( उत्तर ) यहाँ मेधातिथि कहते हैं कि, शास्त्र शब्दसे शास्त्रका अर्थ विधिनिषेधसमूह कहा जाता है उसको ब्रह्माने मनुको पढाया मनुने उसका प्रतिपादान करनेवाला ग्रंथ वनाया इस्से मनुका शास्त्र कहाया ॥ ५८ ॥

एतद्द्वौयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥

एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्व्वमेषोऽखिलं भुनिः ॥ ५९ ॥

टीका-मनु कहते हैं कि, इन्होंने मुझसे यह सब पढा है इस कारण ये भृगुमुनि इस शास्त्रको तुझे संपूर्ण सुनावेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्ममनुना भृगुः ॥

तान्ब्रवीद्विषीन्सर्व्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

टीका-तिस पीछे मनु कारिकै ऐसे कहेगये भृगु महर्षि प्रसन्न होकै सब ऋषियोंसे यह बोले कि, सुनिये ॥ ६० ॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्विंशत्या मर्नवोऽपरे ॥

सृष्ट्वन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥ ६१ ॥

टीका-ब्रह्माके पौत्र इन स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः और महात्मा वडे पराक्रमी मनु हुए उन्होंनेमी अपने २ सृष्टिपालन आदिके समयमें अपनी २ प्रजा उत्पन्न की ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ॥

चाक्षुषश्च महातेजां विवस्वत्सुत एवं च ॥ ६२ ॥

टीका-स्वारोचिष १ औत्तमि २ तामस ३ रैवत ४ चाक्षुष ५ और वडे तेजस्वी वैवस्वत ६ ये छः मनुनामसे कहे गये ॥ ६२ ॥

स्वार्यम्भुवाद्यास्सप्तै तेर्मनवो भूरितेजसः ॥

स्वेस्वेन्तरे सर्व्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

टीका-स्वायम्भुव आदि इन सातमनुओंने अपने २ अधिकारमें इस स्थावर जंगम जगत्को उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेर्षा दश चाष्टौ च काष्ठां त्रिंशतुं ताः कला ॥

त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥ ६४ ॥

टीका—अब कहेहुये मन्वन्तरके सृष्टिप्रलय आदिके कालका प्रमाण जाननेके लिये कालका क्रम कहते हैं आपसे आंखोंके खुलने सुंदनेको निमेष अर्थात् पलक कहते हैं उन अठारह पलकोंका एक काष्ठा नाम कालका प्रमाण हुआ. उन तीस काष्ठाओंकी एक कला होतीहै. तीस कलाका एक मुहूर्त होताहै; और तीस मुहूर्तोंका एक अहो-रात्र अर्थात् दिनरातिका समय होताहै ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥

रात्रिः स्वप्राय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहं ॥ ६५ ॥

टीका—मनुष्यों और देवताओंके दिन रात्रिका विभाग सूर्य करते हैं उनमें रात्रि प्राणियोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेके लिये है ॥ ६५ ॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मांसः प्रविर्भागस्तु पक्षयोः ॥

कर्मचेष्टास्वहं कृष्णः शुक्लः स्वप्राय शैवरी ॥ ६६ ॥

टीका—मनुष्योंके एक महीनेका पितरोंका रातदिन होताहै उसके दोनों पक्षोंमें काम करनेके लिये कृष्णपक्ष दिनहै और सोनेके लिये शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥ ६६ ॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षे प्रविर्भागस्तयोः पुनः ॥

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

टीका—मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका रातादिन होता है उसकाभी यह विभागहै कि, मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है उसमें बहुधा देवकर्म करना चाहिये और दक्षिणायन देवताओंकी रातहै ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥

एकैकशो युर्गान्तुं क्रमशस्तत्रिवोर्धतं ॥ ६८ ॥

टीका—ब्रह्माके रातदिनका जो प्रमाण है वह प्रत्येक सत्ययुगादिकोंके क्रमसे है उसको संक्षेपसे सुनो ॥ ६८ ॥

चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तुं कृतं युगम् ॥

तस्य तावच्छेती सन्ध्यौ सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥

टीका—मनुआदि चार हजार वर्षका सत्ययुगका प्रमाण कहते हैं. उसके उत्त-नेही वर्षोंके सैकडे संध्या और संध्यांश होताहै. युगका पहला भाग सन्ध्या और दूसरा संध्यांश होताहै ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥

एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

टीका-त्रेता द्वापर कलियुग इन तीनों युगोंका संध्या और संध्यांश सहितोंका प्रमाण क्रमसे एक सहस्र और एक शतके घटानेसे होताहै अर्थात् तीन हजार ( ३००० ) वर्षका त्रेतायुग और तीनसौ ( ३०० ) वर्ष संध्या और तीनसौ ( ३०० ) वर्ष संध्यांश और दोहजार ( २००० ) वर्ष द्वापरयुग दोसौ ( २०० ) वर्ष संध्या और दोसौ ( २०० ) वर्ष संध्यांश और एक हजार ( १००० ) वर्षका कलियुग सौ ( १०० ) वर्ष संध्या और सौ ( १०० ) वर्ष संध्यांश ॥ ७० ॥

तदैतत्परिसंख्यातमादावेवं चतुर्युगम् ॥

एतद्वादर्शसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

टीका-यह जो मनुष्योंका चारोंयुगका प्रमाण कहा इसीका बारह गुणा देवताओंका एक युग होताहै ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगानान्तु सहस्रपरिसंख्यया ॥

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

टीका-देवताओंके एकहजार युगोंका एक ब्राह्मदिन होताहै और उतनीही राति होती है ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ॥ रात्रिं च तावतीमेव ते

ऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३ ॥ तस्य सोऽहर्निर्शास्यान्ते प्रसुप्तः प्र-

तिबुद्धयते ॥ प्रतिबुद्धश्च सृजति मनस्सदसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

टीका-जिसकी समाप्ति हजारयुगोंमें होतीहै ऐसा ब्रह्माका एक पवित्र दिन कहते हैं और वे रातिदिनके जाननेवाले जन उतनीही रात्रि कहते हैं ॥ ७३ ॥ सोया हुआ वह ब्रह्मा उस अपनी रातिके अंतमें जागता है और जागकर सत् असत् रूप मनको उत्पन्न करता है अर्थात् भूलोक आदि तीनों लोकोंकी सृष्टिमें मनको लगाता है उत्पन्न नहीं करता है ॥ ७४ ॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ॥ आकाशं जायते त-

स्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥ आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्व-

गन्धवहः शुचिः ॥ बलवान् जायते वायुस्स वै स्पर्शगुणो मर्तः ७६

टीका-परमात्माकी सृष्टिकी इच्छा करि प्रेरागया मन सृष्टिको करता है तौ उससे पहले आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण मनुआदिकोंने शब्द कहा है ॥ ७६ ॥ विकारको प्राप्त हुए आकाशसे सबभाँतिके गंधका वहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होताहै उसका गुण स्पर्श कहा गया है ॥ ७६ ॥

वायोरपि<sup>३</sup> विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भा  
स्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिपश्च<sup>३</sup> विकुर्वाणादापो रसगु  
णाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषां सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥

टीका-विकारको प्राप्तहुए पवनसेभी दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अंध-कारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होताहै उसका गुण रूप है ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुए तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होते हैं और जल-से गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होती है यह आदिसे सृष्टि कही ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्व-  
न्तरमि<sup>३</sup> होच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव  
च ॥ क्रीडन्नि<sup>३</sup> वैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८० ॥

टीका-पहले कही हुई जो बारहहजार वर्षोंकी मनुष्योंकी संख्या तथा सं-  
ख्यांशसहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है वह देवताओंका एक युग होता है उसका  
इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वन्तर होता है उसमें एक मनुका सृष्टिआदि करनेका  
अधिकार होता है ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं ऐसे मन्वन्तरोंको  
और सृष्टि तथा संहारको वह परमेष्ठी खेलतेहुए मानो बारंवार करता है ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नाधर्मैणागमैःकं  
श्चिन्मनुष्यां प्रति<sup>३</sup> वर्तते ॥ ८१ ॥ इतरेष्वगमाद्धर्मः पादशस्त्वर्व-  
रोपितः ॥ चौरिकानृतमायाभिधर्मश्चापैति<sup>३</sup> पादशः ॥ ८२ ॥

टीका-सत्ययुगमें सब धर्म चतुष्पात् कहिये सब अंगोंसे परिपूर्ण था और  
सत्यभी था सब धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेसे सत्यका पृथक्ग्रहण किया और अधर्मसे अ-  
र्थात् शास्त्रको उल्लाँघकै मनुष्योंमें किसीप्रकारका धन विद्या आदिका आना नहीं  
होताथा ॥ ८१ ॥ त्रेता आदि और युगोंमें अधर्मसे धनके जोडने तथा विद्याके पढने-  
से धर्म अर्थात् यज्ञ आदि क्रमसे प्रत्येक युगमें चौथाई २ घटता जाता है और धन  
तथा विद्यासे जो कुछ धर्म इकट्ठा किया जाता है सोभी चोरी झूठ और छलसे

हरएक युगमें चौथाई २ कम होनेसे चला जाता है अर्थात् नष्ट होजाता है क्रम २ से कमहोनेका यह कारण है कि चोरी झूठ छल ये तीनों त्रेता आदि तीनों युगोंमें क्रमसे एक २ बढ़ता जाता है ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कूर्तत्रेतादिपुद्गोर्षामायुं  
हंसति पादशः ॥ ८३ ॥ वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामांशिवश्चैव कर्म  
णाम् ॥ फलं त्वनुयुगं लोके प्रभावंश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

टीका—सत्ययुगमें रोगका कारण अधर्म न होनेसे रोगरहित और विघ्नरूप अधर्मके न होनेसे सिद्ध हैं कामनाओंके फल जिनके ऐसे और चारसौवर्षकी है आयु जिनकी ऐसे और अधिक आयुके करनेवाले धर्मके कारण अधिक अवस्थाकेभी होते हैं इससे रामचन्द्रने दसहजार वर्ष राज्य किया इस वाल्मीकिके लक्षसेभी विरोध न हुआ और शतायुर्वैपुरुष इत्यादि श्रुतिमें शतशब्द बहुतसे सैकड़ोंका कहनेवाला है अथवा कलियुगके लिये कहा है और त्रेता आदियुगोंमें फिर चौथाई २ आयु कम होती जाती है ॥ ८३ ॥ शतायुर्वैपुरुष इत्यादि वेदमें कहीहुई आयु और काम्यकर्मोंकी फलविषयक चाहना और ब्राह्मण आदिकोंका प्रभाव अर्थात् शाप देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति ये सब युगके अनुसार फलके देनेवाले होते हैं ॥ ८४ ॥

अन्ये कूर्तयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां  
युगद्वासानुरूपतः ॥ ८५ ॥ तपः परं कूर्तयुगे त्रेतायां ज्ञानमु  
च्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

टीका—सत्ययुगमें और धर्म थे फिर युगोंके घटनेके अनुरूप त्रेता तथा द्वापरमें औरही हुए और कलियुगमें औरही हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि तप आदि सब शुभकर्म सब युगोंमें करनेयोग्य हैं तिसपरभी सत्ययुगमें तप मुख्य था अर्थात् बड़े फलका देनेवाला था ऐतही त्रेतामें आत्माका ज्ञान और द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दानही एक बड़ा फल देनेवालाहै ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखर्वाहूरुपजा  
नां पृथक्कर्मण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥ अध्यापनमध्ययनं यज्ञं  
यार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

टीका—उस बड़े तेजस्वी ब्रह्माने इस सब सृष्टिकी रक्षाके लिये मुख आदिसे उत्पन्न चारों वर्णोंके लिये जुदे २ कर्म बनाये ॥ ८७ ॥ पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना यज्ञ कराना दानदेना दानलेना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके बनाये ॥ ८८ ॥

प्रजांनां रक्षणं दानमिज्याध्वयनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्चै  
क्षत्रियस्यै समांसतः ॥८९॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्वयन  
मेव च ॥ वणिर्पर्यथ कुंसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥ ९० ॥

टीका—प्रजाओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ करना ३. वेद पढ़ना ४. विषय जो गाना नाचना आदिहैं तिनमें चित्तका न लगाना ५. ये संक्षेपसे क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥ पशुओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ करना ३. वेद पढ़ना ४. जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारवरदारी आदिसे व्यापार करना ५. व्याज लेना और खेती करना ६. ये वैश्यके कर्म नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेव वर्णानां  
शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥ ऊर्ध्वं नाभिर्मध्यंतरः पुरुषः परिकी  
र्तितः ॥ तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

टीका—प्रभुने शूद्रको एकही काम बताया वह कि, द्वेषरहित होकर इन तीनोंही वर्णोंकी सेवा करे ॥ ९१ ॥ अब मुख्यतासे तथा सृष्टिकी रक्षाके निमित्त होनेसे और उससे धर्मका आरंभ होनेसे तथा शास्त्रके पढ़नेसे ब्राह्मणकी प्रशंसा लिखते हैं ॥ पुरुषसे भी पवित्रहै परंतु नाभिसे ऊपर तौ बहुतही पवित्रहै उससेभी पवित्र ब्राह्मणका मुख कहा गयाहै ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्राह्मणैश्चैवं धारणात् ॥ सर्वस्यैवांस्यस्य संगे  
स्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥ तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्त  
प्त्वादि तोऽमृजत् ॥ हव्यकव्याभिवाहाय सर्वस्यांस्यचंगुतये ९४ ॥

टीका—उससे क्या हुवा सो कहतेहैं ॥ उत्तम अंग जो मुखहै तिसमेंसे उत्पन्न होनेसे तथा क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न होनेसे और पढ़ने तथा व्याख्यान आदिसे वेदका धारण करनेसे ब्राह्मण इस सब जगत्का वेदकी आज्ञासे स्वामी है और संस्कारविशेषसेभी सब वर्णोंका प्रभुहै ॥ ९३ ॥ किसके उत्तम अंगसे यह उत्पन्न हुवा सो कहतेहैं ॥ उस ब्राह्मणको ब्रह्माने अपने मुखसे दैव पित्र्य हव्य कव्यके पहुंचानेके लिये तप करिके जगत्की रक्षाके लिये क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥

यस्यांस्येन सदाश्रान्तं हव्यानि त्रिदिवोकसः ॥ कव्यानि चैवं  
पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणि



नां बुद्धिर्जीविनः॥बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाःस्मृताः१६॥

टीका-पहले कहे हुये हव्य कव्यके पहुंचानेको बोलतेहैं ॥ जिस ब्राह्मणके मुखसे श्राद्ध आदिमें सदा देवता हव्योंको और पितर कव्योंको भोजन करतेहैं उससे अधिक कौन प्राणी होगा ॥ ९५ ॥ स्यावर जंगम भूतोंमें प्राणी कहिये प्राणवाले कीड़े आदि श्रेष्ठहैं उनमें भी बुद्धिसे जीनेवाले पशुआदि श्रेष्ठहैं उनसेभी उत्तम ज्ञानके हानेसे मनुष्य श्रेष्ठहैं उनसेभी ब्रह्मण सर्वोंके पूज्य तथा मोक्षके अधिकारयोग्य हानेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः॥कृतबुद्धिषु कर्तारः  
कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य  
शाश्वती ॥ स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

टीका-ब्राह्मणोंमें तौ बड़े फलवाले ज्योतिष्टोम आदिकर्मोंका अधिकारी होनेसे विद्वान् और उनसेभी कृतबुद्धि अर्थात् शास्त्रोक्त बातोंके करनेकी जिनकी बुद्धि उपस्थितहै उनसेभी करनेवाले और उनसेभी ब्रह्मज्ञानी मोक्षका लाभ होनेसे श्रेष्ठ हैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणदेहका जन्मही धर्मका अविनाशी शरीरहै जिसे धर्मके लिये उत्पन्न वह धर्मसे प्राप्त हुये आत्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ९८ ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां  
धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥ सर्वे स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जग  
तीगतम् ॥ श्रेष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणो हति ॥ १०० ॥

टीका-जिसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण पृथ्वीमें सबसे ऊपर होताहै अर्थात् सबसे श्रेष्ठहै और सब जीवोंके धर्मसमूहकी रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ९९ ॥ जो कुछ जगत्में धनहै वह ब्राह्मणकाहै तिससे ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण और श्रेष्ठ हानेसे निश्चय ब्राह्मण सब लेनेके योग्यहै ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ आर्तुशंस्याद्ब्राह्मण  
स्य भुञ्जेत् ही रेजनाः ॥ १०१ ॥ तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनु  
पूर्वशः ॥ स्वायंभुवो मनुर्धामानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

टीका-जो दूसरेका अन्न ब्राह्मण खाताहै तथा पहिरताहै और दूसरेका लेकर औरको देताहै वहभी ब्राह्मणका धनहै ऐसा होनेपर ब्राह्मणकी करुणासे और लोग भोजन आदि करतेहैं ॥ १०१ ॥ ब्राह्मणके तथा क्षत्रिय आदिकोंके कर्म जाननेके लिये ब्रह्माके प्रपौत्र बुद्धिमान् स्वायम्भुवं मनुने इस शास्त्रको बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं  
सम्यक् नान्येन केनचित् ॥१०३॥ इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः  
शंसितव्रतः ॥ मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

टीका-विदुषा कहिये इस शास्त्रके पढनेका फलजाननेवाले ब्राह्मणको व्याख्यान  
तथा पढाने आदि उचित, यत्नासे अध्ययन करना और शिष्योंके लिये भी इसका  
व्याख्यान करना योग्यहै, और अन्य क्षत्रिय आदिकोंको केवल पढना चाहिये  
व्याख्यान करना तथा पढाना न चाहिये ॥ १०३ ॥ इस शास्त्रको पढताहुआ  
ब्राह्मण इसके अर्थको जानि व्रतको करिके मन वाणी तथा शरीरसे उत्पन्न हुए पापों-  
करि लिप्त नहीं होताहै ॥ १०४ ॥

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावराण् ॥ पृथिवीमपि चैवेमां  
कृत्स्नामर्कोऽपिसोऽहति ॥१०५॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बु  
द्धिविबर्द्धनम् ॥ इदं यशस्यमार्युण्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥१०६॥

टीका-इस शास्त्रको पढताहुआ ब्राह्मण जो पंक्तिके योग्य नहीं ऐसे मनुष्य करि  
दूषित हुई पंक्ति अर्थात् क्रमसे बैठे हुए जनोंके समूहको और सात पहले अर्थात् पि-  
तामहादिकोंको और सात आगेके पौत्र आदिकोंको पवित्र करताहै और सब धर्मका  
ज्ञाता होनेके कारण पात्र होनेसे वह एकभी सब पृथ्वीको लेनेके योग्यहोताहै ॥ १०५ ॥  
इस शास्त्रका पढना स्वस्त्ययन अर्थात् चाहे हुए अर्थका देनेवाला है और जप होम  
आदिका बोधक होनेसे श्रेष्ठहै अर्थात् स्वस्त्ययनसेभी अधिकहै और बुद्धिका बढ़ाने-  
वालाहै क्योंकि इसके अभ्याससे संपूर्ण विधिनिषेधका ज्ञान होताहै और यशका देने-  
वाला तथा आयुका बढ़ानेवाला है और मोक्षके उपायका उपदेश करनेवालाहै ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ॥ चतुर्णामपि वर्णा  
नामाचारश्चैवं शाश्वतः ॥१०७॥ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तस्मा  
त्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विर्जः १०८ ॥

टीका-इसमें संपूर्णतासे धर्म कहाहै और कर्मोंके गुण दोष अर्थात् भलाई बुराई  
कहीहै और चारों वर्णोंका परंपरासे आयाहुआ आचार कहाहै ॥ १०७ ॥ श्रुति तथा  
स्मृतिमें कहाहुआ आचार परमधर्म है तिससे आत्मवान् कहिये अपने धर्मका चाहने-  
वाला ब्राह्मण सदा आचरयुक्त रहै ॥ १०८ ॥

आचारोऽद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः

संपूर्णफलभागभवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुने  
यो गतिम् ॥ सर्वस्य तर्पसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

टीका-आचारसे रहित ब्राह्मण वेदके फलको नहीं प्राप्त होताहै और आचारयुक्त  
संपूर्ण फलका पानेवाला होताहै ॥ १०९ ॥ ये कहे हुए प्रकारसे आचारके द्वारा  
ऋषियोंने धर्मकी प्रातिकी जानके संपूर्ण जे चांद्रायण आदि तर्पहैं उनके मूलरूप  
आचारका ग्रहण किया ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानं  
स्य च परं विधिम् ॥ १११ ॥ दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणं  
गम् ॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धं कल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥

टीका-जगतकी उत्पत्ति और संस्कार जो जातक कर्म आदि हैं तिनकी  
विधि और ब्रह्मचर्यका उपचार अर्थात् गुरु आदिकोंका नमस्कार और उपासना  
आदि और स्नान कहिये गुरुकुलसे निवृत्तहुएका एक प्रकारका संस्कार उसकी  
बहुत अच्छी विधि कहेंगे ॥ १११ ॥ दाराधिगमन जो विवाह तिसकी विधि  
और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण तथा वैश्वदेव आदि पंचमहायज्ञोंका विधान और  
नित्यश्राद्धकी विधि कहेंगे ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्यां भक्ष्यं च शौचं  
च द्रव्याणां सिद्धिमेव च ॥ ११३ ॥ स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्या-  
समेव च ॥ राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

टीका-वृत्ति कहिये ऋत आदि जीविकाके उपायोंको और स्नातक जो गृह-  
स्थहैं तिनके व्रत कहिये नियमोंको और भक्ष्य दही आदि तथा अभक्ष्य लहसन  
आदि और जो मरण आदिमें ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दश दिन आदिकी  
शुद्धिकी और जलआदिसे द्रव्योंकी सिद्धिकी कहेंगे ॥ ११३ ॥ स्त्रियोंके धर्मयोग  
अर्थात् धर्मके उपायोंको और तापस्य कहिये वानप्रस्थके लिये हित धर्मको संन्या-  
सको और संपूर्ण राजाके धर्मोंको और और कार्योंके निर्णय अर्थात् द्रव्यके लेन  
देनहैं तिनके निर्णय कहिये विचारको कहेंगे ॥ ११४ ॥

साक्षिप्रश्रविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ॥ विभागधर्मं द्यूतं च कण्ट-  
कानां च शोधनम् ॥ ११५ ॥ वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च सं

भवम् ॥ आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥

टीका—साक्षियोंके प्रश्नका विधान और स्त्रीपुरुषोंके समीप होने तथा न होनेमें धर्म करना तथा विभाग धर्म अर्थात् हिस्सा बांट और जुआआदि की विधि और कंटक जे चोर आदि हैं तिनका शोधना अर्थात् दूर करना इन सबको कहेंगे ॥ ११५ ॥ वैश्य शूद्रोंका उपचार अर्थात् अपने २ धर्मका करना और संकीर्ण अर्थात् और और जातिसे मिलिकै जे उत्पन्न हैं जे अनुलोमज प्रतिलोमज आदिहैं तिनकी उत्पत्ति और सब वर्णोंके आपद्धर्म अर्थात् विपत्तिके समयमें जीविका करनेका उपदेश और प्रायश्चित्त इन सब बातोंको कहेंगे ॥ ११६ ॥

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥ निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदो-  
षपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥ देशधर्माश्चातिधर्मान्कुलधर्माश्च शाश्वता  
न् ॥ पाषण्डगणधर्माश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

टीका—संसारगमन अर्थात् शुभ अशुभ कर्मोंके कारण उत्तम मध्यम अयमके भेदसे तीनिप्रकारके दूसरे देहमें जानेको और निश्रेयस कहिये आत्मज्ञानको और कहेहुए तथा निषेध कियेहुए कर्मोंके गुण दोषोंकी परीक्षा कहेंगे ॥ ११७ ॥ देशोंके धर्मोंको और नियत कियेहुए जाति तथा कुलके धर्मोंको और वेदसे बाहर आगममें कहे हुए निषिद्धधर्मोंके करनेको पाषण्ड कहते हैं उसके करनेवाले पाषण्डी मनुष्योंके धर्मको और गण अर्थात् समूह जे वनिये व्यापारी आदि हैं तिनके धर्मोंको इस ग्रंथमें मनुने कहा है ॥ ११८ ॥

येथेऽदमुक्तवाञ्छासं पुरा पृष्टो मनुर्मया ॥ तेथे दं धूमं प्र्यैव मत्सं  
काशात्रिं वोधत ॥ ११९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

टीका—पहले मुझकर पूछे गये मनुने जैसे इस शास्त्रको कहा है वैसेही आपभी अब हमसे सुनिये ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमंमुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुल्लुकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

विद्वद्भिः सेवितः सौद्रिर्नित्यमद्वेषरागिभिः॥ हृदयेनाभ्यनुज्ञातो  
यो धर्मस्तं निबोधत ॥ १ ॥ कामात्मना न प्रशस्ता न चैवाहो  
स्त्यकामता ॥ काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

टीका—प्रकृष्ट परमात्माके ज्ञानरूप धर्मके ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका प्रति-  
पादन करिके अब ब्रह्मज्ञानका अंगभूत जो संस्कार आदि धर्म है तिसके प्रतिपाद-  
नकी इच्छासे पहले धर्मका सामान्य लक्षण कहते हैं वेदके जाननेवाले रागद्वेषरहित  
धर्मात्माओंकरिके सदा सेवन किया गया और हृदयसे जाना जो धर्म है तिसको  
सुनिये ॥ १ ॥ कामात्मता कहिये फलकी इच्छासे बंदनको कारणरूप कर्मका करना  
अच्छा नहीं है जैसे स्वर्ग आदि फलकी चाहनासे किये हुए कामनायुक्त कर्म फिर  
जन्मके लिये कारण होते हैं और नित्यनैमित्तिक कर्म तो आत्मज्ञानके सहकारी  
होनेसे मोक्षके देनेवाले होते हैं इससे इच्छामात्रका निषेध नहीं किया क्योंकि वेद  
का पढना कामनायुक्त है और वैदिक कर्मयोगभी कामनायुक्तही है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः॥व्रतानि यर्मधर्माश्च  
सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥३॥अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नहं  
काहिंचित्॥यद्यद्वि कुरुते किंचित्तत्तकामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

टीका—संकल्प है मूल जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्मसे यह इष्टफल सिद्ध  
किया जाता है ऐसी बुद्धिको संकल्प कहते हैं तिस पीछे इस साधनता करिके निश्चय  
किये हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होतीहै तब उसकेलिये यत्नभी करता है इस भांति  
यज्ञभी संकल्पसे उत्पन्न है और व्रत नियम धर्म ये सब संकल्पसे उत्पन्न कहे गये  
हैं ॥ ३ ॥ यहाँही लौकिक नियम दिखाते हैं लोकमें भोजन गमन आदि कोई क्रिया  
विना इच्छाके कर्म नहीं दिखाई देतीहै तिससे सब लौकिककर्मोंको जो करताहै वह  
सब इच्छाका चेष्टित कहिये कामहै ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ॥ यथा संकल्पितांश्च  
हं सर्वान्कामान्समश्नुते ॥५॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले  
च तद्विदाम् ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

टीका—अब पहले कहे हुए फलकी इच्छाका निषेध करते हुए नियम करते हैं उनकर्मोंमें अच्छी भाँति वर्तमान पुरुष अमरलोकता कहिये अमरधर्मी ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै ऐसा पुरुष सर्वेश्वर होनेसे इस लोकमें भी सब बांछित पदार्थोंको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वेद कहिये ऋग् यजु साम अथर्व ये सब धर्मका मूल कहिये प्रमाण हैं स्मृति तथा हारीतका कहाहुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारका शील ये सब वेदके जाननेवालोंको धर्ममें प्रमाणहैं और आचार तथा साधुओंके मनका संतोषभी धर्ममें प्रमाणहै ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः॥स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हिंसः॥७॥सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ॥ श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ८ ॥

टीका—वेदसे भिन्न औरोंके वेदमूल होनेसे प्रामाण्य करनेपरभी मनुस्मृतिकी सबसे अधिकता दिखानेके लिये वेदमूलता कहतेहैं जो कोई धर्म किसी ब्राह्मण आदिका मनुने कहाहै वह सब वेदमें प्रतिपादन किया गयाहै जिसे वे मनु सबके जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥ वेदके अर्थ जाननेमें सहाय करनेवाले शास्त्रसमूह अर्थात् मीमांसा व्याकरणआदि इन सबको ज्ञानरूपी आँखिसे देखि अर्थात् विचारिके विद्वान् अपने धर्ममें स्थित होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ॥ इहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥९॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वैस्मृतिः॥ ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ १० ॥

टीका—श्रुतिस्मृतिमें कहे हुए कर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें कीर्ति और पर लोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ श्रुति वेदको कहते हैं और मनु आदिधर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ये दोनों प्रतिकूल तकोंसे नहीं विचार करनेयोग्यहैं जिसे सब धर्म उन्हीसे प्रकाशित हुआहै ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः॥स सांधुभिर्वहिष्कृत्यो नास्तिरको वेदानन्दकः ॥ ११ ॥ वेदः स्मृतिः सदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः ॥ एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥

टीका—जो ब्राह्मण धर्ममूल जो वे श्रुति स्मृति दोनों तिनका अपमान करताहै

अर्थात् नहीं मानता है वह वेदके निंदाका हेतु कहिये कारणभूत जो शास्त्रहै तिसके आश्रयसे नास्तिकके समान है वह शिष्टोंकरिके ब्राह्मणोंके करनेयोग्य अध्ययन आदि कर्मोंसे निकालने योग्यहै ॥ ११ ॥ वेद स्मृति सदाचार कहिये शिष्टोंका आचार और अपने आत्माका प्रिय कहिये अपना जिसमें सन्तोष होय यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसत्तानां धर्मज्ञानं विधीर्यते ॥ धर्मं जिज्ञासमानानां  
प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥ श्रुतिर्द्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्माहुभौ  
स्मृतौ ॥ उभावपि हितौ धर्मौ सम्यग्भूतौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥

टीका-अर्थ और कामके पानेकी इच्छा रहित मनुष्योंको यह धर्मका उपदेशहै और जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाणहै और जहाँ कहीं श्रुति और स्मृतिके अर्थमें विरोध पड़े वहाँ स्मृतिका अर्थ नहीं आदर करनेयोग्यहै ॥ १३ ॥ जहाँ फिर श्रुतियाँहीमें परस्पर विरुद्ध अर्थका प्रतिपादन है वहाँ मनुने दोनोंही धर्म कहेहैं जिस्से मनु आदिकोंसे पहले पंडितोंने दोनों धर्म समीचीन कहे हैं इसी भांति स्मृतियोंके भी विरोधमें विकल्प जानना चाहिये ॥ १४ ॥

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युपिते तथा ॥ सर्वथा वृत्तं यज्ञ ईती  
यं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो  
विधिः ॥ तस्यशास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयोनान्यस्यैकस्याचित् १६ ॥

टीका-इसमें दृष्टान्त कहते हैं ॥ सूर्यनक्षत्र वर्जित कालको समयाध्युपित कहते हैं और उदयसे पहले अरुणकी किरणयुक्त थोड़ी जिसमें तारा हैं ऐसे कालको अनुदित कहते हैं तौ आपसमें कालका विरोध पडनेपरभी विकल्पसे अग्नि होत्रका होम होता है ॥ १५ ॥ गमाधानसे लेकर श्मशानांत कहिये अंत्येष्टिपर्यंत जिस द्विजातिकी विधि वैदिक मंत्रोंसे कही है उसका इस मानवशास्त्रके पढनेमें अधिकार है और किसीका नहीं है ॥ १६ ॥

संरस्वतीदृषदृत्योदैवर्नद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं  
ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥ तस्मिन्देशे यं आचारः पारंपर्य  
क्रमागतः ॥ वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

टीका-धर्मका स्वरूप प्रमाण और परिभाषाको कहिकै अब धर्मकरनेके योग्य-

देशको कहते हैं सरस्वती और हृषद्वती नाम देवनदियोंके बीचके प्रदेशका जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ १७ ॥ बहुधा शिष्टोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर वर्णसंकरोंतक परंपराके क्रमसे चला आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एषं ब्रह्मर्षिदेशो  
वै<sup>११</sup> ब्रह्मावर्त्तादिन्तरः ॥ १९ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्ब्रज-  
न्मनः ॥ सर्वस्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

टीका—कुरुक्षेत्र और मत्स्यआदिदेश और पांचाल कहिये कान्यकुब्जदेश और शूरसेन कहिये मथुराके देश ये ब्रह्मर्षिदेश ब्रह्मावर्त्तसे कुछ न्यून हैं ॥ १९ ॥ इन कुरुक्षेत्र आदि देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथिवीमें सब मनुष्य अपने २ चरित्र कहिये आचारको सीखे ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादीर्षि ॥ प्रत्येगैवं प्रयागाच्च  
मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ आ समुद्रात्तु वै<sup>११</sup> पूर्वादां समुद्रात्तु  
पश्चिमात् ॥ तयोरेवांतरं गि<sup>११</sup> योरार्यावर्तं विदुर्दुर्धाः ॥ २२ ॥

टीका—उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें स्थित हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंका मध्य और विनशननाम सरस्वती नदीके गुप्त होनेका स्थान है उससे जो पूर्व और प्रयागसे जो पश्चिमहै उस देशका नाम मध्यदेश है ॥ २१ ॥ पूर्वके समुद्रसे और पश्चिमके समुद्रसे उन्ही दोनों अर्थात् हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचके भूमिभागको पंडित आर्यावर्त कहते हैं इससे समुद्रके मध्यके द्वीप आर्यावर्तमें नहीं है यह निश्चय हुआ ॥ २२ ॥

कृष्णसौरस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ संज्ञायो यज्ञियो दे  
शो म्लेच्छदेशसंत्वीतः परः ॥ २३ ॥ एतान्द्विजातयो देशान्संश्रये  
रन्प्रयत्नतः ॥ शूद्रस्तु येस्मिन्कस्मिन्वानिर्वसेदृत्तिकर्षितः ॥ २४ ॥

टीका—जहाँ कृष्णसार कहिये करसायल हरिण स्वभावसे बसताहै वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये इससे अन्यम्लेच्छ देश अर्थात् यज्ञके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ और देशोंमें उत्पन्नभी ब्राह्मण यज्ञके अर्थ बड़े उपायसे इन देशोंमें आके रहै वार जीविकासे दुःखी शूद्र चाहै जिस देशमें जाके रहै ॥ २४ ॥



एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ॥ संभवंश्चास्य सर्वस्य  
वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥ वैदिकैः कर्माभिः पुण्यैर्निषेकाद्वि  
जन्मनाम् ॥ कार्यैः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहं च ॥ २६ ॥

टीका—यह धर्म जाननेका कारण मैंने तुमसे संक्षेपसे कहा अब इस सब जगत्के उत्पत्ति और वर्ण आश्रम आदिकोंके धर्म सुनों ॥ २५ ॥ वैदिक कहिये वेदमें कहे हुए मंत्रयोग आदि शुभकर्मोंकारिके द्विजोंका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पापके क्षयकारणहै प्रेत्यकहिये परलोकमें यज्ञादि फलोंके संवधसे और इह कहिये इस लोकमेंभी वेदाध्ययन आदिमें अधिकारसे ॥ २६ ॥

गार्भहो मर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः ॥ वैजिकं गार्भिकं चैर्नो  
द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्हो मैत्रैर्विद्येनेज्यया  
सुतैः ॥ महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

टीका—गार्भ कहिये जो गर्भकी शुद्धकी लिये किये जाते हैं और होम जातकर्म चूडाकरण यज्ञोपवीत इन कर्मोंकारिके वैजिक कहिये प्रतिपिद्धमैथुनके संकल्प आदिसे पिताके वीर्यके दोषसे जो पाप होता है और गार्भिक कहिये जो अशुचिमाताके गर्भमें बसनेसे उत्पन्न हुआ ये सब पाप दूर होजाते हैं ॥ २७ ॥ स्वाध्याय कहिये वेदके पढनेसे और व्रत कहिये मधुमांस वर्जन आदि नियमोंसे और होम कहिये सावित्रचरुके होम आदिसे अथवा सायंकाल और प्रातःकालके होमसे और त्रैविद्यनाम व्रतकारिके और इज्या कहिये ब्रह्मचर्य अवस्थामें देवऋषि पितृतर्पण रूप और सुत कहिये गृहस्थकी अवस्थामें पुत्रका उत्पन्न करना और महायज्ञ कहिये पांच ब्रह्मयज्ञआदि और यज्ञ कहिये ज्योतिष्टोम आदि इन सर्वोंकारिके ब्राह्मी कहिये ब्रह्मकी प्राप्तियोग्य शरीर किया जाता है ॥ २८ ॥

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥ मन्त्रवत्प्राशनं चास्य  
हिरण्यमधुसर्पिपाम् ॥ २९ ॥ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वा ५  
स्यंकरयेत् ॥ पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥

टीका—नाभिवर्द्धन जो नाल कटनाहै तिस्से पहले पुरुषका जातकर्म किया जा-  
ताहै तब तो इसका स्वगृह्यमें कहे हुए मन्त्रोंसे सुवर्ण मधु और घीका प्राशन कहिये  
चढाना होताहै ॥ २९ ॥ जन्मसे दशमें अथवा बारह दिन इस बालकका नामकरण  
करावै अर्थात् नाम धरावै अथवा “अशौचे तु व्यतिक्रान्तिं नामकर्म विधीयते ” अर्थात्

अशौच जो सूतक है तिसके निकलजानेपर नामकर्म किया जाताहै इस शंखके वचनसे दशमदिनके निकलजानेपर ग्यारहें दिन करना चाहिये उस दिनभी न किया जाय तौ ज्योतिषसे निश्चय हुए अच्छे मुहूर्त्तमें वा गुणवान् नक्षत्रमें करना चाहिये ॥ ३० ॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य वलान्वितम् ॥ वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥ शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्द्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥ वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोंवर्णोंके नाम मंगल, बल धन निंदावाचक अर्थात् शुभ बल व मुदिन आदि करने चाहिये ॥ ३१ ॥ अब उपपदके नियमके लिये कहते हैं इनके नाम कर्मसे शर्म रक्षा पुष्टि प्रेष्यवाचक करने चाहिये अर्थात् शर्म वर्म्म गुप्त दास आदि करने चाहिये जैसे शुभशर्मा बलवर्मा वसुगुप्त दीनदास यह इसमें यम-स्मृति और विष्णुपुराणभी है परंतु ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे हैं ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां सुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ॥ मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमा शीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥ चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्रेष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

टीका—सुखसे बोलने योग्य जिसका अर्थ क्रूर न होय अर्थ प्रगट होय मनोहर होय मंगलवाची होय नामके अंतका स्वर दीर्घ होय कल्याणके कहनेवाले शब्द कारिके युक्त होय ऐसा स्त्रियोंका नाम रखना चाहिये जैसे ( यशोदा देवी ) यह ॥ ३३ ॥ बालकको चौथे महीनेमें सूयक दर्शनकेलिये जन्मके अर्थात् सूतिकाको जन्मके घरसे निकालना चाहिये और छठे महिनेमें अन्नप्राशन करना चाहिये अथवा जैसी जैसी जिसके कुलकी रीति होवै सो करनी चाहिये इस्से पहले कहा हुआ चौथे महीनेमें निकालने आदिका नियम न रहा ॥ ३४ ॥

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ॥ प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥

टीका—सब द्विजातियोंका चूडाकर्म कहिये मुंडन धर्मके लिये पहले वर्षमें अथवा तीसरे वर्षमें वेदकी आज्ञासे करना चाहिये अथवा कुलधर्मके अनुसार करै ॥ ३५ ॥ गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना चाहिये और गर्भसे ग्यारहवर्ष क्षत्रियका और वे गर्भसे बारह वर्ष वैश्याका करना चाहिये ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे॥राज्ञो वलार्थिनःषष्ठे वैश्य  
स्येहार्थिनोऽष्टमे ॥३७॥ आं पौंडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिर्व  
र्तते ॥ आं द्वाविंशत्क्षत्रवन्धोरो चतुर्विंशतेविंशः ॥ ३८ ॥

टीका-वेदके पढ़ने और अर्थज्ञान आदिसे बढे हुए तेजको ब्रह्मवर्चस कहतेहैं उसके  
चाहनेवाले ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे पाँचवे वर्षमें करना चाहिये और बलके चाह-  
नेवाले क्षत्रियका छठमें और बहुत खेती आदिकी चेष्टा चाहनेवाले वैश्यका आठवें  
वर्षमें करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सोलह वर्षके पीछे ब्राह्मणोंको और वाईससे क्षत्रियको  
और चौबीससे उपरांत वैश्यको सावित्रीका उपदेश नहीं होसकता अर्थात् तीनों  
वर्णोंको कमसे कम सोलह वाईस चौबीस वर्ष सावित्रीके उपदेशकी परम  
अबाधि है ॥ ३८ ॥

अत ऊर्ध्व त्रयोऽप्येतेयथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता व्रां  
त्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥ नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि  
कैर्हीचित् ॥ ब्राह्मणान्यौनैश्च संवन्धात्राचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

टीका-अतऊर्ध्व इसके उपरांत यथाकाल कहिये सोलह आदिवर्षोंमें नहीं संस्कार  
किये गये तीनों सावित्रीपतित कहिये उपनयनहीन और शिष्टोंकरि निंदित व्रात्य  
संज्ञक होते हैं अर्थात् उनका व्रात्य नाम होताहै ॥ ३९ ॥ विधिपूर्वक प्रायश्चित्त न  
करनेवाले इन अपवित्र व्रात्योंसे आपत्कालमेंभी अध्यापन कन्यादान आदि संबंधोंकी  
ब्राह्मण न करै ॥ ४० ॥

काष्णरौरववास्तानि चर्मोणि ब्रह्मचारिणः ॥ वंसीरन्नानुपूर्वेण शा  
णक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥ मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णां कार्यो विप्र  
स्य मेखला ॥ क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शण्ठान्तवी ॥ ४२ ॥

टीका-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचारी क्रमसे कृष्णमृग रुरुमृग और वस्त जो  
छागहैं तिनके चर्मोंको ऊपरके बख्तोंको धारण करै और सन अलसी और इनके  
नीचेके बख्तोंको धारण करै ॥ ४१ ॥ मुंजकी बीरांबरकी तीनलरोंसे बनीहुई चिकनी  
ब्राह्मणकी मेखला करनी चाहिये और क्षत्रियको मूर्वा नाम रूखडीकी धनुषकी  
प्रत्यंचाके समान और वैश्यकी सनके मूतकी मेखला करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तुकर्तव्याः कुशाश्मन्तकवल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनै

केन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥४३॥ काँपासमुपवीतं स्याद्विप्रस्यो  
ध्वंवृतांत्रिवृत् ॥ शर्णासूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकंसौत्रिकम् ॥४४॥

टीका—मृज न मिलै तौ तीनों वर्णोंकी मेखला क्रमसे कुश अश्मांतक बल्वज इन तीनी प्रकारके तृणोंसे मेखला बनानी चाहिये वह मेखला तीनी लरोंकी होय और एक तीनी अथवा पांच गाठोंकरै युक्त होय यहाँ वा शब्दके कहनेसे गाठोंका ब्राह्मणादिकोंके साथ क्रमसे संबंध नहीं है किंतु कुलोंके आचारके अनुसार है ॥ ४३ ॥ प्रकारविशेषसे बने जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञा कहेंगे वही जिसका धर्म है ऐसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासके सूतका होताहै और क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका मँढेके रोमोंसे बनाहुआ होताहै उसके बनानेका प्रकार यह है कि दक्षिणावर्त त्रिगुणा करकै फिरि तिगुना करै इस प्रकार नवतारोंका होता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो वैलत्रपांलाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैलंब्रौदुम्बरौ वैश्यो  
दण्डमर्हन्ति धर्मतः ॥४५॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः  
प्रभाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नास्यान्तिको विशः ॥४६॥

टीका—ब्राह्मण बेल और प्रलाशके क्षत्रिय वड और खैरके और वैश्य पीलू तथा गूलरके दंडोंके धर्मसे योग्य है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणका दंड केशतक और क्षत्रियका मस्तकतक तथा वैश्यका नासिकापयत दंड बनाना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरवर्णाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरा नृणां स  
त्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च  
भास्करम् ॥ प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि ॥ ४८ ॥

टीका—वे सब दंड सधिये और चिकने देखनेमें सुंदर मनुष्योंके मनको न विगाडनेवाले छिलके समेत और आगिमें नजले होंय ऐसे होने चाहिये ॥ ४७ ॥ वांछित दंडको ग्रहण करि और सूर्यके सम्मुख स्थित हो अग्निकी प्रदक्षिणा करि विधिपूर्वक भिक्षा माँगे ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राज्ञ्यो वै  
श्यस्तु भवदुत्तरम् ॥४९॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं  
निजाम् ॥ भिक्षेत भिक्षां प्रथमं याँ चै३ न३ नावमाँनयेत् ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञोपवीत जिसका होगयाहै ऐसा ब्राह्मण 'भवति भिक्षां देहि' ऐसे पहले भवत् शब्दका उच्चारण करि भिक्षा मांगै और क्षत्रिय 'भिक्षां भवति देहि' ऐसे भवत् शब्द बीचमें कहै और वैश्य 'भिक्षां देहि भवति' ऐसे भवत् शब्दको अंतमें कहिकै भिक्षा मांगै ॥ ४९ ॥ उपनयन कर्मकी अंगभूत भिक्षाको पहले मातासे बहिनसे और माताकी निज बहिनी अर्थात् मौसीसे मांगै और जो इस ब्रह्माचारिको नहीं करके अपमान न करै पहलीके न होनेमें औरोंसे मांगना चाहिये ॥ ५० ॥

समाहृत्यतुतद्भैक्ष्ययावदर्थममायया ॥ निवेद्यगुरुवेऽश्रीयादार्चम्य  
प्रांड्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥ आयुष्यंप्राड्मुखोमुद्धेयशंस्यंदक्षिणां  
मुखः ॥ श्रियंप्रत्यङ्मुखोमुद्धेयशंस्यंतंभुं केह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

टीका—वृषिको योग्य उस भिक्षाको बहुतोंसे लायकै गुरुको निवेदनकरि कपट रहितहो पूर्वको मुख करि आचमन करिकै भोजन करै ॥ ५१ ॥ अब काम्य भोजन कहते हैं आयुष्यकी इच्छा होय तौ पूर्वको मुख करिकै भोजन करै यशकी इच्छा होय तौ दक्षिणको मुख करिकै भोजन करै लक्ष्मीकी इच्छा होय तौ पश्चिमको मुख करिकै और सत्यकी इच्छा होय तौ उत्तरको मुख करिकै भोजन करै ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुक्त्वाचोपस्पृशेत्स  
म्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥ पूजयेदर्शनं नित्यमद्याच्चै  
तदकुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसिद्धे च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

टीका—नित्य कहिये ब्रह्मचर्यके पीछे भी ब्राह्मण आचमन करिकै सावधान चित्त हो भोजन करै फिर भोजनकरिकै शास्त्रके अनुसार आचमन करै और जलसे इंद्रियजे शिरमें स्थित छःछिद्र नाक नेत्र कान आदिका स्पर्श करै ॥ ५३ ॥ सदा अन्नकापूजन करै अर्थात् हमारे प्राणोंके रक्षक हौ ऐसे ध्यानकरै और इन अन्नकी निंदा न करता-हुआ भोजन करै और देखकर हर्ष करै और प्रसन्न होय और सब अन्न हमको सदा यहाँ मिलौ ऐसे कहिकै भक्तिसे स्तुति करता हुआ नमस्कार करै ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यर्शनं नित्यं बलमूर्जचर्यच्छति ॥ अपूजितं तु तद्भुक्तं मुभयं  
नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥ नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नद्याच्चैव तथा  
चंतरा ॥ न चैवाध्यर्शनं कुर्यान्नचोच्छिष्टं कंचिद्भजेत् ॥ ५६ ॥

का-कारण यह है कि, पूजन किया हुआ अन्न बल तथा वीर्यको देता है और

बिना पूजन कियेहुए स्नायाहुआ यह अन्न इन दोनोंका नाश करता है ॥ ५५ ॥  
उच्छिष्ट जो जूठा है उसे किसीको न देवै और अंतरा कहिये दिन और संध्याके  
बीचमें न खाय और दोवारमें भी बहुत भोजन न करै और उच्छिष्ट कहिये जूठाहोके  
कहीं न जाय ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमर्नायुष्यमस्वर्ग्यर्चातिभोजनम् ॥ अपुण्यं लोकं विद्विष्टं  
तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणविप्रस्तीर्थेन नित्यकालमु  
पस्पृशेत् ॥ कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

टीका—अतिभोजनमें दाप कहते हैं अतिभोजन आरोग्यता और आयुष्यको नाश  
करनेवाला है और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गका भी नाश कर  
नेवाला है अपवित्र और लोकमें निन्दित है तिससे उस अतिभोजनका त्याग करै अर्थात्  
बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण सदा ब्रह्मतीर्थसे आचमन करै अथवा क जो  
ब्रह्मा हैं तिनको काय और त्रिदश जं देवताहैं तिनके तीर्थको त्रैदशिक कहते हैं इन  
दोनोंसे आचमन करै और पितरोंका जो तीर्थ है उसको पित्र्य कहते हैं इस पित्र्य  
तीर्थसे कभी आचमन न करै ॥ ५८ ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥ कायमङ्गुलिमूलेऽग्नेद्वं  
पित्र्यं तयोरर्धः ॥ ५९ ॥ त्रिर्चांमेदंपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो  
मुखम् ॥ खानि चैवं स्पृशेद्द्विरात्मानं शिरैर्व च ॥ ६० ॥

टीका—अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ और कनिष्ठा अंगुलीके मूलमें कायतीर्थ और  
अंगुलियोंके अग्रमें देवतीर्थ और अंगुष्ठप्रदेशिनीके मध्यमें पित्र्यतीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥  
सामान्यतासे कहे हुए आचमनके करनेका क्रम कहते हैं पहले ब्रह्मआदि तीर्थोंसे  
जलके तीन कुछे पीवै तिस पीछे ओठोंको बंद करके दाहिने अंगूठेके मूलसे दोवार  
मुखको धोवै और जलसे नाक कान आदि इंद्रियोंको छुवै फिर अपने हृदय और  
शिरको जलसे छुवै ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थनधर्मवित् ॥ शौचेप्सुःसर्वदाचांमे  
देकान्तेप्राङ्मुखः ॥ ६१ ॥ हृद्भाभिः पूर्यतेविप्रः कण्ठगाभिस्तु  
भूमिपः ॥ वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तुशूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ६२ ॥

टीका—धर्मज्ञपुरुष गरम न किये और फेनरहित जलसे ब्रह्मआदि तीर्थों करिके  
शौचकी इच्छासे शुद्ध देशमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो सदा आचमनकरै ॥ ६१ ॥

आचमनका प्रमाण कहते हैं ब्राह्मण हृदयमें गयेहुए और क्षत्रिय कंठमें गयेहुए और वैश्य मुखमें गयेहुए और शूद्र जीभ तथा ओंठोंके किनारोंसे छुएहुए जलसे पवित्र होता है ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणावुर्पवीत्युच्यते द्विजैः ॥ सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसंज्ञने ॥ ६३ ॥ मेखला मज्जिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ॥ अप्सु प्रस्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥

टीका-उपवीतकी आचमनकी अंगता दिखानेको उपवीतही है लक्षण जिसका ऐसे प्राचीनावीती इत्यादि लक्षणोंको कहते हैं दाहिने हाथको निकाल बाएँ कंधेपर रखे हुए और दाहिनी कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत अथवा वस्त्रसे द्विज उपवीती कहा जाता है और बाएँ कंधेको निकाल दाहिने कंधेपर स्थित और बाईं कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे प्राचीनावीती कहाता है और दोनों भुजाओंमेंसे एककोभी न निकाल गलेमें पहिरेहुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे निवीती कहाजाता है ॥ ६३ ॥ दूटे फूटे हुए मेखला मृगचर्म दंड और कमंडलुको जलमें डालकर अपने २ गृह्यमें कहे हुए मंत्रोंसे और नवीन धारण करै ॥ ६४ ॥

केशान्तःषोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ राजन्यवन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके तर्तः ॥ ६५ ॥ अमन्त्रिकां तु कायैयं स्त्रीणां मावृद्देशेऽतः ॥ संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

टीका-गृह्यमें कहाहुआ केशान्त कर्म ब्राह्मणका गर्भसे सोलहें वर्ष और क्षत्रियका गर्भसे बाईसवें वर्ष और वैश्यका गर्भसे चौबीसवें वर्ष करना चाहिये ॥ ६५ ॥ यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि क्रियाकलाप कहेहुए कालके क्रमसे शरीरसंस्कारके लिये विना मंत्रोंके करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ पतिसेवां गुरौ वांसो गृहार्थोऽग्निपारिक्रिया ॥ ६७ ॥ एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनयनिको विधिः ॥ उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥ ६८ ॥

टीका-इससे स्त्रियोंकाभी उपनयन प्राप्त होनेपर विशेष कहते हैं विवाहकी विधि ही मनुआदिने स्त्रियोंका वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहाई और पतिकी सेवा ही गुरुकुलमें वास और वेदका पढना कहाई और घरका कामही संध्या सवेरे सामे-

चोंका होम लेप अग्निकी सेवा कहीहै तिस्से विवाह आदिकोंकोही यज्ञोपवीत आदिके स्थानमें जानना चाहिये ॥ ६७ ॥ द्विजातियोंकी दूसरे जन्मका सूचक और पवित्र यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीतकी विधि आदिका क्रियाकलाप कहा ॥ ६८ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥ आचारमग्निं कार्यं च  
संध्योपासनमेवं च ॥ ६९ ॥ अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमु  
द्वर्द्धमुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिं कृतोऽध्याप्यो लघुर्वासा जितेन्द्रियः ॥ ७० ॥

टीका—अब यज्ञोपवीत कियेहुएको जो कर्म करने चाहिये सो कहते हैं गुरु शिष्यका यज्ञोपवीत करिकै उसको पहले 'एका लिङ्गे गुदे पंच' इत्यादि आगे कहा शौच और स्नान आचमन आदि आचार और सबेरे संध्या तथा अग्निमें होमकरना और मंत्रों समेत संध्योपासन आदि विधिकों सिखावै ॥ ६९ ॥ वेद पढनेकी इच्छावाला शिष्य शास्त्रके अनुसार आचमन करि उत्तराभिमुख हो हाथोंको जोरि पवित्र वस्त्रोंको धारण करि जितेन्द्रिय हो गुरु करि पढाने योग्य है ॥ ७० ॥

ब्रह्मरम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहृत्य हस्तावंध्येयं  
सं हि ॥ ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्र  
हणं गुरोः ॥ सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—वेदाध्ययनके आरंभमें और अंतमें सदा गुरुके चरण ग्रहण करने योग्य हैं और हाथोंको जोरिकै पढना चाहिये उसको ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ॥ ७१ ॥ फेरहुए सोधे हाथोंसे गुरुके चरणोंका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिनेसे दाहिना और बाएँसे बाएँको ग्रहण करै ॥ ७२ ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यं कालमर्तन्द्रितः ॥ अधीष्व भो ईति ब्रूयां  
द्विरामोऽस्तिवति चारमेत् ॥ ७३ ॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते  
च सर्वदा ॥ सवत्यंऽनोकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

टीका—गुरु आलस्यरहित हो पढनेके लिये उपस्थित शिष्यसे भी अधीष्व अर्थात् पढौ ऐसे पहले कहै और विराम हो ऐसे काहेकै पढानेसे बंद होय ॥ ७३ ॥ ब्राह्मण वेदपाठके आरंभमें और अंतमें ओंकारका उच्चारण करै क्योंकि जिसमें पहिले ओंकारका उच्चारण न हुआ वह हीले २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे ओंकारका उच्चारण न हुआ वह विसर जाता है ठहरता नहीं ॥ ७४ ॥



प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवं पावितः॥प्राणायामैस्त्रिभिः पूतं  
स्तत ओंकारमर्हति ॥ ७५ ॥ अंकारं चाप्युकारं च मकारं च  
प्रजापतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुर्हद्भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥

टीका-पूर्वको हैं अग्र जिनके ऐसे कुशोंपर बैठा हुआ और हाथोंमें स्थितपवित्र कुशोंसे पवित्र किया हुआ और पंद्रह मात्रारूप तीन प्राणायामोंकारिके पवित्र किया हुआ द्विज ओंकारके उच्चारणयोग्य होता है ॥ ७५ ॥ ब्रह्माने अकार उकार और मकारको ऋक् यजु साम इन्हीं वेदोंसे तथा भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियोंको क्रमसे निकाला ॥ ७६ ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदुर्हदुहत् ॥ तदित्यृचो ऽस्याः सां  
वित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥ एतदक्षरमेतां च जपन्व्याह  
तिपूर्विकाम् । संध्ययोर्वेदविद्विप्रौ वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥

टीका-तैसेही परम उत्कृष्ट स्थानमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने ऋक् यजु साम इन तीन वेदोंहीसे तद्वच इस प्रतीकसे कहे हुए सावित्रीके चौथाई २ तीनी पाद निकाले ॥ ७७ ॥ इस ओंकाररूप अक्षरको और 'भूर्भुवः स्वः' इन व्याहृतियोंसमेत त्रिपदा सावित्रीको संध्याकालमें जपता हुआ वेदका जानने वाला ब्राह्मण आदि तीनों वेदोंके पढ़नेके फलको प्राप्त होता है इसीसे संध्याके कालमें प्रणव और तीनों व्याहृतियों समेत सावित्रीका जप करै यह विधि है ॥ ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतत्रिकं द्विजः॥महतोऽप्येनसो मांसा  
त्वेचे वाहिर्विसुच्यते ॥७९॥ एतयर्चा विसंयुक्तःकाले च क्रिय  
यास्वया ॥ ब्रह्मक्षत्रिर्यविद्योनिर्गहणां याति साधुषु ॥ ८० ॥

टीका-संध्यामें अथवा और कालमें प्रणव तीनों व्याहृति और सावित्रीरूप तिग ड़ेको ग्रामसे बाहर नदीके तीर वन आदिमें हजारवार जपिके वडेभी पापसे ऐसे छूट जाता है जैसे काँचलीसे साँप तिसे पाप दूरी होनेके लिये इसका जप अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ संध्याके समय अथवा और कालमें इस सावित्री ऋचा करिके विसं-युक्त कहिये त्याग किया हुआ और सावित्री जपकी निजक्रियाकहिके सायंकाल प्रातः-काल होम आदिरूपक्रिया करि अपनेकालमें त्याग किया हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सज्जनोंमें निंदाको प्राप्त होता है तिरसे अपने कालमें सावित्रीके जपको और अपनी क्रियाको न छोड़े ॥ ८० ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः॥त्रिपदाचैव सार्वि  
त्रीविज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥८१॥योऽधीं तेऽहन्यहन्येतां त्रीणिव  
र्षाण्यतन्द्रितः॥सं ब्रह्मं परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥८२॥

टीका—ओंकार जिनके पहले हैं ऐंक्षी भूर्भुवस्स्वः ये तीनी व्याहृति और अक्षर  
ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अव्यय कहिये अविनाशिनी त्रिपदा सावित्री ब्रह्म जो वेद है  
तिसका मुख कहिये आदि जानना चाहिये क्योंकि इनको पहले पढकर वेदाध्यय-  
नका आरंभ होता है ॥ ८१ ॥ जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो प्रणव व्याहृतियुक्त  
सावित्रीको तीनी वर्षपर्यंत पढता है वह वायुभूत अर्थात् वायुके समान कामचारी और  
ख जो ब्रह्म है सोई मूर्ति जिसकी ऐसा होजाता है शरीरके नाश होनेपर ब्रह्महीमें  
मिलजाता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः॥सावित्र्यास्तु परं नास्ति  
मौनतासत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥क्षरंति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियं  
जतिक्रियाः ॥ अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

टीका—ओं यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे अक्षय ब्रह्म है  
और प्राणायाम परम तप है सावित्रीके विना और मंत्र नहीं है और मौनसेभी सत्य  
अधिक है ॥८३॥ वेदमें कहीहुई सब होमयज्ञ आदि क्रिया स्वरूपसे और फलसे नष्ट  
होजाती हैं और प्रणवरूप अक्षर तौ अक्षय जानना चाहिये जिसे प्रजाओंका अधिपति  
जो ब्रह्म है सोई यह ओंकार है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः॥उपांशु स्याच्छतगुणः  
सांहस्रो मानसः स्मृतः॥८५॥ ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञस  
मन्विताः ॥ सर्वे ते जपयज्ञस्थं कलां नार्हन्ति पौंडशीम् ॥८६॥

टीका—विधियज्ञ जे दश पौर्णमास आदि हैं तिनसे प्रणव आदिकोंका जो जपयज्ञ  
है सो दशगुणा अधिक है वहभी जो उपांशु होय अर्थात् जिसको समीपकाभी मनुष्य  
न सुनसकै उससे सौगुणा अधिक है और जो मानस है अर्थात् जिसमें जीभ और  
आँठ कुछभी न चलै वह उससे भी हजार गुणा अधिक है ॥८५॥ ब्रह्मयज्ञसे अन्य जे  
पांच महायज्ञोंके अंतर्गत होम बलिकर्म नित्यश्राद्ध अतिथिभोजन ये चारि पाकयज्ञ  
और दशपौर्णमास आदि विधियज्ञ ये सब जपयज्ञकी सोलहीं कलाको भी नहीं प्राप्त  
होते हैं अर्थात् ये सब जपयज्ञके सोलहें हिस्सेकी भी बराबर नहीं हैं ॥ ८६ ॥

जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्राह्मणो नात्र संशयः॥कुर्यादन्यत्र वा कुर्यात्  
 नैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वप  
 हारिषु ॥ संयमे यत्नमार्तिं ष्टेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

टीका—ब्राह्मण जपसेही निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्षप्राप्तिके  
 योग्य होताहै और जो वैदिक यागादिकहैं तिनको करै अथवा न करै क्यों कि ब्राह्मण  
 मैत्र कहा जाता है ॥ ८७ ॥ अब सब वर्णोंके करनेयोग्य और सब पुरुषार्थोंका उप-  
 योगी ऐसे इंद्रियोंके संयमको कहते हैं चित्तके हरनेवाले विषयोंमें वर्तमान इंद्रियोंके  
 रोकनेमें ऐसे यत्न करै जैसे सारथी घोड़ोंके रोकनेमें करताहै ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्मानि पूर्वे मनीषिणः॥तांनि सम्यक्प्रवक्ष्या  
 मि यथावदनुपूर्वशः॥८९॥श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चै  
 व पञ्चमी ॥ पार्यूपस्थं हस्तंपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥९०॥

टीका—पहले पंडित जिन ग्यारह इंद्रियोंको कहते हैं उन सबोंको अबके लोगोंकी  
 शिक्षाके लिये कर्मसे और नामसे क्रमसे कहोंगा ॥ ८९ ॥ उन ग्यारहोंमें कान त्वचा  
 आँखें जीभ और पांचमी नाक गुदा लिंग हाथ पैर और दशमी वाक् ये दश  
 इंद्रियां हैं ॥ ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां  
 पाय्वादीनि प्रवक्षते ॥९१॥एकादशं मनो ज्ञेयं स्वर्गुणेनोभयात्म  
 कम् ॥यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतःपञ्चकौ गणौ ॥९२॥

टीका—इनमें क्रमसे पाँच श्रोत्र आदि बुद्धि इंद्रिय हैं और पायु कहिये गुदा आदि  
 पाच इंद्रियोंको कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९१ ॥ ग्यारहों भीतरी इंद्रिय मन जानिये जो  
 संकलपरूप दोनों इंद्रियोंके गणका प्रवर्त्तक रूप है इसीसे जिस मनके जीतनेपर दोनों  
 पंचक अर्थात् बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके गण जीते जाते हैं ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥ संनियम्यं तु तान्येव तं  
 तः सिद्धिं नियच्छति ॥९३॥न जातु कामः कामानामुपभोगेन  
 शाम्यति ॥ हविषां कृष्णवत्मेव भूयं एवाभिर्वर्द्धते ॥ ९४ ॥

टीका—इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे निस्संदेह दृष्ट अदृष्ट दोषको प्राप्त होताहै फिर  
 उन्ही इंद्रियोंको मली भाँति रोकके सिद्धि जो मोक्ष आदि पुरुषार्थ की योग्यता-

को प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियोंको रोकै ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाष है सो काम जे विषयहैं तिनके भोगनेसे कभी नहीं शान्त होता है धीके डालनेसे अग्निके समान पुनः अधिक बढ़ता है ॥ ९४ ॥

यश्चेत्तान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चेत्तान्केवलंस्त्यजेत् ॥ प्रापणोत्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥ न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवयां ॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यंशः ॥ ९६ ॥

टीका—जो इन सब विषयोंको प्राप्त होय और जो इनकी उपेक्षा करै उन दोनोंमें विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ है तिससे सब कामोंकी प्राप्तिसे उनकी उपेक्षा प्रशंसा-योग्य है ॥ ९५ ॥ अब इंद्रियोंके संयमका उपाय कहतेहैं । विषयोंमें लगीहुई इंद्रियें उन-विषयोंके छोडनेसे रोकनेको नहीं समर्थ हैं जैसे सदा ज्ञानसे रुकिजाती हैं ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥ न विप्रदुष्टभावंस्य सिद्धिं गच्छन्ति क्वचित् ॥ ९७ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥ न हृष्यति ग्लायति वा संविज्ञे योजितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

टीका—वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयों को सेवा वाले पुरुषको कभी सिद्धिके लिये नहीं होते ॥ ९७ ॥ स्तुतिका वचन तथा निंदाका वचन सुनिके और छूनेमें सुख देनेवाले वस्त्र आदि तथा छूनेमें दुःख देनेवाले भेदोंके बालोंके कंवल आदिकों छूके और कुरूप सुरूपको देखि और स्वाद युक्त तथा विना स्वादकी वस्तुको स्वायके और सुगंधि तथा विना सुगंधकी वस्तुको सूंधिके जिसका हर्षविषाद नहीं होता वह जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥ तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दैतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥ वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥ सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तर्तुम् ॥ १०० ॥

टीका—सब इंद्रियोंमेंसे जो एक इंद्रिय विषयोंमें लग्न होजाय तो विषयोंमें लगे हुए इस मनुष्यके दूसरी इंद्रियोंसेभी तत्त्वज्ञान ऐसे जाता रहताहै जैसे चर्मके जलपात्रसे जल ॥ ९९ ॥ बाहरके इंद्रिय समूहको वशमें करिके और मनको रोकिके उपायोंसे अपनी देहको पीडा न देता हुआ सब पुरुषार्थोंका भली भाँति साधन करै ॥ १०० ॥

पूर्वा संघ्यां जपंस्तिष्ठेत्सोवित्रीमार्कदर्शनात् ॥ पश्चिमां तु समी-

सीनः सम्यग्दृक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥ पूर्वा संध्यां जपं स्तिष्ठन्नैशमेनो  
व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समांसीनो मूलं हन्ति दिवाकृतम् १०२ ॥

टीका—प्रातः कालकी संध्यामें सावित्रिको जपता हुआ सूर्यके उदयपर्यंत स्थित  
रहै और सायंकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ नक्षत्रोंके भली भाँति लक्षित  
होनेतक स्थित रहै ॥ १०१ ॥ प्रातःकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ रात्रिके  
पापको दूर करता है और सायंकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ दिनमें किये  
हुए पापको दूर करता है ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपांस्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्ब्रह्मिष्कां  
यः सर्वस्मान्निर्जकर्मणः ॥ १०३ ॥ अपां समीपे निर्यतो नैत्यकं वि  
धिमास्थितः ॥ सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

टीका—जो प्रातःकालकी संध्या नहीं करता और पिछिली अर्थात् सायंकालकी  
संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् उस कालमें कहे हुए जप आदिको नहीं करता  
है वह शूद्रके समान सब ब्राह्मणके कर्म और अति सत्कारसे वाहर करने योग्य है ॥  
॥ १०३ ॥ बहुत वेदके पढ़नेकी असमर्थतामें ब्रह्मयज्ञरूप यह सावित्रीमात्रके पढ़नेका  
विधान कहते वन आदि अन्यदेशमें जाके नदीआदिके जलके समीप इंद्रियोंको  
रोकि सावधान मन हो ब्रह्मयज्ञरूप नित्य विधिको किया चाहता पुरुष प्रणव तथा  
तीनि व्याहृतियोंसे युक्त सावित्रीकाभी जप करै ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैवं स्वाध्याये चैवं नैत्यके ॥ नानुरोधोऽस्त्यनंध्या  
ये होममन्त्रेषु चैवं हि ॥ १०५ ॥ नैत्यके नास्त्यनंध्यायो ब्रह्मस  
त्रं हि तस्मृतम् ॥ ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनर्घ्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

टीका—वेदोपकरण कहिये वेदके अंग शिक्षा आदिमें और नित्य करनेयोग्य स्वाध्या-  
यमें और ब्रह्मयज्ञरूप होमके मंत्रोंमें अनध्यायका आदर नहीं है ॥ १०५ ॥ नित्य  
करनेयोग्य जपयज्ञमें अनध्याय नहीं है मनु आदिमें उसको ब्रह्मयज्ञ कहाहै ब्रह्मा-  
हुति जो हविहै उसका होम वह अनध्यायमें भी वषट्कार किया गया पुण्य कहिये  
पवित्रही है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना निर्यतः शुचिः ॥ तस्य नित्यं क्षै  
रत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥ अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः

शय्यां गुरोर्हितम् ॥ आसमावर्तनात्कुंर्यात्कृतोपनयनोद्विजः १०८ ॥

टीका—जो जितेन्द्रिय शुद्धपुरुष एक वर्षतक विधिपूर्वक कहे हुए अंगोंसमेत स्वा-  
ध्याय कहिये जपयज्ञको करता है उसका यह जपयज्ञ क्षीर आदिकोंसे पितरोंको प्र-  
सन्न करता है वे प्रसन्न हो जपयज्ञ करनेवालेको सब कामोंसे तृप्त करते हैं ॥ १०७ ॥  
यज्ञोपवीत किया हुआ ब्रह्मचारी सायंकाल प्रातःकाल समिधोंका होम भिक्षासमूहका  
खाना खाटपर न सोना अर्थात् नीचे सोना और जलका लाना आदि गुरुका हित  
ग्रहस्थीमें जानेपर्यंत करै ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानंदो धार्मिकः शुचिः ॥ आप्तःशक्तोऽर्थदः  
सार्धुःस्वोऽध्याप्यां दर्शं धर्मतः १०९ नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नर्चा  
न्यायेन पृच्छतः ॥ जानन्नपि हि मेधावी जडवृल्लोकैर्आचरेत् ११०

टीका—कैसा शिष्य पढाना चाहिये सो कहते हैं । आचार्यका पुत्र १ सेवाकरने-  
वाला २ दूसरेप्रकारके ज्ञान देनेवाला ३ धर्मका जाननेवाला ४ मृत्तिका तथा जल  
आदिसे शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देनेमें समर्थ ७ धनद देनेवाला ८ द्रोह न करनेवाला ९  
ज्ञातिका १० ये दशप्रकारके शिष्य पढाने योग्य हैं ॥ १०९ ॥ जो किसीने थोडे अक्ष-  
रोंमें अथवा विना स्वरके पढा होय उसको अर्थविना पूछे उसके तत्व न प्रकाशित  
करै और शिष्यसे तौ विना पूछे भी कहै और भक्ति श्रद्धा आदि जे पूछनेके धर्म हैं  
तिनको छोडकर पूछें ऐसे के पूछनेपर भी न कहै बुद्धिमान् पुरुष जानता हुवाभी  
लोकमें गुणके समान रहै ॥ ११० ॥

अधर्मेण चर्धः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥ तयोरन्यतरः प्रैति  
विद्वे षं वाऽधिगच्छति ॥ १११ ॥ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा  
वापि तद्विद्या ॥ तत्र विद्यां न वर्तव्या शुभं बीजमिवाप रे ॥ ११२ ॥

टीका—अधर्मसे पूछा हुआभी जो जिस्से कहता है और जो जिस्से अन्यायकर  
पूछता है उनमेंसे एक मरजाता है अथवा उसके साथ द्वेषी होजाता है ॥ १११ ॥  
जिस शिष्यके पढानेमें धर्म अर्थ न होय अथवा पढनेके अनुरूप सेवा न होय वहाँ  
विद्या न देनेी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊपरमें बोयाहुआ धान आदि  
बीज नहीं उगता ॥ ११२ ॥

विद्ययैव संसं कामं भर्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि घोरयांनं  
त्वेनमिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥ विद्यां ब्रह्माणमेत्याह शैवधिस्तेऽ

स्मिं रक्षं मांम् ॥ असूयकाय मांमोदास्तथोस्यां वीर्यवत्तमां ॥ ११४ ॥

टीका-वेद पढानेवालेको विद्याके साथही मरना अच्छा सब भांति पढानेके योग्य शिष्यके न होनेरूप आपत्तिमेंमी इस विद्याको ऊपरमें न बोंवै ॥ ११३ ॥ विद्याकी अधिष्ठाता देवता किसी अध्यापकके समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हौं मेरी रक्षा करौ और असूया आदिदोषवाले मनुष्यको मुझे मत दे सत्यकी अधिक तासे मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥

यमेवं तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ॥ तस्मै मां ब्रूहि विप्रायं  
निधिर्पायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ ब्रह्मं यस्त्वं ननु ज्ञातमधीयानाद  
वाप्नुयात् ॥ स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११६ ॥

टीका-जिस शिष्यको शुद्ध जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी, जानतेहो उस विद्यारूपी निधिके रक्षा करनेवाले प्रमाद रहितको मुझे दे ॥ ११५ ॥ जो अभ्यासके लिये पढते हुए अथवा औरको पढाते हुएसे उसकी आज्ञा बिना वेदको ग्रहण करता है तौ वेदका चोर वह मनुष्य नरकको जाताहै तिस्से ऐसा न करै ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव च ॥ आददीत यंतो  
ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥ सावित्रीमात्रसरोऽपि वरं वि  
प्रः सुयन्त्रितः ॥ नीयन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वांशी सर्वविक्रयी ॥ ११८ ॥

टीका-लौकिक कहिये अर्थशास्त्र आदिका ज्ञान और वैदिक कहिये वेदके अर्थका ज्ञान तथा आध्यात्मिक कहिये ब्रह्मज्ञान इनको जिस्से ग्रहण करै बहुमान्योंके मध्यमें स्थित उसको पहले नमस्कार करै लौकिक आदि ज्ञान देनेवाले तीनोंके समूहमें क्रमसे एकसे एक मान्य है ॥ ११७ ॥ केवल सावित्रीहीका जाननेवाला जितेंद्रिय ब्राह्मण मान्य है और निषिद्ध भोजनआदिका करनेवाला और निषिद्ध वस्तुओंका बेचनेवाला तीनिवेदोंका ज्ञाताभी मानने योग्य नहीं है ॥ ११८ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसां न समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैवं न  
प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥ ऊर्ध्वं प्राणा ह्युक्रामन्ति यूनः स्थ  
विर आँयति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रति पद्यते ॥ १२० ॥

टीका-विद्या आदिमें अधिक अथवा गुरुकरके मुख्यतासे अंगीकार की हुई शय्या अथवा आसनपर न बैठै और आप जो शय्या अथवा आसनपर बैठा होय तौ गुरुके आनेपर उठिके नमस्कार करै ॥ ११९ ॥ अवस्था

और विद्या आदिसे वृद्धके आनेपर थोड़ी अवस्थावालेके प्राण ऊपरको चढ़तेहैं अर्थात् देहसे बाहर निकलना चाहतेहैं उन प्राणोंको वृद्धके अभ्युत्थान देने और नमस्कार करनेसे फिर स्वस्थ करताहै तिससे वृद्धको उठिकर प्रणाम करना चाहिये॥ १२० ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः॥चत्वारि तस्यै वर्धन्ते  
आयुर्विद्या यशो बलम्॥१२१॥अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसम  
भिवादयन्॥असौ नामाहमस्मीति स्वं नामं परिकीर्तयेत्॥१२२

टीका—उठकर सदा वृद्धको नमस्कार करनेवाले और वृद्धकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥ अब नमस्कारकी विधि कहते हैं वृद्धको नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण आदि नमस्कारके पीछे मैं नमस्कार करताहों यह कहनेके पीछे भेरा यह नाम है ऐसे अपने नामको कहै ॥ १२२॥

नामधेयस्य ये कौचिदभिवादं न जानते॥तान्प्राज्ञोहंमिति ब्रूया  
त्स्त्रियःसर्वास्तथैव च ॥१२३॥ भोःशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नो  
भिवादने॥नाम्नां स्वरूपभावो हि भोर्भाव ऋषिभिःस्मृतः ॥१२४॥

टीका—नमस्कार करनेके योग्य जो कोई पुरुष संस्कृतविद्या न जाननेके कारण नामधेयके उच्चारणपूर्वक नमस्कारको नहीं जानतेहैं उनसे नमस्कार करनेवाला बुद्धिमान् ऐसे कहै कि मैं नमस्कार करता हों और सब स्त्रियांसेभी ऐसे ही कहै ॥१२३॥ नमस्कारमें कहे हुए अपने नामके पीछे नमस्कार करनेयोग्यके संबोधनके लिये भो शब्दका उच्चारण करै इसीसे ऋषियोंने नमस्कार करनेयोग्यके नामके स्वरूपकी सत्ता भो शब्दहीमें कही है जैसे । अभिवादये शुभशर्माऽहमस्मि भोः । अर्थ है कि नमस्कार करनेवाला मैं शुभशर्मा हों ॥ १२४ ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादेने ॥

अकारिश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ १२५ ॥

टीका—नमस्कार करनेपर बदलेका नमस्कार करनेवाला ब्राह्मण भो सौम्य आयुष्मान् भव ऐसा कहै और नमस्कार करनेवालेके नामके अंतके पहले अक्षरके प्लुत उच्चारण करै ॥ १२५ ॥

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रःप्रत्याभिवादनम् ॥ नाम्भिवाद्यःसं विदु  
षा यथा शूद्रस्तथैव संः ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रं



न्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेवं च ॥ १२७ ॥

टीका—जो ब्राह्मण किये हुए नमस्कारके योग्य बदलेका नमस्कार नहीं जानता है वह विद्वान् करिकै नमस्कार करनेयोग्य नहीं है यह शूद्रके समान है ॥ १२६ ॥ मिलने-पर छोटी अवस्थावाले अथवा बराबर अवस्थाके नमस्कार न करनेवाले भी ब्राह्मणसे कुशल पूछै और क्षत्रियसे अनामय तथा वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूछै ॥ १२७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीथानपि थो भवेत् ॥ भो भवत्पूर्वकं  
त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८ ॥ परपत्नी तु या स्त्रीस्यादसंब-  
न्धा च योनिः ॥ तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनी ॥ ति च ॥ १२९ ॥

टीका—बदलेके नमस्कारके समय अथवा और समयमें दीक्षित अवस्थामें छोटाभी हो तौभी धर्मज्ञपुरुष उसका नाम न उच्चारण करै किंतु भो दीक्षित ! ऐसे कहकै बोलै ॥ १२८ ॥ जो पराई स्त्री होय और जिस्से कुछ योनिबंध न होय अर्थात् बहिन आदि न होय उससे बोलनेके समय भवति, सुभगे, भगिनि, ऐसे कहकै बोलै ॥ १२९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरुन् ॥ असावहमि ति ब्रू-  
यात्प्रत्युत्थाय र्यवीयसः ॥ १३० ॥ मातृष्वसा मातुलानी श्वशू-  
रथं पितृष्वसा ॥ संपूज्यां गुरुपत्नीवत्संमास्तां गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥

टीका—मामा, चाचा, ससुर, ऋत्विज, गुरु, जो ये छोटेभी होयें तौ इनके आनेपर उठिकै अस्तौ अहं अर्थात् यह मैं ऐसा कहके निज नाम प्रगट करै नमस्कार न करै ॥ १३० ॥ मावसी, मामी, सास, बुआ ये सब गुरुकी स्त्रीके समान उत्थान अभिवादन आसन देने आदिसे पूजनेयोग्य हैं क्योंकि वे गुरुभार्याके समान हैं ॥ १३१ ॥

भ्रातृभार्यापसंग्राह्या सर्वर्णोहन्यहन्यपि ॥ विप्रोऽप्य तूपसंभ्राह्या ज्ञा-  
तिसंबन्धयोधितः ॥ १३२ ॥ पितृभगिन्यां मातृश्च ज्यायस्यां च  
स्वसर्यपि ॥ मातृवदृत्तिमाति ॥ ष्टेन्मातां तांभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

टीका—जेठेभाईकी सजातीया स्त्रीके प्रतिदिन चरण छुवै और जातिकी अर्थात् पितृपक्षकी चाचा आदि और संबंधी मातापक्षके तथा ससुरआदि इनकी स्त्रियोंके पर-देशसे आकै चरण छुवै प्रतिदिन नहीं ॥ १३२ ॥ पिताकी बहिन तथा माताकी और अपनी बडी बहिन इन सबका आदर मान माताके समानकरै परन्तु माता इन सबसे बहुतही अधिक है ॥ १३३ ॥

दशाब्दौख्यं पौरसंख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम्॥त्र्यब्दपूर्वं श्रो-  
त्रियार्णां स्वल्पेनापिस्वयोनिषु ॥ १३४ ॥ ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतव-  
र्षं तु भूमिपम्॥पितापुत्रौ विर्जानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता १३५

टीका—आगे कहेहुए विद्यादिगुणहीन एक पुर वा ग्रामके बसनेवालोंमें एक दश-  
वर्ष बड़ा होय और एक उतनाही छोटा होय तौभी सख्य कहिये मित्रता होतीहै  
और गीत आदि कलाओंके जाननेवालोंमें पांचवषकी बड़ाई छुटाइमें मित्रता होती  
है और श्रोत्रियोंकी तीनिवर्षकी छुटाईबड़ाईमें और सर्पिंडोंकी बहुतही थोडे  
कालहीमें मित्रता होती है और सर्वत्र कहेहुए कालसे उपरांत ज्येष्ठका व्यवहार होता  
है ॥ १३४ ॥ ब्राह्मण दशवर्षका होय और क्षत्रिय सोवर्षका तौ उन दोनोंको पिता-  
पुत्रके समान जानै .उनमें ब्रह्मण पिता है ॥ १३५ ॥

वित्तं वन्धुवयैः कर्म विद्या भवति पञ्चमी॥एतानि मान्यस्थानानि  
गैरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥ पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणव-  
न्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपिदर्शमां गतः ॥ १३७ ॥

टीका—वित्तकहिये न्यायसे जोडाहुआ धन वंधु कहिये चाचआदि तथा वय  
अधिक अवस्था कर्म श्रौत स्मार्त्तआदि विद्या वेदके अर्थका तत्त्व जानना ये पांच  
मान्यताके कारण हैं इनमें आगे आगे एकसे एक अधिक है ॥ १३६ ॥ ब्राह्मण आदि  
तीनोंवर्णोंमें पहले कहेहुए पांच गुणोंमेंसे जिसमें जितने अधिक हैं वह उतनाही  
माननेयोग्यहै और नव्वे वर्षसे अधिक अवस्थाको पहुँचा हुआ शूद्र द्विजोंकोभी मान-  
नेयोग्यहै सौवर्षके दशभाग करनेपर नव्वेसे ऊपर दशमी अवस्था होतीहै ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः॥ स्नातकस्य च  
राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ १३८ ॥ तेषांतु समवेतानां मान्यौ  
स्नातकपार्थिवौ॥राजस्नातकयोश्चैवं स्नातको नृपमानभाक् ॥ १३९ ॥

टीका—चक्रयुक्त रथ आदि सवारीमें बैठे हुएको, और नव्वेसे अधिक अवस्थावा-  
लेको, रोगीको, बोझवालेको, स्त्रीको, स्नातकको, राजाको, वर जो विवाहको जाताहो  
उसको मार्ग देना चाहिये अर्थात् इनमेंसे कोई आगे आता होय तौ मार्गसे हटि  
जाय ॥ १३८ ॥ इकठे हुए उन सबोंमें राजा और स्नातक मान्यहैं आर राजा तथा  
स्नातकमें राजाकी अपेक्षा स्नातक मान्य है ॥ १३९ ॥

उपनीर्य तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः ॥ सकल्पं सरहस्यं च  
तं माचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पु-  
नः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

टीका—जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञविधि और रहस्य  
कहिये उपनिषद्सहित सब वेदकी शाखाको पढाताहै उसको आचार्य कहते हैं  
॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मंत्र वा ब्राह्मणको और वेदके अंग व्याकरण  
आदिको जीविकाके लिये जो पढाताहै वह उपाध्याय कहा जाता है ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभावयति चाग्ने-  
न स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादि-  
कान्मखान् ॥ यः करोति वृतो यस्य सं तस्य त्विगि होच्यते ॥ १४३ ॥

टीका—जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है और अन्नसे बढ़ाता  
है वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है गर्भाधान करनेसे यहाँ पिताहीको गुरु कहाहै ॥ १४२ ॥  
वरण किया हुआ जो ब्राह्मण अग्न्याधेय कहिये आहवनीय आदि अग्नियोंके उत्पन्न  
करनेवाले कर्मको और पाकयज्ञ कहिये अष्टकादिकोंको और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका  
जिसकी ओरसे करताहै वह उसका ऋत्विक् कहाताहै ॥ १४३ ॥

यं आवृणोत्यवित्तं ब्रह्मणा श्रवणाबुभौ ॥ सं मार्ता सपिता ज्ञेय-  
स्तं न दुह्येत्कदाचन ॥ १४४ ॥ उपध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां  
शतं पिता ॥ सहस्रन्तु पितृन्मार्ता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

टीका—जो ब्राह्मण वर्ण और स्वरकी विगुणतासे रहित सत्यरूप वेदसे दोनों  
कानोंको भरताहै वह बड़े उपकार करनेवाले गुणके योगसे मातापिके समान जानना  
चाहिये उससे कभी द्रोह न करै ॥ १४४ ॥ दशउपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य,  
और शत आचार्योंकी अपेक्षा एक पिता, और सहस्र पिताओंकी अपेक्षा, एक माता  
गौरवमें अधिक होतीहै ॥ १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रे-  
त्य चेहं च शाश्वतम् ॥ १४६ ॥ कामान्मार्ता पिता चैनं यदुत्पाद-  
यतो मिथः ॥ संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥ १४७ ॥

टीका—उत्पन्नकरनेवाला और वेद पढानेवाला ये दोनों पिताहैं उनमें-  
आचार्य पितासे श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इस लोक तथा परलोकमें

शाश्वत कहिये सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला है ॥ १४६ ॥ मातापिता जो कामके वशमें होंके इस बालकको उत्पन्न करते हैं जिस जिस योनिकी माताकी कोखमें उत्पन्न होता है उसके वैसेही हाथ पैर होते हैं ॥ १४७ ॥

और्चार्यस्त्वस्यै यां जातिं विधिर्वद्रेदपारंगः ॥ उत्पादयति सावि  
त्र्या सां सत्यां सांऽजरांऽमरां ॥ १४८ ॥ अल्पं वा बहु वा यस्य श्रु-  
तस्योपकरोति यः ॥ तं मपी हं गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया १४९

टीका—वेदका जाननेवाला आचार्य जिस जाति कहिये जन्मको विधिपूर्वक गाय-  
त्रीके उपदेशसे करता है वह जन्म सत्य है और ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अजर अमर  
है ॥ १४८ ॥ जो उपाध्याय जिस शिष्यका थोडा वा बहुत वेदके पढानेसे उपकार  
करता है उसको भी शास्त्रपाठरूप उपकारसे इस शास्त्रसे गुरु जानै ॥ १४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥ वालोपि विप्रो  
वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥ १५० ॥ अध्यापयामास पितृन् शि-  
शुराङ्गिरसः कविः ॥ पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् १५१

टीका—वेद सुननेके लिये जन्मका देनेवाला अर्थात् यज्ञोपवीत करनेवाला और  
अपने धर्मका सिखानेवाला अर्थात् वेदके अर्थका व्याख्यान करनेवाला बालक वृद्ध  
कहिये जेठका धर्मसे पिता होता है अथात् पिताके समान मानने योग्य है ॥ १५० ॥  
आंगिरस ऋषिका पुत्र विद्वान् बालक अधिक अवस्थाके पितृव्य कहिये चचा ताऊ  
और उनके पुत्रोंको पढाताथा उनको ज्ञानसे शिष्य जानि भी पुत्रकाः अर्थात् हे पुत्रो  
इसा बोले ॥ १५१ ॥

ते तमर्थमपृच्छन्तः देवानागतमन्यवः ॥ देवाश्चैतान्समेत्योर्धुन्या  
स्य वै शिशुरुक्तवान् ॥ १५२ ॥ अज्ञो भवति वै वालः पिता भव  
ति मन्त्रदः ॥ अज्ञं हि वालमित्याहुः पि तेत्येवं तु मन्त्रदम् १५३ ॥

टीका—पिताके तुल्य और पुत्रकाः ऐसे कहेगये वे क्रोधयुक्त हो पुत्रक शब्दका  
अर्थ देवताओंसे पूछते भये तब देवताओंने मिलकर इनसे कहा कि बालकने तुमको  
योग्य कहा ॥ १५२ ॥ जो कुछ नहीं जानताहै वही बालक होता है और मन्त्रका  
दनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला पिता होता है; इस कारण अज्ञको बालक और  
मन्त्रदनेवालेको पिता कहते हैं ॥ १५३ ॥

न हार्यनेन पालितेन वित्तेन न वन्धुभिः ॥ ऋषयश्चक्रिरे धर्मयोऽनु

चानः सै नो<sup>१०</sup> मर्हान् ॥ १५४ ॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां  
तु वीर्यतः ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥

टीका-न बहुत वर्षोंसे और न सफेद दाढीमूछोंसे न बहुत धनसे न चचा ताऊ आदि बहुतसे भाइयोंसे अथवा इकठे हुएभी इन सर्वोंसे बड़ापन नहीं होता है किंतु ऋषियोंने यह धर्म कियाहै कि जो हम लोगोंमें अंगोंसमेत वेदका पढनेवाला है वही बड़ाहै ॥ १५४ ॥ ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होती है और क्षत्रियोंकी बलसे और वैश्योंकी धनधान्यसे और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होती है ॥ १५५ ॥

न तेनै वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥ यो वै<sup>१०</sup> युवाप्यधीयान  
स्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ १५६ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म  
मयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीर्यानस्यस्ते<sup>११</sup> नाम विभ्रति ॥ १५७ ॥

टीका-शिरके बाल सफेद होनेसे वृद्ध नहीं होता है जो जवानभी पढा लिखा होय तौ उसको वृद्ध कहते हैं ॥ १५६ ॥ जैसे काठका बनावुआ हाथी और जैसे चमड़ेका बनावुआ मृग और विना पढाबुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नामको धारण करते हैं शत्रुबध आदि हाथीआदिकोंके कामको नहीं करसकते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ॥ यथा चाज्ञेऽफलं<sup>१२</sup>  
दानं तथा वि<sup>१३</sup>प्रोऽनृचोऽफलः १५८ ॥ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयो  
ऽनुशासनम् ॥ वार्कं चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धै<sup>१४</sup>र्यमिच्छता ॥

टीका-जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल होताहै और गौवोंमें गौ और जैसे मूर्खम दान निष्फल होताहै तैसे श्रौत स्मार्त्तकर्मोंमें अयोग्य होनेसे विना पढा ब्राह्मण निष्फल होताहै ॥ १५८ ॥ शिष्योंको अतिहिंसाके बिनाही कल्याण देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिये और धर्म बुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको मधुर कहिये प्रीति उत्पन्न करनेवाली वाणी मंदस्वरसे कहनी चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुणे च सर्वदा ॥ सर्वैर्वमवाप्नोति<sup>१५</sup> वेदा  
न्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥ नारुतुदः स्यादात्तोऽपि न परद्रोहक  
र्मधीः ॥ रय्यांस्योद्विजते वाचा नालोक्या तासुदीरं<sup>१६</sup> येत ॥ १६१ ॥

टीका-जिसके वाणी और मन दोनों शुद्ध होतेहैं और वाणी मिथ्या आदिसे दूषित नहीं होती और मन राग द्वेष आदिसे दूषित नहीं होताहै अर्थात्

जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयोंसे भली भांति बचे रहतेहैं वह वेदांतके संपूर्ण मोक्षरूप ययार्थ फलको प्राप्त होताहै ॥ १६० ॥ पीडित होनेपरभी किसीसे मर्मको दुःख देनेवाले वचन न कहै और दूसरेके द्रोहकी बुद्धि न करै इसकी जिसवाणीसे दूसरेका मन दुःखी होय ऐसी अनालीक्या कहिये स्वर्गआदि लोकोंकी प्राप्तिसे विरुद्ध वाणीको न कहै ॥ १६१ ॥

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिवै॥ अमृतस्येव चाकाङ्क्ष-  
क्षेदवैमानस्य संवेदा ॥ ६२॥ सुखं ह्यवमतः शैते सुखं च प्रतिबु-  
ध्यते ॥ सुखं चैरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥

टीका—ब्राह्मण सन्मानसे सदा विषके समान डरै और सदा अमृतके समान अप-  
मानकी चाहना करै ॥ १६२ ॥ दूसरेकरि अपमान किया हुआ पुरुष सुखसे सोताहै  
और सुखसे जागताहै और सुखसे इस लोकमें विचरताहै और अपमान करनेवाला उस  
पापसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ १६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः॥ गुरौ वसन् संचिनुया  
द्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ १६४॥ तपोविशेषैर्वि विधैर्व्रतैश्च विधिचो-  
दितैः॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ १६५॥

टीका—जातकर्मको आदिले यज्ञोपवीततक क्रमसे कहे हुए उपायसे संस्कार किया-  
गया ब्राह्मण गुरुकुलमें वास करता हुआ हौले वेदकी प्राप्तिरूप तपको करै ॥ १६४॥  
विधिकरि के बतलाये और अपने गृहमें कहे हुए वक्ष्यमाण नियमोंको करके और  
गुरुकी सेवा आदि व्रतों करिके उपनिषदोंसमेत मंत्रब्राह्मणरूप संपूर्ण वेद ब्राह्मण  
क्षत्रिय और वैश्य करि पढनेयोग्य हैं ॥ १६५ ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तपस्यन्द्विजोत्तमः ॥ वेदाभ्यासो हि विप्रं  
स्य तपःपरमि होर्च्यते॥ ६६॥ आहै व स नखाग्नेभ्यः परमं तप्य  
ते तपः॥ यः स्रग्व्यापि द्विजोऽधीतेस्वाध्यायशक्तितोऽन्वहम् १६७

टीका—तपको करता हुआ ब्राह्मण सदा वेदहीका अभ्यास करै क्योंकि वेदका पढ  
नाही इस लोकमें ब्राह्मणका परम तप मुनीश्वरोंन कहा है ॥ ६६ ॥ जो द्विज फूलोंकी  
मालाको धारण करकेभी अर्थात् ब्रह्मचारीके नियमोंको छोडकरभी प्रतिदिन शक्तिके  
अनुसार वेदको पढताहै वह नखाशिखतक सर्व देहव्यापी बडेभारी तपको करता है १६७

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेवं शूद्र  
त्वमांशु गच्छति सान्वयः ॥ १६८ ॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौ  
ञ्जिवन्धने ॥ तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ १६९ ॥

टीका-जो द्विज वेदको न पढकर अन्यत्र कहिये शास्त्र आदिकोंमें श्रम करता है वह जीते हुए पुत्रपौत्रादिकोंसमेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ वेदसे द्विज-त्वको कहते हैं पहला पुरुषका जन्म मातासे होता है फिर दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकी दीक्षासे होता है यह प्रथम, द्वितीय, तृतीय जन्मका कहना द्वितीयजन्मकी बड़ाईके लिये है ॥ १६९ ॥

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जिवन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सा  
वित्री पिता त्वीचार्य उच्यते ॥ १७० ॥ वेदप्रदानादाचार्य पितरं  
परिक्षते ॥ न ह्यस्मिन्युज्यते कर्मकिंचिदांमौञ्जिवन्धनात् ॥ १७१ ॥

टीका-उन पहले कहे हुए तीनों जन्मोंमें वेदके ग्रहणके लिये जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्म है उसमें इस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है ॥ १७० ॥ वेदके पढानेसे मनु आदि आचार्यको पिता कहते हैं उस बालकमें यज्ञो-पवीतसे पहले कोई श्रौत स्मार्त्तरूप कर्म नहीं हो सकता है ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादते ॥ शूद्रेण हि समस्तावद्या  
वद्रे न जायते ॥ १७२ ॥ कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥  
ब्रह्मणो ग्रहणं चैवं क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १७३ ॥

टीका-मौञ्जिवन्धनसे पहले वेदके मंत्रोंका उच्चारण न करै और जिनमंत्रोंसे श्राद्ध किया जाता है उनको छोडकै अर्थात् जिसका पिता मरगया है वह नवश्राद्ध आदिमें मंत्रोंका उच्चारण करै परन्तु उनके सिवाय वेदका उच्चारण न करै क्योंकि नवतक वेदमें अधिकारी नहीं होता तबतक वह शूद्रके तुल्य है ॥ १७२ ॥ जिसे इस बालकको समिध होमो और दिनमें न सोवो इत्यादि व्रतोंका वताना और मंत्रब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढना यज्ञोपवीत किये हुएको कहा है तिस्से यज्ञोपवीत न होनेके पहले वेद न पढै ॥ १७३ ॥

यद्यस्य विहितं चर्मयत्सूत्रं या च मेखला ॥ यो दण्डो यं च वसनं  
तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ १७४ ॥ सेवेतेमास्तु नियमान्ब्रह्मचारी गु-

रौसन् ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्धचर्चमात्मनः ॥ १७५ ॥

टीका—उपनयनकालमें जिस ब्रह्मचारीको जौनसे चर्म मूत्र मेखला दंडवस्त्र गृह्णने कहे हैं गोदानादिक व्रतोंमेंभी वेई नवीन करै ॥ १७४ ॥ ब्रह्मचारी गुरुके समीप वसता हुआ इंद्रियोंके समूहको वशमें करिकै इन आगे कहे हुए नियमोंको अपने तपकी वृद्धिके लिये करै ॥ १७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्यादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चै  
वं समिदारधानमेवं च ॥ ७६ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसां  
न्स्त्रियः ॥ शुक्तांनि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैवं हिंसनम् ॥ ७७ ॥

टीका—ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करि शुद्ध हो देवं ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करै और प्रतिमाआदिकोंमें हरिहरादिकोंका पूजन करै और प्रातःकाल तथा सायंकाल समिधोंका होम करै ॥ १७६ ॥ शहत और मांसको ब्रह्मचारी त्याग करै और गंध कहिये कपूर चंदन कस्तूरी आदिको न खाय न देहमें लगावै फूलोंकी माला न पहिरै रस जे गुड आदि हैं तिनको न खाय स्त्रीगमन न करै और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीवहिंसा न करै ब्रह्मचारीको ये सब वर्जित हैं ॥ ७७ ॥

अभ्यङ्गमर्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लो  
भं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परीवादं  
तथानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपधातं परस्य च ॥ ७९ ॥

टीका—तिल आदिका लगाना आंखोंको आंजना जूता और छातेका धारण करना और काम क्रोध लोभ नाचना गाना बजाना इन सबोंको ब्रह्मचारी वर्जित करै ॥ ७८ ॥ द्यूत कहिये फासोंसे खेलना और वाद कहिये विना प्रयोजन लोगोंसे झगडा करना पराये दोषका कहना झूठ बोलना और भैथुनकी इच्छासे स्त्रियोंको देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सबोंको त्याग करै ॥ ७९ ॥

एकैः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्कर्चित् ॥ कामाद्धि स्कन्दय  
न्रेतो हि नस्ति व्रतमात्मनः ॥ १८० ॥ स्वप्ने सित्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः  
शुक्रमकामतः ॥ स्नात्वा कर्मचर्यित्वा त्रिः पुनर्मांमित्यृचं जपेत् ८१

टीका—सदा अकेला सोवै इच्छासे वीर्यको न गिरावै इच्छासे वीर्यको गिराता



हुआ ब्रह्मचारी अपने व्रतका नाश करता है ॥ १८० ॥ ब्रह्मचारी द्विज इच्छाके विना स्वप्नमें वीर्यको गिराकै चंदन पुष्प धूप आदिसे सूर्यका पूजन करि पुनर्मामैत्विद्रियं इस ऋचाको तीनिवार जपै यही यहां प्रायश्चित्त है ॥ ८१ ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशांश्च ॥ आहरेद्यावदर्थानि  
भैक्षं चाहरहृश्चरेत् ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म  
सु ॥ ब्रह्मचार्याहं रेद्रेक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ १८३ ॥

टीका-पानीका घट फूल गोवर मृत्तिका कुश इनको जितनेसे गुरुका प्रयोजन होय उतनेही गुरुके लिये लावै और प्रतिदिन भिक्षाको लावै ॥ ८२ ॥ वेद यज्ञसे जे हीन नहीं हैं और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें कुशलहैं उनके घरसे सावधान ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा लावै ॥ १८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षत न ज्ञातिकुलवन्धुषु ॥ अलाभे त्वन्यगेहानां  
पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसं  
भवे ॥ नियम्यं प्रयतो वाचमभिश्स्तांस्तुवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

टीका-आचार्यके सपिंडोंमें और अपनी ज्ञातिमें कुलमें और बंधु तो माया आदिहैं तिनमें भिक न मांगै और जो अन्यघरोंमें न मिलै तौ पहिला पहिला छोडिदे अर्थात् पहिले बंधुओंमें मांगै वहां न मिलै तौ ज्ञातिमें और जो ज्ञातिमेंभी न मिलै तौ आचार्य कीभी जातिमें मांगै ॥ ८४ ॥ पहिले कहे हुए वेद-यज्ञयुक्त न होय तो कहे हुए गुणकारि हीनभी सब ग्राममें शुद्ध और मौन व्रतधारण करके मांगै और पातकी आदिकोंको छोडदे ॥ ८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विर्हायसि ॥ सायंप्रातश्च जुहुयात्तां  
भिरग्निर्मतन्द्रितः ॥ ८६ ॥ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्यं च पाव  
कम् ॥ अनातुरः सप्तरात्रमर्धकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ १८७ ॥

टीका-दूरसे समिधोंको लायकै उन्हें ऊँचे स्थानमें धरे उन समिधोंसे आलस्य रहित हो संध्या सवेरे अग्निमें होम करै ॥ ८६ ॥ रांगी होनेके विना जो ब्रह्मचारी सातदिनतक भिक्षा न मांगै और सायंकाल प्रातःकाल अग्निमें समिधोंका होम न करै तौ उसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजाय तिस पीछे अवकीर्णों जो क्षतव्रत है तिसका प्रायश्चित्त करै ॥ १८७ ॥

भैक्षणं वर्त्तयन्नित्यं नैकात्रादी भवेद्भ्रती ॥ भैक्षणव्रतिनो वृत्तिरूप

वाससमा स्मृतां ॥ ८८ ॥ व्रतं देवदेवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्विव-  
त् ॥ कर्ममभ्यर्थितोऽश्रीयोऽद्रुतमस्य न लुप्यते ॥ १८९ ॥

टीका—ब्रह्मचारी एकका अन्न न खाय किंतु बहुत घरोंसे लाये हुए भिक्षाके समू-  
हसे जीवै जिस्से भिक्षाके समूहसे ब्रह्मचारीकी जीविका मुनियोंने उपवासके तुल्य  
कही है ॥ ८८ ॥ देव देवत्यकर्ममें देवताके उद्देश कारिकै प्रार्थना किया गया ब्रह्मचारी  
व्रतके समान अर्थात् व्रतसे विरुद्ध मधु मांस आदिको छोडके एककाभी अन्न इच्छा-  
पूर्वक भोजन करै तौभी भिक्षावृत्ति नियमरूप इसका व्रत लुप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतं दुपदिष्टं मनीषिभिः ॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं  
ने तर्कमे विधीयते ॥ १९० ॥ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचो-  
दित एव वा ॥ कुर्यादध्ययने यत्रमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १९१ ॥

टीका—वेदार्थके जाननेवाले पंडितोंने यह एकान्नभोजनरूप कर्म ब्राह्मणहीके  
लिये कहा है क्षत्रिय वैश्यके लिये तौ यह ऐसा नहीं कहा है ॥ १९० ॥ आचार्यके  
कहनेसे अथवा न कहनेसे आपही प्रतिदिन पढनेमें और गुरुके हितकारी कामोंमें  
उद्योग करै ॥ १९१ ॥

शरीरं चैवं वाचं च बुद्धिन्द्रियमनांसि च ॥ नियम्य प्रार्जलिस्तिं  
ष्टेद्रीक्षमाणो गुंरोमुखम् ॥ १९२ ॥ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वां  
चारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः संव्रासीताभिमुखंगुंरोः ॥ १९३ ॥

टीका—देह बुद्धि इंद्रिय मन इनको रोकि हाथ जोरिगै गुरुके मुखको देखता हुआ  
खडा रहै बैठै नहीं ॥ १९२ ॥ सदा ओढनेके वस्त्रसे दाहिनी बाँहको बाहर किये हुए  
सुंदर आचारयुक्त वस्त्रसे देह ढके हुए बैठिये ऐसे गुरुकरि कहा गया ब्रह्मचारी गुरुके  
सन्मुख बैठै ॥ १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रेषु स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य  
चैरमं चैवं संविशेत् ॥ १९४ ॥ प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समा  
चरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठेत् ॥ पराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

टीका—गुरुके समीप सदा गुरुसे हीन अन्न वस्त्र खाय पहिरै और सवेरे दोघडी  
धातिरहै गुरुसे पहले उठै और संध्याको गुरुके सोनेके पीछे आप सोवै ॥ १९४

शय्यामें पडा हुआ आसनपर बैठा हुआ भोजन करता हुआ और मुँह फेरे खडा हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और उनसे वात्तालाप न करै ॥ १९५ ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥ प्रत्युद्गम्य त्वां  
ब्रजतःपश्चीद्धावंस्तु धावतः ॥ १९६ ॥ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरं  
स्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्यानिदेशे चैवतिष्ठतः १७

टीका-आसनपर बैठे हुए गुरु आज्ञादे तौ आप आसनसे उठि खडा होकै और जो सडे होकै गुरु आज्ञादे तौ उनके सन्मुख दो चार कदम चलकै और जब गुरु सन्मुख आवै तौभी उनके सन्मुख जायकै और जब गुरु दौडते आज्ञा दे तब उनके पीछे दौरकै आज्ञाका अंगीकार और वात्तालाप करै ॥ १९६ ॥ गुरु मुख फेरे हुए आज्ञा देते होय तौ उनके सन्मुख होकै और दूर स्थित होय तौ उनके समीप आयकै और सोते हुए आज्ञा करै तौ नम्र होकै और जो समीप होय तौभी नम्र होकै आज्ञाका अंगीकार और वात्तालाप करै ॥ १७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न  
यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केव  
लम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वीत गतिर्भाषितचेष्टितम् ॥ १९९ ॥

टीका-गुरुके समीप शिष्यके शय्या और आसन नीचे ही होने चाहिये और गुरुके देखते हाथ पाँव फैलाके इच्छा पूर्वक न बैठे ॥ १९८ ॥ पीठ पीछे भी गुरुका केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कारके उपनामोंके बिना उच्चारण न करै और हँसीसे उनके चलने बोलने आदिकी नकल नकरै ॥ १९९ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवृत्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधांतव्यौ ग  
न्तव्यं वी ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥ परीवादात्त्वरो भवति श्चा वै भ  
वति निन्दकः ॥ परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ १ ॥

टीका-जहां गुरुका परीवाद अर्थात् उनमें वर्तमान दोषोंका कहना और निन्दा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनों बातें जहां होती होय वहां स्थित शिष्यको कान मूंद लेने चाहिये अथवा वहांसे अन्यत्र चलाजाना चाहिये ॥ २०० ॥ गुरुके परीवादसे शिष्य गधा होता है और निन्दा करनेवाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता कहिये अनुचित गुरुके धनसे जीनेवाला कृमि होता है और मत्सरी कहिये गुरुका उत्कर्ष न सहनेवाला कीट कहिये कृमिसे कुछ मोटा होता है ॥ २०१ ॥

दूरस्थो नार्चयेद् नं न क्रुद्धो नान्तिकेस्त्रियाः ॥ यांनासनस्थश्चै<sup>३२</sup>  
 वै<sup>३३</sup> नमवरुं ह्याभिवाद्येत् ॥ २ ॥ प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत्  
 गुरुणा सह ॥ अंसश्रवे चैव गुरो<sup>३३</sup> न किं चिदपि कीर्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका—दूर स्थित शिष्य दूसरेको नियुक्त करके माला वस्त्र आदिसे गुरुकी पूजाको न करै तथा क्रोधमें होके न करै और स्त्रीके पास स्थित गुरुकी आपभी पूजा न करै और सवारी तथा आसनपर बैठाहुआ शिष्य यान तथा आसनको छोड़के गुरुको नमस्कार करै ॥ २ ॥ जो पवन गुरुकी ओरसे शिष्यकी ओर आवै वह प्रतिवातहै और जो शिष्यकी ओरसे गुरुकी ओर आवै वह अनुवातहै इन दोनोंमें गुरुके साथ न बैठे और जहां गुरु न सुनै वहां गुरुके मध्ये अथवा और किसीके मध्ये कुछ न कहै ॥ ३ ॥

गोऽश्वोष्ठयानप्रासादप्रस्तरेषु कैटेषु च ॥ आसीत् गुरुणा सार्धं  
 शिलाफलकनौषु च ॥ ४ ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमार्च-  
 रेत् ॥ न चातिस्पृष्टो गुरुणा स्वान्गुरुनभिवाद्येत् ॥ २०५ ॥

टीका—बैल घोडा ऊंट जिनमें जुते होंय ऐसी सवारियोंमें अर्थात् रथ छकडा आदिमें महलके ऊपर गच्चपर चटाईपर शिलापर तरलतपर और नावमें गुरुके साथ बैठे ॥ ४ ॥ जो गुरुके गुरु आवै तौ गुरुके समान उनकाभी नमस्कार आदि सत्कार करै और गुरुके घरमें बसता हुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा विना अपने गुरु माता चाचा आदिको प्रणाम न करै ॥ २०५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेव<sup>३३</sup> नित्यां वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चार्धर्मा  
 निहतं चोपदिशत्स्वपि ॥ ६ ॥ श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव संमा-  
 चरेत् ॥ गुरुपुत्रेषु चार्थेषु गुरोश्चैव स्ववन्धुषु ॥ २०७ ॥

टीका—आचार्यसे भिन्न उपाध्याय आदि विद्यागुरु हींतेहैं उनमें तथा स्वयानि जे चचा ताऊहैं उनमें और अधर्मसे जो वचवै तथा जो हितका उपदेश करै उनमें गुरुके समान वर्तना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रेयस्सु कहिये विद्या और तपसे भरे पुरोंमें और श्रेष्ठ गुरुपुत्रोंमें तथा समानजातिके गुरुपुत्रोंमें और गुरुके भाई वंधुओंमें और चचाताऊ आदिओंमें गुरुके समान वर्तै ॥ २०७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अध्यापयन्गुरुसुं

तो गुरुर्वन्मानंमर्हति ॥ ८ ॥ उत्सादनं चै गात्राणां स्नानोच्छि  
ष्टभोजने ॥ नै कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥ २०९ ॥

टीका—छोटा होय अथवा समान अवस्थाका होय वा ज्येष्ठ होय अथवा शिष्य होय वेदपढानेको समर्थ अर्थात् वेद पढाहुआ गुरुपुत्र जो यज्ञकर्ममें ऋत्विक् होय अथवा न होय यज्ञ देखनेके लिये आया हुआ गुरुके समान पूजाके योग्य है ॥ ८ ॥ देहमें उवटन करना स्नान करना जूठा भोजन करना और पैरोंका धोना इतनी बातें गुरुपुत्रकी न करै अर्थात् गुरुहीकी करै ॥ २०९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सर्वर्णां गुरुर्योषितः ॥ असवर्णास्तु संपूज्याः  
प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २१० ॥ अभ्यंजनं स्नानं चै गात्रोत्सा  
दनमेव च ॥ गुरुपत्न्या नै कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ ११ ॥

टीका—गुरुकी सवर्णास्त्रियाँ गुरुके समान पूजने योग्यहैं और जो असवर्णा होय तो अभ्युत्थान और नमस्कारसे सत्कार करने योग्यहैं ॥ २१० ॥ देहमें तेल आदिका लगाना न्हावना देहमें उवटना करना और फूलोंकी माला आदिसे बालगूथना इतनी बातें गुरुकी स्त्रीकी न करै ॥ ११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुण  
दोषौ विज्ञानता ॥ १२ ॥ स्वभाव एषै नारीणां नराणामिहैदूर्पण  
म् ॥ अतोऽर्थान्नै प्रमाद्यन्ति प्रमंदासु विपश्चितः ॥ २१३ ॥

टीका—गुणदोषके जाननेवाले तरुण पुरेवीसवर्षके शिष्य कर तरुणी गुरुकी स्त्री पावपकडकर नहीं नमस्कार करने योग्यहैं किन्तु दूरसे भूमिमें दंडवत् प्रणाम करै ॥ १२ ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव है कि, अपने शृंगार आदि चेष्टाओंसे मोहित कर पुरुषोंको दूषण देना इसी कारणसे पंडित स्त्रियोंमें प्रमत्त नहीं होतेहैं ॥ २१३ ॥

अविद्वांसमैलं लोकेविद्वांसमपि वा पुनः ॥ प्रमंदा ह्युत्पथं नेतुं का  
मक्रोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नै विवित्तांसनो  
भवेत् ॥ वलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ २१५ ॥

टीका—मैं विद्वान् हौ जितेंद्रिय हौ ऐसा समझकै स्त्रियोंके समीप न बैठना चाहिये देहके धर्मसे कामक्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख हो उसको स्त्रिया कुमार्गमें लेजानेको समर्थहैं ॥ १४ ॥ माता वहिनी अथवा पुत्री इन

के साथ एकांतस्थानमें न बैठे क्योंकि, इंद्रियोंका समूह बलवान् है शास्त्रकी रीतिसे चलनेवाले भी पुरुषको वशमें करलेताहै ॥ २१५ ॥

कांमं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवां भुवि ॥ विंधिवद्वन्द्वेनं कुर्या-  
दसावर्हमिति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभि  
वादनम् ॥ गुरुदारेषु कुर्वति सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ २१७ ॥

टीका—तरुणाशिष्य तरुणीगुरुकी स्त्रियोंको अमुकशर्मा यह मैं तुमको नमस्कार करता हों ऐसे काहेकै पहले कहीहुई विधिसे भूमिमें दूरसे नमस्कार करै ॥ १६ ॥ शिष्टपुरुषोंका यह आचार है इस बातको जानताहुआ तरुण शिष्य परदेशसे आयकै तरुणी गुरुकी स्त्रियोंके कही हुई विधिसे चरण छुवै और प्रतिदिन दूरसे भूमिमें नमस्कार करै ॥ २१७ ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां  
शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १८ ॥ मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवास्याच्छि  
खाजटः ॥ नै नग्रांमेऽभिनिम्लोचेत्सूर्योर्नाभ्युदियात्काचित् ॥ १९ ॥

टीका—जैसे कुदालीसे खोदता हुआ पानीको प्राप्त होताहै ऐसेही गुरुमें स्थित विद्याको शिष्य सेवा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीके तीनि प्रकार कहते हैं सवशिर डाढी मूँछ मुँडे होय अथवा जटाधारी होय अथवा जिसकी शिखाही जटा होगई होय ऐसे ब्रह्मचारीको ग्राममें सोते हुए कभी सूर्य अस्त न होय और न उदय होय ॥ १९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ॥ निर्मलोचेद्राप्यविज्ञा-  
नाज्जपन्नुपवसेद्विनम् ॥ २२० ॥ सूर्येण ह्यभिनिमुक्तः शयानोऽ-  
भ्युदितश्च यः ॥ प्रार्थश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतेनसा ॥ २१ ॥

टीका—इच्छासे सोते हुए ब्रह्मचारीको निद्राके वशमें होनेसे अज्ञानतासे जो सूर्य उदय हो आवै अथवा अस्त होजाय तौ सावित्रीको जपताहुआ एकदिन उपवासकरै रात्रिको भोजन करै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी सूर्यके अस्तसमय अथवा उदयके समय सोता रहै और प्रार्थश्चित्त न करै तौ पापकर युक्त होकै नरकको जाय तिस्से यथोक्त प्रार्थश्चित्त करै ॥ २२१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुंभे संध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्च

प्यमुपासीत यथाविधि ॥२२२॥ यदि स्त्री यद्यवर्जः श्रेयः किञ्चि  
त्समाचरेत् ॥ तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्यं रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

टीका-आचमन करिकै पवित्र हो मनको एकाग्र कर शुद्धदेशम सावित्रीको जपता हुआ विधिपूर्वक दोनों कालकी संध्याओंकी उपासना करै ॥ २२ ॥ जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ श्रेय अर्थात् अच्छा काम करै तौ उसकोभी मन लगाकै करै अथवा शास्त्रकार नहीं मने किये हुए जिस काममें इसका मन लगै उसकोभी करै ॥ २३ ॥

धर्मार्थाबुच्यते श्रेयःकामार्थो धर्म एव च ॥ अर्थ एव ह वा श्रेय-  
स्त्रिवर्गइति तु स्थितिः ॥२४॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः  
प्रजापतेः ॥ माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरार्त्मनः ॥२५॥

टीका-श्रेय क्या है सो कहते हैं ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि, सुखके कारण होनेसे धर्म और अर्थ श्रेय है और कोई कहते हैं कि, सुखका हेतु और अर्थकामका उपाय होनेसे धर्मही श्रेय है और कोई कहते हैं कि, धर्म और कामकाभी सहायक होनेसे लोकमें अर्थही श्रेय है अब कुल्लुकभट्ट अपना मत कहते हैं आपसमें विरोध न रखने वाला धर्म अर्थ कामरूप त्रिवर्गही पुरुषार्थतासे श्रेय है यह निश्चय है यह बुसुक्षु जो भोगकी इच्छावाले हैं उनको उपदेश है सुसुक्षु जो मोक्षचाहनेवाले हैं उनको नहीं उनको तौ मोक्षही श्रेय है सो छठे अध्यायमें कहेंगे ॥ २२४ ॥ आचार्य वेदांतमें कहे हुए ब्रह्म परमात्माकी मूर्ति कहिये शरीर है और पिता हिरण्यगर्भकी मूर्ति है और माता धारणकरनेसे पृथिवीकी मूर्ति है और अपना सहोदर भाई क्षेत्रज्ञकी मूर्ति है तिस्से देवतारूप ये अपमान करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २२५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव भार्ता भ्राता च पूर्वजः ॥ नानात्तैर्नाप्यवमन्त-  
व्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २६ ॥ यं मातापितरौ क्लेशं सहे ते सं-  
भवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शर्व्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२७॥

टीका-आचार्य, पिता, माता, ज्येष्ठ सगा भाई ये पीडितपुरुष करकैभी नहीं अप-  
मान करनेयोग्य हैं और विशेषतासे ब्राह्मण करकै ॥ २६ ॥ संततिके संभव कहिये  
गर्भाधानके पीछे उत्पात्ति पालन आदिमें मातापिता जिस क्लेशको सहतेहैं उसका  
ऋण सैकरो वर्षोंमेंभी नहीं दूर होसकताह इसकारण देवतारूप माता पिता अपमान  
करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २२७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥ तेष्वैव त्रिषु तुष्टेषु

तपः सर्वं समाच्यते ॥ २८ ॥ तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तपं  
उच्यते ॥ न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २२९ ॥

टीका—मातापिताका और आचार्यका सदा प्रिय करै अर्थात् जिसमें वे प्रसन्न रहें  
सो करै क्योंकि उनके प्रसन्न रहनेसे सब तप पूरे होतेहैं ॥ २८ ॥ उन तीनोंकी सेवा  
परम कहिये उत्कृष्ट तप कहाताहै उनकी आज्ञाविना और किसी धर्मको न  
करै ॥ २२९ ॥

त एव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ॥

त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तोऽग्र्योऽग्र्यः ॥ २३० ॥

टीका—वेई तीनों अर्थात् माता पिता और गुरु तीनों लोकोंकी प्राप्तिका कारण  
होनेसे तीनों लोकहैं और वेही गृहस्थ आदि तीनों आश्रमोंके देनेवाले होनेसे ब्रह्मचर्य  
आदि तीनों आश्रमहैं और वेही तीनों वेदोंके जपफलका उपाय होनेसे तीनों वेदहैं और  
वेही तीनों अग्रियोंमें करनेयोग्य यज्ञ आदिके फल देने वाले होनेसे तीनों अग्रि  
हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ॥ गुरुं राहवनीयस्तुं  
साग्नित्रेतां गरीर्यसी ॥ ३१ ॥ त्रिष्वप्रमाद्यत्रेतेषु त्रीँल्लोकान्वि  
जयेद्गृही ॥ दीप्यमानः स्वर्वपुषा देवैर्वहि वि मोदते ॥ ३२ ॥

टीका—पिताही गार्हपत्य अग्नि है और माता दक्षिणाग्नि है और आचार्य आहवनीय  
है सो ये तीनों अग्नि अति श्रेष्ठहैं ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें प्रमादको न करताहुआ ब्रह्म-  
चारी तौ सर्वोत्कर्षसे वर्तमान होताही है परंतु गृहस्थभी तीनों लोकोंको जीति लेता है  
और अपने शरीरसे प्रकाशमान ही सूर्यआदिदेवताओंके समान स्वर्गमें आनंद  
करताहै ॥ ३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्य तु मध्यमम् ॥ गुरुशुश्रूषया  
त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥ सर्वे तस्यार्हता धर्मा यस्यैते  
त्रय आर्हताः ॥ अनार्हतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्यार्हताः क्रियाः ३४

टीका—माताकी भक्तिसे इस भूलोकको और पिताकी भक्तिसे मध्यम लोकको  
और आचार्यकी भक्तिसे हिरण्यगर्भके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जिसने इन  
तीनों अर्थात् माता पिता और आचार्यका आदर किया उसको सब धर्म फल देनेवाले  
होतेहैं और जिसने अनादर किया उसके सब श्रौत स्मार्त कर्म निष्फल होते हैं ॥ ३४ ॥



यावन्नयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥ तेष्वेवं नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ३५ ॥ तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ॥ तत्तन्निवेदेयतेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ २३६ ॥

टीका-जबतक ये तीनों जीवें तबतक स्वतंत्र होके और धर्मको न करै प्रिय और हितमें मन लगाके उन्हीकी सेवा करै ॥ ३५ ॥ उनकी सेवामें अंतर न पढनेसे उन्हीकी आज्ञासे मन वचन कर्मोंसे जो परलोकसंबंधी कर्म करै सो मैंने यह कियाहै ऐसे उनसे पीछे कहदे ॥ २३६ ॥

त्रिष्वेते ष्वतिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ॥ एष धर्मः परः साक्षां दुर्धमोऽन्यं उच्यते ॥ ३७ ॥ श्रद्धाधानः शुभां विद्यामार्ददीतां वरादपि ॥ अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २३८ ॥

टीका-इन तीनोंकी सेवा करनेपर पुरुषका संपूर्ण श्रौत स्मार्त कर्म फल मिलनेसे किया हीसा होताहै तिससे यह धर्म श्रेष्ठ है और साक्षात् पुरुषार्थका साधनहै और अन्य अग्निहोत्र आदि स्वर्गादिकोंका साधन होनेसे छोटाही धर्म है ॥ ३७ ॥ श्रद्धा-युक्त हो शुभकहिये जिसकी शक्ति देखीहै ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसेभी ग्रहण करले और चांडालसेभी भोक्षके उपाय तत्वज्ञानको ग्रहण करै और अपने कुलसे नीचे कुलकेभी स्त्रीरत्नको व्याह करनेके लिये ग्रहण करै ॥ २३८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥ अमित्रादपि सद्वृत्तं ममेध्यापि काञ्चनम् ॥ ३९ ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्यां धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेर्यानि सर्वतः २४०

टीका-विषमें जो अमृत मिलाहोय तो विषको दूर करके अमृत लेना चाहिये और बालकसेभी हितवचन लेना चाहिये और सज्जनका चरित्र शत्रुसेभी लेना चाहिये और अपवित्र स्थानसेभी सुवर्ण आदि लेने चाहिये ॥ ३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदरवचन और नानाप्रकारके शिल्प कहिये कारीगरी चित्रलिखना आदि सर्वोंसे लेने चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ ४१ ॥ नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यं न्तिकं वसेत् ॥ ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन् गतिमनुत्तमाम् ॥ ४२ ॥

टीका—आर्पितिसमयमें अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मणभिन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यसे पढ़ना कहाहै और अनुगम आदि रूप सेवा जबतक पढ़े तभीतक करै गुरु होनेसे पैर धोना जूँडा खाना आदिभी प्राप्तहुए सो न करै जबतक पढ़े तभी तक क्षत्रियका गुरुत्वहै पीछे नहीं सो व्यासन कहाहै ( मंत्रदः क्षत्रियो विप्रैः शुश्रूष्योऽनुगमादिना ॥ प्राप्तविद्यो ब्राह्मणस्तु पुनस्तस्य गुरुः स्मृतः ) अर्थ—मंत्रका देनेवाला क्षत्रिय ब्राह्मणों करिके अनुगमनआदिसे सेवा करनेयोग्य है और विद्या पानेके पीछे फिर उसका गुरु कहा गया है इति ॥ ४१ ॥ अनुत्तमा कहिये मोक्षरूप गतिको चाहता हुआ शिष्य ब्राह्मणभिन्न अर्थात् क्षत्रिय आदि गुरुके स्थानमें जन्मभर ब्रह्मचर्ययुक्त वास न करै और जो अंगोंसमेत वेद न पढा होय ऐसे ब्राह्मणकेभी स्थानमें वास न करै ॥४२॥

यंदि त्वांत्यन्तिकं वासं रोचयेत् गुरोःकुंले ॥ युक्तं परिचरेदेनमां  
शरीरविमोक्षणात् ॥४३॥ आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते  
गुरुम् ॥ स गच्छत्यर्जसा विप्रो ब्रह्मणः सर्वं शाश्वतम् ॥४४॥

टीका—जो गुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्यरूप जन्मभर वास करना चाहै तो जबतक जीवै तबतक अर्थात् देह छुटनेपर्यंत तत्पर होकै गुरुकी सेवा करै ॥ ४३ ॥ इसका फल कहते हैं ॥ जो शिष्य शरीरकी समाप्ति कहिये मरनेतक गुरुकी सेवा करताहै वह ब्रह्मके शाश्वत कहिये अविनाशी स्थानमें प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ ४४ ॥

न पूर्व गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥ स्नास्यस्तु गुरुणाज्ञप्तः  
शक्त्यौ गुर्वर्थमाहरेत् ॥ ४५ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं गौमंश्च छत्रोपानह  
मासनम् ॥ धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥४६॥

टीका—गुरुदाक्षिणा देनेके धर्मका जाननेवाला ब्रह्मचारी स्थानसे गौ वस्त्र आदि कुछ धन गुरुको अवश्य न देवै और स्नान करता हुआ गुरुकी आज्ञा पाकै शक्तिके अनुसार किसी धनीसे मांगकरभी अथवा दान आदिसे धनको लायकै गुरुको अवश्य दे ॥४५॥ खेत, सोना, गौ, घोडा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शाक, और वस्त्र ये सब अथवा इनमेंसे पहले कहे हुएओंको छोडकै जो मिलसकै सो गुरुको दे और जो कुछ न मिलै तो शाकही दे ॥ ४६ ॥

आचार्यै तु खलु प्रेतै गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥ गुरुदारे सपिण्डे वा

गुरुं वद्वृत्तिं मा चरेत् ॥ ४७ ॥ एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् ॥ प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ ४८ ॥

टीका-नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुके मरनेपर जो गुरुपुत्र गुणयुक्त होय तौ उसको गुरुके समान मानै और गुरुपुत्र न होयतौ गुरुकी स्त्रीको स्त्री न होय तौ सर्पिड भाई आदिकों को गुरुके समान मानै ॥ ४७ ॥ जो इनमेंसे गुरुपुत्रआदि कोई न होय तौ आचार्यकी अग्निसे समीप रहने बैठने और संध्या सवेरे समिधोंके होम आदिसे अग्निकी सेवा करता हुआ अपनी देह अर्थात् अपनी देहमें स्थित जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करै ॥ ४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः ॥ स गच्छेत्पुत्रं  
तमस्थानं न चेह्यजायते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

टीका-जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्यको निवाहताहै वह उत्तम ब्रह्मके स्थानमें प्राप्त होताहै और कर्मोंके वशसे इस संसारमें जन्मको नहीं लेता है ॥ २४९ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुल्लुकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविबृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदधिकं पादिकं वा  
ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ वेदानधीत्येवेदौ वा वेदं वापि यथा  
क्रमम् ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थांश्रममावसेत् ॥ २ ॥

टीका-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनोंको गुरुकुलमें छत्तीस वर्ष पढे अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाको बारहवर्ष पढे अथवा उसके आधे अठारहवर्षतक पढे तब प्रत्येकवेदकी शाखाका छः वर्ष पढना हुआ अथवा उसकी चौथाई नववर्ष पर्यंत पढे तो प्रत्येक वेदकी शाखाके तीनिवर्ष हुए अथवा कहींहुई अवाधिके भीतर बाहर जितने कालमें वेदोंको पढे उतने कालपर्यंत गुरुकुलमें वसिके ब्रह्मचर्यव्रत करै ॥ १ ॥ क्रमसे तीनोंवेदोंकी शाखाओंको अथवा दो वेदोंकी शाखाओंको अथवा एक वेदकी शाखाको मंत्रब्राह्मणके क्रमसे पढके अविप्लुत ब्रह्मचर्य कहिये पहले कहे हुए स्त्रीसंग मधुमांसका त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे युक्त वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करै अर्थात् गृहस्थके लिये कहे हुए कर्मोंको करै ॥ २ ॥

तंप्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्पं आसीन  
मर्हयेत्प्रथमं गवां ॥ ३ ॥ गुरुणांनुमतेः स्नात्वा समावृत्तो यथा  
विधि ॥ उद्वहेतं द्विजो भार्या सर्वर्णा लक्षणांविताम् ॥ ४ ॥

टीका—ब्रह्मचारीके धर्म करनेसे प्रसिद्ध और पिता वेदरूप भागके लेनेवाले अर्थात् पितासे अथवा पिताके अभावमें आचार्य आदिसे वेद पढ़ेहुये ब्रह्मचारीको मालासे अलंकृत करि उत्तम शय्यापर बैठाय पिता अथवा आचार्य विवाहसे पहले गौ है साधन जिसका ऐसे मधुपर्कसे पूजन करै ॥ ३ ॥ गुरुकी आज्ञासे निजगृहकी विधिपूर्वक स्नान समावर्तन करि समान वाणी और शुभ लक्षणोंकरि युक्त कन्यासे विवाह करै ॥ ४ ॥

असपिण्डो च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सां प्रशस्तां द्वि-  
जांतीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यपि समृद्धानि गो-  
जाविधनधान्यतः॥स्त्रीसर्वन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो माताकी सपिंडा कहिये सातपीढीमें न होय सगोत्राभी न होय और पिताके गोत्रमें न होय ऐसी स्त्री ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको अग्निहोत्र और संतति उत्पन्न करना आदि कर्मोंमें उत्तमहै ॥ ५ ॥ ऊंचेभी होय और गौ, गकरी, भेड, धन, धान्य इनसे भरे पूरे भी होनेपर आगे कहे हुए सात कुलोंकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्या-  
मर्याव्यपरस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥ नोद्वहेत्क-  
पिलां कन्यां नाधिकार्ङ्गीं न रोगिणीम् ॥ नालोमिकां नां  
तिलोमां नां वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ८ ॥

टीका—वे कुल कहते हैं ॥ हीनक्रिय अर्थात् जातकर्मआदि क्रियाओंसे रहित १ स्त्रीजनक जिसमें स्त्रियाँही उत्पन्न होतीहोय २ वेद पढनेसे रहित ३ बहुतसे रोमाओंसे युक्त ४ बवासीररोगयुक्त ५ क्षयरोगयुक्त ६ मंदाग्नि युक्त ७ अपस्मारकहिये मिरगीयुक्त ८ श्वेतकुष्ठयुक्त ९ गलत कुष्ठयुक्त १० इन दशकुलोंको छोडदे अर्थात् इन कुलोंकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ७ ॥ भूरे वालोंकी अधिक अंगकी जैसे छः अंगुलीकी सदा रोगी न रहे जिसके रोम न होय जिसके बहुत रोम होय बहुत बोलनेवाली आखोंमें कंजी होय ऐसी कन्यासे विवाह न करै ॥ ८ ॥

नेर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्याहिप्रेष्यनां

म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गगङ्गीं सौम्यनाम्रीं हंस  
वारणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मृद्गङ्गीमुद्गहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका-नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ पर्वत पक्षि सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ९ ॥ जिसके अंगमें कुछ व्यंग नहीं मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इन्होंके समान गमनकरनेवाली सूक्ष्म लोमवाली वारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाह करना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोप्यच्छेत तां  
प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णाग्ने द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमांस्त्युः क्रमशो वराः ॥ १२ ॥

टीका-जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका उसको कहत है कि, जिसका पिता पहले यह कहै कि, इसका पुत्र होगा वह मेरा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न होय उसकोभी बुद्धिमान् न व्याहै अथवा जिसका पिता न जानाजाय उसको अधर्म शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम विवाह करनेमें सवर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और फिर कामसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो कही जायगी वे श्रेष्ठहैं ॥ १२ ॥

शूद्रैर्वर्मायां शूद्रस्य सां च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च  
स्वां चैव रीज्ञश्च तां च स्वीं चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥  
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिं-  
श्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भ्रातृपदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका-शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊंची जातिकी वैश्या आदि तीनी नहीं होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोंने कही हैं और क्षत्रियके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी ये चार स्त्रियों कहिहै ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको आपत्तिमें भी अर्थात् सवर्णाकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी कन्यासे विवाह करना नहीं कहाहै यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उलटे विवाहके मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कहि चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्ग्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्यां  
शुं ससंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनं  
यस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विना व्याहं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शास्त्रकं विचार विना हीनजाति कहिये शूद्रासे विवाह करता है वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र करदेता है ॥ १५ ॥ शूद्रकन्याके साथ विवाह करनेसे पतितहीसा होता है यह अत्रि और गौतमका मत है और शूद्रामें पुत्र उत्पन्न होनेसे पतित होता है यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान होनेसे पतित होता है यह भृगुका मत है अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रासे उत्पन्न हैं पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होता है ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीयते ॥ १७ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा  
नानि यस्य तु।नांश्रन्ति पितृदेवास्तेन्न च स्वर्गं सं गच्छति ॥ १८ ॥

टीका—शूद्राके साथ भोग करके ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र उत्पन्न करके ब्राह्मणपनसेही रहित होजाता है ॥ १७ ॥ दैव होमआदि और पित्र्य श्राद्धआदि तथा आतिथ्य अतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करती है उस हव्य और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाता है ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रसूतस्य  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्यं चेहं हि  
ताहितान् ॥ अष्टाविमान्सर्मासेन स्त्रीविवाहान्नि बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्रिका ओठ चुंबन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और उसीमें संताति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारों वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आगे कहते हैं ऐसे आठ विवाहोंको संक्षेपसे मुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो देवस्तथैवाषः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैवं  
पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
यस्य यौ ॥ तद्भः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसेवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

टीका-उन आठोंके नाम कहते हैं जैसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ और आठवाँ सर्वासे अयम पैशाच ८ ॥ २१ ॥ जो विवाह जिसवर्णका धर्मसंबंधी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाइ बुराईको और उन २ विवाहोंसे उत्पन्न संतानमें जे गुणदोष हैं तिनको मुनिये ॥ २२ ॥

षडौनुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥ विद्गूद्रयोस्तु ता  
नेवं विद्याद्धर्म्यांनराक्षसान् ॥ २३ ॥ चतुरो ब्राह्मणस्याग्रान्प्रर्श  
स्तान्कवयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यं गूद्रयोः ॥ २४ ॥

टीका-ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ ये ६ विवाह धर्म्य हैं और क्षत्रियको आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये विवाह धर्म्य हैं और वैश्य तथा गूद्रके भी बेही आसुर गांधर्व पैशाच जानिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके ब्राह्म आदि चारि और क्षत्रियके एक राक्षस और वैश्य तथा गूद्रके आसुर इन विवाहोंको जाननेवाले श्रेष्ठ जानते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्या स्मृताविह ॥ पैशाचश्चासुरश्चैव  
न कर्तव्यो कदाचन ॥ २५ ॥ पृथक्पृथग्वा मिथौ वा विवाहो  
पूर्वचोदितो ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्या क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

टीका-प्राजापत्य आदि पाँच विवाहोंमें प्राजापत्य गांधर्व और राक्षस ये तीनि विवाह धर्मसंबंधी हैं दो धर्मसंबंधी नहीं हैं पैशाच और आसुर ये दो कमी करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥ जुदे २ अथवा मिले हुए पहले कहे हुए गांधर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियको धर्मके अनुसार मनुआदिकोंने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं  
कर्त्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ यज्ञे तु वितते सम्यग्-  
त्विजे कर्म कुर्वते ॥ अलंकृत्य सुतादानं देवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

टीका-विद्या और आचारयुक्त बरको बुलायके उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंसे कन्या तथा बरको भूपित कर बरके लिये जो दान किया जाता है उसको मनुआदि ब्राह्मणविवाह कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिष्टोम आदियज्ञके आरंभ होनेमें अच्छेप्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विगके लिये वस्त्र आभूषणोंसे शोभित करि जो कन्याका देना है उसको मुनीश्वर देवविवाह कहते हैं ॥ २८ ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ॥ कन्याप्रदानं विधि-  
वदीर्घो धर्मः सं उच्यते ॥ २९ ॥ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचा  
नुभाष्यच ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ३० ॥

टीका—एक गौ और एक बैल ऐसे गौओंका एक जोड़ा अथवा दो जोड़े बरसे  
ज्ञान आदिकी सिद्धिकेलिये अथवा कन्याके देनेकेलिये लेकर शास्त्रके अनुसार जो  
कन्यादान किया जाता है उसको आर्षविवाह कहते हैं ॥ २९ ॥ तुम दोनों मिलके  
धर्म करा करौ ऐसे कन्यादानके समय पहले नियम करके पूजन करि जो कन्यादान  
किया जाता है उसको प्राजापत्य विवाह कहते हैं ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तिः ॥ कन्याप्रदानं  
स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ३१ ॥ इच्छयान्योन्यसंयोगः क-  
न्यायाश्च वैरस्य च ॥ गान्धर्वः सं तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ३२

टीका—कन्याके पिता आदिको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जो अपनी  
इच्छासे कन्याका लेना है उसको आसुरविवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ कन्या और बरकी  
आपसकी प्रीतिसे जो परस्पर आलिंगन आदिरूप मिलना है उसको गान्धर्व विवाह  
कहते हैं ॥ ३२ ॥

हेत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशंतीं रुदंतीं गृहांत ॥ प्रसह्य कन्या  
हरणं राक्षसो विधि उच्यते ॥ ३३ ॥ सुतां मत्तां प्रमत्तां वा र्हो यत्रो  
पगच्छति ॥ स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

टीका—बलात्कारसे कन्याका हरलेना राक्षसविवाहका यही लक्षण है कन्याके पक्ष-  
वालोंको मारिके और उनके अंगोंको काटिके और परकोटा आदिको फोडकर हाथ  
पिता हाथ भाई अनाथ में हरीजाती हों ऐसे कहती हुई और आंमुखोंको छोडती हुई  
कन्याको जो उसके घरसे हरलेना है उसको राक्षसविवाह कहते हैं इस्से कन्याकी  
अनिच्छा प्रकट होती है ॥ ३३ ॥ सोतीहुईको मद्यसे व्याकुलको और शीलकी रक्षासे  
रहितको एकांतस्थानमें जो विषयकी इच्छासे प्रवृत्त हांता है उस पापमूल विवाहको  
सब विवाहोंमें अधम पैशाच विवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्विरेव द्विजाश्रयाणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ इतरेषां तु वर्णा  
नामितरेतेरकाम्यया ॥ ३५ ॥ यो यस्यैषां विवाहानां मनुना



काँथितो गुणः॥सर्वे शृणुंत तं विप्रांः सम्यक् कीर्तयतो मम ॥३६॥

टीका-ब्राह्मणोंको जलदानपूर्वकही कन्यादान करना उत्तम है और क्षत्रिय आदि अन्यवर्णोंको जलके बिनाभी आपसकी इच्छासे वाणीमात्रसेभी कन्यादान होता है ॥ ३५ ॥ इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहा है वह सब हे ब्राह्मणों कहते हुए मुझसे सुनो यह भृगुने ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥ ब्राह्मीपुत्रः सुकृतं  
कृन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥३७॥ दैवोदजः सुतश्चैव सप्तं सप्तं परां  
वरान्॥आर्षोदजः सुतस्त्रिंस्त्रीं षट्षट् कायोदजःसुतः॥ ३८ ॥

टीका-ब्राह्मणविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र जो शुभकर्म करनेवाला होय तौ पिता आदिको नरकसे निकाल लेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ दैवविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पिता आदि सातपीढी पहली और पुत्र आदि सातपीढी पिछली और आर्षविवाहमें व्याही हुईका पुत्र तीनि पीढी पहली और तीनि पिछली और प्राजापत्यमें व्याही हुईका पुत्र छःपीढी पहली और छःपिछलीको और आपको पापसे छुडाताहै ॥ ३८ ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वे वानुपूर्वशः ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रां जा  
यन्ते शिष्टसंमताः ॥३९॥ रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ॥  
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं सर्माः ॥ ४० ॥

टीका-ब्राह्म आदि चार विवाहोंमें श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजकरि युक्त और शिष्टोंके प्यारे पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान् यशस्वी और अपनी इच्छासे वस्त्र माला गंध लेप आदिसे शोभित धर्मात्मा और सौवर्षकी आयुष्यनक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

ईतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥ जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म  
धर्मद्विषः सुताः ॥ ४१ ॥ अनिन्दितैस्त्रीं विवाहैरनिन्द्या भवति  
प्रजां॥निं न्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विर्वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

टीका-ब्राह्म आदि चारि विवाहोंसे अन्य आसुर आदि चारोंमें क्रूरकर्म करनेवाले मिथ्यावादी वेदसे द्वेषकरनेवाले यज्ञ आदि धर्मोंसे द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ स्त्रीकी प्राप्तिके कारण जे अच्छे विवाहहैं उनसे पुरुषके

संतानभी अच्छी होती हैं और निंदित विवाहोंसे प्रजाभी निंदित होती है तिससे निंदित विवाहोंका त्याग करै ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सर्वर्णासूपैदिश्यते ॥ असर्वर्णास्वयंज्ञेयो विं  
धिरुद्धाहकर्मणि ॥ ४३ ॥ शरः क्षत्रियया ब्राह्मः प्रतोदो वैश्यकं  
न्यया ॥ वर्सनस्य दशां ब्राह्म्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

टीका—पाणिग्रहणसंस्कार कहिये हाथ पकडनेकी विधि समानजाति कन्याके विवाहमें किया जाता है और अन्यवर्णकी कन्याके विवाहमें आगेके श्लोकमें कही हुई विधि जानिये ॥ ४३ ॥ ऊंचि जातिके पुरुषके साथ व्याहमें क्षत्रियाकन्याको पाणिग्रहणके स्थानमें ब्राह्मणके विवाहमें ब्राह्मणके हाथमें पकडे हुये तीरका एक भाग ग्रहण करने योग्यहै और वैश्यास्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रियके विवाहमें ब्राह्मण क्षत्रिय करि पकडे हुए चाबुकका एक सिरा पकडना चाहिये और शूद्रास्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिपटे हुये कपडेकी बत्ती ग्रहण करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरंतःसदा ॥ पर्ववर्जं व्रजे चैनां  
तद्भवतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः  
षोडशं स्मृताः ॥ चतुर्भिरंतरैः सार्धं महोभिः सर्दिगर्हितैः ॥ ४६ ॥

टीका—रुधिरके दर्शनसे जानेगये गर्भ रहनेके समयकी ऋतुकाल कहतेहैं उसमें स्त्रीसे पुत्रकी प्राप्तिके लिये भोग करै और अपनी स्त्रियों सदा संतुष्ट रहै और पर्व जो अमावास्या आदिहैं तिनको छोडके भार्यासे अतिप्रीति करनेवाला पुरुष ऋतुकालसे भिन्न कालमेंभी रतिकी कामनासे गमन करै पुत्र उत्पन्न करनेकी बुद्धिसे नहीं ॥ ४५ ॥ सज्जनोंकरि निंदित रुधिर दीखनेके चार दिनोंसमेत स्त्रियोंके सोलहरातिदिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है रोग आदिसे न्यूनाधिकभी होजाता है ॥ ४६ ॥

तांसामाद्यांश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च यां ॥ त्रयोदशी च शेषां  
स्तु प्रशस्ता दशै रात्रयः ॥ ४७ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽ  
युग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविं शैदांतवे स्त्रियमं ४८

टीका—फिरि उन सोलह रातिदिनोंमें रुधिरदर्शनसे लगाके पहले चार रात्रिदिन और एकादशी तथा तेरसी गमनमें निंदितहै और शेष दशरात्रियां उत्तमहैं ॥ ४७ ॥

पहले कही दश तिथियोंमें युग्मकहिये षष्ठी और अष्टमी रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होतेहैं तिस्से पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्मरात्रिमें ऋतुके समय स्त्रीसे गमन करे ॥ ४८ ॥

पुत्रः पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ संमे पुंमान्पुंस्त्रिं  
यौ वां क्षी णेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ४९ ॥ निन्द्यास्वघ्रासु चान्यासु  
स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ५०

टीका—पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रिमें भी पुत्रही होताहै और स्त्रीका वीर्य अधिक होनेसे युग्ममें भी कन्याही होती है और दोनोंका वीर्य बराबर होनेसे नपुंसक होय अथवा जोडिया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होय अथवा दोनोंका वीर्य क्षीण अथवा थोडा होयतौ गर्भका संभव न होय अर्थात् गर्भन रहै ॥ ४९ ॥ पहले कही ऋतुकालकी निन्द्य छः रात्रियोंमें और अन्य अनिन्द्य जिन किन्ही आठ रात्रियोंमें भी स्त्रीको त्यागता हुआ वाकी पर्वकी दो रात्रियोंको छोड गमन करनेवाला जिस किसी आश्रममें वसत हुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्यव्रतको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीर्याच्छुल्कमपर्वपि ॥ गृह्णच्छुल्कं हि  
लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥ स्त्रीधनानितुं ये मोहांदुपजी  
वन्ति वान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापी यान्त्यधोगतिम् ५२

टीका—धन लेनेके दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादानके निमित्त थोडाभी धन न ले, जो लोभसे ले तौ संतानका वेंचनेवाला होय ॥ ५१ ॥ पति पिता भ्राता आदि जे वांधव स्त्री पुत्री आदिका धन और नारीके वाहन अश्व आदिकों और वस्त्रोंको लेंतेहैं वे पाप करनेवाले नरकको जातेहैं तिस्से स्त्रीधन किसीको न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिश्रुं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैर्व तत् ॥ अल्पोऽप्येवं महीं  
न्वापि विक्रयस्तावदेव सं ॥ ५३ ॥ यासां नाददेत शुल्कं ज्ञातयो  
न सं विक्रयः ॥ अर्हणं तत्कुमारीणां मानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

टीका—कोई आचार्य कहतेहैं कि आर्षविवाहमें वरसे गौका जोडा लेना चाहिये वह अूँठही है जिस्से थोडा होय अथवा बहुत होय वह वेंचनाहीहै ॥ ५३ ॥ जिन कन्याओंका वरकरि प्रीतिसे दियाहुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देतेहैं वहभी वेंचना नहीं है जिस्से कुमारियोंका पूजन केवल दयारूप है ॥ ५४ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिं भिद्वैरैस्तथा ॥ पूज्यां भूषयित्वाञ्च  
बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र  
देवताः ॥ यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥

टीका—केवल विवाहकालहीन वरका दिया हुआ धन कन्याको देना चाहिये किंतु उसके पीछेभी पिता आदि करिके कन्या भोजन आदिसे पूजनयोग्य हैं और बहुत धन आदि संपत्तिके चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको बख अलंकार आदिसे भूषित करने योग्यभी हैं ॥ ५५ ॥ जिस कुलमें पिताआदि करिके स्त्री पूजीजाती है वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहां देवताओंकी प्रसन्नता न होनेसे सब यज्ञादिक क्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जाम्यो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥ न शोचन्ति  
तु यत्रैतां वर्धते तद्धि सवदा ॥ ५७ ॥ जाम्यो यानि गेहानि श  
पन्त्यप्रतिपूजिताः॥तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥५८

टीका—जिस कुलमें वहिन स्त्री-पुत्री और पुत्रकी बहूआदि दुःखी होती हैं वह कुल शीघ्रही निर्धन होजाता है और देवता तथा राजा आदि करि पीडित होताहै और जहां ये नहीं शोचतीहैं वह धन आदिसे सदा वृद्धीको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ भगिनी पत्नी बेटी बहू ये दुःखी हो जिन घरोंको कौसतीहैं वे घर कृत्या जो अभिचारहै विस करके नाश कियेकी समान धन पशु आदिसमेत नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदां पूज्यां भूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूर्तिकामैर्न रैर्न  
त्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या  
तथैव च ॥ यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

टीका—तिसे ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीतआदिउत्सवोंमें समृद्धि चाहनेवाले पुरुषों करिके सदा पूजनेयोग्यहैं ॥ ५९ ॥ जिसकुलमें स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहताहै अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा नहीं करता है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुलमें चिरकालपर्यंत श्रेय रहताहै ॥ ६० ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत् पुंसांसं न प्रमोदयेत् ॥ अप्रमोदात्पुनः पुं  
सः प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ६१ ॥ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्गोचते

कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेवं न रोचते ॥ ६२ ॥

टीका—जो स्त्री वस्त्राभरण आदिकोसे शोभित न होय तौ यह अपने स्वामीको प्रसन्न न करै तौ फिरि पुरुषके प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नहीं होता है ॥ ६१ ॥ मंडन आदिसे स्त्रीके कांतिमती होनेपर पतिके स्नेहसे परपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुल प्रकाशमान होताहै और उसके न शोभित होनेपर भर्ताके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन होजाताहै ॥ ६२ ॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्यापनेन च ॥ कुलान्यकुलतां याति  
ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च  
केवलैः ॥ गोभिर्श्वैश्च यानैश्च कृष्यां रीजोपसेवया ॥ ६४ ॥

टीका—आमुर आदि बुरे विवाहोंसे और जातकर्म आदि क्रियाओंके लोपसे और वेदके न पढ़नेसे और ब्राह्मणका पूजन न करनेसे प्रसिद्ध कुल हीन होजाता है ॥ ६३ ॥ चित्र खींचना आदि शिल्पसे और व्याजके लिये धनके व्यवहारसे और केवल शूद्रोंमें उत्पन्न पुत्रसे और गौ घोडा रथके बचनेसे खेती करनेसे राजाकी नौकरी करनेसे कुलोंका नाश होजाताहै ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्ति क्वयेन च कर्मणाम् ॥ कुलान्याशुं वि  
नश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥ मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुला  
न्यल्पधनान्यपि ॥ कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ६६

टीका—अयाज्य जो हैं व्रात्य आदि तिनको यजनकरानेसे और श्रौत स्मार्त्त कर्मों के न माननेसे और वेदके मंत्रोंकरि हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश होजाताहै ॥ ६५ ॥ यद्यपि धनसे कुल होतेहैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपर भी थोड़े धनवालेभी कुल वेदके पढ़ने और उसके अर्थके जाननेसे ऊँचे कुलोंकी गणनामें गने जाते हैं और बडीभारी प्रसिद्धि पाते हैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ॥ पञ्चयज्ञविधानं च  
पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥ पञ्चसूनां गृहस्थस्य चुल्ली पे  
षण्युपस्करः ॥ कण्डनी चोदकुम्भश्च वर्धते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥

टीका—वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकालका गृह्यमें कहा हुआ

होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक और पंचयज्ञोंसे प्रतिदिन करनेयोग्य बलि वैश्व-  
देव आदिकी और नितके पाककोभी गृहस्थ उसी अग्निमें करै ॥ ६७ ॥ गृहस्थके ये  
पाँच हिंसाके स्थान हैं चूल्हा १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मुसल ४ जलकाघट ५  
इनको अपने काममें लाता हुआ पुरुष पापोंकरि युक्त होताहै ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थे महर्षिभिः ॥ पञ्च कृतां महाय  
ज्ञाःप्रत्यहं गृहमोधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञःपितृयज्ञस्तु  
तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिभौतो नृत्यज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

टीका—उन चूल्हा आदि पाँच बधके स्थानोंसे उत्पन्न पापके नाशके लिये क्रमसे  
पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन  
पंचयज्ञोंके नाम लिखते हैं ॥ वेदका पढना और पढाना ब्रह्मयज्ञहै १ तर्पण कहिये  
अन्न आदिसे अथवा जलसे पितरोंको तृप्त करना पितृयज्ञहै २ आगिमें होम करना  
देवयज्ञहै ३ भूतोंको बलि देना यह भूतयज्ञ है ४ अभ्यागतका सत्कार करना यह  
मनुष्ययज्ञहै ५ ये पाँचों महायज्ञ कहे गये ॥ ७० ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान् हापयति शक्तिरतः ॥ स गृहेऽपि वसन्नि  
त्यं सुनादोषैर्न लिध्यते ॥ ७१ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितृणामा  
त्मनश्चर्यः ॥ न निर्वर्पति पञ्चानामुच्छंसन्नं स जीवति ॥ ७२ ॥

टीका—जो पुरुष इन पाँच महायज्ञोंको शक्तिसे कभी नहीं छोडता है वह सदा  
घरमें बसता हुआभी सुनाके दोषोंकरि लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥ देवता कहनेसे  
देवता और भूत दोनों जानने चाहिये क्यों कि भूतोंकोभी देवतारूपसे बलि दीजाती-  
है और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढे मातापिता आदिका और सब  
भावसे अपना पालन तौ अवश्यही कर्तव्यहै और जो देवता आदि पांचको अन्न नहीं  
देताहै वह श्वास लेताभी जीता नहीं है किंतु मरे हुएके समान है ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैव तथो प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्मं हुतं प्राशितं च  
पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ७३ ॥ जपोऽहुतो हुतो होमःप्रहुतो भौतिको  
बलिः ॥ ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

टीका—अन्य सुनीश्वरोंने इन्ही पंचयज्ञोंके नाम दूसरे प्रकारसे कहे हैं जैसे अहुत १  
हुत २ प्रहुत ३ ब्राह्महुत ४ और प्राशित ५ ॥ ७३ ॥ अहुत कहिये ब्रह्मयज्ञ नाम  
जप और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबली और

ब्राह्महृत कहिये मनुष्ययज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञ-  
नाम नित्य श्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्देवैर्चैवे हं कर्मणि ॥ देवकर्मणि युंक्तो  
हि विभृती दं चरौचरम् ॥ ७५ ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादिं  
त्यमुपतिष्ठते ॥ आदित्यार्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

टीका—जो दरिद्रता आदि दोषसे अतिथिको भोजन देना आदि करनेको न समर्थ  
होय तौ ब्रह्मयज्ञमें सदा लगा रहै क्यों कि दैव कर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचर  
संसारको धारण करताहै ॥ ७५ ॥ यजमान करि अग्निमें अच्छी तरहसे ढाली हुई  
आहुति रसोंके खींचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुँचती है और सूर्यसे वर्षा होतीहै वर्षासे  
अन्न उत्पन्न होताहै और अन्नके भोजन आदिसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमाश्रित्य  
वर्तन्ते सर्वे आश्रमाः ॥ ७७ ॥ यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनाग्ने  
न चान्वहम् ॥ गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ७८ ॥

टीका—जैसे हृदयमें स्थित प्राणनाम पवनके आश्रयसे सब जीव जीते हैं वैसेही  
गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते हैं ॥ ७७ ॥ गृहस्थ सब आश्रमवालोंके  
प्राणके समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिसे गृहस्थके सिवाय तीनि  
आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करनेसे और अन्नके देनेसे सद्गृहस्थोंहि करि सदा  
उपकार किये जाते हैं सिसे गृहस्थ जेठा आश्रम है ॥ ७८ ॥

संघार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥ सुखं च हेच्छता नि-  
त्य योऽर्घ्यो दुर्वलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥ ऋषयः पितरो देवा भूता-  
न्यतिथर्यस्तथा ॥ आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ८०

टीका—अक्षय स्वर्गकी इच्छा करनेवाले और इस लोकमें स्त्रीका भोग तथा  
स्वादिष्ट अन्न आदिके भोजनके सुखका सदा चाहनेवाले पुरुषको यह गृहस्थाश्रम  
यत्नसे धारण करनेयोग्य है दुर्वलेन्द्रिय कहिये इंद्रिय जिनके बशमें नहीं हैं उनको  
जिसका धारण करना कठिण है ॥ ७९ ॥ ऋषि पितर देवता भूत और अभ्यागत ये  
गृहस्थोंसे प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्रके जाननेवालेको उनके लिये पंचम-  
हायज्ञ करना चाहिये ॥ ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेत्तर्षांन्हो<sup>३</sup> मैर्देवान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नृनं  
त्रै भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोद-  
केन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि<sup>१</sup> पितॄभ्यः प्री<sup>३</sup> तिमावहन् ॥ ८२ ॥

टीका—स्वाध्याय जो वेदपाठ है तिससे ऋषियोंको और होमसे देवताओंको और श्राद्धसे पितरोंको और अन्नसे मनुष्योंको और बलिकर्मसे भूतोंको यथाविधि कहिये शास्त्रके अनुसार पूजे ॥ ८१ ॥ अन्न आदिसे वा जलसे अथवा दूध मूल फलोंसे पितरोंके अर्थ प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ॥ नचै<sup>११</sup> वात्राशयेत्किंचिद्दे-  
श्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ<sup>११</sup> वि-  
धिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥

टीका—पितरोंके निमित्त पंचयज्ञोंसे एकभी ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्व देवके लिये किसी ब्राह्मण को यहां भोजन न करावै ॥ ८३ ॥ आवसथ्यअग्निमें सिद्ध किये हुए वैश्वदेव अन्नका इन देवताओंके लिये ब्राह्मण प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करै ॥ ८४ ॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवे<sup>१०</sup>  
भ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥ कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय  
एव च ॥ सह द्यावापृथिव्योश्च तथीं स्विष्टकृतेऽन्तर्तः ॥ ८६ ॥

टीका—वे देवता ये हैं ॥ पहले अग्नयेस्वाहा सोमायस्वाहा फिर अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ए दोनोंका एकसाथ करकै फिर समस्त देवताओंका होम करै तिस पीछे विश्वेदेवोंके निमित्त और धन्वन्तरिके लिये होम करै ॥ ८५ ॥ कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यां अग्नये स्विष्टकृते इन सबोंके अंतमें स्वाहा लगाके होम करै ॥ ८६ ॥

एवं सम्यग्धैर्विहुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः  
सांनुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य  
इत्यपि ॥ वनेस्पतिभ्य इत्ये<sup>११</sup> वं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—ऐसे रक्त प्रकारसे अच्छी भांति चित्तलगाकै देवताके ध्यानमें तत्पर हो होम करकै सब पूर्व आदि दिशाओंमें प्रदक्षिण पुरुषसाहित इंद्र आदि देवताओंके लिये बलि दे सो जैसे प्राच्यां इन्द्रायनमः इंद्रपुरुषेभ्योनमः । दक्षिणस्थां यमायनमः



चमपुरुषेभ्योनमः। पश्चिमायां वरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः। उत्तरस्यां सोमायनमः  
सोमपुरुषेभ्योनमः ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्योनमः ऐसे कहकर द्वारमें बलि दे और अद्भ्यो-  
नमः ऐसे कहिकर जलम बलि दे और वनस्पतिभ्योनमः ऐसे कहकर ओखली  
मूसलमें बलि दे ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ॥ ब्रह्मवास्तोप्पति  
भ्यांतु वास्तुमध्ये बलिहरेत् ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यश्चैवं देवेभ्यो बलिमा  
कांश उतिक्षेपत् ॥ दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तचारिभ्य एव च ॥ ९० ॥

टीका—वास्तुपुरुषके शिरपर उत्तर पूर्व दिशामें श्रीके लिये दे और उसीके पायांपर  
दक्षिण पश्चिम दिशामें भद्रकालीके लिये बलि दे और कोई आचार्य उच्छीर्षका रह-  
स्यके सोनेके सिरहेनेको और पादतः यह उसीको पैरोंकी भूमिके कहते हैं और  
ब्रह्म तथा वास्तुका पति इन दोनोंके लिये घरके बीचमें बलिदे ॥ ८९ ॥  
विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः ऐसे कहिके घरके आकाशमें बलि दे दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो  
नमः ऐसे कहिके दिनमें बलि दे और नक्तचारिभ्योभूतेभ्यो नमः ऐसे कहिके  
रात्रिमें बलिदे ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु  
सर्वं दक्षिर्गतो हरेत् ॥ ९१ ॥ शूनां च पतितानां च श्वपचां पापं  
रोगिणाम् ॥ वायसानां कृमीणां च शनकैर्नि वपद्दु वि ॥ ९२ ॥

टीका—घरके ऊपर जो घर होताहै उसको पृष्ठवास्तु कहतेहैं वहाँ अथवा बलि  
देनेवालेके पीछेकी भूमिमें सर्वात्मभूतयेनमः ऐसे कहिके बलि दे कहे हुए बलिदानसे  
बचाहुआ सब अन्न दक्षिणको मुख करि दक्षिणदिशामें स्वधा पितृभ्यः ऐसे कहिके  
बलि दे प्राचीनावीती हो इस बलिको दे ॥ ९१ ॥ और अन्न पात्रमें निकालकर कुत्ता  
पतित चांडाल और पाप रोगी कहिये कुष्ठी और क्षयरोगवाला कौआ और कीड़े  
इनके लिये हौलसे जिसमें रज न लगे ऐसे भूमिमें बलिदे ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्व भूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थानं  
तेजोमूर्तिः पथजुना ॥ ९३ ॥ कृत्वैतद्ब्रह्मैकमेवमतिथिं पूर्वमाशं  
येत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्भिषिब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंको अन्नदान आदिसे नित्य पूजताहै  
वह परम स्थान कहिये ब्रह्मरूप तेजोमूर्ति स्वप्रकाशको अर्चिरादि मा-

गसे प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाताहै क्यों कि ज्ञानसे और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ ऐसे कहे हुये प्रकारसे इस बालिकर्मको करिके घरके मनुष्योंसे पहले अतिथिको भोजन करावै और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको गौतम आदि करि कही हुई विधिसे भिक्षाका दान करै ॥ ९४ ॥

यत्पुण्यंफलमाप्नोति गौं दत्त्वा विधिवद्गुरोः ॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥ भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विधिवत् कहिये सैनिके साँग आदि मढाके गुरुको गौ देनेसे जो फल होता है वह फल गृहस्थको विधिपूर्वक भिक्षा देनेसे प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ अधिक अन्न न होनेपर एक ग्रासके प्रमाण व्यंजन आदि करि युक्त भिक्षाको भी उसके भी न होनेमें जलसे भरे हुय पात्रकोभी फल पुष्प आदिसे सत्कार करिकै तत्वसे वेदका अर्थ जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ स्वस्तिवाच्य इत्यादि विधिसे दान करै ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहादत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रसुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किंल्विषात् ॥ ९८ ॥

टीका—अज्ञानसे पात्रको न पहिचानकर देवता और पितरोंके निमित्त वेदके पढने और उसके अर्थके जाननेरूप तेजके न होनेसे भस्मके समान पात्रोंमें दाताओंकरि दिये हुए दान निष्फल होते हैं ॥ ९७ ॥ विद्या तथा तप रूप तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके सुख अग्निके समान होते हैं उनमें डाला गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग और शत्रु तथा राजपीडा आदि भयसे और बडे पापसे बचाता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वैतिथ्ये प्रदद्यादासनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ शिलानप्युच्छ्रितो नित्यं पञ्चाग्नीनापि जुह्वतः ॥ सर्वं सुकृतमार्दत्ते ब्राह्मणोऽर्चतो वसन् ॥ १०० ॥

टीका—आपसे आये हुए अतिथिके लिये आसन और पैर धोनेके लिये जल और शक्तिके अनुसार व्यंजन आदियुक्त अन्न आगे कही हुई विधिसे दे ॥ ९९ ॥ कटे हुये खेतमें जो पडा हुआ बाकी रहजाता है उसको शिल कहतेहैं उस शिलसे जीविका करने

बाले और दक्षिणाग्नि १ गार्हपत्य २ आहवनीय ३ तीनि ये और आवसथ्य ४ तथा सभ्य ५ इन पांचों अग्नियोंमें होम करते हुये पुरुषके संपूर्ण पंचाग्निमें होम आदि करनेसे जांड़े हुए पुण्योंको बिना पूजा हुआ अतिथि बसते हुये ले लेताहै ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनुता ॥ एतान्यपि संतां गेहे  
नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः  
स्मृतः ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २ ॥

टीका-अन्न न होय तौ तृण १ विछानेके लिये विश्रामके लिये भूमि २ पैर धोने आदिके लिये जल ३ प्यारे वचन ४ ये सब अतिथिके लिये धर्मात्मा गृहस्थके घरमें कभी नहीं दूर होते हैं अर्थात् अवश्य देने पडते हैं ॥ १ ॥ आतथेका लक्षण कहते हैं ॥ केवल एक राति पराये घरमें बसता हुआ ब्राह्मण सदा न रहनेसे अतिथि होता है नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ २ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा ॥ उपस्थितं गृहे विद्या  
द्वार्या यत्राग्रयोऽपि वा ॥ ३ ॥ उपासते ये गृहस्थाः परंपाकमबु-  
द्धयः ॥ तेन ते प्रेत्य पशुंतां ब्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ ४ ॥

टीका-एक गांवका रहनेवाला होय और लोकमें विचित्र हंसीकी कथा आदिसे संगती करि जीविका चाहनेवाला जो भार्या और अग्रियुक्त घरमें वैश्वदेवके समयमेंभी आवै तौ उसको अतिथि न जानिये ॥ ३ ॥ निषिद्ध पराये अन्नके दोषका न जाननेवाले जे गृहस्थ आतिथ्यके लोभसे दूसरे ग्रामोंमें जाके पराये अन्नका सेवन करते हैं वे उस पराये अन्नके भोजनसे दूसरे जन्ममें अन्न आदि देनेवालोंके पशु होते हैं तिस्से इसको न करै ॥ ४ ॥

अप्राणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ॥ काले प्राप्तस्त्वर्काले  
वा नास्यान्नं नृहे वसेत् ॥ ५ ॥ न वै स्वयं तदश्रीयादतिथिं यत्र  
भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ ६ ॥

टीका-सूर्यके अस्तहोनेपर आये हुए अतिथिको निषेध न करै क्योंकि सूर्य करि पहुंचाया गया वह रात्रिमें अपने घरको नहीं जा सकताहै द्वितीय वैश्वदेवके समय आया होय अथवा कुसमयमें सायंकालका भोजन हो चुकनेपर आया होय तौभी

आतिथे इस गृहस्थके घरमें विना भोजनके न बसै अर्थात् उसके कुछ भोजन अवश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो घी दही आदि उत्तम भोजन अतिथिको न दे वह उसको विना दिये आपभी न खाय क्योंकि अतिथिका भोजन धन्य कहिये धनके लिये हित है और यशका देनेवाला तथा आयुष्यका बढ़ानेवाला है और स्वर्गको देता है ॥ ६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेष्टमं कुंर्याद्धि  
ने हीनं समे समम् ॥ ७ ॥ वैश्वदेवे निवृत्ते तु यद्यन्योऽतिथि  
राव्रजेत् ॥ तस्यार्थ्यन्नं यथांशक्ति प्रदद्यान्न वलिं हरेत् ॥ ८ ॥

टीका—आसन अथवा मृगचर्म और सोनेको शय्या तथा खटिया आदि और जानेके समय पहुँचानेको साथ जाना और सेवा ये सब जो बहुतसे अतिथि एकही समय आवैं तौ उनमें आपसकी अपेक्षासे उत्तम मध्यम और निकृष्ट खातिगी अर्थात् जो जैसा होय उसकी वैसीही करै सबकी एकसी न करै ॥ ७ ॥ अतिथिभोजन-तक वैश्वदेव करनेपर जो और अतिथि आवैं तौ उसके लिये फिर रसोई करके अन्न दे और उसमेंसे बलि न निकालै ॥ ८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलं गोत्रे निवेदेयेत् ॥ भोजनार्थं हि तेशं  
संन्वान्तोशीत्युच्यते बुधैः ॥ ९ ॥ न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे  
राजन्य उच्यते ॥ वैश्यशूद्रौ संखा चैवं ज्ञातयो गुरुरेवं च ॥ ११० ॥

टीका—ब्राह्मण अपने कुल तथा गोत्रको भोजनकेलिय न कहै जिस्से भोजनको लिये उनको कहता हुआ वह पंडितों करिके वांताशी कहा गयाहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मण-के घरमें क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते हैं क्योंकि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणसे हीन जातिहैं और मित्र तथा ज्ञातिको अपने संबंधसे तथा गुरु प्रभु होनेसे अतिथि नहीं होता इस न्यायसे क्षत्रियके ऊँची ज्ञाति ब्राह्मण और अपनी जातिका क्षत्रिय अतिथि होताहै और हीन वैश्य शूद्र नहीं ऐसेही वैश्यके द्विजाति अतिथि होतेहैं शूद्र नहीं ॥ ११० ॥

यदि त्वतिथिर्धर्मैण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ॥ मुक्तं वत्सूक्तविप्रेषु कां  
मं तमपि भोजयेत् ॥ ११ ॥ वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुंडुम्बेऽतिथि  
धर्मिणौ ॥ भोजयेत्सहं भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजनम् ॥ १२ ॥

टीका—जो दूसरे ग्रामसे आने और अतिथिके कालमें प्राप्त होनेसे क्षत्रिय अतिथि

धर्मसे ब्राह्मणके घर आवै तौ ब्राह्मणके घर आये हुए ब्राह्मणोंके भोजन करके बैठनेपर इच्छासे उसकोभी भोजन करावै ॥ ११ ॥ जो वैश्य शुद्रभी ब्राह्मणके घरमें आवै और दूसरे ग्रामसे आनेके कारण अतिथिधर्म करि युक्त होय तौ उनकोभी क्षत्रियके भोजनके पीछे स्त्री पुरुषके भोजनसे पहले सेवकोंके भोजन समय दया करके भोजन करावै ॥ १२ ॥

इतरानपि संख्यादीन्संप्रीत्या गृहमार्गतान् ॥ संस्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सहं भार्यया ॥ १३ ॥ सुवासिनीः कुमारान्श्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽथ एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका-कहे हुए भोजनके समय क्षत्रिय आदिकोंके विना प्रीतिसे घरमें आये हुए अतिथिधर्मसे नहीं ऐसे मित्र सहपाठी आदिकोंको शक्तिके अनुसार अच्छा अन्नकरके भार्याके भोजन समयमें भोजन करावै ॥ १३ ॥ सुवासिनी कहिये नवीन व्याही हुई स्त्री बहू बेटीको बालकोंको रोगियोंको और गर्भवती स्त्रियोंको अतिथि भोजनसे पहलेही विना विचारके भोजनकरावै ॥ १४ ॥

अदित्वा तु यं एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः ॥ स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ १५ ॥ भुक्तवत्स्वथः विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैवं हि ॥ भुञ्जीयातां ततः पश्चाद्दवाशिष्टं तु दम्पती ॥ १६ ॥

टीका-व्यतिक्रम भोजनके दोषको न जानता हुआ जो इन अतिथिको आषिष्ठे भृत्योंतकको भोजन न देकर पहले आप भोजन करताहै वह मरनेके पीछे कुत्ता गीध करिके अपना भक्षण नहीं जानताहै ॥ १५ ॥ ब्राह्मण अतिथि ज्ञाति सेवक इन सबोंके भोजन करनेपर बचे हुए अन्नको पीछे स्त्रीपुरुष भोजन करै ॥ १६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन्गृह्यांश्च देवताः ॥ पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुङ्गभवेत् ॥ १७ ॥ अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ॥ यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सर्तमन्नं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका-देवता ऋषि मनुष्य पितृ और गृह्यदेवता इन सबोंका पूजन करके तिस पीछे गृहस्थ बाकीरहे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ जो अपनेही लिये अन्नका पाक करके भोजन, करताहै वह केवल पापहीको खाताहै अन्नको नहीं पाकयज्ञसे शेष रहे अन्नको अन्न कहतेहैं और इसीको सज्जनोंका अन्न कहतेहैं ॥ १८ ॥

राजर्त्विक्स्रातकगुरुन्प्रियंश्वशुरमातुलान् ॥ अर्हयेन्मधुपर्केण  
परिसंवत्सरात्पुनः ॥ १९ ॥ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपै  
स्थितौ ॥ मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयंज्ञ ईति स्थितिः ॥ १२० ॥

टीका—अतिथिकी पूजाके प्रसंगसे घरमें आयेहुए राजा आदिकोंकीभी पूजा कह-  
तेहैं । राजा ऋत्विक् स्रातक गुरु जामाता श्वशुर और मामा घरमें आयेहुए इन  
सातोंका एक वर्ष पीछे आनेपर गृहमें कहेहुए मधुपर्कसे पूजन करै ॥ १९ ॥ जो  
राजा और स्रातक एकवर्षके उपरांतभी यज्ञकर्ममें आवैं तौ मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं  
यज्ञके बिना नहीं यह मर्यादाहै और जामाता आदि तौ वर्षके उपरांत यज्ञके बिनाभी  
मधुपर्कके योग्य हैं और संवत्सरके मध्यमें तौ सबको यज्ञ और विवाहहीमें मधुपर्क  
दिया जाताहै अन्यत्र नहीं ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पतन्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥ वैश्वदेवं हि नामै  
तत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ २१ ॥ पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षये  
ऽग्निमान् ॥ पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ २२ ॥

टीका—संध्यासमय सिद्ध कियेहुए अन्नसे पत्नी विना मंत्रके बलि निकालै जिस्से  
अन्नसे करने योग्य होम बलिदान अतिथिभोजनरूप वैश्वदेवनामकर्म सायंकाल प्रातः-  
काल गृहस्थकेलिये कहा गया है ॥ २१ ॥ अग्निहोत्री द्विज अमावास्याके दिन  
पिंडपितृयज्ञनाम कर्म करिकै श्राद्ध करै पितृयज्ञ और पिंडोंके पीछे जो किया  
जाय उसको पिंडान्वाहार्यक श्राद्ध कहते हैं वह प्रतिमास कहिये महिने २ में  
करना चाहिये ॥ २२ ॥

पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥ तर्च्चामिषेणं कर्त्तव्यं  
प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ तत्र ये भोजनीयाः स्युर्यं च वज्या  
द्विजोत्तमाः ॥ यावन्तश्चैव ये श्रात्रैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—पितरोंके मासिक श्राद्धको पंडित अन्वाहार्य कहते हैं वह श्राद्ध आगे कहे  
हुए अच्छे मनोहर दुर्गंध आदिकरि रहित मांससे यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २३ ॥  
उस श्राद्धमें जो भोजन करानेयोग्य हैं और जो छोडने योग्य हैं और जितने तथा  
जिन अन्नकारिकै सो सब कहते हैं ॥ २४ ॥

द्वौ देवौ पितृकार्ये त्रीनेकैर्कसुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न

प्रसंजेत विस्तरे ॥ २५ ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसं  
पदः ॥ पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्ने<sup>२२</sup> हेतुं विस्तरम् ॥ २६ ॥

टीका-देवश्राद्धमें दो ब्राह्मण और पिता पितामह तथा अपितामहके श्राद्धमें तीनों ब्राह्मण अथवा दैवमें एक और पित्र्यमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै धनधान्य युक्त होनेपर भी कहेहुए ब्राह्मणोंसे अधिकको भोजन न करावै अर्थात् विस्तार न करै ॥ २५ ॥ सत्क्रिया कहिये ब्राह्मणकी पूजा और देश कहिये दक्षिणप्रवणत्व आदि जो आगे कहेंगे काल अपगह्ण और शौच कहिये शुद्धता और ब्राह्मणसंपत्ति कहिये गुणवान् ब्राह्मणका लाभ इन पांचोंका विस्तार नाश करता है इस कारण ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ॥ २६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषां पित्र्यं नाम विधुक्षये ॥ तस्मिन्पुत्रस्यै<sup>२३</sup> ति नि-  
त्यं प्रेतकृत्यैर्वै लौकिकी ॥ २७ ॥ श्रोत्रियायैर्वै देयानि हव्यक-  
व्यानि दातृभिः ॥ अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महांफलम् ॥ २८ ॥

टीका-जो यह श्राद्धरूप पितरोंका कर्म है सो प्रेतकृत्य अर्थात् पितरोंके उप-  
कारके लिखे किया प्रसिद्धहै सो विधुक्षये कहिये अमावास्याको करनी चाहिये उस  
पितरोंके कर्ममें लगेहुए पुरुषकी लौकिक तथा स्मार्तकी प्रेतकृत्या अर्थात् पितरों  
के उपकारार्थ क्रिया गुणवान् पुत्र पौत्र और धन आदिफलके प्रबंधरूपसे कर्त्ताको  
प्राप्त होतीहै तिससे यह कर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ दाताओंको दैव पित्र्यन्न अर्थात्  
हव्य कव्यके अन्न श्रोत्रिय जो वेदपाठीहै तिसको यत्नसे देने चाहिये, क्योंकि वेद  
आचार और कुटुंबसे अतियोग्य ब्राह्मणको दियाहुआ बडे फलका देनेवाला  
होताहै ॥ २८ ॥

एकैकर्मपि विद्वांसं दैवे<sup>२४</sup> पित्र्ये च भोजयेत् ॥ पुष्कलं फलमांप्रो-  
ति नामन्वैज्ञान्वहूँनपि<sup>२५</sup> ॥ २९ ॥ दूरादेवं परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारग-  
म् ॥ तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सो<sup>२६</sup> ऽति<sup>२७</sup> थिःस्मृतः ॥ १३० ॥

टीका-दैव और पित्र्यकर्ममें एक एक वेदके तत्व जाननेवाले ब्राह्मणको भोजन  
करावै तो भी अधिक श्राद्धके फलको प्राप्त होय बहुतसे मूर्ख ब्राह्मणोंको न भोजन  
करावै ॥ २९ ॥ पहले वेदकी संपूर्ण शाखा पढनेवाले ब्राह्मणकी परीक्षा करै जिस्से  
वह उसप्रकारका ब्राह्मण हव्य कव्योंका तीर्थ कहिये पात्रहै देनेमें वह अतिथिकं  
समान बडे फलकी प्राप्तिका कारणहै ॥ १३० ॥

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥ एकस्तांमन्त्रवित्प्रीतः  
सर्वानर्हति धर्मतः ॥ ३१ ॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवीं  
षि च ॥ न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरणैर्व शुद्धयतः ॥ ३२ ॥

टीका—जिस श्राद्धमें वेदके न जाननेवाले ब्राह्मण दशलक्ष भोजन करें वहां वेद-  
का जाननेवाला भोजनसे संतुष्ट हुआ एक ब्राह्मण धर्मसे उन सबकी बराबर है  
अर्थात् जो फल दशहजार मूर्खोंके भोजन करनेसे होता है वह एक वेदपाठीके भोजन  
करानेसे मिलताहै ॥ ३१ ॥ विद्यासे बड़े ब्राह्मणोंको हव्यकव्य देने चाहिये मूर्खोंको  
नहीं क्योंकि रुधिरके भरे हुए हाथ रुधिरहीसे शुद्ध नहीं होते हैं किंतु निर्मल जलसे  
ऐसे मूर्खके भोजनसे उत्पन्न हुआ दोष मूर्खके भोजनसे नहीं दूर होता है किंतु  
विद्वान्के ॥ ३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते प्रेत्यं  
दीर्तशूलष्टययोगुडान् ॥ ३३ ॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः कंचित्तपोनि  
ष्ठास्तर्थापरे ॥ तर्पः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तर्थापरे ॥ ३४ ॥

टीका—वेदका न जाननेवाला ब्राह्मण हव्यकव्योंमें जितने ग्रासोंको खाताहै उतनेही  
जलते हुए शूलों और ऋष्टिनाम शस्त्रोंको और लोहके पिंडोंको श्राद्ध करनेवाला  
मरकै यमलोकमें खाताहै ॥ ३३ ॥ कोई आत्मज्ञानमें तत्पर होते हैं और कोई प्राजा-  
पत्य आदि तपमें और कोई तप तथा वेदाध्ययनमें लगे रहते हैं और कोई यज्ञ  
आदि कर्ममें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ॥ हव्यानि तु यथान्या  
यं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ ३५ ॥ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेद  
पारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥ ३६ ॥

टीका—पितरोंका अन्न यत्नसे ज्ञानप्रधान ब्राह्मणको देना चाहिये और देवता-  
ओंका अन्न तौ न्यायसं अर्थशास्त्रके अनुसार चारोंको देना योग्य है ॥ ३५ ॥  
जिसका पिता वेद नहीं पढा है और आप पुत्र वेदका पारगामी है अथवा पुत्र वेद  
नहीं पढाहै पिता वेदका पारगामी है ॥ ३६ ॥

य्यायांसमनयोर्विद्यायस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥ मन्त्रसंपूजनार्थं  
तु संस्कारमितरोऽर्हति ॥ ३७ ॥ न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्यो  
ऽस्य संग्रहः ॥ नारिं नमिं त्रयं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्विज्जम् ३८ ॥



टीका-इन दोनोंमेंसे जिसका पिता वेदपाठी है उसको चाहै आप वेद न पढा हो परन्तु श्रेष्ठ जानिये और जिसका पिता वेदपाठी नहीं है और आप वेदपाठी है वह वेदमंत्रोंकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ ३७ ॥ श्राद्धमें मित्रको न भोजन करावै अन्यधनोंसे उसकी मित्रता पूरी करनी चाहिये जिसको शत्रु और मित्र न जानै अर्थात् उदासीनवृत्ति होय उस ब्राह्मणको भोजन करावै ॥ ३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥ तस्य प्रेत्य फलं नो  
स्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥ ३९ ॥ यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्रौ  
द्धेन मानवः ॥ सर्वगार्च्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः १४०

टीका-जिसके श्राद्ध और हवींमें अर्थात् दैवपिण्ड कर्ममें मित्रोंकी प्रधानता होती है उस श्राद्ध और हविका फल परलोकमें नहीं मिलता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य शास्त्रके न जाननेसे श्राद्धके द्वारा संगत जो मित्रभावहै ताहि कर्ता है वह श्राद्ध मित्र द्विजोंमें अधम स्वर्गलोकसे पतित होताहै अर्थात् स्वर्गको नहीं पाता है ॥ १४० ॥

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ॥ इहैवांस्ते तु सां लो  
के गौरं न्धवैर्कवेर्म्मनि ॥ ४१ ॥ यथेरिणे बीजमुपत्वा न वसां लभ  
ते फलम् ॥ तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दांता लभते फलम् ॥ ४२ ॥

टीका-जिसमें बहुतसे मनुष्य मिलिकै साथ भोजन करें वह सहभोजिनी दक्षिण-पिशाचका धर्म होनेसे द्विजों करि पैशाची कही गई है उसका फल मैत्री है इस कारणसे वह इसी लोकमें है परलोकमें ऐसे फल देनेवाली नहीं होतीहै, जैसे एकघरमें स्थित अंधी गौ दूसरे घरमें नहीं जासकती ॥ ४१ ॥ जैसे ऊसरमें बीज बोयकै बोनेवाला फलको नहीं पाताहै ऐसे मूर्खको भोजन कराकै दाता श्राद्धके फलको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

दातृन्प्रतिग्रहीतृंश्च कुरुते फलं भागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा  
विधिवत्प्रेत्य च ह च ॥ ४३ ॥ कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूप  
मपि त्वरिम् ॥ द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ ४४ ॥

टीका-वेदतत्त्वके जाननेवाले ब्राह्मणको शास्त्रके अनुसार दियाहुआ दान देने वाले और लेनेवाले दोनोंको इस लोक तथा परलोकमें फल देता है ॥ ४३ ॥ विद्वान् ब्राह्मणके न मिलनेपर बड़े गुणवान् मित्रको भोजन करावै और शत्रु वि-

ज्ञानमी होय तौ उसको भोजन न करावै क्योंकि शत्रुकरि खाया श्राद्ध परलोकमें निष्फल होताहै ॥ ४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वचं वेदपारगम् ॥ शौखान्तंगमर्थार्ध्वशु  
छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ ४५ ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्ध  
मर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती सातपौरुषी ॥ ४६ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप शाखा पढनेवाले ऋग्वेदीको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावै और  
बैसेही अर्थात् समस्तवेदके पढनेवाले यजुर्वेदीको भोजन करावै और समाप्तिपर्यन्त वेद  
पढनेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै ॥ ४५ ॥ इन संपूर्ण शाखा पढनेवाले बहुत आदि  
मेंसे जिसके यहा सत्कारपूर्वक भोजन करताहै उसकी पुत्र भादिसे सात पुरुषोंकी  
सदा बरोबर सातपुरुषोंतक पितरोंकी तृप्ति होती है ॥ ४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥ अतुकल्पस्तव्यं ज्ञे  
यः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ ४७ ॥ मातामहं मातुलं च स्वस्तीयं श्वशु  
रं गुरुम् ॥ दौहित्रं विपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ ४८ ॥

टीका—हव्यकव्य दोनोंके देनेमें जो संबन्धरहित श्रोत्रिय आदिकोंको दिया जाता  
है यह मुख्य कल्प है और मुख्यके न होनेमें आगे कहाहुआ अनुकल्प जानिये जो  
सदा सज्जनोंकरिके किया गया है ॥ ४७ ॥ नाना मामा भानजा श्वशुर गुरु दौहित्र  
जमाई और वंधु कहिये मौसी तथा बुआका पुत्र आदि ऋत्विक् तथा याज्य इन दश  
को मुख्य श्रोत्रिय आदिके न होनेमें भोजन करावै ॥ ४८ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षत देवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्ये कर्मणि तुं प्राप्ते  
परीक्षत प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥ ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृ  
त्तयः ॥ तांहव्यकव्ययोर्विप्रानर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला दैव श्राद्धमें ब्राह्मणकी भोजनकेलिये यत्नसे परीक्षा न  
करै लोककी प्रसिद्धिहीसे यह साधुतासे भोजन कराने योग्य है और फिर पितृसंबन्धी  
कार्यके आनेपर पिता पितामह आदिकी परीक्षा करनी योग्यहै ॥ ४९ ॥ चौर पतित  
क्लिये महापातकी नपुंसक नास्तिक कहिये जो परलोकको न मानै इन सबोंको दैव  
और पित्र्यकर्ममें मनुने अयोग्य कहाहै ॥ १५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं किर्तवन्तर्था ॥ यांजयन्ति च ये पूर्णास्तीं

श्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥५१॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रियिणस्तथा॥विपणेन च जीवन्तो वैज्याः स्युर्हव्यकर्व्ययोः॥५२॥

टीका-जटाधारी होय अथवा मूढ मुढाये होय ऐसा ब्रह्मचारी और वेदपढने रहित अर्थात् जिसका यज्ञोपवीतही हुआ है वेद नहीं पढाया गया और बुरी चमडीवाला और जुआरी और जो बहुतसे मनुष्योंको यजन करताहै जैसे ग्रामयाजक इन सबको श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ५१ ॥ वैद्योंको मंदिरधारियोंको मांस बेचनेवालोंको वाणिज करनेवालोंको दैवपित्र्यकर्ममें भोजन न करावै ॥ ५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुन्वी श्यावदन्तकः॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्चैर्व त्यक्ताग्निर्वाद्धुषिस्तथा ॥५३॥ यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः॥ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गर्णाभ्यन्तर एव च॥५४॥

टीका-गाँवकी और राजाकी आज्ञा करनेवाला जैसे हलकाग कुन्वी कहिये जिसके नख रोगसे विगडे होय और काले दांतवाला गुरुकी आज्ञा न माननेवाला और जिसने श्रौत स्मार्त अग्नि छोडदी है और व्याज खानेवाला ये सब दैवपित्र्यकर्ममें बर्जितहैं ॥ ५३ ॥ क्षयरोगवाला और पशुपाल जो जीविकाके लिये बकरी भेड आदिका चरानेवाला और परिवेत्ता परिवित्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और निराकृति कहिये पंचयज्ञोंका न करनेवाला और ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला और गणाऽभ्यन्तर कहिये गणके लिये त्याग किये हुए धनआदिसे जीविका करनेवाला ये दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥ पौनर्भवश्च काणश्च यं स्य चोपपतिर्गृहे ॥५५॥ भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ॥ शूद्रशिष्यो गुरुश्चैर्ववाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥५६॥

टीका-कुशीलव कहिये नाचनेवाला स्वांग आदिसे जीविका करनेवाला और अवकीर्णी जिसका व्रत स्त्रीके योगसे विगडगया होय चाहै ब्रह्मचारी हो वा संन्यासी और वृषलीपति कहिये जिसने सवर्णा न व्याही शूद्रासे व्याह किया होय और पुनर्भूपुत्र जो आगे कहेंगे और काना जिसके घरमें उपपति कहिये जा रहै ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥५५॥ नौकरीलेकर पढानेवाला तथा नौकरी लेकर पढनेवाला और व्याकरण आदिमें शूद्रका शिष्य और तैसेही शूद्रका गुरु और कठोर वाणी बोलनेवाला

और कुंड जो पार्तिके जीते हुए जारसे उत्पन्न होय और गोलक जो पतिके मरने पीछे जारसे उत्पन्न होय ये सदैव पित्र्य कर्ममें वर्जितह ॥ ५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ब्राह्मैर्यैर्नैश्च संवन्धैः  
संयोगं पतितैर्गतैः ॥ ५७ ॥ अगारदाही गरुदः कुण्डांशी सोमविक्रयी ॥ समुद्रयायी वन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ ५८ ॥

टीका—कारण बिना माता पिता और गुरुका त्याग करनेवाला अथात् उनकी सेवा आदि न करनेवाला और पढना तथा कन्यादान आदिसे जिसका पतितोंसे मेलहै ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्यागकरने योग्यहैं ॥ ५७ ॥ घरजलानेवाला और विषदेनेवाला और कुंडका अन्न खानेवाला और सोमलताका वेंचनेवाला और समुद्रमें जो जहाजपर चढिके द्वीपांतरोंको जाय और राजा आदिकोंकी स्तुति पढनेवाला और तेलकेलिये तिल आदि बीजोंका पीसनेवाला और झूठी गवाही देनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ५८ ॥

पित्रां विवदमानश्च कर्तवो मद्यपस्तथा ॥ पांपरोग्यभिर्शस्तश्च  
दांम्भिको रसविक्रयी ॥ ५९ ॥ धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्ने दि  
धिषूपतिः ॥ मित्रंशुक द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

टीका—पिताके साथ शास्त्रार्थमें अथवा लोकमें जो व्यर्थ विवाद करताहै और कितव जो आप जुआ खेलना नहीं जानताहै परंतु अपनेलिये औरोंको खेलनेवाला तथा मद्य पीनेवाला और कोठी और निर्णय न होनेपरभी जिसको महापातक आदि लागी रहें और छलसे धर्म करनेवाला और ईश्व आदिके रसका वेंचनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५९ ॥ धनुष आर बाणका बनानेवाला और जेठी वहिनका व्याह न होनेपर जो व्याही जाय उसको “ अग्नेदिधिषू ” कहते हैं उसका पति और जो मित्रकी बुराई करै और जो जुआ खेलनेवाला और पुत्र कारि पढाया हुआ पिता ये भी सब वर्जितहैं ॥ १६० ॥

भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ॥ उन्मत्तोऽन्धश्च  
वैज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ ६१ ॥ हस्तिगोश्वोषूदमको नक्षत्रै  
र्यश्च जीवति ॥ पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ ६२ ॥

टीका-मिरगीरोगवाला और कंठमालारोगवाला और श्वेतकुष्ठयुक्त और दुर्जन और उन्मादरोगवाला और अंधा और वेदकी निंदा करनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ६१ ॥ हाथी बैल घोडा और ऊंट इन सवाँका सिखानेवाला और ज्योतिषसे जीविका करनेवाला और खेलके लिये पिंजरेमें रखकर पक्षियोंका पालनेवाला और शस्त्रविद्याका सिखानेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ६२ ॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः॥गृहसंवेशको दूतो वृक्षा रोपक एव च ॥ ६३ ॥ श्वक्रीडी ज्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ॥ हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ ६४ ॥

टीका-बहते हुए प्रवाहोंके पुल आदिको तोड़के दूसरे देशमें लेजानेवाला और उन्हीं जलोंकी निजगतिका रोकनेवाला और वास्तुविद्या जो घर आदि बनानेकी विद्या है उससे जीविका करनेवाला और हलकारा और नौकरी लेकर वृक्षोंका लगानेवाला धर्मके लिये नहीं क्योंकि लिखा है कि, 'पश्चात्तरोपी नरकं न याति' अर्थात् धर्मके निमित्त पांच आमके पेड़ोंका लगानेवाला नरकको नहीं जाता है इति । ये सब ऊपर कहेहुए वर्जितहैं ॥ ६३ ॥ खेलकेलिये कुत्तोंका पालनेवाला और बाजोंके बचने खरीदनेसे जीविका करनेवाला और कन्यासे गमन करनेवाला और हिंसा करनेवाला और शूद्रोंकी वृत्ति करनेवाला और विनायकादि गणोंका यज्ञ करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं यार्चनकर्तृता ॥ कृषिजीवीश्लिषदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ ६५ ॥ औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ॥ प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

टीका-गुरु और अतिथिके अभ्युत्थान आदि आचारसे रहित और क्लीब कहिये जो धर्मकार्यमें उत्साहरहित होय वह नपुंसक पहले कहचुकेहैं और नित्य माँगनेसे दूसरेको दिक्क करनेवाला और जो आप खेती करिके खाताहै वह श्लिषदरोगसे मोटे पैरवाला और किसीकारण साधुओंने जिसकी निंदा कीहै वह ये सब वर्जितहैं ॥ ६५ ॥ मेढा भैंसी आदिसे जीविका करनेवाला पर और पूर्वा पुनर्भूका पति और धर्मार्थ नहीं किंतु धन लेकर प्रेतका लेजानेवाला और ये सब यत्नसे वर्जनीयहैं ॥ ६६ ॥

एतान्विर्गहिताचारानपाङ्केयान्द्विर्जाधमान्॥द्विजातिप्रवरो विद्वा नुभयत्र विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणांभिरिव शाम्यति ॥ तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूर्यते॥६८॥

टीका—इस जन्ममें निर्दित हैं आचार जिनके ऐसे स्तेन अर्थात् चोर आदिकोंको और पूर्वजन्ममें इकठे कियेहुए निर्दित कर्मोंसे हुआ है काणापन जिनको ऐसे मनुष्योंको और अपांक्तेय कहिये जो सज्जनोंके साथ एक स्थानमें बैठकर भोजनके योग्य न होय ऐसे नीच ब्राह्मणोंको शास्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करै ॥ ६७ ॥ जैसे तृणकी आग्नि हवि जलानेकी नहीं समर्थ होती हवि डालनेसे आप बुझजाती है तौ उसमें होम निष्फल है ऐसेही वेदाध्ययनशून्य ब्राह्मण तृणकी आग्निके समानहै उसको देवताके नामसे छोडा हवि न देना चाहिये क्योंकि भस्ममें होम नहीं किया जाता है ॥ ६८ ॥

अपाङ्कदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ॥ दैवे हविपि पित्र्ये वा  
तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६९ ॥ अत्रैतैर्यद्विजैर्भुक्तं परिवेत्तादिभि  
स्तथा ॥ अपांक्तेयैर्यदन्पैश्च तद्दे<sup>१२</sup> रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥

टीका—पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे ब्राह्मणको दैव तथा पित्र्य हवि देनेसे दाताको देनेके पीछे जो फल होताहै उसको संपूर्णतासे कहेंगे ॥ ६९ ॥ वेदके ग्रहणके अर्थ जो व्रतहै उससे रहित तैसेही परिवेत्ता आदिकों करके तथा अन्यअपांक्तेय स्तेन आदिकों करके जो हव्यकव्य खायागया उसको राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फल होताहै ॥ १७० ॥

दारोग्रिहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्तां स विज्ञैर्यः प  
रि<sup>११</sup> वित्तिस्तुं पूर्वजः ॥ ७१ ॥ परि<sup>११</sup> वित्तिः परिवेत्ता यया च प  
रिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ७२ ॥

टीका—परिवेत्ता आदिका लक्षण कहते हैं ॥ जो सहोदर बडे भाईका न व्याह होनेपर और अग्निहोत्ररहित होनेपर विवाह और स्मार्त्तअग्निका ग्रहण करताहै वह परिवेत्ता और उसका जेठा भाई परिवित्ति होता है ॥ ७१ ॥ प्रसंगसे परिवेदन संबंधी पांचोंका अनिष्टफल कहते हैं ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता जिस कन्यासे विवाह करता है उस कन्याका देनेवाला और विवाह करनेवाला याजक अर्थात् उसविवाहका होम करनेवाले पांचमें समेत सब वे नरकको जाते हैं ॥ ७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्यः भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मैणापि<sup>१</sup> नियुक्ता  
यां संज्ञे<sup>१२</sup> यो दिधिपूंपतिः ॥ ७३ ॥ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कु

ण्डगोलकौ॥पृत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तारि गोलकः ॥७४॥

टीका-मरे हुए भाईकी आगे कहेहुए नियोग धर्मसे भी नियोग कीगई स्त्रीमें एक एक वार ऋतुमें गमन करै इत्यादि विधिको छोडकर कामसे आलिंगन चुंबन आदि जो करता है अथवा वारवार प्रवृत्त होता है उसको दिधिषूपति कहते हैं ॥ ७३ ॥ पराई स्त्रियोंमें कुंड और गोलक नाम दोनों पुत्र उत्पन्न होते हैं पतिके जीवतेहुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरने पीछे उसीभांति गोलक होता है ॥७४॥

तौ तु जातौ परिक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च॥दत्तानि हव्यकव्यानि  
नाशयेते प्रदायिनाम्॥७५॥अपाङ्क्तयो यावतः पाङ्क्तयान् भुञ्जा  
नाननुपश्यति॥तावतां न फलं प्रेत्य दातां प्राप्नोति वालिशः॥७६॥

टीका-पराई स्त्रीमें उत्पन्न हुए वे कुंड और गोलक दोनों प्राणी इस लोकमें कीर्ति आदिको और परलोकमें देनेवालेके हव्यका नाश करते हैं अर्थात् देनेवालोंकरि दिये हुए हव्यकव्योंको निष्फल करते हैं ॥ ७५ ॥ सज्जनोंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे स्तेन आदि जितने पंक्तिमें भोजनयोग्योंको देखता है उतनोंके भोजनका फल उस श्राद्धमें मूर्ख दाता नहीं पाता है इससे जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे करना चाहिये ॥ ७६ ॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्ठेःश्वेत्री शैतस्य तु ॥पापरोगी सह-  
स्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ ७७ ॥ यावतः संस्पृशेद् ब्रह्महृणा  
च्छूद्रयाजकः ॥ तावतां न वैदातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥७८॥

टीका-अंधा देख नहीं सकता परंतु देखनेयोग्य स्थानमें जानेसे पंक्तियोग्य नब्बे ब्राह्मणोंके भोजन फलको नाश करता है ऐसेही काणा साठिका और श्वेतकुष्ठी सौका और पापरोगी हजारका फल नाश करता है ॥ ७७ ॥ शूद्रके यज्ञ आदिमें ऋत्विक् जितने ब्राह्मणोंको अंगोंसे छूता है अर्थात् जितने श्राद्धमें भोजन करनेवालोंकी पंक्तिमें बैठता है उन सबोंकी पूर्तिका फल देनेवालेको नहीं मिलता है ॥ ७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ विनाशं ब्रजति  
क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ ७९ ॥ सोमविक्रयिणे विष्टां भिक्षे  
पूयशोणितम् ॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्टं तु वार्धुषे ॥ १८० ॥

टीका-वेदका जाननेवालाभी जो ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजकका दान लेता है-

वह पानीमें कच्चे मट्टीपात्रके समान शीघ्रही शरीर आदिसे नाशको प्राप्त होता ॥  
 ॥ ७९ ॥ सोमलता बेचनेवालेके लिये जो दिया जाता है वह देनेवालेके भोजनके  
 लिये विष्ठा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्ममें विष्ठा खानेवालोंकी जातिमें  
 उत्पन्न होता है ऐसेही वैद्यके देनेसे पीव और रक्त होता है अर्थात् दाता दूसरे जन्ममें  
 पीव रक्त खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है और देवलकको दिया हुआ नष्ट होजा-  
 ता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याज खानेवालेको दिया हुआ अप्रतिष्ठ कहिये  
 आश्रयरहित होनेसे निष्फल है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं न हं नाँमुत्र तद्भवेत् ॥ भस्मनीव हुंत ह्व्यं  
 तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ ८१ ॥ इतरेषु त्वपाङ्क्तयेषु यथोद्दिष्टेष्व  
 सांधुषु ॥ मेदोसूड्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिर्णः ॥ ८२ ॥

टीका—श्राद्धमें जो वणिज करनेवालेके लिये दिया जाता है वह इस लोक तथा  
 परलोकमें फलका देनेवाला नहीं होता है और जो पुनर्भूपात्रके लिये दिया हुआ है  
 वह भस्ममें होमी हुई हविके समान निष्फल होता है ॥ ८१ ॥ विशेष कर जिनका  
 फल नहीं कहा है ऐसे पंक्तिमें भोजनके योग्य पहले कहे हुए स्तेन आदिकोंके  
 लिये दिया हुआ जो अन्न वह देनेवालेके भोजनके मेदा रुधिर मांस मज्जा और हाड  
 होजाता है यह पण्डित कहते हैं यहांभी दूसरे जन्ममें मेदा रुधिर आदि खानेवालों-  
 की जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८२ ॥

अपाँक्तयोपहाता पंङ्क्तिः पाँव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तांनिर्वोधत  
 काँत्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान् ॥ ८३ ॥ अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु स-  
 र्वप्रवर्चनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ८४ ॥

टीका—एक पंक्तिमें बैठे हुए स्तेन आदिकों करि दूषित की हुई पंक्ति जिन ब्राह्मणों  
 करि पवित्र की जाती है उन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्णतासे आप मुनिये  
 ॥ ८३ ॥ चारों वेदोंमें अन्न कहिये श्रेष्ठ अर्थात् जिन्होंने अच्छी तरहसे चारों वेद  
 पढ़े हैं वे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और प्रकर्ष करके जो वेदके अर्थको कहें वे  
 प्रवचन कहाते हैं अर्थात् अंग उनमें अग्र्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छहों अंगोंके जानने-  
 वाले चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और श्रोत्रियान्वयजा कहिये  
 दशपीढीसे वेद पढ़नेवालोंके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं ॥ ८४ ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंता-



नो ज्येष्ठसामग एव च ॥ ८५ ॥ वेदार्थवित्प्रवृत्ता च ब्रह्मचारी  
सहस्रदः ॥ शतायुश्चै व विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ८६ ॥

टीका-त्रिणाचिकेतयजुर्वेदका एक भाग है उसका व्रत करनेवाला ब्राह्मण त्रिणा-  
चिकेत होता है १ वह और पंचाग्निहोत्री २ और त्रिसुपर्ण ऋग्वेदका एक भाग है  
उसका पढनेवाला ब्राह्मण त्रिसुपर्ण कहा जाता है वह ३ और जो शिक्षा आदि छः  
अंगोंको पढा होय वह षडंगवित् ४ ब्राह्मविवाहमें विवाहो दुईसे उत्पन्न पुत्र ५ ज्येष्ठ  
साम आरण्यमें गाये जाते हैं उनका गानेवाला ६ ये छः पंक्तिपावन जानने योग्य  
ह ॥ ८५ ॥ वेदके अर्थका जाननेवाला १ और वेदके अर्थका कहनेवाला २ ब्रह्म-  
चारी ३ हजार गौओंका वा अधिकका देनेवाला ४ और सौवर्षकी अवस्थाका श्रो-  
त्रिय ५ ब्राह्मण पंक्तिके पवित्र करनेवाले जानिये ॥ ८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वी श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निर्मन्त्रयेत त्र्यव्वरान्संम्य  
ग्विप्रान्यथोदितान् ॥ ८७ ॥ निर्मन्त्रितो द्विजः पित्र्ये निर्यतात्मा  
भवेत्सदा ॥ न च छन्दास्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका-श्राद्धकर्मके प्राप्त होनेपर श्राद्धके दिनसं एक दिन पहले जो न हो सकै  
तौ उसी दिन जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसों तीनि अथवा एक ब्राह्मणको सत्कार  
पूर्वक निर्मंत्रण करै ॥ ८७ ॥ श्राद्धमें न्योता दिया गया ब्राह्मण न्योतेके दिनसे श्रा-  
द्धके दिनरातितक संयम नियमसे रहै अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करै और अदृश्य कर-  
नेयोग्य जप आदिको छोडकर वेदके अध्ययनको भी न करै और श्राद्ध करनेवालाभी  
इसी नियमसे रहै ॥ ८८ ॥

निर्मन्त्रितान्हि पितर उर्पतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ॥ वीर्यायुवञ्चानुगच्छे-  
न्ति तथासीनानुर्पासते ॥ ८९ ॥ केतितस्तु यथान्यायं हव्ये कव्ये  
द्विजोत्तमः ॥ कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ ९० ॥

टीका-न्योतेगये ब्राह्मणोंमें पितर अदृश्यरूपसे स्थित होते हैं और प्राणपवनके  
समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठनेपर समीप बैठते हैं तिस्से उनको  
नियमसे रहना चाहिये ॥ ८९ ॥ हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निर्मंत्रण किया गया  
ब्राह्मण न्योतेको अंगीकार करके किसी प्रकारसे भोजन न करताहुआ उस पापसे  
दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥ ९० ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ॥ दातुर्यदुष्कृतं किं  
चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्म  
चारिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ९२ ॥

टीका—श्राद्धमें निमंत्रण किया हुआ जो ब्राह्मण वृषलीके साथ भोग करता है वह देनेवालेके पापको प्राप्त होताहै । वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामुकी इच्छासे जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याही हुई ब्राह्मणीभी वृषली हो सकती है ॥ ९१ ॥ क्रोधरहित और शौचपरा कहिये बाहरी शौच मिट्टी पानी आदिसे भीतरी रागद्वेष आदिका त्याग तिसकरके युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और युद्धके छोडनेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणों करिके युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं तिसे भोजन करनेवालेको तथा श्राद्धकरनेवालेको क्रोध आदिसे रहित होना चाहिये ॥ ९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्यु  
नियमैस्तांनिबोधत ॥ ९३ ॥ मनोहरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः  
सुताः ॥ तेषामृषीणांसर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

टीका—इन सब पितरोंकी जिसे उत्पत्ति हुई है और जे पितर जिन ब्राह्मण आदि कोंकरि जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मोंकरि उपचार करनेयोग्य होते हैं उन सर्वोंको सुनिये ॥ ९३ ॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जे मरीचि आदि पुत्र पहले कहे गये हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र सोमपा आदि पितृगण मनु आदिकोंने कहे हैं ॥ ९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदःसाध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च  
देवानां मरीचा लोकां विश्रुताः ॥ ९५ ॥ दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वा  
रगरक्षसाम् ॥ सुपर्णकिंनराणां च स्मृता वर्हिपदोऽत्रिजाः ॥ ९६ ॥

टीका—विराटकं पुत्र सोमसदनाम साध्योंके पितर हैं और मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंको पितर कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ दैत्य दानव यक्ष गन्धर्व उरग राक्षस सुपर्ण और किन्नरोंके वर्हिपद नाम पितर कहे गये हैं ॥ ९६ ॥ सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानां माज्यपा ना

म शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ ९७ ॥ सोमपास्तुं कवेः पुत्रां हविर्भन्तो  
ऽङ्गिरःसुताः ॥ पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ९८ ॥

टीका-ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे गये हैं ॥ अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा क्षत्रियोंके हविर्भुज वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंको सुकालिन ॥ ९७ ॥ कवि जे ऋगु हैं तिनके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके हविर्भुज पुत्र हैं पुलस्त्यके आज्यपा नाम हैं और वसिष्ठके सुकालिन हैं ॥ ९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्क्रौव्यान्वर्हिषदस्तथा ॥ अग्निष्वात्तांश्च सौ  
म्यांश्च विप्राणामेवं नि<sup>१</sup> दिशेत् ॥ ९९ ॥ य एते तु गणा मुख्याः पि  
तृणां परिकीर्तिताः ॥ तेषामपीह वि<sup>३</sup> ज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् २००

टीका-अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य वर्हिषद अग्निष्वात्त और सौम्य इनको ब्राह्मणोंहीको पितर जानिये ॥ ९९ ॥ जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे गये हैं तिनकेभी इस जगतमें पुत्र पौत्र आदि अनन्त पितर जानने योग्य हैं इस श्लोकमें सूचितही वरवरेण्य इत्यादि और भी मार्कण्डेयआदि पुराणोंमें सुने जाते हैं ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥ देवभ्यस्तु जै-  
गत्सर्वे चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ १ ॥ राजतैर्भाजनैरेषामथो वा  
राजतान्वितैः ॥ वार्यार्षि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २ ॥

टीका-मरीचि आदि ऋषियोंसे कहेहुये क्रमके अनुसार पितर हुए और पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगमस्थावर जगत क्रमसे उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदीयुक्त पात्रोंसे अथवा तामे आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण होताहै फिर अच्छी खीर आदिका तौ क्या कहना है ॥ २ ॥

देवकार्याद्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ देवं हि पितृकार्यं  
स्य पूर्वमाप्येयनं श्रुतम् ॥ ३ ॥ तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं देवं नियो  
जयेत् ॥ रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ ४ ॥

टीका-देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है उससे पितरोंका कार्य द्विजातियोंको अवश्य कर्त्तव्य कहा है इससे पितृश्राद्धकी

मुख्यता और दैव अंग है जिस्से दैवकर्म पितृकृत्यका परिपूर्ण करनेवाला कहा गया है ॥ ३ ॥ उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करनेवाले विश्वेदेव ब्राह्मणोंका निमंत्रण करै क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस छीन लेतेहैं ॥ ४ ॥

दैर्वाद्यन्तं तदीहेतुं पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ॥ पित्राद्यन्तं त्वीहमानः  
क्षिप्रं<sup>२</sup> नश्यति सान्वयः ॥ ५ ॥ शुचि देशं वि<sup>३</sup> वित्तं च गोमये-  
नोपलेपयेत् ॥ दक्षिणांप्रवणं चै<sup>४</sup> वं प्रयत्नेनोपर्पादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—इसीसे वह पित्र्यश्राद्ध दैवकर्म है आदि और अंतमें जिसके दैवहै ऐसा करै पित्र्य जिसके आदि अंतमें होय ऐसा न करै और पित्र्य जिसकी आदि अंतमें होता है ऐसे श्राद्धको करताहुआ पुरुष कुटुंबसहित शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ ५ ॥ शुद्ध तथा एकांत देशको गोबरसे लिपावै और यत्नसे दक्षिणकी ओर झुका हुआ रखवै ॥ ६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चै<sup>३</sup> वहि ॥ विविक्तेषु च तुष्यन्ति  
दत्तेन पितरः सदा ॥ ७ ॥ आसनेपूपकूर्मेषु वर्हिर्मत्सु पृथक्पृ-  
थक् ॥ उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रास्तानुपवेशयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अवकाशोंमें और चोक्ष कहिये स्वभावसे शुवन आदि स्थानोंमें और नदी आदिके किनारोंमें और शून्यस्थानोंमें कियेहुए श्राद्धआदिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थानमें कुशांसमेत जुदे २ विछायेहुए आसनोपर पहले निमंत्रित स्नान आचमन कियेहुए ब्राह्मणोंको अच्छीतरह बैठवै इहां देवब्राह्मणके आसनपर दो कुश रखवै और पितृब्राह्मणके आसनमें प्रत्येकपर दक्षिणकी जिसका अग्र है ऐसा एक एक कुश रखना चाहिये ॥ ८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥ गन्धमालयैःसुरभि  
भिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तेषामुदकमानीय संपवित्रांस्तिलान  
पि ॥ अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

टीका—उन अनिदित ब्राह्मणोंको आसनोपर बैठायकै केशर आदि सुगन्ध और माला धूप आदिसे पहले देवपूजन करिकै पूजै ॥ ९ ॥ उन ब्राह्मणोंके अर्धजलसे पवित्र तिलोंको मिलाकर उन ब्राह्मणोंके साथ आज्ञा लेकर अग्निमें आगे कहाहुआ शौम करै ॥ २१० ॥

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्ययनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिं

त्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥ ११ ॥ अग्न्यभावे तु विप्रस्यै पाँणावेवोप  
पादयेत् ॥ यो ह्यग्निःसं द्विजो वि<sup>३</sup> प्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ १२ ॥

टीका-पहले विधिपूर्वक पर्युक्षण आदिको करिकै हाथके देनेसे अग्नि सोम और यमको प्रसन्न करिकै पीछे अन्न आदिसे पितरोंको वृत्त करै ॥ ११ ॥ अग्निके न होनेमें फिर ब्राह्मणोंके हाथहीमें पहले कहीहुई तीनि आहुति दे जिस्से जो अग्नि है वही ब्राह्मणहै यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है ॥ १२ ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदंत्येताँनपुरातनान् ॥ लोर्कस्याप्ययने युक्ता  
ऋद्धेदेवान्द्विजोत्तमान् ॥ १३ ॥ अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमार्व  
त्य विक्रमम् ॥ अपसव्येन हस्तेन नि<sup>३</sup> वपेदुदकं भुवि ॥ १४ ॥

टीका-क्रोधरहित प्रसन्नमुख और प्रवाहकी अनादितासे पुराने और लोककी वृद्धिके लिये उपाय करनेवाले ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको मनु आदि आचार्य श्राद्धका पात्र कहते हैं ॥ १३ ॥ अग्नौकरण और होम करनेके क्रमको अपसव्य कहिये दाहिनी ओर धरिकै तिस पीछे अपसव्य हो दाहिनी हाथसे पिंड धरनेकी भूमिमें जल छिड़कै ॥ १४ ॥

त्राँस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैवं वि-  
धिनाँनि वपेद्दक्षिणाँसुखः ॥ १५ ॥ न्युप्यपिण्डाँस्ततस्ताँस्तु प्रयतो  
विधिपूर्वकम् ॥ तेषु दर्भेषु तं<sup>३</sup> हस्तं निमृज्यालेपभाँगिनाम् ॥ १६ ॥

टीका-उस अग्नि आदिके होमसे वचेहुए अर्थात् निकालनेसे शेष रहे अन्नसे तीनि पिंड बनाकै जलदानहीकी विधिसे दाहिने हाथसे सावधान एकाग्रचित्त हो दक्षिणको मुख करि कुशोंके ऊपर रखै ॥ १५ ॥ अपने गृहमें कही हुई विधिसे उन पिंडोंको कुशाँऊपर स्थापित करि उन कुशाँके मूलमें लेपभुजस्तृप्यन्तु ऐसे कहिकै लेपके भोजन करनेवाले प्रपितामहके पिता आदि तीनि पुरुषोंकी तृप्तिके लिये एक कुशसे हाथको पीछिदे ॥ १६ ॥

औचम्योदकपरवृत्य त्रिरायम्यं शनैरसून् ॥ पडंऋतुंश्चनर्मस्कुया-  
त्पितॄन्वै च<sup>३</sup> मन्त्रवित् ॥ १७ ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्ति-  
के पुनः ॥ अवजिब्रेचं ताँन्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ १८ ॥

टीका-इस पीछे आचमन करि उत्तराभिसुख हो शक्तिके अनुसार तीनि प्राणायाम करिकै वसंताय नमस्तुभ्यम् ऐसे कहि छः ऋतुओंको नमस्कार करै फिर

“नमो वः पितर” इत्यादि मंत्रको पाँडे दक्षिणाभिमुख हो नमस्कार करै ॥ १७ ॥  
पिंड देनेसे पहले पिंड धरनेके स्थानमें धरे हुए जलके पात्रमें शेष रहे जलको प्रत्येक  
पिंडकी समीप भूमिमें क्रमसे फिर छोड़दे फिर उन पिंडोंको जिस क्रमसे रक्खाया  
उसी क्रमसे उठाकै सावधान हो सूँघै ॥ १८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वैल्पिकां मांत्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेव विप्रान्ना-  
सीनान्वाधिवैत्पूर्वमाशयेत् ॥१९॥ ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामे-  
व निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥२२०॥

टीका—पिंडोंमेंसे लिये हुए छोटे २ भागोंको पिताके पिंडके क्रमहीसे लेकर उन्हीं  
पिता आदि ब्राह्मणोंको भोजनकालमें भोजनसे पहले जिमावै और विधिपूर्वक पिंड  
करनेके अनुसार पिताका नाम लेकर जो पिंड दिया गया है उसके अवयवरूप  
पितृब्राह्मणको भोजनकरावै ऐसेही पितामह प्रपितामहके पिंडोंकाभी करे ॥ १९ ॥  
पिताके जीवते हुए मरे हुए पितामह आदि तीनोंका श्राद्ध करै अथवा पिताके स्थानमें  
उसी निजपिताको भोजन करावै और पितामह प्रपितामहके ब्राह्मणभोजन करावै  
और दो पिंड दे ॥ २२० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवित्त्वापि पितामहः ॥ पितुः संनाम  
संकीर्त्यकी तयेत्प्रपितामहम् ॥२१॥ पितामहो वा तच्छ्राद्धं भु-  
ञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२॥

टीका—जिसका पिता तौ मरगया होय और पितामह जीवता होय वह पिता और  
पितामहका श्राद्ध करै और गोविंदराजका यह मतहै कि, जिसके पिता और प्रपिता-  
मह मरिगये होय वह पिताके लिये पिंडदेकर पितामहसे परे दोके लिये पिंड दे इस  
विष्णुके वचनसे प्रपितामह और उसके पिताको पिंड दे ऐसा व्याख्यान किया है  
॥ २१ ॥ जैसे जीवता हुआ पिता भोजन कराने योग्य है ऐसेही पितामहभी पिता-  
महब्राह्मणके स्थानमें भोजन कराने योग्य है पिता और पितामहके ब्राह्मण भोजन  
करावै और पिंडदान करै अथवा जीवते हुए पितामहसे तुम्ही अपनी रुचिके अनु-  
सार करौ ऐसी आज्ञा पाकै अपने पितामहको भोजन करावै अथवा पिता और  
प्रपितामहके दो श्राद्ध करै और विष्णुके वचनसे पिता प्रपितामह और वृद्ध  
प्रपितामहके तीन श्राद्ध करै ॥ २२ ॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सर्पवित्रं तिलोदकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत्

स्व धैर्षामस्त्विं विं त्रुवन् ॥२३॥ पाणिभ्यां तूर्पसंगृह्य स्वयमन्न-  
स्य वैर्द्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितृन्ध्यायच्छन्नैरूपानिक्षिपेत् ॥२४॥

टीका—उन ब्रह्मणोंके हाथोंमें कुशोंसमेत तिलोदक देके वह पहले कहा हुआ पिंडका अल्पभाग पित्रे स्वधाअस्तु इत्यादि मंत्रको पढता हुआ पिता आदि तीनि ब्राह्मणोंके लिय क्रमसे दे ॥ २३ ॥ अन्नका वर्धित कहिये भराहुआ वह लोही आदि पात्र अपने हाथोंमें लेकर पितरोंका चितवन करता हुआ पाकके स्थानसे लाकर ब्रह्मणोंके समीप परोसनेके लिये हालसे धर दे ॥ २४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः स-  
हसां दुष्टचेतसः ॥ २५ ॥ गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि  
घृतं मधुं ॥ विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमिमावेवं समाहितः ॥ २६ ॥

टीका—दोनों हाथोंमें नहीं स्थित अर्थात् एक हाथसे लाया गया अन्न जो ब्राह्मणोंके समीप पहुँचाया जाताहै वह दुष्टबुद्धिअसुर छीन लेते हैं तिससे एक हाथसे लाके न परोसना चाहिये ॥ २५ ॥ व्यंजन कहिये चटनी आदिको अथवा दाल शाक आदि और दूध दही मीठा सूप आदि शुद्ध सावधान और एकाग्रचित्त हो अच्छी भाँति जैसे फैले नहीं ऐसे अपने पात्रमें स्थित सब पदार्थों को भूमिहीम रक्खे पेटे आदिपर न रक्खे ॥ २६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि च वैमां-  
सानि पानीनि सुरभीणि च ॥२७॥ उपनीय तु तत्सर्वं शन्नकैः  
सुसमाहितः ॥ परिवेषयेत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २८ ॥

टीका—भक्ष्य सुंदर अच्छे लड्डू आदिको और भोज्य खीर आदिको तथा नाना प्रकारके फल मूलोंका और हृदयके प्यारे मांसो तथा सुंगंधित जलको भूमिहीम रक्खे ॥ २७ ॥ इन सब अन्न आदिको ब्राह्मणके समीप लाय सावधान शुद्ध और एकाग्रचित्त हो क्रमसे परोसै यह मीठा है यह खट्टा है ऐसे मधुर आदिगुणों को कहता जाय ॥ २८ ॥

नास्त्रिंशत्पातयेज्जातुं न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ नै पादेन स्पृशेदन्नं  
नै चेतदवधूनयेत् ॥ २९ ॥ अस्त्रिंशत् गमयति प्रेतान्कोपोऽरीन-  
नृतं शुनः ॥ पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ ३० ॥

टीका—परोसनेके समय कभी आसूँ न डाले न क्रोध करै न झूट बोलै और अन्नको पैरसे न छूवै और न इसको पात्रमें उछालै ॥ २९ ॥ निकाला हुआ आसूँ श्राद्धके अन्नको भूतोंको पहुंचाता है पितरोंको नहीं पहुंचता है और क्रोध शत्रुओंको और झूट बोलना कुत्तोंको और पैरसे छूना राक्षसोंको और उछाला हुआ पाप करने-वालोंको किसे रोना आदि न करै ॥ २३० ॥

यद्यद्भोचेत् वि प्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ॥ ब्रह्माद्यांश्च कथाः कुंर्यात्पि-  
तृणामेतदीप्सितम् ॥ ३१ ॥ स्वाध्यायं श्रौचयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि  
चैवं हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानिखिलानि च ॥ ३२ ॥

टीका—जो जो अन्न व्यंजन आदि ब्राह्मणोंको रुचे उसको मत्सररहित होकर दे और परमात्माके निरूपणकी वार्ता करै इसलिये कि, पितरोंको यह अपेक्षितहै ॥ ३१ ॥ वेद मानव आदि धर्मशास्त्र सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्यान 'महामारत' आदि इतिहास 'ब्रह्मपुराण' आदिपुराण और श्रीमूक्त शिवमूक्त आदि अखिल श्राद्धमें ब्राह्मणोंका सुनावै ॥ ३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैःशनैः ॥ अन्नाद्येनासंकृच्चैतान्गुं  
णैश्च परि चोदयेत् ॥ ३३ ॥ व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोज  
येत् ॥ कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च वि किरन्महीम् ॥ ३४ ॥

टीका—आप प्रसन्न होकर प्यारे वचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै और अन्नको मीठे तथा खीर आदिसे हौले २ भोजन करावै यह खीर बड़ी स्वादिष्ठ है यह लड्डू बहुत अच्छा है लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर वारंवार लेनेके लिये ब्राह्मणोंकी प्रेरणा करै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावै और आसनमें नेपालका कंबल दे और श्राद्धकी भूमिमें तिलोंको बिखेर दे ॥ ३४ ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्रं  
शंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ ३५ ॥ अत्युष्णं सर्वमंत्रं स्याद्धुञ्जी  
रंस्ते च वाग्यताः ॥ न च द्विजांतयो ब्रथुर्दात्रां पृष्ठां हविर्गुणान् ३६ ॥

टीका—श्राद्धमें दौहित्र कुतप और तिल ये तीनि पवित्रहैं और यहां श्राद्धमें शौच क्रोध न करना और जल्दी न करना इन तीनोंकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३५ ॥ जिस अन्नका भोजन उष्ण उचित है वह उष्ण परोसे फल आदि उष्णदे और ब्राह्मण



मौन होकै भोजन करै वह अन्न स्वादु है अथवा नहीं स्वादु है ऐसे अन्न आदिके गुण दाता करिकै पूंछे गये ब्राह्मण मुख आदिकी चेष्टासेभी न कहै ॥ ३६ ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्रन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्तावदश्रन्ति  
यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ३७ ॥ यद्वेष्टितशिरा मुङ्क्ते यद्मुङ्क्ते दक्षि-  
र्णामुखः ॥ सोऽपानत्कश्च यद्मुङ्क्ते तद्द्वैक्षासि भुञ्जते ॥ ३८ ॥

टीका—जवतक अन्नमें उष्णता रहती है और जवतक ब्राह्मण मौन भोजन करते हैं और जवतक ब्राह्मण हविके गुण नहीं कहे जाते हैं तवतक पितर भोजन करते हैं ॥ ३७ ॥ वस्त्र आदि शिरमें लपेटकै तथा दक्षिणको मुख करिकै और जूता पहिरे हुए जो भोजन करता है उसको राक्षस खाते हैं पितर नहीं खाते हैं तिस्से ऐसा न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

चाण्डालश्च वैराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ॥ रजस्वला च पण्डश्च न  
क्षैरन्नश्रतो द्विजा ॥ ३९ ॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवी-  
क्ष्यते ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्दृच्छत्यर्थतथम् ॥ ४० ॥

टीका—चाण्डाल, गांवका सूअर, मुरगा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नयुंसक ये जैसे ब्राह्मण भोजनके समय न देखै ऐसा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्र आदिमें गौ सुवर्ण आदिके दानमें अपने अभ्युदयके लिये ब्राह्मण भोजनमें दर्श पौर्णमास आदि दैव कर्ममें और श्राद्ध आदि पितर कर्ममें जो इन करिकै देखा जाय तौ जिसके लिये वह किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है अर्थात् निष्फल होजाता है ॥ ४० ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्ष्वातेन कुक्कुटः ॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पे-  
शैनावरवर्णजः ॥ ४१ ॥ खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि  
वा भवेत् ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमर्ष्यपनयेत्पुनः ॥ ४२ ॥

टीका—सूकर उस अन्न आदिकी गंधको सूंघ करि कर्मको निष्फल कर देता है तिस्से सूंघनेके योग्य स्थानमें उसको न आने दे और मुरगा परोकी पवनसे इस लिये वह भी परोकी पवन लगनेके स्थानसे दूरि करनेयोग्य है और कुत्ता देखनेसे और शूद्र छूनेसे द्विजातिके श्राद्धको निष्फल कर देता है ॥ ४१ ॥ खंजा कहिये पंगुला होय अथवा काणा होय दाताका दास होय अथवा अन्य शूद्र होय और हीन वा अधिक अंगका मनुष्य होय उसकोभी उस श्राद्धके स्थानसे निकाल दे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं सर्पिभोजनार्थमुपैस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः  
शक्तिः प्रतिपूजयेत् ॥ ४३ ॥ सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाद्भ्रातृव्यं सर्पि-  
रिणा ॥ संसृजेद्भुक्तवतामग्रतो विंकिरन्भुवि ॥ ४४ ॥

टीका-अतिथेरूप ब्राह्मण होय अथवा और कोई भोजनके लिये भिक्षुक उस काल आया होय तौ उसकाभी श्राद्धके पात्रभूत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथाशक्ति अन्नके भोजनसे वा भिक्षा देनेसे संस्कार करै ॥ ४३ ॥ सब प्रकारके अन्न आदिको व्यंजन आदिकोमें मिला एक करि जलमें भिगो कै भोजन किये हुए ब्राह्मणोंके आगे भूमिमें कुशोंमें ऊपर फैलाके डाल दे ॥ ४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्याग्निनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भांगधे-  
यं स्याद्भेषु विंकिरंश्च यः ॥ ४५ ॥ उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्या  
शंठस्य च ॥ दासवर्गस्य तर्पिष्ये भांगधेयं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

टीका-संस्कारके अयोग्य बालकोंका तथा विना दोषके कुलकी स्त्रियोंके त्याग करनेवालोंका पात्रमें स्थित उच्छिष्ट अन्न जा कुशोंपर बिखेरा जाता है वह भाग होता है अर्थात् उनको वही मिलता है ॥ ४५ ॥ जो उच्छिष्ट भूमिमें गिरता है वह आलस्य और कुटिलता रहित दासोंके समूहका भाग पित्र्यकर्ममें मनु आदि कहते हैं ॥ ४६ ॥

आसपिण्डाक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अद्वैतं भोजयेच्छ्रा-  
द्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ ४७ ॥ सहस्रपिण्डक्रियायां तु कृतायाम-  
स्य धर्मतः ॥ अनर्थवावृता कार्ये पिण्डनिर्वपणं मुनेः ॥ ४८ ॥

टीका-सर्पिण्डीकरण श्राद्ध पर्यंत शीघ्र मरे हुए द्विजातिका वैश्वदेव ब्राह्मणभोजन रहित श्राद्ध निमित्तका अन्नसे ब्राह्मणको भोजन करावै और एक पिण्ड दे ॥ ४७ ॥ जिसका यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया है उसका धर्मसे निजगृह्यमें कही हुई विधिसे सर्पि-  
ण्डीकरण श्राद्ध करनेपर इसी परिपाटीसे कहे हुए अमावास्या श्राद्धकी पद्धतिसे पिण्डों का निर्वपण कहिये श्राद्ध पुत्रों करि सर्वत्र मृताह काहिये मरनेके दिन आदिमें करना चाहिये ॥ ४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा यं उच्छिष्टं वर्षलाय प्रयच्छति ॥ सँ मूढो नरकं या-  
ति कालसूत्रमवाकं शिराः ॥ ४९ ॥ श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तद्दहयोऽ-  
धिगच्छति ॥ तस्याः पुंरिषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरं ते ॥ २५० ॥

टीका-श्राद्ध भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्रको देता है वे मूर्ख अथोमुखहांकैः कालसूत्रनाम नरकमें जातेहैं ॥ ४९ ॥ श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्मणः उसीदिन रात्रिमें स्त्रीसंग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्टामें एकमहीनितक पड़े रहते हैं ॥ २५० ॥

पृष्ट्वां स्वदितमित्ये वं तृप्तानाचामयेत्ततः॥ आचान्तांश्चांनुजानी-  
यादमितो रम्यतामिति ॥५१॥ स्वधास्त्वित्येवं तं ब्रूयुर्ब्राह्मणा-  
स्तदनन्तरम्॥ स्वधाकारः परां ह्याशीःसर्वेषु पितृकर्मसु ॥ ५२ ॥

टीका-ब्राह्मणोंको तृप्त जानि भोजन करलिया ऐसे पूछकर आचमन करवै आच-  
मन किये उनको भी ऐसा संबोधन दे जाइये ऐसे कहै ॥ ५१ ॥ आज्ञा देनेके पीछेः  
ब्राह्मण श्राद्ध करनेवालेसे स्वधाऽस्तु ऐसे कहै जिसे सब श्राद्ध तर्पण आदि पितृकर्म-  
में स्वधा शब्दका बोलना सबसे बड़ा आशीर्वाद है ॥ ५२ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुर्या-  
दनुज्ञातस्ततो द्विजैः॥५३॥ पितृभ्ये स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठे  
तुं सुश्रुतम्॥ संपन्नमित्यभ्युदये देवे रुचितमित्यपि ॥ ५४ ॥

टीका-स्वधाशब्द कहनेके पीछे ब्राह्मणोंके भोजनकरनेसे वचे हुए अन्नको अन्न-  
शेषभी है ऐसे कहिके उन ब्राह्मणोंके आगे धरदे इस अन्नसे यह करो ऐसी आज्ञा  
लेकर जैसा वे कहें वैसे शेष अन्नका खर्च करै ॥ ५३ ॥ पितृश्राद्धमें स्वदित  
अर्थात् अच्छा भोजन हुवा ऐसे बोले । श्राद्धमें सुश्रुत अर्थात् अच्छाश्रवणकिया  
ऐसे कहे और अभ्युदयश्राद्धमें संपन्न अच्छाहुवा ऐसे कहे और देवकर्ममें रुचित  
ऐसे कहना ॥ ५४ ॥

अपराह्णस्तथा देर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः ॥ सृष्टिर्भृष्टिर्द्विजांश्चां  
स्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥५५॥ देर्भाः पवित्रं पूर्वोक्तो हविष्याणि-  
च सर्वेशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेयां हव्यसंपदः ॥ ५६ ॥

टीका-अमावास्या श्राद्धका कहना यहां मुख्य है तिससे अमावास्याके मध्य यह  
अपराह्ण काल अर्थात् मध्याह्न कहै "प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" इस वचनसे वृद्धिश्राद्ध  
आदिमें प्रातःकाल आदि काल दुसरी स्मृतियोंमें कहनेसे आसन आदिके लिये  
कुशा और गोबर आदिसे श्राद्धके स्थानका शुद्ध करना और विकिरण आदिके-

लिये तिल भार सृष्टि कहिये उदारतासे अन्न आदिका देना और मृष्टि कहिये अन्न आदिकोंका शुद्ध करना और पंक्ति पावन ब्राह्मण ये श्राद्धमें संपत्ति है इस्से और आंगोंसे उनकी उत्कृष्टता सूचित हुई कि, इनका श्राद्धमें होना आवश्यक है यह सूचित किया ॥ ५५ ॥ कुश और पवित्र कहिये मंत्र और पूर्वाह्नकाल कहिये पहला पहर और सब हविष्य कहिये मुनिअन्न आदि सब और पहले कहा हुआ पवित्र कहिये वास्तुसंपादन आदि ये सब हव्य कहिये दैवकर्मकी समृद्धि है ॥ ५६ ॥

मुन्यन्नान पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ ५७ ॥ विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु निर्यतो वा ग्यतःशुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकांङ्क्षन्त्यां चेतैमान्वरात्पितृन् ॥ ५८ ॥

टीका—मुनि कहिये वानप्रस्थके अन्न नीवार आदि और दूध और सोमलताका रस अनुपस्कृत कहिये बिगडा न होय ऐसा दुर्गंध आदिसे रहित मांस और अक्षार लवण कहिये बिना बनाया हुआ सैधव आदि ये स्वाभाविक हवि मनुआदिकोंने कहे हैं ॥ ५७ ॥ उन ब्राह्मणोंका विसर्जन करिके एकाग्रचित्त मौनी और शुद्ध हो दक्षिण दिशाको देखता हुआ आगे कहे हुए इन चाहे हुए वरोंको पितरोंसे माँगै ॥ ५८ ॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाःसततिरेवं च ॥ श्रद्धा च नो मां व्यगमद्बहुदे यं च नाऽस्तिवति ॥ ५९ ॥ एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥ गां विप्रमजमग्निं वां प्रांशयेदप्सु वा क्षिपेत् ६० ॥

टीका—हमारे कुलमें दाता पुरुष बढें और पढवने पढाने तथा अर्थके ज्ञानसे वेद वृद्धिको प्राप्त होय और पुत्रपौत्र आदि बढें और हमारे कुलमें वेदके अर्थोंसे श्रद्धा न जाय और देनेयोग्य धन आदि बहुतसा होय ॥ ५९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे पिण्डदान करिके वांछित वर माँगने पीछे गौ ब्राह्मण अथवा बकरेको वे पिण्ड खिला दे अथवा अग्निमें वा जलमें डालदे ॥ २६० ॥

पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेवं कुर्वते ॥ वयोभिःखादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वां ॥ ६१ ॥ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनत्परा ॥ मर्ध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥ ६२ ॥

टीका—कोई आचार्य ब्राह्मणभोजनके पीछे पिण्डदान करते हैं और कोई पक्षियोंको पिण्ड खिलाते हैं अथवा आगिमें जलमें डाल देते हैं ॥ ६१ ॥ धर्म अर्थ

काममें मन वाणी काय कर्मसे पतिही मुझे सेवा करने योग्य हैं यह व्रत जिसके होय वह पतिव्रता धर्मसे व्याही सवर्णा और प्रथम विवाही स्त्री श्राद्धकी क्रियामें श्रद्धायुक्त पुत्रकी चाहनेवाली उन पिंडोंमेंसे बीचके पितामहके पिंडका भोजन करै ॥ ६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमान्वितम् ॥ धनवन्तं प्रजावन्तं  
सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ ६३ ॥ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं  
प्रकल्पयेत् ॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानंपि भोजयेत् ॥ ६४ ॥

टीका—उस पिंडके खानेसे वह स्त्री बड़ी उमरवाले कीर्ति और धारणा कर-  
नेवाले बुद्धियुक्त और धन पुत्र आदि युक्त गुणी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ६३ ॥  
तिस पीछे हाथोंको धोके अपनी ज्ञाति जिमावै उनके लिये पूजापूर्वक अन्न दे  
माताके पक्षवालोंकोभी सत्कारपूर्वक जिमावै ॥ ६४ ॥

उच्छेषणं तु तृप्तिं श्रेयार्थं विप्रैः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या-  
दिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ६५ ॥ हविर्यच्चिरत्राय यच्चानन्त्या-  
य कल्पयेत् ॥ पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६६ ॥

टीका—वह ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट उस समयतक रहै जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन  
होय और ब्राह्मणोंके निकलजानेपर स्थान शुद्ध करना चाहिये तिस पीछे श्राद्ध-  
कर्म संपन्न होनेपर वैश्वदेव बलि होमकर्म नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन करने  
चाहिये ॥ ६५ ॥ जो हवि पितरोंके लिये विधिसे दिया जाता है वह बहुत कालकी  
वृत्तिके लिये होता है सो मैं संपूर्णतासे कहूंगा ॥ ६६ ॥

तिलैर्व्रीहियैर्माषैर्द्रिर्मूलफलैर्वा ॥ दत्तेन मांसं तृप्यन्ति विधि-  
वत्पितरो नृणाम् ॥ ६७ ॥ द्रौ मांसौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हा-  
रिणेन तु ॥ औरभ्रेणार्थं चतुरः शकुनेनार्थं पञ्च वै ॥ ६८ ॥

टीका—तिल धान जब काले उडद जल मूल और फल इनमेंसे कोई एक शास्त्रके  
अनुसार श्राद्धसे दिया जाय उससे मनुष्योंको पितर एक महीनेतक तृप्त रहते  
हैं ॥ ६७ ॥ पढीन आदि मछलियोंके मांससे दो महीने तक पितर तृप्त रहते हैं  
और हरिणके मांससे तीन महीनेतक और मंडके मांससे चार महीने तक द्विजातिके  
भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांच महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

षण्मासांश्छोग्मासेन पौषतेन च सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मासेन  
रौं वेण न वै वै तुं ॥ ६९ ॥ दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषा-  
मिषैः ॥ शशकूर्मयोस्तु मासेन मासानेकादशैव तुं ॥ २७० ॥

टीका—बकरके मांससे छः महीने तृप्त रहते हैं और पृषतनाम चित्रमृगके मांससे सात महीनेतक और हरिणके मांससे आठ महीनेतक और रुरुनाम मृगके मांससे नौ महीनेतक तृप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ जंगली सूअर और भैंसेके मांससे १० महीनेतक तृप्त रहते हैं और खरगोश तथा कछुएके मांससे ग्यारह महीनेतक तृप्त रहते हैं ॥ २७० ॥

सर्वत्सरं तु गव्येन पर्यसा पयसेन च ॥ वाध्रीणसस्य मासेन तुं-  
सिद्धादशैवार्पिकी ॥ ७१ ॥ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं  
मधुं ॥ आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ ७२ ॥

टीका—एक वर्षतक गौके दूधसे अथवा उसमें की हुई खीरसे संतुष्ट रहते हैं और नदी आदिमें पानी पीनेसे जिसके दोनोंकान और जीभ जलको छुवै ऐसे सपेद बूढ़े बकरेको त्रिपिव और वाध्रीणस कहते हैं उस बकरेके मांससे बारह वर्षकी तृप्ति होती है ॥ ७१ ॥ कालशाकनाम एक प्रकार शाक और महाशल्क कहिये एक प्रकारकी मछली खड्ग कहिये गेंडा और लोहामिष कहिये लाल बकरा इनके मांस और शहत और सब मुनियोंके अन्न अर्थात् नीवार आदि वनके अन्न ये सब अनन्त तृप्तिके लिये होते हैं ॥ ७२ ॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यंक्षं यमेवस्यार्-  
द्रर्षासु च मघासु च ॥ ७३ ॥ अपि नः स कुले जायद्यो नो दद्यात्त्र-  
योदशीम् ॥ पयसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुर्क्षरस्य च ॥ ७४ ॥

टीका—वर्षाऋतुकी मघा नक्षत्रयुक्त भाद्रपदकृष्ण त्रयोदशीके दिन जो कुछ मधुके साथ दिया जाता है वहभी अक्षय तृप्तिके लिये होताहै ॥ ७३ ॥ पितर निश्चय करिके ऐसा चाहते हैं कि, हमारे कुलमें कोई ऐसा उत्पन्न होय जो हमारे लिये वर्षाऋतुकी मघायुक्त भाद्रकृष्ण त्रयोदशीमें अथवा और किसी तिथिमें भी हस्तीकी छायामें पूर्वदिशामें जानेपर मधु घृतयुक्त खीर दे ॥ ७४ ॥

यद्यद्देदाति विधिवत्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तर्त्तपितृणां भवति  
परत्रानन्तमक्षयम् ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वैर्जायित्वा च-

तुदशीम् ॥ श्राद्धे प्रशंस्तास्तिथयो यथैतानि तथैतैराः ॥७६॥

टीका-अच्छे प्रकारसे श्रद्धायुक्त जो जो पितरोंके लिये देता है वह सब अन्न पर-  
लोकमें पितरोंकी तृप्तिके लिये अनंत और अक्षय होता है ॥७५॥ कृष्णपक्षमें दशमी  
१ एकादशी २ द्वादशी ३ त्रयोदशी ४ अमावास्या ५ ये पांच तिथि श्राद्धकरनेके  
लिये प्रशस्त हैं ऐसी अन्य तिथि नहीं ॥ ७६ ॥

युंक्षु कुर्वन् दिनक्षेषु सर्वान्कामान्सर्मश्नुते ॥ अयुंक्षु तुं पितृन्सर्वा-  
न्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ यथा चैवापरैः पक्षः पूर्वपक्षा-  
द्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्लादपरौहो विशिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका-द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि युग्म  
नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब वांछित कामोंको प्राप्त होता है और प्रतिपदा  
तृतीया आदि अयुग्म तिथियोंमें और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म नक्षत्रोंमें  
श्राद्धसे पितरोंको पूजता हुआ पुष्कल धनविद्यासे पुष्ट पुत्र आदि संततिको प्राप्त  
होता है ॥ ७७ ॥ ज्योतिषकी रीतिसे महीनोंका आरम्भ शुक्लपक्षसे होता है जैसे  
अपरपक्ष कहिये कृष्णपक्ष परपक्ष कहिये शुक्लपक्षसे श्राद्धका अधिक फल देनेवाला  
होता है ऐसे पहले आधे दिनसे दूसरा आधादिन श्राद्धमें अधिक फल  
देनेवाला है ॥ ७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ॥ पित्र्यमानिधनात्कार्यं  
विधिर्वहर्भपाणिना ॥ ७९ ॥ रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता  
हि सा ॥ संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरो दिते ॥ २८० ॥

टीका-दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रख आलस्य रहित कुश हाथमें ले अपसव्यही  
शास्त्रके अनुसार सब पितृकर्म अंततक करै ॥ ७९ ॥ रात्रिमें श्राद्ध न करै कारण  
यह है कि, श्राद्धनाश करनेका गुण होनेसे मनु आदिकोंने इसको राक्षसी कहा है  
और दोनों संध्याओंमें न करै और सूर्यके शीघ्र उदय होनेपर न करै ॥ २८० ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु  
र्पाश्र्वयज्ञिकमन्वहम् ॥ ८१ ॥ नैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ  
विधीयते ॥ नैदर्शेन विना श्राद्धामाहिताग्नेद्विजन्मनः ॥ ८२ ॥

टीका-इस कही हुई विधिसे संवत्सरके मध्यमें तीनवार अर्थात् हेमन्त ग्रीष्म और

वर्षाऋतुमें श्राद्ध करना चाहिये सो तौ समयाचारसे कुंभ वृष और कन्याके सूर्य होने पर करै और पंचयज्ञोंमें जो 'एकमप्याशयोद्विप्रं' अर्थात् एक ब्राह्मणकोभी भोजन करवै इस वचन से कहे हुए श्राद्धको तौ प्रतिदिन करै ॥ ८१ ॥ 'अग्नेःसोमयमाभ्यांच' इस मंत्रसे विधान किया हुआ पितृयज्ञका अंगभूत होम श्रौत स्मार्त आग्निसे भिन्न लौकिक आग्निमें शास्त्रने नहीं कहा है तिस्से लौकिक आग्निमें अग्नौकरण होम न करना चाहिये किंतु ब्राह्मणके हाथमें करना चाहिये और अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावास्याके विना कृष्णपक्षकी दशमी आदिमें श्राद्ध कहाहै और मृताहश्राद्ध तौ नियत होनेसे कृष्णपक्षमेंभी और तिथिमें नहीं निषेध किया जाता है ॥ ८२ ॥

यदेव तर्पयत्यग्निः पितृन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥ ते नैव कृत्स्नमाम्प्रो  
तिपितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ ८३ ॥ वसूं न्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पि-  
तामहान् ॥ प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषां सनातनी ॥ ८४ ॥

टीका—पांचयज्ञिक श्राद्ध न होनेमें यह विधि है ॥ जो उत्तम द्विज स्नान करके जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसीसे संपूर्ण पितृयज्ञकी क्रियाके फलको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ जिस्से पिता आदि वसु आदि हैं यह अनादि श्रुति है इससे पिताओंको वसु नाम देव और पितामहोंको रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य मनु आदि कहते हैं तिस्से श्राद्धमें पिताआदिरूपसे ध्यान करनेयोग्य है ॥ ८४ ॥

विघसंशी भवे त्रित्यं नित्यं वामृतभोजनः ॥ विघसो भुक्तशेषं  
तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥ ८५ ॥ एतद्भोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्च-  
यज्ञिकम् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥  
इति मानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

टीका—सदा विघसका भोजन करनेवाला होय और सदा अमृतका भोजन करने-वाला होय विघस और अमृत शब्दोंका अर्थ करते हैं ब्राह्मण आदिकोंके भोजनसे बचे हुएको विघस कहते हैं और दर्शपौर्णमास आदि यज्ञोंसे बचा हुआ पुरोडाश अमृत कहा जाता है ॥ ८५ ॥ यह पंचयज्ञोंके करनेकी विधि तुमसे सब कही अब द्विजोंमें मुख्य जो ब्राह्मण हैं उनकी वृत्तियों जो मृत आदि हैं उनका अनुष्ठान सुनिये यह भृगुजी सब महर्षियोंसे कहते हैं ॥ २८६ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुल्लुकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थमायुषो भांगमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो  
भांगं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण  
वा पुनः॥यां वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥२॥

टीका-पहला चौथाई जो आयुष्यका भाग है तिसमें यथाशक्ति गुरुकुलमें वास करि दूसरे आयुष्यके चौथाई भागमें विवाह करके घरमें वास करै ॥ १ ॥ जीवोंसे द्रोहको न करके जो इसका असंभव होय तो थोड़ेसे द्रोहको करके जो वृत्ति कहिये जीवनका उपाय है उसके आश्रयसे भार्या भृत्य और पंचयज्ञोंके करनेसे युक्त हो ब्राह्मण आपत्तिरहित कालमें जीवे क्षत्रिय आदि नहीं ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्धचर्यै स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ॥ अक्लेशेन शरी-  
रस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन  
प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन ॥ ४ ॥

टीका-प्राणोंकी रक्षा और शास्त्रीय कुटुंबको बढाता हुआ तथा नित्यकर्मोंको करताहुआ केवल शरीरनिर्वाहके भोगके लिये नहीं शास्त्रमें कहे हुए ऋतआदि वर्जनरूप कर्मोंसे शरीरके क्लेश विना धनका संग्रह करै ॥ ३ ॥ आपत्ति रहित समयमें ब्राह्मण ऋत और अमृतसे मृत और प्रमृतसे तथा सत्य और अनृतसे जीविका करै और विना आपत्तिके सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ४ ॥

ऋतमुच्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादर्याचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं  
प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेनैवैवापि  
जीव्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका-खेत आदिमें पड़े हुए एक एक अन्नके दानेके चुटकीसे बीननेको उच्छ कहतेहैं और अनेक धान्योंकी बालिभुटिया फली आदिके बीननेको शिल कहतेहैं उन दोनोंको सत्य समान फल है इसे उनको ऋत कहते हैं विना माँगे प्राप्त हुआ अमृतके समान सुखका कारण होनेसे अमृत है और माँगा हुआ भिक्षा समूह मरनेके समान पीडा उत्पन्न करनेसे मृत कहताहै अभिहोत्री गृहस्थको भिक्षामें कंच चावल आदि लेने चाहिये पके हुए नहीं क्योंकि, पराई अग्निमें पकाये हुएका अग्निमें होम नहीं हो सकता है और कर्षण जो भूमिका जोतनाहै वह भू-

मिमें स्थित अनेक जीवोंके मरनेका कारण होनेसे बहुत दुःखरूप फलका देनेवाला होनेसे जो प्रकर्ष कहिये अधिकतासे मृतके समान होय सो अमृत कहा जाता है ॥ ५ ॥ बहुधा सच्चे झूठे व्यवहारसे होता है इससे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं परंतु वाणिज्यमें शास्त्रसे झूठ सच्चेकी आज्ञा नहीं है तिसपरभी इसका सत्यानृतही नाम है उस वाणिज्यसेभी जीविका करै और इस श्लोकमें जो च शब्द है इससे व्याजभी जाना गया अर्थात् आपत्तिमें व्याजसेभी जीविका करै और सेवा तौ दीन दृष्टिसे देखना और स्वामीके धमकाना नीच कार्योंका करना आदि सेवा कुत्ताकीसी वृत्ति कही गई है इससे ब्राह्मण उसका त्याग करै अर्थात् सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ६ ॥

कुशूलधान्यको वाँ स्यात्कुम्भीधान्यक एव वाँ ॥ त्र्यहैहिको वाँपि भवेदश्वस्तनिक एव वाँ ॥ ७ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ॥ ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥

टीका—ईद आदिसे वने हुए अन्न रखनेके घरको कुशूल कहते हैं उसमें भरे हुए धान्यका संचय करनेवाला होय अथवा एकवर्षके निर्वाह योग्य धान्यका संग्रह करनेवाला कुंभीधान्य कहा जाता है वह होय अथवा त्र्यहैहिक उसको कहते हैं जिसके तीन दिनको निर्वाहके योग्य अन्न होय ऐसा होय अथवा जो कलह होय उसको श्वस्तन कहते हैं ऐसा अन्न जिसके होय वह श्वस्तनिक कहता है सो न होय उसको अश्वस्तनिक कहते हैं ऐसा होय अर्थात् राज उत्पन्न करके निर्वाह करनेवाला होय ॥ ७ ॥ इन चारि कुशूल धान्य आदि गृहस्थ ब्राह्मणोंमें जो शेषमें बढा है अर्थात् पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा इस क्रमसे श्रेष्ठ जानिये जिसे वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोंका जीतनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ॥ द्वाभ्यामेकं चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥ वर्तयश्च शिलोच्छाभ्यामग्निहोत्रपरा यणः ॥ ईष्टीः पूर्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

टीका—इन चारों कुशूल धान आदि गृहस्थोंमें जिसके बहुतसे पोष्यवर्ग कहिये पालनकरने योग्य बहुतसा कुटुंब है वह ऋत अयाचित भिक्षा खेती वाणिज्य इन पांचसे और छठे कुसीद अर्थात् व्याज इन छः कर्मोंसे जीविका करै और अन्य जिसके थोडा कुटुंब है वह याजन प्रतिग्रह और अध्यापन इन तीनोंसे जीविका करै और उससे अन्य याजन तथा अध्यापनसे जीविका करै और कहे हुए तीनोंकी

अपेक्षा चौथा फिर ब्रह्मसत्र जो पढाना है तिस्से जीविका करै ॥ ९ ॥ शिल और उच्छसे जीनेवाला ब्राह्मण धनसे करनेयोग्य दूसरे कर्मोंमें असमर्थ होनेसे अग्नि क्षेत्रहीमें लगारहै पर्व और अयनके अंतकी इष्टि अर्थात् दर्श पौर्णमास और आग्रयणात्मिक सदा करै ॥ १० ॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ॥ अजिह्वामशठां शुद्धां  
जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ११ ॥ संतोषं परमास्थाय सुखार्थी  
संयतो भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

टीका—जीविकाके लिये लोकवृत्त कहिये झूठी प्यारी बातके कहनेको और विचित्र हँसीकी कथा आदिको न करै और अजिह्वा कहिये झूठे अपने गुणोंके कहने आदि पापसे रहित और अशठा कहिये दंभ आदि कपटसे रहित और शुद्ध कहिये वैश्य आदिकी वृत्तियोंसे नहीं मिली हुई ब्राह्मणकी जीविका करै ॥ ११ ॥ संभवके अनुसार भृत्योंके तथा अपने प्राणोंके निर्वाहके लिये आवश्यक और पंच-यज्ञोंके करनेहीके योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको संतोष कहतहैं उस संतोषका भलीभांति आश्रय ले बहुतसे धनके जोडनेमें संयम करै जिस्से इस संसारमें संतोषही सुखका कारण है और परलोकमें स्वर्ग आदिकें सुखका कारण है इस्से विपर्यय कहिये उलटा असंतोषहै सो दुःखका कारण है क्योंकि बहुत धन जोडनेके श्रमसे बहुत दुःख उत्पन्न होनेके कारण संपात्ति तथा विपत्तिमें क्लेश होता है ॥ १२ ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययश-  
स्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं  
कुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

टीका इन कही हुई वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिसे जीवता हुआ स्नातक ब्राह्मण स्वर्ग आयु और यशके हितकारी आगे कहे हुए व्रतोंको यथासंभव करै यह मुझको करना चाहिये यह न करना चाहिये इस प्रकारका जो संकल्प है उसको व्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ वेदमें तथा स्मृतिमें कशा हुआ अपने आश्रमका कहा हुआ कर्म जीवने पर्यंत आलस्यरहित होकै करै जिस कारणसे सामर्थ्यके अनुसार करता हुआ परमा-गति कहिये मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥

न हेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु

नार्त्यामपि यतस्तैतः ॥ १५ ॥ इन्द्रियाथेषु सर्वेषु न प्रसज्येत  
कामतः ॥ अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिर्वर्तयेत् ॥ १६ ॥

टीका—प्रसंग जो गाना बजाना है तिस्से द्रव्यको न जोडै और शास्त्रविरुद्ध कर्म जो अयाज्य याजनादिक है तिस्से भी न जोडै और धन होनेपरभी न जोडै और धनके न होनेपरभी जो और प्रकार होय तौ इधर उधर पतित आदिकोंसेभी न ले ॥ १५ ॥ इन्द्रियोंके अर्थ कहिये विषय जो रूप रस गंध स्पर्श आदि निषिद्ध नहीं हैं उनमें अर्थात् अपनी स्त्री आदिके भोगमें कामसे अत्यन्त सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप कल्याणविरोधी हैं यह जानके इनस मनसे निवृत्त होय ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथा तथा स्नानार्पणं  
स्तुसां ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १७ ॥ वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्यौ  
भिर्जनस्य चो विषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

टीका—वेदाभ्यासके विरोधी जो धनवानके समीप बहुत जाना खेती लोकयात्रा आदि हैं उन सबको त्याग कर तौ कहिये कि, भृत्योंका और अपना पालन कैसे होय यह शंका करिकै कहते हैं जैसे तैसे स्वाध्यायके अविरोधी किसी उपायसे भृत्योंका और अपना पोषण करै जिस्से नित्य वेदाभ्यासमें लगा रहना यही स्नातककी कृतार्थता है ॥ १७ ॥ अवस्था क्रिया धन वेद और कुल इनके अनुरूप वेष बोल चाल और बुद्धि करता हुआ इस लोकमें विचरै जैसे तरुण अवस्थामें माला गंध लेपन आदिका धारण करना और त्रिवर्गकी अनुसरण करनेवाली वाणी और बुद्धि ऐसेही कर्म आदिकोंमें जानिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्यांश्च धन्यानि च हितानि च ॥ नित्यं शास्त्राण्यवे-  
क्षतं निर्गमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥ यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं  
समाधिगच्छति ॥ तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते २०

टीका—वेदके विरोधि नहीं और शीघ्रही बुद्धिके बढ़ानेवाले व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदि शास्त्रोंको तथा धन्य कहिये धनके लिये हित बार्हस्पत्य औशनस आदि अर्थशास्त्रोंको और हितकहिये जिनका उपकार देखा गया है ऐसे वैदिक ज्योतिष आदिकों तैसेही वेदार्थके बोध करानेवाले निगमनाम ग्रंथोंको

विचारकरै ॥ १९ ॥ जैसे जैसे पुरुष शास्त्रको अच्छीतरहसे पढता है वैसे वैसे विशेष कर जानताहै और अन्य शास्त्रोंके विषयकोभी विशेष ज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥ २० ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥ नृत्यज्ञापितृयज्ञं च यथा  
शक्तिं न ह्यपयेत् ॥ २१ ॥ एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो  
जनाः ॥ अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

टीका-ऋषियज्ञ १ देवयज्ञ २ भूतयज्ञ ३ पितृयज्ञ ४ नृत्यज्ञ ५ इन पांचयज्ञोंको यथाशक्ति कभी न छोडै ॥ २१ ॥ गृहस्थके बाहरी तथा भीतरी यज्ञ करनेके शास्त्र जाननेवाले कोई गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ आदि नाम इन पांच महायज्ञोंको ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे बाहरी चेष्टाओंकर रहित हो पांच बुद्धीन्द्रियोंहीमें पांच जो रूप ज्ञान आदिहैं तिनका संयम करते हुए संपादन करते हैं यहां हु धातुका संपादन अर्थ है ॥ २२ ॥

वांच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो  
यज्ञनिर्वृत्तिर्मक्षयाम् ॥ २३ ॥ ज्ञानेनैवापरे विप्रा यर्जन्त्ये तैर्मखैः  
सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

टीका-कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाचिक कहिये प्राणवायुमें यज्ञ करनेके अक्षय फलको जानते हुए सदा वाणीमें प्राणको होमतेहैं और वाणीको प्राणमें अर्थात् बोलता हुआ वाणीको प्राणमें होमताहै और नहीं बोलनेसे श्वास लेता हुआ प्राणमें वाणीको होमता है इस्से ध्यान करना चाहिये यह विधान किया जाता है इस्से अनंत अमृतरूप आहुतियोंको जागते सोते सदा होम करता है निश्चय बाहरीहुई और आहुतियां कर्ममयी होती हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ और ब्राह्मण सब भाँति ब्रह्मज्ञानहीसे इन यज्ञों कर यजन करते हैं अर्थात् इन यज्ञोंको करते हैं कैसे करतेहैं इसपर कहतेहैं ज्ञान है मूल जिसका ऐसी इन यज्ञोंकी क्रियाकी उत्पत्तिको जानते हुए ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोःसदा ॥ दर्शेन चार्धमांसान्ते  
पौर्णमासेन चैवं हि ॥ २५ ॥ संस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वंते  
द्विजोऽध्वरैः ॥ पशुना त्वयनस्यादौ समांते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

टीका-उदित होमपक्षमें दिन आदिमें और रात्रिकी आदिमें और मनुदिन

तथा होमपक्षमें दिनके अंतमें और रातिके अंतमें अथवा उदित होमपक्षमें दिनकी आदिमें और दिनके अंतमें और अनुदित होमपक्षमें रातिकी आदिमें और रातिके अंतमें अग्निहोत्र करै और कृष्णपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें दर्शनाम कर्मसे और शुक्लपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें पौर्णमासनाम कर्मसे यजन करै ॥ २५ ॥ पहले जोरे हुए धान्य आदि सस्यके समाप्त होनेपर अथवा न समाप्त होनेपरभी नवीन धान्यकी उत्पात्तिमें आग्रयण जो नवीन सस्यकी इष्टि है तिस्से यजन करै तथा ऋतुके अंतमें चातुर्मास्य यज्ञसे यजन करै और अयनोंकी आदिमें अर्थात् उत्तर तथा दक्षिण अयनके आरंभमें पशुसे यजन करै अर्थात् पशुबंधनाम यज्ञ करै और विशिरऋतु करि वर्षके समाप्तहोनेपर वसंतऋतुमें सोमरससे करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करै ॥ २६ ॥

नानिष्ठां नवसंस्येष्व्या पशुनां चाग्निमांन्द्रिजः ॥ नवान्नमर्धांमां  
सं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥ नवेनानर्चितो ह्यस्य पशुहव्ये  
ने चार्घ्यः ॥ प्राणानेवांस्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥

टीका—बडी आयुकी चाहनेवाला अग्निहोत्री द्विज नवीन सस्यकी इष्टि किये विना नवीन अन्नको न खाय और पशुयाग किये विना मांस न खाय ॥ २७ ॥ जिस्से नवीन अन्नसे और पशुहव्यसे नहीं पूजे हुए नवीन अन्न और मांसके चाहनेवाले अग्नि अग्निहोत्रीहाके प्राणोंके खानेकी इच्छा करते हैं ॥ २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरंद्भिर्मूलफलेन वा ॥ नास्यं कश्चिद्भ्रसेद्दे ॥ हे  
शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥ पापण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्र-  
तिकाच्छठान् ॥ हेतुं कान्वकवृत्तिंश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ ३० ॥

टीका—शक्तिके अनुसार आसन भोजन शय्या जल कंद फल आदिसे नहीं पूजा गया अतिथि इस गृहस्थके घरमें न बसे ॥ २९ ॥ पापंडी कहिये वेदसे बाहरी व्रत तथा चिह्नोंके धारण करनेवाले शाक्य भिक्षु क्षपणक आदि और विकर्मस्थ कहिये निषेध कीहुई वृत्तिसे जीवनेवाले और वैडालव्रतिक कहिये वकवृत्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और शठ कहिये जो वेदमें श्रद्धा न रखते हों और हेतुक कहिये वेदके विरोधीतकोंसे व्यवहार करनेवाले इनमेंसे जो कोई अतिथिके समयमेंभी आवै तो उसका वाणी मात्रसेभी सत्कार न करै ॥ ३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नाताच्छ्रोत्रियान्गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्ध्वयकव्येन

विपरितांश्चैर्वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृह-  
मेधिना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

टीका-जो वेदोंको समाप्त करि और व्रतोंको नहीं समाप्त करि घरको लौटताहै वह विद्यास्नातक होताहै और जो व्रतोंको समाप्त करि वेदोंको नहीं समाप्त करि जो घरको लौटताहै वह व्रतस्नातक कहाजाताहै और जो दोनोंको समाप्त करि लौटताहै वह विद्याव्रतस्नातक कहाजाताहै इन श्रोत्रिय तीनों स्नातकोंको गृहस्थ हव्यसे पूजे ॥ ३१ ॥ गृहस्थ अपचमान- कहिये जो अपने हाथसे पाक नहीं करते ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी और पाषंडीको शक्तिके अनुसार अन्नका भोजन दे और अपने कुटुंबके अनु-रोधसे वृक्ष आदि पर्यंत प्राणियोंको जल आदिसे भी संविभाग कर्तव्य है ॥ ३२ ॥

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ॥ याज्यान्तेवासिनो-  
र्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥ ३३ ॥ न संसीदन्स्नातको विप्रः क्षुधां  
शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे संति ॥ ३४ ॥

टीका-क्षुधासे पीडित स्नातक द्विजातिसे प्रति गृहका संभव होनेपरभी शास्त्रके अनु-सार-चलनेवाले क्षत्रिय अर्थात् राजासे अथवा यजमानसे और शिष्योंसे पहले धनकी इच्छा करै वे न होय तौ अन्यभी द्विजातिसे धनग्रहण करै उसके अभावमें तौ सबसे ले यह आपत्तिका धर्म कहेंगे औरसे न ले यह मर्यादा है सो आपत्ति छोडकै है ॥ ३३ ॥ विद्या आदिके योगसे दान लेनेमें समर्थभी स्नातक ब्राह्मण कहेंदुये राजा आदिके प्रतिग्रहके मिलनेपर क्षुधासे दुःखी न होय और धन होनेपर पुराने और मैले वस्त्र धारण न करै ॥ ३४ ॥

कृप्तकेशनखश्मश्रुदीर्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥ स्वाध्याये चैव युक्तः  
स्यान्नित्यमार्त्तमहितेषु च ॥ ३५ ॥ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च  
कमण्डलुम् ॥ यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

टीका-कटे हैं केश नख दाढी और मूछ जिसके ऐसा होय और दान्त कहिये तपके क्लेशका सहनेवाला होय सपेद वस्त्र रक्त्वे और बाहरी भीतरी शुद्धतासे युक्त रहै और वेदके अभ्यासमें लगा रहै और औषध आदिके सेवनसे अपने हितमें सदा तत्पर रहै ॥ ३५ ॥ बांसकी लाठी लिये रहै और जलसे भराहुआ कमंडलु रक्त्वे और यज्ञोपवीत कुशकी सुठी तथा सुंदर सोनेके दोनों कुंडल ब्रह्मचारी धारण करै ॥ ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ नोपसृष्टं नैवारिस्थं  
न मध्यं न भसो गतम् ॥३७॥ न लङ्घयेद्वत्सतंत्रीं न प्रधावेच्च  
वर्षति ॥ न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणी ॥३८॥

टीका—उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यके मंडलको संपूर्ण न देखै तथा राहुग्रहसे ग्रसे हुए और जलसे प्रतिबिंब पडे हुए तथा आकाशके मध्यमें स्थित अर्थात् मध्यान्हके सूर्यको न देखै ॥ ३७ ॥ बखडा बांधनेकी रस्तीको न उलछै और मेघवर्षनेके समय नहीं दैरै और अपनी देहकी परछाहीको जलमें न देखै ॥ ३८ ॥

जृदं गां देवतं विप्रं धृतं मधु चतुष्पथम् ॥ प्रदक्षिणीं कुर्वीत प्र-  
ज्ञांतांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियंमार्त  
वदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तयो सह ॥ १४० ॥

टीका—मट्टीका ढेर, गौ, पाषाण आदिके बने हुए देवता, ब्राह्मण, घी, सहत चौराहा और बडे प्रमाणसे जाते हुए बट पीपल आदि वृक्ष इन सबको मार्गमें दाहिने देकर चलै ॥ ३९ ॥ कामसे पीडितभी पुरुष रजोदर्शनमें निषिद्ध होनेके तीन दिन स्त्रीसे भोग न करै और गमन न करते हुएभी उसके साथ एक पलंगपर न सेवै ॥ १४० ॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुं  
रायुश्चैव प्रहीर्यते ॥ ४१ ॥ तां विवर्जयतस्तस्य रजसा सम-  
भिप्लुताम् ॥ प्रज्ञां तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

टीका—रजस्वला स्त्रीसे भोग करनेवाले पुरुषके प्रज्ञा, तेज, बल, आंखि ये सब नष्ट होजाते हैं तिस्से उसका त्याग करै ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्रीमें न गमन करनेवाले मनुष्यके प्रज्ञा, तेज, नेत्र, आयु ये सब बढ़ते हैं तिस्से उसको बंचावै ॥ ४२ ॥

नाश्रीयाद्धार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्रंतीम् ॥ भुवतीं जृम्भमाणां  
वा न चांसोनीं यथामुखम् ॥ ४३ ॥ नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्य-  
क्तामनावृताम् ॥ नैपश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कांमो द्विजोत्तमः ॥ ४४ ॥

टीका—स्त्रीके साथ एकपात्रमें न खाय और खातीहुई छिकतीहुई जम्हातीहुई और वेपद बैठीहुईको न देखै ॥ ४३ ॥ तेजकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अपनी आंखोंको आजतीहुई और तेल लगातीहुई तथा स्तन ढकनेके वस्त्रसे रहित और बालकको जन्मर्ताहुई स्त्रीको न देखै ॥ ४४ ॥



नात्रैमर्द्यादेकवासा न नर्मः स्नानंमाचरेत् ॥ न मूत्रं पंथि कुर्वीत  
 न भस्मनि न गोव्रजे ॥४५॥ न फालकृष्टे न जले न चित्याने  
 च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

टीका-एकवस्त्र पहिरे हुए भोजन न करै और अर्थात् कंधेपर अँगोछा डारले और नंगा झोकै स्नान न करै और मार्गमें लघुवाधा न करै और भस्ममें तथा गौआँके स्थानमें मूत्र तथा मलका त्याग न करै ॥ ४५ ॥ हलसे जुतेहुए खेतमें जलमें ईंट आदिसे बनाये हुये अग्निके स्थानमें पर्वतपर पुराने देवताके स्थानमें और वाँवीमें कभी मूत्रका त्याग न करै ॥ ४६ ॥

नै संसत्त्वेषु गंतेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमांसाद्य  
 न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यं-  
 स्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

टीका-जीवाँ समेत गढिलोंमें चलता हुआ खडा हुआ नदीके किनारे और पर्वतके शिखरपर कभी मलमूत्रका त्याग न करै ॥ ४७ ॥ पवन अग्नि ब्राह्मण सूर्य जल और गौको देखता हुआ कभी मलमूत्रका त्याग न करै ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयंतो वाचं  
 संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥ सूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवां कुर्यादु  
 दङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्योश्च यथा दिवां ॥ १५० ॥

टीका-काठ डेला फूस और सूखे पत्तोंआदिसे भूमिको ढकिकै मौन हो शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधिके मलका त्याग करै अर्थात् दिशा जाय ॥ ४९ ॥ दिनमें तथा दोनों संध्याओंमें उत्तरको मुख करकै और रात्रिमें दक्षिणको मुख करकै मलमूत्रका त्याग करै ॥ १५० ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कुं-  
 र्यात्प्राणवाधाभयेषु च ॥५१॥ प्रत्यग्नि प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोद  
 कद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

टीका-रात्रिके समय छायामें अथवा अंधकारमें और दिनमें छाया तथा

कुहरि आदिके अंधकारमें दिशाविशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राणोंके नाश होनेके भयमें इच्छापूर्वक मुखको करिके मलमूत्रका त्याग करै ॥ ५१ ॥ अग्नि सूर्य चंद्रमा जल ब्राह्मण गौ पवन इनके सन्मुख मलमूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नानं नक्षते च स्त्रियम् ॥ नामेध्यं प्राक्षिपेदंग्रौ  
न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥ अर्धस्तान्नोपध्याच्च न चैनमभि  
लङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणावाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका—अग्निको मुखसे न फूँके पंखा आदिसे जगाले और नंगी स्त्रीको मैथुनके विना कभी न देखे और अपवित्र मूत्र विष्टा आदि अग्निमें न डाले और अग्निमें पैरोंको न तपावे ॥ ५३ ॥ खटिया आदिके नीचे अग्निकी अंगीठी न रक्खे और अग्निको न उलाधे और सोयाहुआ पैरोंकी ओर अग्निको न रक्खे और प्राणोंकी पीडा देनेवाला काम न करै ॥ ५४ ॥

नाश्रीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नृपि संविशेत् ॥ न चैव प्रालिखे-  
द्भूमिं नात्मनोपहरेत्सजम् ॥ ५५ ॥ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा घृविनं वा  
समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यालिप्तमन्यद्रा लो हितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

टीका—संध्याके समय भोजन, दूसरे ग्राममें जाना और सोना इनको न करै और रेखा आदिसे भूमिको न लिखे और धारण कीहुई मालाको आप न उतारे किंतु दूसरेसे उतरवादे ॥ ५५ ॥ जलमें मूत्र विष्टा और कफ आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरेहुये वस्त्र अथवा और कुछ खानेसे वचाहुआ अपवित्र रुधिर और कृत्रिम अकृत्रिम भेदसे दो प्रकारके विष जलमें न डाले ॥ ५६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रवोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभांपेत  
यज्ञं गच्छेन्नृचावृत्तः ॥ ५७ ॥ अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च  
सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

टीका—सूने घरमें अकेला न सोवे और सोते हुए घन विद्या आदि करि अपनेसे अधिकको न जगावे और रजस्वला स्त्रीसे बातचीत न करै और विना वरण किया हुआ अर्थात् ऋत्विक् न होकर यज्ञमें न जाय देखनेको तो जाय ॥ ५७ ॥ अग्निके घरमें गौओंके निवासमें बहुतसे ब्राह्मणोंके समीप और वेदपाठ तथा भोजनके समयमें बांह समेत दाहिने हाथको वस्त्रसे बाहर निकाले ॥ ५८ ॥

न वारयेद्गौं धर्यन्तीं न चार्चक्षीत कस्यचित् ॥ न दिवीन्द्रांयुधं  
दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥६९॥ नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि  
बहुले भृशम् ॥ नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥६०॥

टीका-जल पीती हुई गौको मने न करै और दूसरेके जल आदि पीती  
हुईको उस्से न कहै और निषिद्ध दर्शनके दोषका जाननेवाला आकाशमें इंद्रधनुषको  
देखिकै और किसीको न दिखावै ॥ ६९ ॥ जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते होय  
और जिसमें बहुतसे मनुष्य कठिन रोगोंसे पीडित होय उस ग्राममें अत्यंत दसना  
योग्य नहीं है और मार्गमें अकेला कभी न चलै और बहुतकालतक पर्वत-  
पर न वसै ॥ ६० ॥

न शूद्रराजे निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ॥ न पापण्डिगर्णाक्रान्ते  
नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥६१॥ न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्त-  
माचरेत् ॥ नातिप्रगे नातिसायं नसायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

टीका-जिस देशमें शूद्रराजा होय वहां न वसै और अधर्मी मनुष्यों करि वाहरसे  
घरे हुये ग्रामआदिमें न वसै और वेदसे वाहरी चिन्होंके धारण करनेवालोंकरि वश  
किये हुये तथा चांडाल आदि अंत्यजों करि उद्धृत किये हुये ग्राममें न वसै ॥ ६१ ॥  
चिकनाई निकाले हुये पीना आदिको न खाय और दीवारमें भी अतिवृत्ति न करै  
अर्थात् बहुत पेट भरकै न खाय और सूर्यके उदयकाल तथा अस्तकालमें भोजन न  
करै और जो प्रातःकाल बहुत पेटभरकै खाले तो संध्याभोजन न करै ॥ ६२ ॥

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिवेत् ॥ नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यां  
न्नं जातु स्यात्कुर्वहली ॥६३॥ न नृत्येदथवा गायेत्रं वादित्राणि  
वादयेत् ॥ नास्फोटयेन्न च क्ष्वे<sup>१२</sup> डेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ ६४ ॥

टीका-वृथा चेष्टा न करै और अंजलिसि जल न पीवै और गोदीमें रखकै लइइ  
आदि न खाय और बिना प्रयोजनके यह क्या है ऐसे जाननेकी इच्छाकी कुर्वहल न  
करै ॥ ६३ ॥ शास्त्रसे भिन्न नाचना गाना बजाना न करै ताल न ठोकै तौतली  
बोली न बाले और प्रसन्नतामें भरकै गधा आदिका शब्द न करै ॥ ६४ ॥

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥ न भिन्नभाण्डे भु-

अतीतं न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥ उपांनहौ च वासश्च धृतमन्यै  
न धारयेत् ॥ उपवीतमलंकारं स्रजं कैरकमेवं च ॥ ६६ ॥

टीका— कांसेके पात्रमें पैर न धाँवै और तांवा चांदी सोना इनकां छोडकर और धातुओंके फुटे पात्रमें भोजन न करै और जिस्से मनको घिना होय ऐसे भावदूषित पात्रमें न खाय ॥ ६५ ॥ जूता कपडा यज्ञोपवीत अलंकार फूलोंकी माला और कमंडलु दूसरेके जूठे किये हुए इनको न धारण करै ॥ ६६ ॥

नाविनीतैः ब्रजेद्भुयैर्न च क्षुद्र्याधिपीडितैः ॥ न भिन्नशृङ्गाक्षिसुरै  
न वालाधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥ विनीतैस्तु ब्रजेन्नित्यं मांशुगैर्ल-  
क्षणान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥

टीका—विना सिखाये हुए हाथी घोडा आदि वाहनोंमें और मुख तथा रोगसे दुखी-  
और जिनके सींग आंखि और खुर टूटे फूटे गये हैं और बंडि पूछके वाहनोंमें चढ-  
कर न चलै ॥ ६७ ॥ सिखाये हुए जलदी चलनेवाले शुभमूचक लक्षणोंकारिके  
युक्त सुंदर रंग और मनोहर मूरतिके वाहनोंमें चाबुक आदिसे बहुत पीडा न देता  
हुआ गमन करै ॥ ६८ ॥

वालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ न च्छिन्द्यान्नखलो-  
मानिदं तनोर्त्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥ न मृच्छोष्टं च मृद्रीयान्न च्छि-  
न्द्यात्करजैस्तृणम् ॥ न कर्म निष्फलं कुर्यान्नैयत्यामसुखोदयम् ७०

टीका—वालातप कहिये पहले उदय हुए सूर्यका घाम अथवा कन्याकी संक्रांतिका  
घाम और जलते हुए मुरदेका धुआं तथा टूटा फूटा आसन ये वर्जितहैं और नहीं बडे  
हुए नख तथा रोमोंको न काटै और दांतोंसे नखाको न चावै ॥ ६९ ॥ विनाकारण  
मट्टी तथा डेलोंको मर्दन न करै और नखांसे तिनको न तोडै और दृष्ट अदृष्ट फल-  
रहित कर्म न करै और आगे दुखदनेवाला कर्म न करै जैसे अजीर्णमें भोजन ॥ ७० ॥

लोष्टमदीं तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥ स विनाशं ब्रजत्योशुं  
सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥ न विगर्ह्य कथां कुर्याद्ब्रहिमाल्यं न  
धारयेत् ॥ गवां च थानं पृष्टेन संवथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

टीका—डेलोंका मर्दन करनेवाला और तिनकोंका छेदन करनेवाला तथा नखांका

चवानेवाला मनुष्य और सूचक कहिये खल जो पराये दोषोंको न होनेपर उनको कहै और अशुचि कहिये जो वाहरी शौचसे रहित होय ये शीघ्रही देह धन आदिसे नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ७१ ॥ शास्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठसे बातचीत न करै और केशोंके समूहसे बाह्य मालाको न धारण करै और पीठ पर चढके बैलोंकी सवारी सब प्रकारसे निषिद्ध है पीठके कहनेसे उन करि खींचि हुए रथ आदिमें चढनेका निषेध नहीं है ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वैश्वं वा व्रतम् ॥ रात्रौ च वृक्षमूला  
नि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥ नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नो  
पानहौ हरेत् ॥ शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चांसने ॥ ७४ ॥

टीका-परकोटा आदिसे घिरे हुए ग्राममें अथवा घरमें द्वारको छोडके दूसरे मार्गसे अर्थात् परकोटेको पलांग कर न जाय और रात्रिमें वृक्षके मूलके पास न बैठे उनको दूरहीसे त्याग करै ॥ ७३ ॥ दांव लगाये विना कभी भी अथवा हंसीमभी पांस न खेलै और पैरोंमें पहिरनेके सिवाय आप अपने जूते हाथसे दूसरे देशको कभी न ले जाय और शय्यापर बैठके न खाय और बहुतसा अन्न हाथमें रखके क्रमसे न खाय और आसनपर भोजनके पात्रको रखके भोजन न करै ॥ ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नग्नः शयितेह न  
चोच्छिष्टः क्वचिद्भजेत् ॥ ७५ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु  
संविशेत् ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीनो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

टीका-जो कुछ तिलोंसे मिला हुआ पदार्थ लड्डू आदिहैं उनको रात्रिमें न खाय और इस लोकमें नंगा होके न सोवै और जूटा होके कहीं न जाय ॥ ७५ ॥ जलसे गीले पैर होनेपर भोजन करै और गीले पैरोंसे सोवै नहीं और गीले पैरोंसे भोजन कर्त्ता हुआ पुरुष बडी आयुको प्राप्त होता है अथवा शतायु होता है ॥ ७६ ॥

अत्रशुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ न विण्मूत्रमुदीक्षेत् न  
बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥ अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थि  
कर्पालिकाः ॥ न कर्पासांस्थि न तुषान्दीर्घमार्युर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

टीका-जहां नेत्रोंसे नहीं देख सकते ऐसे वृक्ष बेलि गुल्म आदिसे घने वन आदि दुर्ग कहिये कठिन स्थानमें कभी न जाय क्योंकि वहां सांप चार आदि

के छुप रहनेका संभव है और विष्ठा तथा भूत्रकी न देख और बाहोंसे नदीको न उतरै अर्थात् पैर कर नदीके पार न जाय ॥ ७७ ॥ जो बहुत दिनोंतक जीवना चाहै तौ बाल भस्म हाड खपरा विनौला भूसी इन पर न बैठे ॥ ७८ ॥

नै संवसेच्चं पतितैर्न चाण्डालैर्न पुलकसैः॥ नै भूर्खैर्नोर्वलितैश्च नै  
न्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७९॥ नै शूद्राय मतिं दर्शान्नोच्छिष्टं  
हविष्कृतम्॥ नै चास्योपदेशेर्द्धर्मं नै चास्यं व्रतमादिशेत्॥८०॥

टीका—पतित चाण्डाल पुलकस भूर्ख धन आदिके मदसे गर्वित और अंत्य कहिये अत्यज घोवी आदि और अंत्यावसायी कहिये जो निपादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्न है ये दूसरे ग्रामकेभी रहनेवाले होंय तौभी इनके साथ एक वृक्षकी छायामें समीप न वसै ॥ ७९ ॥ शूद्रको मति न दे अर्थात् दृष्ट अर्थका उपदेश न करै और दाससे भिन्न शूद्रको जूठा न दे और हविष्कृत कहिये हविंका शेष न दे और धर्मका उपदेश न करै और प्रायश्चित्तरूप व्रतभी इसको स्थात उपदेश न करै किन्तु ब्राह्मणको बीचमें करै उसको उपदेश करै ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम्॥ सोऽसंवृतं नाम तमः  
संहते नैव मज्जाति ॥८१॥ नै संहर्ताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदा-  
त्मनः शिरः॥ नै स्पृशेत् चैतदुच्छिष्टं नै च स्नायाद्दिनां ततः॥८२॥

टीका—जिस्ते जो शूद्रको धर्म कहता है आर जो प्रायश्चित्तका उपदेश करताहै वह उस शूद्रसमेत जिसमें अंधकार बहुत है ऐसे असंवृतनाम नरकमें डूबता है ॥ ८१ ॥ मिले हुय दोनों हाथोंसे अपने शिरको न खुजावै और जूठे हाथोंसे अपने शिरको न छुवै और शिरके बिना नित्य नैमित्तिक स्नान न करै ॥ ८२ ॥

केशग्रहान्ग्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ शिरःस्नातश्च तलन  
नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥ नै राङ्गः प्रतिगृह्णीयादराज-  
न्यप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवृतां वेशेनैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

टीका—क्रोधसे बाल पकडना और चोंट मारना ये दोनों बातें शिरमें न करै और अपने शिरसे न्हाये हुएके किसी अंगको तैलसे न छुवै ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रियसे उत्पन्न नहीं है ऐस राजास धनको न ग्रहण करै और सूनावाले चक्रवाले तथा ध्वज-वालोंसे सूना कहते हैं प्राणीके बधके स्थानको सो जिसके होय उसको सूनावाल

कहतेहैं अर्थात् पशुको मारकै मांस बेचनेवाला कसाई आदि और बीजोंका वध करि बेचक जीवनेवाला चक्रवाला कहाता है जैसे तेली और मद्यको बेचकर जीवनेवालेको ध्वजवान् कहते हैं जैसे कलाल और वेइसे जीविका करनेवाले जैसे वेइया बहुरूपिया आदि इनके धनको न ग्रहण करै ॥ ८४ ॥

दशसूनासंमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमो वेशो दश  
वशसमो नृपः ॥ ८५ ॥ दश सूनासंहस्त्राणि यो वाहर्याति सौ-  
निकः ॥ तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

टीका-दशसूनावालोंमें जितना दोष होता है उतना एक तेलीमें होता है और दश तेलियोंमें जितना दोष होता है उतना एक कलालमें होता है और दश कलालोंमें जितना दोष होता है उतना एक वेइया वा बहुरूपियामें होता है और जितना दश वेइया वा बहुरूपियामें होता है उतना एक राजामें मनु आदिकोंने कहा है ॥ ८५ ॥ जो सूनावाला दशहजार जीवोंका वध करता है उसकी बराबर राजा मनु आदिकोंने कहा है तिससे राजाका धन लेना नरकका कारण होनेसे भयानक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥  
संपर्यायेण यातिमार्त्तरिकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

टीका-जो राजाका और शास्त्रका उलंघन करनेवाले कृपणका धन लेता है वह क्रमसे आगे कहे हुए इक्कीस नरकाम जाता है ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कालसूत्रं च महान-  
रकमेव च ॥ ८८ ॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनं ॥ संघातं  
च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च  
पन्थानं शालमलीं नदीम् ॥ असिपत्रवनं च लोहदारकमेव च ९०

टीका-नरक गिनाते हैं जैसे तामिस्र १ अंधतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ कालसूत्र ५ महानरक ६ इन नरकोंका स्वरूप मार्कंडेय आदि पुराणोंमें विस्तारसे कहा है वहांसे जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ संजीवन ७ महावीचि ८ तपन ९ संप्रतापन १० संघात ११ सकाकोल १२ कुड्मल १३ पूतिमृत्तिका १४ ॥ ८९ ॥ लोहशंकु १५ ऋजीष १६ पन्थान १७ शालमली १८ नदी १९ असिपत्रवन २० लोहदारक २१ ॥ ९० ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति

प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥९१॥ ब्राह्मे मुहूर्तेषु ध्येत धर्मार्थौ चानु  
चिन्तयेत् ॥ कार्यक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

टीका—प्रतिग्रह नानाप्रकारके नरकोंका कारण है इस बातके जाननेवाले धर्मशास्त्र और पुराण आदिके जाननेवाले दूसरे लोकमें कल्याणके चाहनेवाले ब्राह्मण राजाका दान नहीं लेते हैं ॥ ९१ ॥ ब्राह्ममुहूर्त जो रातिका पिछला पहर है उसमें जागे फिर धर्म तथा अर्थका आपसमें बिना विरोधके करनेके लिये चिन्तन करे और धर्म अर्थ के इकठे करनेमें जो शरीरके क्लेशहैं उनकोभी विचारै अर्थात् जिसमें शरीरको अधिक क्लेश होय और धर्म तथा अर्थ थोडा होय तौ उसको छोड दे और ब्रह्मकर्म-रूप वेदके तत्त्वका निश्चय करै क्योंकि उस समयमें बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यं कृत्वा कृत्तशौचः समाहितः ॥ पूर्वा संध्यां जपंस्तिं  
ष्टेस्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९३ ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यात्वादीर्घमा-  
युरवायुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

टीका—तिस पीछे प्रातःकाल शय्यासे उठकर वेग होनेपर दिशा बाधा होकै आगे कहे हुए शौचको करि एकाग्रचित्त हो प्रातःकालकी संध्या बहुत देरतक गायत्री जप-ता हुआ करै जबतक सूर्यका उदय होय तबतक यह संध्याकी विधि कही है आयु आदि कामनावाला पुरुष उदयके उपरांतभी जप करै सायंकालकी संध्याको भी अपने समयमें प्रारंभ करि ताराओंके उदयके उपरांतभी जपता हुआ स्थित रहै ॥ ९३ ॥ जिसे ऋषि बडी देरतक संध्या करनेसे बडी आयु प्रज्ञा बडी कीर्ति और वेदाध्यन आदिसे संपन्न यशको प्राप्त हुये तिससे आयु आदिका चाहनेवाला पुरुष बडी देरतक संध्योपासन करै ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रोष्ठपैद्यां वाप्युर्पाकृत्य यथाविधि ॥ युक्तं च्छन्दांस्यधी  
यीतं मासांन्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥ ९५ ॥ पुष्ये तु च्छन्दासां कुर्याद्भि  
हिरुत्सर्जनं द्विजैः ॥ माघशुक्लस्य वा प्राते पूर्वाह्ने प्रथमेऽर्हनि ॥ ९६ ॥

टीका—श्रावणीमें अथवा भाद्रपदकी पूर्णमासिमें अपने गृहके अनुसार उपाकर्म-नाम कर्मको करिकै साढेचार महीनेतक उनमें तत्पर हो वेदोंको पढै ॥ ९५ ॥ तिस पीछे साढेचार महीनोंमें जब पुष्यनक्षत्र आवै तब ग्रामसे वाहर जाकै अपने गृहके अनुसार उत्सर्गनाम कर्म करै अथवा माघशुक्लके पहले दिन पूर्वाह्न समयमें करै ॥ ९६ ॥



यथाशौचं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां वहिः ॥ विरमेत् पक्षिणीं रात्रिं  
तं देवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥ अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः  
पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

टीका-ऐसे कहे हुए शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहर वेदोंका उत्सर्गनाम कर्म करिके पक्षिणी रातिमें ठहर जाय पढ़े नहीं । पहले और पिछले दो दिन जिसके पक्षोंके समान होय उनके बीचकी रात्रिकी पक्षिणी कहते हैं इस पक्षमें तौ उत्सर्गके राति-दिन और दूसरे दिनभी दिनमें न पढ़ना चाहिये दूसरी रात्रिमें तौ पढ़ना चाहिये अथवा उसी उत्सर्गके दिन रातिमें अनध्याय करै ॥ ९७ ॥ उत्सर्गके पढ़नेके उपरांत मंत्रब्राह्मणरूप वेदको शुक्लपक्षमें पढ़ै और शिक्षाव्याकरण आदि वेदके अंगोंको कृष्णपक्षमें पढ़ै ॥ ९८ ॥

नाविस्पृष्टमधीथीतं न शूद्रजनसन्निधौ ॥ न निशान्ते परिश्रान्तो  
ब्रह्माधीत्यं पुनःस्वपेत् ॥ ९९ ॥ यथोदितेन विधिना नित्यं छन्द  
स्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्मं छन्दस्कृतं च वै द्विजोयुक्तो ह्यनार्पदि ॥ १०० ॥

टीका-स्वरवर्ण आदिके स्पष्ट उच्चारणके विना और शूद्रके समीप न पढ़ै और रातिके पिछले पहर सोनेसे उठकर वेदको पढ़ि थका हुआ फिर न सोवै ॥ ९९ ॥ यथोक्त विधिसे नित्य छंदस्कृत कहिये गायत्री आदि छंदो करि युक्त मंत्रसमूहको पढ़ै आपत्तिरहित समयमें सामर्थ्य होनेपर वेदब्राह्मण और मंत्रसमूहको कही हुई विधिसे युक्त हो द्विज पढ़ै ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीथानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः  
शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥ कर्णस्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुं  
समूहने ॥ एतौ वर्षास्वर्नध्यायानध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ २ ॥

टीका-इन आगे कहे हुए सभी अनध्यायोंको उक्त विधिसे पढ़ता हुआ शिष्य और पढाता हुआ गुरु वर्जित करै ॥ १ ॥ रातिमें कानोंसे सुननेयोग्य शब्द करनेवाले पवनके चलनेपर और दिनमें धूलि उड़ानेवाले पवनके चलनेपर न पढ़ै वर्षाकालमें इन अनध्यायोंको तत्कालके अनध्यायोंके जाननेवाले मनु आदि कहते हैं ॥ २ ॥

विद्युस्तनितवर्षेषु महोत्कानां च संप्लवे ॥ अर्कालिकमनध्याय  
मेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृता

ग्निषु ॥ तदा विद्यादनंध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ४ ॥

टीका—विजलीका चमकना गर्जना और इन सबके एकसाथ होनेपर और इधर बहुतसे उल्कापात अर्थात् तारोंके टूटने पर उस समयसे लगाकै दूसरे दिन उसी समय-तक मनुने अकालिक अनध्याय कहा है ॥ ३ ॥ जो अग्निहोत्रके समय विजली आदि इन सब उत्पातोंको एकसाथ प्रकट हुए जानै तौ वर्षाऋतुमें अनध्याय करै सदा नहीं और ऋतुमें अग्निहोत्रके समय मेघके देखनेहीसे अनध्याय होताहै वर्षाऋतुमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतानर्कालिकान्वि-  
द्यादनंध्यायानृतावपि ॥ ५ ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनि  
तनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनंध्यायः शेषेरात्रौ यथा दिवा ॥ ६ ॥

टीका—आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्दके होनेपर और भूमिकंप होनेपर और ज्योति जे हैं सूर्य चंद्र तारागण तिनके उपद्रव होनेपर इन अनध्यायोंको अकालके जानै और ऋतुमेंभी वर्षाके विषे भूकंप आदि दोषके लिये नहीं होतेहैं इस आभेप्रायसे ऋतौअपि यह कहा ॥ ५ ॥ होमके अग्निके प्रकाशित करनेपर संध्यासमय जो विजली और गर्जना होय वर्षा न होय तौ सज्योति अनध्याय होताहै अकालका नहीं है उनमें जो प्रातःकालकी संध्यामें विजली और गर्जना होय तौ जब सूर्यज्योति है तबतक एकादिनका अनध्याय होताहै और जो सायंकालकी संध्यामें होवेतौ जब नक्षत्र ज्योति है तबतक रातिभरका अनध्याय होताहै और विजली गर्जना तथा वर्षा तीनोंमेंसे जो वर्षानाम तीसराही होय तौ जैसे दिनमें अनध्याय होताहै ऐसेही रात्रिमेंभी अर्थात् दिनरातिका अनध्याय होताहै ॥ ६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैषुण्यका  
मानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ ७ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य  
च संनिधौ ॥ अनध्यायो रुद्यमाने सर्मावाये जनस्य च ॥ ८ ॥

टीका—धर्मकी अधिकता चाहनेवालोंको ग्राम तथा नगरमें सदा अनध्याय होताहै और दुर्गंधके आनेमें सदा अनध्याय होताहै ॥ ७ ॥ जिस ग्रामके भीतर स्थित मुर्दा जना जाय उसमें और वृषल जहां अधर्मी होय उसके समीप और रोनेका शब्द होने-पर और किसी कामके लिये बहुत मनुष्योंका मेल होनेपर अनध्याय होताहै ॥ ८ ॥

उदके मध्यरात्रे च विष्णुत्रयं विसर्जने॥ उच्छिष्टः श्राद्धं मुक् चैव  
मनसापि न चिन्तयेत् ॥९॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य  
केतनम् ॥ त्र्यहं न की तयेद्ब्रह्मं राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११० ॥

टीका-जलमें और आधी रात्रिमें चार सुदूरतक और मूत्र तथा पुरीषके त्यागनेके समय और अन्नके भोजन आदिसे जूठा होनेपर और निर्मंत्रणके समयसे श्राद्धभोजनके दिनरातितक मनस्सेभी वेदका चिंतन न करे ॥ ९ ॥ जो एकहीके लिये किया जाय वह एकोद्दिष्ट कहिये नवश्राद्ध उसमें न्योता मानिके निर्मंत्रण समयसे और क्षत्रिय जो देशका स्वामी है उसके पुत्रजन्म आदिके सूतकमें तथा राहुके सूतक अर्थात् सूर्य चंद्रके ग्रहणमें तीनी रात्रितक विद्वान् वेद न पढ़े ॥ ११० ॥

यावदेकानुद्दिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठेति ॥ विप्रस्य विदुषो देहं  
तावद्ब्रह्मं न की तयेत् ॥११॥ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसं  
क्थिकाम् ॥ नाधी थीतामिषं जग्ध्वा सूतकात्राद्यमेव च ॥१२॥

टीका-एकोद्दिष्ट श्राद्धका उच्छिष्ट कुंकुम चंदन आदिका लेप विद्वान् ब्राह्मणके देहमें रहै तबतक तीनी दिनसे उपरांतभी वेद न पढ़े ॥ ११ ॥ शय्यापर पडाहुआ आसनपर पैर रखे हुए और दोनों घोटुओंको मोड़के और मांस खायके और जनन तथा मरणके सूतकका अन्न खायके वेदको न पढ़े ॥ १२ ॥

नीहारे वाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः॥ अमावास्या चतुर्दशयोः  
पौर्णमास्यष्टकासु च ॥१३॥ अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति  
चतुर्दशी ॥ ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥१४॥

टीका-कुहिरमें और वाणके शब्दमें और दोनों संध्याओंमें और अमावास्या तथा चतुर्दशीको पूर्णमासी और अष्टमीको वेद न पढ़े ॥ १३ ॥ अमावास्या गुरुको मारती है और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टमी तथा पूर्णमासी वेदको भुलाती है तिससे ये सब वेदके पढ़नेमें वर्जित हैं ॥ १४ ॥

पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा॥ श्वखरोष्ठे च रुवति पंडू  
च न पठेद्विजः ॥१५॥ नाधी थीत इमशानान्ते ग्रामान्ते गो-  
ब्रजेऽपि वा॥ वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ १६ ॥

टीका—धूलिके वरसनेमें दिशाओंके दाहमें और स्यार कुत्ता गधा ऊंट इनके शब्द कानेपर और पंक्तिमें बैठकर ब्राह्मण वेदको न पढ़े ॥ १५ ॥ श्मशानके तथा ग्रामके समीप और गौओंके स्थानमें और मैथुन समयके वस्त्र पहिरिके और श्राद्धका अन्न लेकर वेदको न पढ़े ॥ १६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ तदालभ्यां  
ध्यानध्यायैः पाण्यास्यो हि द्विर्जः स्मृतः ॥ १७ ॥ चोरैरुपप्लुते ग्रामे  
संभ्रमे चाग्निं कारिते ॥ अकालिकमनध्यायं विद्यां त्सर्वाद्भुतेषु च १८ ॥

टीका—प्राणि गौ अश्व आदि अयज्ञ अग्नाणि वस्त्र माला आदि इनको दानके समय हाथसे पकडकर अनध्याय होताहै क्योंकि पाण्यास्यः अर्थात् हाथही है मुख जिसके ऐसा ब्राह्मण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ चोरों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें और अग्निसे घर जलाने आदिके समयमें और दिव्य अंतरिक्ष तथा भूमिके अद्भुत उत्पातोंमें अकालका अनध्याय जानिये ॥ १८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गै र्त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥ अष्टकासु त्वहोरात्रमृ-  
त्वंन्तासु च रात्रिषु ॥ १९ ॥ नाधीर्यीताश्चमारूढो न वृक्षं न च हस्ति-  
नम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं न रिणं स्थो न यानं गः ॥ १२० ॥

टीका—उपाकर्म और उत्सर्गमें तीनि रात्रिका अनध्याय कहाहै और तैसेही अग-  
हनकी पूर्णिमाके उपरांत कृष्णपक्षकी तीनि अष्टमियोंमें रात्रिदिनका अनध्याय होताहै  
और ऋतुओंके अंतके रातिदिनका अनध्याय होताहै ॥ १९ ॥ घोडा वृक्ष हाथी  
नाव गधा और ऊंट इनपर चढाहुआ और ऊपरदेशमें तथा गाडी आदि सवारिमें  
चलता हुआ वेदको न पढ़े ॥ १२० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरो ॥ न भुक्तमात्रे ना जीर्णे  
न वमिंत्वा न सूतके ॥ २१ ॥ अतिथिञ्चाननुज्ञाप्य मारुते वांति  
वा भृशम् ॥ रुधिरे च स्तुते गात्राच्छेद्येण च परिक्षते ॥ २२ ॥

टीका—विवाद कहिये बातोंकी लडाईमें और कलह कहिये लार्ठी दंडा आदिके  
चलनेमें और जिसमें युद्ध नहीं होना लगाहै ऐसी सेनामें और युद्धमें और भोजनके  
पीछे जबतक हाथपैर गीले रहें तबतक और अन्नके न पचनेमें और वमन करिके  
और खट्टी डकार आनेपर वेदको न पढ़े ॥ २१ ॥ अव्ययन करताहों यह आज्ञा

जवतक अतिथिको नहीं दीजाती है तवतक और आंधी चलनेपर और शरीरसे रुधिर निकलनेपर और रुधिर न निकलनेपरभी शस्त्रसे घाव होनेपर वेदको न पढ़ै ॥ २२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नोधीयीत कदाचन॥वेदस्याधीत्य वाप्यन्तं  
मारण्यकर्मधीत्य च ॥२३॥ ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मा-  
नुषः ॥ सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥२४॥

टीका-सामकी ध्वनि मुनि जानेपर ऋक् और यजुको कभी न पढ़ै और वेदको समाप्त करि आरण्यकनाम वेदके एकदेशको पढके उस रातिदिन दूसरा वेद न पढ़ै ॥ २३ ॥ ऋग्वेद देवदैवत्यहै अर्थात् देवताही इसके देवता हैं और यजुर्वेद मनुष्यदेवता होनेसे अथवा बहुधा मनुष्योंके कर्म उपदेश करनेसे मानुष है और सामवेद पितृदेवता होनेसे पित्र्यहै पितृकर्म करिके आचमन करना कहाहै तिस्से उसकी ध्वनी अशुचिसीही है अशुचिही नहीं है इस्से उसके मुननेपर ऋक् और यजु न पढ़ै ॥ २४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमशः पूर्वमभ्यस्य  
पश्चाद्वेदमधीर्यते ॥ २५ ॥ पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुला  
खुभिः ॥ अन्तरागमने विद्यादनर्ध्यायमर्हनिशम् ॥ २६ ॥

टीका-तीनों वेदोंके देव मनुष्य पितृ देवताहैं इस बातको जानते हुए विद्वान् त्रयी-निष्कर्ष कहिये तीनों वेदोंका निकाला हुआ सार प्रणवव्याहृति सावित्रीरूप अर्थात् पहले क्रमसे प्रणव व्याहृति और सावित्रीको पढकर पीछे वेदका अध्ययन करते हैं ॥ २५ ॥ गौआदि पशु मेढक विलाव कुत्ता सांप न्योला और मूसा ये जो गुरुशिष्यके बीचमें होके निकल जाँय तौ दिनरातिका अनध्याय जानिये ॥ २६ ॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमर्ध्यायौ प्रयत्नतः॥स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धा-  
मात्मानं चाशुचिं द्विजं ॥२७॥ अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासा  
चतुर्दशीम्॥ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ २८ ॥

टीका-जूठनि आदिसे विगडी हुई वेदपाठकी भूमिको और कहे हुए शौचसे रहित आपको इन दोनों अनध्यायोंको द्विज यत्नसे वर्जित करै ॥ २७ ॥ अमावास्या अष्टमी पूर्णमासी और चतुर्दशीको स्नातक द्विज ऋतुकालमेंभी स्त्रीसे भोग न करै सदा ब्रह्मचारी रहै ॥ २८ ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि॥न वासोभिः संहर्ज

संनोविज्ञाते जलशये ॥२९॥ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकार्चययो  
स्तथा ॥ नैकमेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥१३०॥

टीका—भोजन करिके अपनी इच्छासे स्नान न करै और रोगी होके स्नान न करै  
और महानिशा जो बीचके रातिके दो पहरहैं उनमें और बस्त्रोंसमेत और बिना जाने  
हुए जलाक्षय अर्थात् नदी तालाव आदिमें स्नान न करै ॥ २९ ॥ पत्थर आदिके  
घने हुए देवताओंकी गुरुकी राजाकी स्नातककी आचार्यकी कपिलकी और दीक्षि-  
तकी छायाको न उलायै ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेर्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभ-  
योश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ ३१ ॥ उद्धर्तनमपस्नानं विष्मूत्रे  
रक्तमेव च ॥ श्लेष्मनिष्ठचूतवान्तानि नाधि तिष्ठेत्तु कामतः ॥ ३२ ॥

टीका—दिनके मध्यमें आधी रातिमें और मांससमेत श्राद्धकी खायकै और दोनों  
संध्याओंमें चौराहेंमें न जाय ॥ ३१ ॥ उबटनेका उतरा हुआ चून आदि स्नानका  
जल विषा मूत्र थूकाहुआ कफ और वमन कियाहुआ इन सबोंमें जानकै किसीके  
ऊपर न बैठै ॥ ३२ ॥

वैरिणं नोपसेवेत साहाय्यश्चैव वैरिणः ॥ अर्धार्मिकं तस्करश्च परं  
स्यैव च योषितम् ॥ ३३ ॥ न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन  
विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३४ ॥

टीका—वैरीका और उसके मित्रका और अधर्मी चोरका तथा पराई स्त्रीका कभी  
सेवन न करै ॥ ३३ ॥ इस लोकमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कुछ नहीं है  
जैसा पराई स्त्रीका सेवन ॥ ३४ ॥

क्षत्रियश्चैव सर्पश्च ब्राह्मणश्च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वैभूषणुः  
कृशानपि कदाचन ॥ ३५ ॥ एतत्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवर्मा-  
नितम् ॥ तस्मादेतत्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ३६ ॥

टीका—धन आयु आदिकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य क्षत्रिय सर्प बहुश्रुत ब्राह्मण  
और दुर्बलका कभी अपमान न करै ॥ ३५ ॥ तिरस्कार किये हुए ये क्षत्रिय आदि तीनों  
पुरुषको जलाय देते हैं तिस्से बुद्धिमान् इन तीनोंका कभी अपमान न करै ॥ ३६ ॥

नात्ममानमवमन्येत पूर्वाभिरसंमृद्धिभिः ॥ आत्मृत्योः श्रियमन्वि  
च्छत्रै १२ नां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ संत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्त्रं ब्र-  
र्यात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेपि धर्मः समातनः ॥ ३८ ॥

टीका-धर्मके लिये उद्यम करनेपर जो धन न मिले तौ मैं मंदभाग्य हूँ ऐसे कहकर अपनी निंदा न करे किंतु मरनेतक लक्ष्मीकी सिद्धिके लिये यत्न करे इसको दुर्लभ न माने ॥ ३७ ॥ देखा और सुना हुआ सत्य कहै और जैसे तुम्हारे पुत्र हुआहै ऐसी प्यारी बात कहै और देखा सुनायी अप्रिय जैसे तुम्हारा पुत्र मरगया ऐसा अप्रिय न कहै और प्यारीभी बात झूठ न कहै यह वेदमूलक सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येवं वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न  
कुर्यात् केनचित् सह ॥ ३९ ॥ नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्य-  
न्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छत्रै १२ को ११९ न वृषलैः सह ॥ १४० ॥

टीका-भद्रं भद्रं अर्थात् बहुत अच्छा २ ऐसे कहै अथवा भद्र ऐसाही अर्थात् अच्छा ऐसे कहै सूखा बैर तथा विवाद किसीसे न करे ॥ ३९ ॥ न बहुत सवेरे न बहुत संध्याको न ठीक दुपहरमें और विन पहचानके साथ न अकेला न और वृषलोंके साथ गमन न करे ॥ १४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥  
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिं पेत ॥ ४१ ॥ न  
स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥ नर्चापि  
पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥ ४२ ॥

टीका-हीन अंगवालोंकी अधिक अंगवालोंकी मुखोंकी वूठोंकी और रूप तथा द्रव्यसे हीन अर्थात् कुरूप और कंगालोंकी और हीनजातिकी कभी काना आदि शब्द कर-  
कर पुकारनेसे निंदा न करे ॥ ४१ ॥ भोजन करिके वा मलमूत्रका त्याग करिके ब्राह्मण विना शौच और आचमनके और ब्राह्मण तथा अग्निको न छुवै ॥ ४२ ॥

स्पृष्टैतानशुचिर्नित्यमर्द्धिः प्राणानुस्पृशेत् भर्गात्राणि चैवं सर्वा-  
णि नाभि पाणितलेन तु ॥ ४३ ॥ अनातुरः स्वानि खानि न स्पृ-  
शेदनिमित्ततः ॥ रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

टीका—अशुद्धतामें इन गौ आदिको छूकर आचमन करि हाथमें लिये हुए जलसे प्राणोंको और नेत्र आदि इंद्रियोंको और शिर कंधा जानु पैर और नाभिको हथेलीसे छुवै ॥ ४३ ॥ अच्छे भलेमें अपनी इंद्रियोंके नाक कान आदि छेदोंकोभी विनाकारण न छुवै और छुवानेके योग्य लिंगके समीपके तथा कांख आदिके चालोंको विनाकारण न छुवै ॥४४॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयत्नात्मा जिं तेन्द्रियः ॥ जपेच्च जुहुयाच्चै<sup>११</sup>  
 वै नित्यं मग्निमतन्द्रितः ॥ ४५ ॥ मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रय-  
 तात्मनाम् ॥ जपतां जुह्वताञ्चैव विनिर्पातो न विद्यते ॥ ४६ ॥

टीका—चाहेहुए अर्थकी सिद्धिको मंगल कहते हैं कारणके होनेसे गोरो-  
 चना आदिका लगाना मंगलहै और गुरुसेवा आदि आचार हैं उसमें लगा  
 रहै अर्थात् सदा आचार करता रहै और वाहरी तथा भीतरी शौचसे युक्त जितेंद्रिय  
 रहै और गायत्री आदिका जप और विहित होमको आलस्यरहित हो नित्य करै ॥४५॥  
 मंगल तथा आचारसे नित्य शुद्ध और जप तथा होममें लगेहुए पुरुषोंको दैवी  
 तथा मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ ४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ॥ तं ह्यस्योद्दिः परं धर्ममुप  
 धर्मोऽन्य उच्यते ॥ ४७ ॥ वेदाभ्यासेन सततं शौचं च तपसैव  
 च ॥ अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ ४८ ॥

टीका—नित्यकर्मके समयमें कल्याणका कारण होनेसे प्रणवसहित गायत्री आदिवेदको  
 आलस्य छोड़के जपै जिस्से उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका धर्म मनु आदि कहते हैं और धर्म  
 तौ मुनियोंकरि उससे नीचा कहा गया है ॥ ४७ ॥ सदा वेदके अभ्याससे और शौच  
 तप तथा अहिंसा आदिसे पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण करनेवाला होताहै ॥ ४८ ॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥ ब्रह्माभ्यासेन चा-  
 जस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४९ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्  
 पर्वसु नित्यशः ॥ पितृश्वैवाष्टकास्वचैन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ १५० ॥

टीका—पूर्वजन्मकी जातिको स्मरण करताहुआ अर्थात् बहुतसे जन्मोंका स्मरण  
 करता हुआ उनमें गर्भ जन्म जरा मरणके दुःखोंकोभी स्मरण करता हुआ संसारमें  
 विरक्त हो सदा ब्रह्महीका अभ्यास करताहै अर्थात् श्रवण मनन और ध्यानसे



साक्षात् करताहै उससे अनंत अविनाशी परमआनंदका प्रकट होनाही है लक्षण जिसका ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ मूर्य है देवता जिनके ऐसे होमोंको और अनिष्ट दूर होनेके लिये शांतिहोमोंको पूर्णमासी और आमावास्याको सदा-करै तैसे अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत तीनि कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें अष्टकानाम-कर्मसे और श्राद्धसे और उसके भीतर कृष्णपक्षकी नवमी तिथियोंमें अन्वष्टका-कर्मसे परलोकमें गयेहुय पितरोंका यजन करै ॥ १५० ॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ॥ उच्छिष्टान्नं निर्षेकञ्च  
दूरादेवं समाचरेत् ॥ ५२ ॥ मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावन  
मज्जनम् ॥ पूर्वाह्णैवं कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ५२ ॥

टीका-अग्निगृहसे एक वाण चलानेकी भूमिसे कुछ आगे बढ़कर दूर मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका धोना और जलसमेत जूठे अन्नका तथा वीर्यका त्याग करै ॥ ५१ ॥ मैत्र कहिये दिशावाधा जाना और देहका प्रसाधन कहिये प्रातःकालका स्नान दंतून करना अंजन लगाना इन सब बातोंको पूर्वाह्ण कहिये दिनके पहलेही भागमें करै ॥ ५२ ॥

देवतान्यभिर्गच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैवं रक्षांश्च  
गुरुनेव च पर्वसु ॥ ५३ ॥ अभिवादयेद्बृद्धांश्च दद्याच्चैवांसनं  
स्वर्कम् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतःपृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ५४ ॥

टीका-पाषाण आदिके बनेहुए देवताओंके मंदिरमें और धर्मात्मा ब्राह्मणोंके समीप और राजा तथा गुरुकहिये पिता आदिके समीप अपनी रक्षाके लिये आमावास्या आदि पर्वोंमें उनके दर्शनको जाया करै ॥ ५३ ॥ घरमें आयेहुए गुरुओंको नमस्कार करै और उनके बैठनेको अपना आसन दे और हाथ जोरिंके उनके समीप बैठे और जब वे चलें तौ उनके पीछे पहुँचानेको चलै ॥ ५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निवद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदा  
चारमतन्द्रितः ॥ ५५ ॥ आचाराद्धभते ह्यायुराचारदीप्सिताः  
प्रजाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५६ ॥

टीका-वेद और स्मृतियोंकरके अच्छी भाँति कहा गया और अध्वन आदि अपने कर्मोंसे संबंध रखनेवाले और धर्मका कारण ऐसे साधुओंके आचारको बालस्थराहित हो सदा सेवन करै ॥ ५५ ॥ आचारसे वेदमें कही हुई आ-

युको प्राप्त होताहै और चाहीहुई पुत्र पौत्र और पुत्रीरूप सन्तानको तथा बहुतसे धनको प्राप्त होता है आचारही अशुभ फलके सूचित करनेवाले देहमें स्थित कुलक्षण-  
को निष्फल कर देताहै ॥ ५६ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः॥ दुःखभागी च सततं  
व्याधितोऽल्पायुरेव च॥५७॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचार-  
वात्ररः ॥ श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५८ ॥

टीका—दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है और सदा दुःखका भोगनेवाला रोगी और अल्पायु होता है तिससे सदा आचारयुक्त रहै ॥ ५७ ॥ जो सदा आचा-  
रवान् है और श्रद्धायुक्त है और पराये दोषोंको नहीं कहता है वह अपने शुभसूचक  
लक्षणोंसे शून्यमी सौवर्षकी आयुको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्या-  
त्तत्तसे वेत यत्नतः ॥ ५९ ॥ सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं  
सुखम्॥एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

टीका—जो जो कर्म पराये आधीनहै अर्थात् दूसरेके कहनेपर होसकता है उसको  
यत्नसे त्याग करै और जो स्वाधीन है अर्थात् अपनी देहसे होसकता है उसको यत्नसे  
करै ॥ ५९ ॥ सब पराये आधीन काम अर्थात् दूसरेके कहनेसे जो होसकै  
बह दुःखका कारण है और सब अपने आधीन सुखका कारण है यही सुखदुःखका  
कारण जानै ॥ १६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोपोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुं  
र्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मा-  
तरं गुरुम् ॥ न हि स्याद्ब्राह्मणान्गोश्च सर्वाश्चैव तपस्विनः ॥ ६२ ॥

टीका—जिसकामके करते हुए करनेवालेका आत्मा संतुष्ट होय उसको यत्नसे करै  
और जिसे संतुष्ट न होय उसको न करै ॥ ६१ ॥ आचार्य जो यज्ञोपवीत कराकै  
वेद पढानेवाला होय उसको और प्रवक्ता कहिये वेदके अर्थके व्याख्यान करनेवालेको  
और पिता माता तथा गुरुको और ब्राह्मण गौ तथा सब तपस्वियोंको न मारै अर्थात्  
उनसे प्रतिकूल न वर्तै यहां हिंसाशब्दका प्रतिकूल वर्तना अर्थ है ॥ ६२ ॥

नास्ति क्वयं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ॥ द्वेषं दम्भं च मीनं

चं क्रो धं तैक्ष्ण्यं चं वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ परस्य दण्डं नो द्यच्छेत्कुद्धो नैवं  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्रां शिष्यर्थं ताडयेत्तु ॥ ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़दे ॥ ६३ ॥ क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारै पुत्र शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़कै अर्थात् अपराध करनेपर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करै ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणायवगुणैर्व द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्रे  
नरेके परिवर्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्-  
र्वकम् ॥ एकविंशतिमाजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेहीपर मारकै नहीं सौ वर्षतक तामिस्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर तिनकेसेभी ब्राह्मणको मारिकै इकीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनियोंमें उत्पन्न होताहै ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्योसृगङ्गतः ॥ दुःखं सुमहदाप्रोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसूंसंगृह्णाति म-  
हीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुर्त्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽर्धते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणको अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करकै परलोकमें वडे दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्ग आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला हुआ रुधिर भूमिमें गिरकै जितने धूलिके द्रवणुकोंको समेटाताहै उतनी वर्षोंतक परलोकमें मरनेवाला स्थार आदिकोंकरि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विज्ञै तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न ताडयेत्तृणेनापि न  
गात्रैस्त्रावयेदसृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्य  
नृतं धनम् ॥ हिंसारतश्च यो नित्यं ने हासो सुखमेधते ॥ ७० ॥

टीका—तिस्से विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावैभी नहीं और तिनकेसेभी ताडना न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर अधर्मों अर्थात् शास्त्रमें मनेकिये हुए अगम्यागमन आदिका करनेवाला और जिसके

गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अथात् झूठी गवाही देकर धन लेताहै और जो पराई हिंसाको करताहै वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता ॥ १७० ॥ :

नं सीदन्नापि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापांना  
माशुं पश्यन्विपर्ययम् ॥ ७१ ॥ नाधर्मश्चरितो लोके सर्वः फलति  
गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ७२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहेहुए धर्मको मनुष्य धन आदिकेन होनेसे दुःख पानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करै यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धनआदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देते हैं तिसपरभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखताहै इस्से अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावै ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देनेवाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवाली सुट्टे आदि नहीं उत्पन्न होतेहैं किन्तु जब ऋतु आती है तभी होतेहैं ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख होताहै तब करनेवालेको जडसे उखाड देताहै अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ॥ न त्वैव तु कृतोऽधर्मः  
कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ ७३ ॥ अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि  
पश्यति ॥ ततः सर्पन्नाञ्जयति संमूलस्तु विनश्यति ॥ ७४ ॥

टीका—जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै तौ उसके पुत्रोंमें नहीं तौ पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होनेतक ग्राम धन आदिसे बढ़ता है तिस पीछे बहुतसे सेवकों और गौ घोडे आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिसपीछे आपसे निर्वल शत्रुओंको जीतताहै पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्तहोताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण  
वाग्वाहूदरसंयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यो स्यातां धर्म  
वर्जितौ ॥ धर्म चाप्यसुखोदकं लोकविक्रमैर्व च ॥ ७६ ॥

टीका—सत्यधर्म और सज्जनोंके आचार तथा शौचमें सदा प्रीति करै और धर्मसे

शिष्योंको शिक्षादे और वाणी वाहु तथा उदर इनका संयम करै वाणीका संयम सत्यबोलना वाहुका संयम वाहुबलसे किसीको पीडा न देना उदरका संयम जैसा मिलै वैसा थोडा भोजन करना ॥ ७५ ॥ जो अर्थ और काम धर्मको विरोधी होय तौ उनको त्याग करै जैसे चोरी आदिसे द्रव्यका इकठे करना और दीक्षाके दिन यजमानकी स्त्रीसे भोग करना और जिस धर्ममें आगे दुःख उत्पन्न होय उसकाभी त्याग करै जैसे पुत्र आदि बहुतसे पालने योग्य होनेपर सर्वस्वका दान करना और लोकमें निन्दित जैसे कलियुगमें मध्यमाष्टकादि श्राद्धोंमें गोवध आदिका करना ॥ ७६ ॥

नं पाणिपादचपलो नं नेत्रचपलोऽनृजुः ॥ नं स्याद्द्राक्चपलश्चैवं  
नं परद्रोहकर्मधीः ॥ ७७ ॥ येनास्य पितरो याता येन याताः  
पितामहाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्त्रं रिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका-हाथ पैर आदिकी चपलताको न करै हाथकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके वस्तुओंका उठाना धरना और पैरोंकी चपलता जैसे विनाप्रयोजनके भ्रमण आदि करना और नेत्रचापल्य जैसे पराई स्त्रीका देखनेआदिका स्वाद और वाणीकी चपलता जैसे बहुत निंदाकी बातें बकना इन सबोंका त्याग करै और अनृजु कहिये कुटिल न होय और परद्रोह जो पराई हिंसा है तिसकी बुद्धि न करै ॥ ७७ ॥ बहुत प्रकारका शास्त्रका अर्थ होनेपर जिस धर्ममार्गसे इसके पिता चलै और जिसे इसके पितामह चलै उसी मार्गसे चलै वही सज्जनोंका मार्ग है उसमें चलताहुआ अधर्मकरि नहीं मारा जाता है ॥ ७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः वालवृद्धातुरैर्वैधै-  
ज्ञातिसंवन्धिवान्धवैः ॥ ७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुं-  
त्रेण भार्यया ॥ दुहित्वा दांसवर्गेण विवादिं नं समाचरेत् ॥ १८० ॥

टीका-ऋत्विक् पुरोहित कहिये शांतिआदिका करनेवाला और आचार्य मामा अतिथि तथा संश्रित कहिये अनुजीवी और ज्ञाति कहिये पिताके पक्षके और संवन्धी कहिये जमाई शाला आदि और बांधव कहिये माताके पक्षके और यामि कहिये बहिनि पुत्रवधू आदि इन सबोंसे वाणीका कलह अर्थात् बातोंका झगडा नकरै ॥ ७९ ॥ माता पिता और यामी कहिये बहिनि पुत्रवधू आदि भाई पुत्र स्त्री बेटी और नौकरोंके समूहके साथ विवाद न करै ॥ १८० ॥

एतौर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ एभिर्जितैश्च जयति स-  
 'वील्लोकांनिमान्गृही ॥ ८१ ॥ आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता  
 प्रभुः ॥ अतिथिस्त्वंद्रलोकेशो देवलोकस्य चत्विजः ॥ ८२ ॥

टीका—इन ऋत्विक् आदिकोंके साथ विवादोंको छोड़कर अज्ञानसे किये हुए सब पापोंसे छूट जाता है और इनके साथ विवादकी उपेक्षा करनेसे गृहस्थ आगे कहे हुए इन सब लोकोंको जीति लेता है ॥ ८१ ॥ आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है और प्राजापत्य लोकका पिता स्वामी है और इंद्रलोकका अतिथि तथा देवलोकके ऋत्विज् स्वामी हैं विवाद छोड़नेसे इन सबोंके संतुष्ट होनेसे ब्रह्मलोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य वांन्धवाः ॥ सर्वान्धनो ह्यपां लोके  
 पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥ ८३ ॥ आकाशेशास्तु विज्ञेया वालवृद्ध  
 कृशातुराः ॥ भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रां भार्या पुत्रः स्वकां तनुः ॥ ८४ ॥

टीका—बहिन तथा पुत्रवधू अप्सराओंके लोककी अधिष्ठात्री हैं और वांधव वैश्वदेव लोकके और संबन्धि वरुण लोकके और माता तथा मामा पृथिवीके स्वामी हैं इनकी प्रसन्नतासे अप्सराओंके लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ बालक वृद्ध कृश कहिये धनहीन और आश्रित आतुर ज्येष्ठ भाई पिताके समान है तिस्से वहभी प्रजापति लोकका स्वामी है और भार्या तथा पुत्र अपनाही शरीर है इस्से इनके साथ कैसे विवाद हो सकता है ॥ ८४ ॥

छाया रंभो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिक्षिप्तः  
 सहेता संश्वरः सदा ॥ ८५ ॥ प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्ज-  
 येत् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्याशुं ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ८६ ॥

टीका—अपने दासोंका समूह सदा अनुगामी होनेसे अपनी छायाहीके समान है विवादके योग्य नहीं है और पुत्री तौ बहुतही कृपाका पात्र है तिस्से इन करिके तिरस्कार किया हुआ भी संताप न करके सहले विवाद न करे ॥ ८५ ॥ विद्या तप और आचारयुक्त होनेसे दान लेनेका अधिकारी होनेपरभी उसमें दारंवार प्रवृत्तिको छोड़दे अर्थात् दान न ले कारण यह है कि, दान लेनेसे वेदपठन आदिसे उत्पन्न इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

नैर्द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुं-

यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ ८७ ॥ हिरण्यं भूमिमंश्वं गामंश्वं वासस्ति  
लान्धृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥ ८८ ॥

टीका-वस्तुओंकी दान लेनेमें धर्मके लिये हितकारी विधानके विना जान बुद्धि-  
मान् क्षुधासे पीडित होनेपरभी दान न ले आपत्तिके विना तो फिर क्या कहना है  
॥ ८७ ॥ सोना भूमि घोडा गौ अन्न वस्त्र तिल और घी इनका दान लेता हुआ मूर्ख  
दानरूपी अग्निसे काष्ठके समान उसी समय भस्म हो जाता है फिर उत्पत्तिको नहीं  
प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

हिरण्यमार्थुरन्नं च भूगौश्चाप्योपतस्ननुम् ॥ अंश्वश्चक्षुस्त्वचं च वासो  
धृतं तेजस्तिर्लाः प्रजाः ॥ ८९ ॥ अतपास्त्वर्नधीयानः प्रति-  
ग्रहरुचिर्दिर्जः ॥ अम्भस्यश्मं प्रुवेनैव सहते नैव मर्जति ॥ ९० ॥

टीका-सुवर्ण और अन्नका दान लेनेवाले मूर्खकी आयुको जलाते हैं, और भूमि  
तथा गौ शरीरको जलाते हैं, घोडा नेत्रोंको, वस्त्र त्वचाको, घी तेजको, और तिल संता-  
नको जलाते हैं ॥ ८९ ॥ तप और विद्यासे शून्य और दानकी इच्छा करनेवाला  
ब्राह्मण दानका अधिकारी न होनेसे मनमें विचारेही हुए उस दानसे अयोग्य दानरूप  
पापयुक्त दातासमेत नरकमें ऐसे डूवताहै जैसे पत्थरकी नावसे जलको उतरता हुआ  
उस नावसमेत जलमें डूबि जाता है ॥ ९० ॥

तस्मादविद्वांस्त्रिभिर्थाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ॥ स्वरूपकेनाप्य  
विद्वांस्त्रि पंडुः गौरिव सीदति ॥ ९१ ॥ न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडाल-  
व्रतिके द्विजे ॥ नैवकं व्रतिके विप्रे ॥ नावेदविदि धर्मवित् ॥ ९२ ॥

टीका-तिस्ते मूर्ख पुरुष जिसकिसी छोटी वस्तुके भी दानसे डरे सुवर्णका तो क्या  
कहना क्योंकि थोडे दामक सीसा आदिके लेनेसे कीचमें फँसकै गौके समान नष्ट  
होजाता है ॥ ९१ ॥ लेनेवालेका धर्म कहिकै अब देनेवालेका धर्म कहते हैं । कौआ  
कुत्ता आदिको जो दिया जाता है वहभी धर्मज्ञ विडालव्रति ब्राह्मणको न दे इस  
अधिकताके कहनेसे दूसरी चीजोंका दान मना कियाजाता है केवल जलहीका  
दान नहीं 'पाखंडिनो विकर्मस्थान्' इस्से वैडालव्रतीके लिये अतिथिपनसे सत्कार  
करिकै द्रव्यदान आदिका निषेध किया यहां तो धनका दान मनाकिया जाताहै इसीसे  
'विधिनाप्यर्जितं धनं' यह आगे कहेंगे और अवेदविद् कहनेसे यह जानागया कि,  
जबतक पढा लिखा मिलै तबतक मूर्खको न दे ॥ ९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुं भवत्यनर्थं  
य परत्रादातुरेव च ॥ ९३ ॥ यथा प्लेवेनोपलेन निर्मज्जत्युदके  
तरन् ॥ तथा निर्मज्जतोऽधस्ताद्ज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ९४ ॥

टीका—इन तीन विडालवृत्ति आदिकोंमें न्यायसे जोडा हुआ मी धन देनेसे देने-  
वाले और लेनेवालेको परलोकमें नरकका कारण होनेसे अनर्थके लिये होताहै  
॥ ९३ ॥ जैसे पत्थरकी बनीहुई नाव आदिसे जलमें तिरता हुआ उसके साथही  
नीचे जाता है ऐसेही दान और प्रतिग्रहके शास्त्रके न जाननेवाले दाता और लेने-  
वाला दोनों नरकको जाते हैं ॥ ९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धैर्छाद्भिको लोकदम्भकः ॥ वैडालव्रतिको  
ज्ञेयो हिंस्रः सर्वासिंधकः ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थं .  
साधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च वक्रव्रतचरो द्विजः ॥ ९६ ॥

टीका—जो बहुतसे मनुष्योंके सामने धर्म करता है और लोकमें आप कहताहै  
तथा औरोंसे कहाता है उसका धर्मही चिन्हहीसाहै इस कारण वह धर्मध्वजी कहा-  
जाताहै और लोभी कहिये परायं धनकी इच्छा रखनेवाला और छाद्भिक कहिये छल  
करनेवाला और लोकदम्भक कहिये धरोहड आदिके पचाजानेसे लोगोंको ठगानेवाला  
और हिंस्र कहिये दूसरेकी हिंसाका स्वभाववाला और सर्वासिंधक कहिये पराये  
गुणोंको न सहकर सबकी निंदा करनेवाला और विडालव्रती कहिये जैसे विलाव  
बहुधा मूसा आदिके मारनेकी रुचिसे ध्यानमें लगासा नम्रहंके बैठता है ऐसेही  
उसको जानिये ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टि कहिये जो अपनी नम्रता दिखानेके लिये  
सदा नचिहीको देखता है और नैष्कृतिक कहिये जो निष्ठुरतायुक्त हो पराये अर्थको  
विगाडकर अपने स्वार्थमें लगारहै और शठ कहिये कुटिल और मिथ्याविनीत  
कहिये कपटसे नम्रतायुक्त और वक्रव्रतचरः बगलेकासा व्रत करनेवाला जैसे बगुला  
मछलियोंके मारनेके लिये मूठ मूठको नम्रतासे बैठता है ॥ ९६ ॥

ये वक्रव्रतिनो विप्रा ये चर्माज्जरलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धतां-  
मिस्रे तेन पापेन कर्मणां ॥ ९७ ॥ न धर्मस्यापदेशन पापं कृत्वा  
व्रतं चरेत् ॥ व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ ९८ ॥

टीका—जे ब्राह्मण वक्रवृत्तिवालेहैं और जे विडालव्रती हैं वे उस पापकर्मसे अंध-  
तामिस्त्रनामक नरकमें गिरते हैं ॥ ९७ ॥ पापकारिके प्रायश्चित्तरूप प्राजापरवृत्तिआदि



व्रत करता हुआ ऐसा न कहै कि मैं धर्मके अर्थ करता हों स्त्री शूद्र मूर्ख आदि जनोंको मोहित करता हुआ ऐसा न करै ॥ ९८ ॥

प्रेत्येह चेदृशां विप्रां गृह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छद्मनीचरितं यच्च व्रतं  
रक्षांसि गच्छति ॥ ९९ ॥ अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजी-  
वति ॥ सं लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

टीका-परलोकमें तथा इस लोकमें ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों करि निंदाकिये जाते हैं और जो व्रत छलसे किया जाता है वह राक्षसोंको प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ जो ब्रह्मचारी आदि नहीं है और ब्रह्मचारी आदिकोंके चिन्ह मेखला मृगचर्म दंड आदि वेष जाना जाता उनकी वृत्तिसे भिक्षाभ्रमण आदि करि जीविका करता है वह ब्रह्मचारी आदिकोंका जो पाप है उसको अपनेमें खींचि लेता है और कुकुर आदिकी-योनिमें उत्पन्न होता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपांनकर्तुः स्नात्वा तु  
दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ १ ॥ यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृ  
हाणि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीर्यभाक् ॥ २ ॥

टीका-पराये वनाये हुए ताल आदिमें कभी स्नान न करै उनमें नहायकै उनके वनावनेवालेके पापसे चौथाई भागका पानेवाला होता है बिना बनाई हुई नदी आदि न होय तौ पराये वनाये हुए तालाव आदिमें प्रदानसे पहले पांच पिंडोंका उद्धार करि नहाना चाहिये ॥ १ ॥ पराया यान आसन कुआ वाग और घर जो बिनादिये इनका भोग करै तौ वनवानेवालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है ॥ २ ॥

नदीषु देवखातेषु तडांगेषु सरःसु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं ग  
र्त्तप्रस्रवणेषु च ॥ ३ ॥ यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥  
र्यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलांभजन् ॥ ४ ॥

टीका-नदीमें देवताओंके नामसे प्रसिद्ध तडागोंमें और प्रसिद्ध सरोगतोंमें अर्थात् जिनकी गति आठ हजार धनुषसे कम नहीं है उनमें चारिहाथका एक धनुष होता है और झरनोंमें स्नान करै ॥ ३ ॥ पंडितजनोंका सदा सेवन करै और नित्यनियमोंका सेवन न करै यम जैसे ब्रह्मचर्य १ दया २ क्षमा ३ ध्यान ४ सत्य ५ कपट न करना ६ अहिंसा ७ चोरी न करना ८ मधुर बोलना ९ इंद्रियोंको

वज्ञ करना और नियम जैसा स्नान १ मौन २ उपवास ३ यज्ञ करना ४ वेद पढ़ना ५ शिश्न इंद्रियका रोकना ६ निगम ७ गुरुकी सेवा ८ शौच ९ क्रोध न करना १० प्रमाद न करना ११ यमोंको न करता हुआ केवल नियमोंको करता हुआ पुरुष पातित होता है ॥ ४ ॥

नीश्रोत्रियतते यज्ञे ग्राम्याजिहुते तथा ॥ स्त्रियां कृविर्न च हुते  
भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥ ५ ॥ अश्रीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्यं  
मी हविः ॥ प्रंतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो वेदपाठी नहीं हैं ऐसे मनुष्यकरि आरंभ किये हुए और बहुतोंके यजन करानेवाले करि होमें हुए और स्त्री तथा नपुंसक करि होम किये हुए यज्ञमें ब्राह्मण कभी न भोजन करै ॥ ५ ॥ पहले कहे हुए वह याजक आदि जिसमें होम करतेहैं वह कभी शिष्टोंको अश्रीक कहिये अलक्ष्मी देनेवाला है अर्थात् देवताओंको प्रतिकूल है तिस्से इसको न करावै ॥ ६ ॥

मर्तकृद्भ्रातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ केशकीटावपन्नञ्च  
पर्दा स्पृष्टञ्च कामतः ॥ ७ ॥ भ्रूणघ्नोवेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्च  
प्युद्वयया ॥ पतत्रिणार्वालीढञ्च शुनां संस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥

टीका—सिढी क्रोधी तथा रोगीका अन्न और वालों तथा कीड़ोंके योगसे विगडा हुआ और जानकर पैरसे छुआ हुआ अन्न कभी न खाय ॥ ७ ॥ गर्भहत्या गोहत्या आदिसे पतितोंकरि देखा हुआ अन्न और रजस्वला स्त्री कर छुआ हुआ तथा पक्षियों कर खाया हुआ और कुत्तेकर छुआ हुआ अन्न न खाय ॥ ८ ॥

गवां चान्नसुपघ्नैतं घुष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गर्णान्नं गणिकान्नञ्च विदु-  
षां च जुगुप्सितम् ॥ ९ ॥ स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वाद्धृषि-  
कस्य च ॥ दीक्षितस्य कर्दूर्यस्य वद्धस्यं निर्गडैरर्थ ॥ २१० ॥

टीका—गौका सूंघा हुआ और घुष्टान्न कहिये कौन खानेवाले है ऐसे काहिके जो अन्न यज्ञ आदिमें दिया जाय और गणान्न कहिये मठ तथा ब्राह्मणोंके समूहका अन्न और वेद्याका अन्न और विद्वान् कर दुष्ट है ऐसे काहि कर निर्दा कियागया अन्न विषेश कर कहिये बहुत दोषयुक्त होनेसे उस अन्नको कभी न खाय ॥ ९ ॥ चोरी तथा गानेकी जीविकावालेका और बढाई तथा व्याज लेनेवालेका और दीक्षित तथा कृपणका और वौरियोंसे बंधे हुएका अन्न कभी न खाय ॥ २१० ॥

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्यो दाम्भिकस्य च ॥ गुंक्तं पयुषि  
तत्रैव गूढस्योच्छिष्टमेव च ॥ ११ ॥ चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्यो  
च्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्देशम् ॥ १२ ॥

टीका-अभिशस्त कहिये जिसको लोकमें महापातक लग रहा है उसका, नपुंसक का, व्यभिचारिणी स्त्रीका और दाम्भिक कहिये छलसे धर्म करनेवाले विडालव्रती आदिका अन्न न खाय और गुक्त जो स्वभावसे मीठा दही आदि जल आदिकें मिलनेसे खट्टा हुआ और पयुषित कहिये रातिका वचा हुआ और गूढका अन्न कभी न खाय और उच्छिष्ट कहिये भोजनसे वचा हुआ अन्न किसीका न खाय- और गुरुका जूठा तौ विहित है इससे खाय ॥ ११ ॥ चिकित्सामें जीविका करनेवालेका अर्थात् वैद्यका और मांस बेचनेके लिये पशुओंको मारनेवालेका और क्रूर कहिये कुटिल प्रकृतिका और जूठा खानेवालेका अन्न न खाय और उग्रान्न कहिये गूढमें क्षत्रियसे उत्पन्नका और सूतिका स्त्रीके लिये जो अन्न किया जाय उसका उसके कुलकेभी न खाय एक पंक्तिमें स्थित औरोंका अपमान करि जहां अन्न खाते हुए किसीकरि आचमन किया जाय वह पर्याचान्त कहा जाता है उस अन्नको और दशदिनके भीतर सूतिकाका अन्न न खाय ॥ १२ ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीर्याश्वं योषितः ॥ द्विषदन्नं नगूर्यन्नं  
पतिर्तान्नमवक्षुतम् ॥ १३ ॥ पिशुनानृतिनोश्चान्नं ऋतुविक्रयिण-  
स्तथा ॥ शैलूर्षतुन्नवायात्रं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ १४ ॥

टीका-पूजाके योग्यको जो अनादरसे दिया जाय और वृथा मांस जो देवताके लिये न किया जाय उसका और पति पुत्ररहित स्त्रीका और शत्रुका अन्न और नगरका तथा पतितोंका अन्न और जिसके ऊपर छीक हुई ऐसा अन्न न खाय ॥ १३ ॥ पिशुन कहिये जो पीठिपीछे दूसरेकी बुराई करता है उसका और बहुत झूठ बोलनेवाला जैसे झूठा गवाही आदि उसका और ऋतुविक्रयी कहिये भेरे यज्ञका फल तुह्यारा हो ऐसे कहकर जो धन लेता है उसका और नटका तथा दरजीका और कृतघ्न जो उपकार करनेवालेकीभी बुराई करै उसका अन्न न खाय ॥ १४ ॥

कर्मरस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वैणस्य श-  
स्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ १५ ॥ श्वर्ताशौण्डिकानां च चलनिर्णय-  
कस्य च ॥ रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १६ ॥

टीका—लोहारका तथा निषादक और नट तथा गवैयासे भिन्न जो तमाशा आदि करिकै जीविका करते हैं उनका और स्वनारका और वांसकी जीजे घनाकर बेचनेवालेका और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न न खाय ॥ १५ ॥ आखेटके लिये कुत्ते पालनेवालेका और मद्य बेचनेवालेका तथा धोवीका रंगरेजका निर्दयीका और जिनके घरमें अज्ञानसे जार रहता है उनका अन्न न खाय ॥ १६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः॥ अनिर्दशं च प्रेतां नर्मतुष्टिकरमेव च ॥१७॥ राजानं तेज आदत्ते शूद्रानं ब्रह्मवर्चसम् ॥ आयुः सुवर्णकारानं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ १८ ॥

टीका—जो घरमें जाने हुए स्त्रीके जारको सहते हैं उनके अन्नको न खाय और जो सब कामोंमें स्त्रीके आधीन रहते हैं उनका और दशदिन भीतर प्रेतका अन्न और जिसे संतोष न होय ऐसा अन्न न खाय ॥ १७ ॥ राजाका अन्न तेजका नाश करता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाश करता है और स्वनारका अन्न आयुका नाश करता है और चमारका अन्न यशका नाश करता है ॥ १८ ॥

कारुकां प्रजां हन्ति वलं निर्णेजकस्य च ॥ गणानं गणिकां च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥१९॥ पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥ विष्टां वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२०॥

टीका—कारुक जो सूपकार आदि हैं उनका अन्न संततिका नाश करता है और धोवीका बलको तथा गण और गणिकाका अन्न शुभकर्मोंसे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंको दूर करता है ॥ १९ ॥ चिकित्सकके अन्नमें पीवके खानके समान दोष है और व्यभिचारिणीका अन्न वर्यके समान है और व्याज खानेवालेका अन्न विष्टाके समान है और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न विष्टासे भिन्न कफ आदि मलके समान है ॥ २० ॥

ये एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः ॥ तेषां त्वर्गस्थ रोमणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥२१॥ भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ॥ मर्त्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च २२

टीका—यहां कहे हुआसे अन्य जो अभोज्यान्न इस प्रकरणमें पढे हैं उनका अन्न त्वचा हाड और रोमोंके समान है अर्थात् त्वचा हाड और रोमोंके खानेमें जो दोष होता है वही उनके अन्नके खानेमें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ इनमेंसे किसीका अन्न

विनाजाने खाय तौ तीनि दिन उपवास करै और जानकर खाय तौ कृच्छ्र करै और वीर्य मूत्र विष्ठाके खानेमेंभी यही कृच्छ्रव्रत जानिये ॥ २२ ॥

नांघ्राच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्रद्धिनो द्विजः ॥ अददीताममेवा-  
स्माद्वृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २३ ॥ श्रोत्रियस्य कर्दर्यस्य वदान्य  
स्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २४ ॥

टीका-विद्वान् द्विज श्राद्ध आदि पंच यज्ञों करि शून्य शूद्रका पक्वान्न न खाय परन्तु जो और कहीसे न मिलसकै तौ एक रात्रिके निर्वाहयोग्य कच्चाही अन्न इससे ले पक्वान्न नहीं ॥ २३ ॥ एक वेद पढा हुआ कृपण और दूसरा दाता वृद्धिजीवी इन दोनोंका अन्न देवताओंने गुणदोषोंको विचारि समान कहा है क्योंकि दोनोंके गुण तथा दोष समान हैं ॥ २४ ॥

तान्प्रजापतिराहेत्य मां कृध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूतं वदान्यस्य  
हंतमश्रद्धयेतरत् ॥ २५ ॥ श्रद्धयेष्टं च पूतं च नित्यं कुर्यादतान्द्रि-  
तः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैधनः ॥ २६ ॥

टीका-देवताओंसे आकर ब्रह्मा बोलेकि विषम अन्नको सम मत करो विषमका सम करना अनुचित है फिर उन दोनोंमें क्या विशेष है यह अपेक्षा होनेपर वेही बोले कि दान देनेवाले वार्धुषिकका अन्न श्रद्धासे पवित्र होता है और कृपणका अन्न श्रद्धा न होनेके कारण हत कहिये दूषित तथा अधम होता है ॥ २५ ॥ वेदीके मध्यमें जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है उसको इस कहते हैं उससे अन्य तलाव कुआ प्याऊ बाग आदिको पूत कहते हैं इन दोनों कर्मोंको सदा आलस्यरहित हो फलकी इच्छा छोड श्रद्धासे करै जिस्से न्यायसे इकठे किये हुए धनसे श्रद्धापूर्वक कियेगये वे दोनों कर्म अक्षय मोक्षरूप फलके देनेवाले होतेहैं ॥ २६ ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौतिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पात्रं  
मांसाद्य शक्तिः ॥ २७ ॥ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनान-  
सूयया ॥ उत्पत्स्यते हि तर्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २८ ॥

टीका-विद्या तथा तपोयुक्त ब्राह्मणको प्राप्त होकै ऐष्टिक पौतिक कहिये अंतवेदि बाहिर्वेदि दान धर्मको परितोषनाम अंतःकरणके धर्मसे शक्तिके अनुसार करै ॥ २७ ॥ याचना कियेगये ईर्षारहित पुरुष कारकै थोडाभी शक्तिके अनुसार

देना चाहिये जिसे सदा देनेवालेको कभी न कभी ऐसामी पात्र मिलजायगा जो नरकमें डारनेवाले सब पापसे छुडादेगा ॥ २८ ॥

वारिदस्त्वितिर्माप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दी  
पदंश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २९ ॥ भूमिदो भूमिर्माप्नोति दीर्घमायुर्हरि  
ष्यदः ॥ गृहदोऽग्न्याणि वेदमानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

टीका—जलका देनेवाला क्षुधापिपासा दूर होनेसे तृप्तिको प्राप्त होता है और अन्नका देनेवाला अक्षय सुखको और तिलका देनेवाला चाही हुई संततिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ भूमिका देनेवाला भूमिको और सुवर्णका देनेवाला बडी आयुको और घरका देनेवाला बहुत अच्छे घरोंको और रूपेका देनेवाला संपूर्ण जनोंके नेत्रोंका मनोहर रूपको प्राप्त होता है ॥ २३० ॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ॥ अनर्द्धः श्रियं पुं  
ष्टां गो दो ब्रध्नस्य विष्टंपम् ॥ ३१ ॥ यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्य  
मभयप्रदः ॥ धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्थिताम् ॥ ३२ ॥

टीका—वस्त्रोंका देनेवाला चंद्रके समान लोकोंको प्राप्त होता है चंद्रलोकमें चंद्रके समान विभूति वसती है और घांटेका देनेवाला अश्विनीकुमारके लोकको और बलवान् बैलका देनेवाला बहुतसी लक्ष्मीको और गौका देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रथ आदि वाहनोंका तथा शय्याका देनेवाला स्त्रीको और अभयका देनेवाला अर्थात् प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला प्रभुताको और धान्य कहिये धान जब उडद मूँग आदिका देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाले सुखको और ब्रह्म जो वेद है उसको देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला तथा व्याख्यान करनेवाला ब्रह्मकी सार्थिता कहिये समानगतिभावको अर्थात् उसकी तुल्यताको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥ वार्यन्नगोमहीवासस्ति  
लकाश्चनसर्पिषाम् ॥ ३३ ॥ येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छ  
ति ॥ ते ते तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ ३४ ॥

टीका—जल अन्न धेनु भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण और घृत आदि सबोंके दानसे वेद का दान अधिक फलका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ जिस जिस भाव कहिये अभिप्रायसे अर्थात् मुझे स्वर्ग मिलै और मुसुक्षुको मोक्षके अभिप्रायसे निष्काम जिस जिस दानको देता है उसी भावसे उपलक्षित उस उस दानके फलद्वारा दूसरे जन्ममें पूजित

हो प्राप्त होता है अथात् जिस फलक अभिप्रायसे दान देता है वही फल उसका मिलता है ॥ ३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ॥ तांबुभौ गच्छतः स्वर्गं  
नरकं तु विपर्यये ॥ ३५ ॥ न विस्मयेत तपसा वदेदिद्धां च नानृतं ॥  
नात्तोऽप्यं वेदाद्ब्रान्नं दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—जो दाता सत्कारपूर्वक देता है और जो लेनेवाला उस दानको सत्कारपूर्वक लेता है वे दोनों स्वर्गको जाते हैं और विपर्यय कहिये, उलटे होनेमें नरक होता है अर्थात् विनासत्कारके देनेलेनेवाले दोनों नरकगामी होते हैं ॥ ३५ ॥ किये हुए चांद्रायण आदि तपमें कैसे मने यह कठिन काम करलिया ऐसे आश्चर्य न करे और यज्ञ करिके झूठ न बोले और ब्राह्मणोंकरि पीडित होनेपर भी उनकी निंदा न करे और गौ आदि देकर मने यह दिया ऐसे दूसरेसे न करे ॥ ३६ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥ आयुर्विप्रापवादेन  
दानं च परिकीर्तनात् ॥ ३७ ॥ धर्म शनैः संचिनुयाद्ब्रह्मीकामि  
वं पुत्तिकाः ॥ परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीर्यडन् ॥ ३८ ॥

टीका—झूठसे यज्ञ निष्फल हो जाता है और आश्चर्यसे तप और ब्राह्मणके अपमानसे आयु और कहनेसे दान निष्फल होजाता है ॥ ३७ ॥ सब जीवोंकी पीडाका त्याग करता हुआ परलोकमें सहायके लिये शक्तिके अनुसार हौले हौले धर्मको ऐसे बढ़ावे जैसे दीवक बांवीको बढ़ाती है ॥ ३८ ॥

नोमुत्रहि सहायाथ पिता माता च तिष्ठतः ॥ न पुत्रंदारा न ज्ञाति  
धर्मं मस्तिष्ठति केवलः ॥ ३९ ॥ एकः प्रजायते जन्तुरेक एवं प्र  
लीयते ॥ एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेकं एवं च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥

टीका—जिस्से परलोकमें सहायरूपी कार्यकी सिद्धिके लिये पिता माता पुत्र स्त्री और जातिके नहीं स्थित होते हैं किन्तु एक धर्मही दूसरा हो उपकार लिये स्थित होता है तिस्से पुत्र आदिकोसेभी बडे उपकार करनेवाले धर्मको करे ॥ ३९ ॥ प्राणी एकही उत्पन्न होता है और एकही मरजाता है और एकही पुण्य तथा पाप को भोगता है माता आदिके साथ नहीं तिस्से मातादिकोंकी अपेक्षासेभी धर्मको न छोड़े ॥ २४० ॥

भृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ॥ विमुखा वान्धवा

र्यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥४१॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचि  
नुयाच्छैनैः ॥ धर्मैणाहिं सहायेन तमस्तारति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥

टीका—मृत कहिये मन प्राण आदि करि छोड़े हुए शरीरको काष्ठ तथा लोष्टके समान भूमिमें छोडके भाई बंधु भुह फेरके चले जातेहैं मरेहुए जीवके साथ नहीं जातेहैं और धर्म तौ उसके साथ जाता है ॥ ४१ ॥ जिस कारण सहाय करनेवाले धर्मसे दुस्तरतम कहिये कठिनाईसे उतरने योग्य नरक आदिके दुःखको उतर जाता है तिस्से धर्मको सहायभावसे सदा हौले हौले करै ॥ ४२ ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥ परलोकं नयंत्याशु भा  
स्वन्तं स्वशरीरिणम् ॥४३॥ उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सर्वंधानांचरेत्सं  
हं ॥ निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधर्मास्त्यजेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धर्ममें लगे हुए पुरुषको दैवयोगसे पाप होजानेपर प्राजापत्य आदि तपरूप प्रायश्चित्तसे पापके नाश होनेपर प्रकाशमान उस पुरुषको धर्मही शीघ्र स्वर्ग आदि परलोकको पहुँचाता है स्वशरीरिणं कहिये ब्रह्मस्वरूप यद्यपि लिंगशरीरमें बैठा हुआ जीवही जाता है तिसपरभी ब्रह्मका अंश होनेसे ब्रह्मस्वरूपत्व हो सकता है जो धर्मही परलोकको ले जाता है तौ धर्मको करै न अच्छी रीतिसे पढे हुए वेद और न नानाप्रकारके पढे हुए शास्त्र वहां जाते हैं जहां एकधर्म इसके साथ जाता है ॥ ४३ ॥ कुलकी उन्नति चाहनेवाला पुरुष विद्या आचार जन्म आदिसे उत्कृष्ट पुरुषोंके साथ सदा कन्यादान आदि संबंधोंको करै और हीन संबंधोंको छोडदे और जो उत्तम न मिले तो अपनी बराबरीमें करै ॥ ४४ ॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनांहीनांश्चैवर्जयन् ॥ ब्राह्मणःश्रेष्ठतामे  
ति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ ४५ ॥ दृढंकारि मृदुदान्तैः क्रूराचारै  
संवसन् ॥ अहिंसो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ ४६ ॥

टीका—उत्तमोंके साथ संबंध करता हुआ और हीनोंको छोडता हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है और उल्टे आचारसे शूद्रताको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ दृढ-  
कारी कहिये आरम्भ क्रियेका पूरा करनेवाला और मृदु कहिये कठोर नहीं और दान्त  
कहिये शीत घाम आदिके दंडका सहनेवाला पुरुष क्रूर आचारवाले पुरुषोंके साथ  
मेलको छोडता हुआ पराई हिंसासे निवृत्त और बैसाही व्रत करनेवाला दम कहिये  
इंद्रियोंके संयमसे तथा दानसे स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

एधोदकं मूलैफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥ सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्मध्वं



थांभयैर्दक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ आहताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचो  
दिताम् ॥ मेनेप्रजार्पतिर्याह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४८ ॥

टीका—काष्ठ जल फल मूल मधु और विना मांगा हुआ अन्न कुलटा पाषण्डी और पतित आदिकोंको छोड़ सर्वतः कहिये शूद्र आदिकोंसेभी कच्चाही ग्रहण करै और अपनी रक्षारूप अभयको चांडालादिकोंसेभी अंगीकार करै ॥ ४७ ॥ देनेके स्थानमें लाईगई और आगे रक्खीगई और लेनेवाले करि आप तथा दूसरेके मुँहसे पहले नहीं मांगीगई और देनेवालेने भी पहले नहीं कहा कि मैं तुमको देता हूँ ऐसी सुवर्ण आदि रूप भिक्षाको सिद्ध अन्नको नहीं पतित आदिकोंको छोड़ पाप करनेवालेसेभी लेने-योग्य ब्रह्माने कही है ॥ ४८ ॥

नां श्रान्तिपितरस्तस्यैर्दशवर्षाणि पञ्च च ॥ न च हव्यं वैहत्यग्निं<sup>२</sup>  
<sup>१</sup>यस्तामभ्यैवमन्यते ॥ ४९ ॥ शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपःपुष्पं  
मणीन्दीधि ॥ धानामत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव नै नि, णुदेत् २५० ॥

टीका—उस पुरुष करि श्राद्धमें दिये हुए कव्यको पितर पंद्रह वर्षोंतक नहीं खाते और यज्ञोंमें उस करिके दिये हुए पुरोडाश आदि हव्यको अग्नि देवताओंके लिये नहीं पहुँचाता है जो उस भिक्षाको अंगीकार नहीं करता है ॥ ४९ ॥ शय्यां घर कुश और गंध कहिये गंधयुक्त कपूर आदि और जल फूल मणि दही तथा धान कहिये भुंजे हुए जव और चावल मछली दूध मांस और शाक इन वस्तुओंके लेनेमें निषेध न करै ॥ २५० ॥

गुरुर्भृत्यांश्चोर्जिहीर्षन्नाचिष्यन्देवतातिथान् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णी  
र्यान्नं तु तृप्येत्स्वयं तंतः ॥ ५१ ॥ गुरुषु त्वभ्यैतीतेषु विना वा तै  
र्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णी<sup>१</sup>यात्साधुतःसदा ॥ ५२ ॥

टीका—शुधासे पीडित माता पिता आदि गुरुओंको और स्त्री आदि सेवकोंको उस्से बचानेके लिये पतित आदिकोंको छोड़ि सर्वतः कहिये शूद्र आदि असाधुओंसेभी ग्रहण करै परन्तु उसको आप न खाय ॥ ५१ ॥ माता पिता आदिके मरनेपर अथवा उनके जीवते हुए उनसे पृथक् घरमें बसता हुआ अपनी जीविकाकी इच्छासे सदा सज्जनोंसे भिक्षाको ग्रहण करै ॥ ५२ ॥

आर्धिकःकुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्यां  
न्ना यश्चात्मनं नि वेदयेत् ॥ ५३ ॥ यादृशोऽस्य भवेदात्मै यादृशं

चं चिकीर्षितम्॥यथा चोपचरेदे॑ नतथात्मानंनि॑ वेदयेत् ॥५४॥

टीका—आर्थिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिसका गोपाल है और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है काम करता है और जो मैं दुर्गतिमें हों तुम्हारी सेवा करता हुआ तुम्हारेही समीप बसताहों ऐसे कहकर अपना निवेदन करै ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न है ॥ ५३ ॥ शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहतेहैं इस शूद्रका कुलशील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूप है और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उस प्रकार आपको कहै ॥ ५४ ॥

योऽन्यथासन्तैमात्मानमन्यथा सत्सु भांपते॥संपार्पकृतमो लोके  
स्तेन आत्मोपहारकः ॥५५॥ वाच्यंनियताः सर्वे वाङ्मूला  
वाग्बिनिःसृताः॥तांस्तुर्यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृत्वरः॥५६॥

टीका—जो कोई कुल आदिमें और है और आपको औरही मज्जनामें कहताहै वह लोकमें बड़ाही पापी है और आपका चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराताहै यह तौ सबमें प्रधान आपहीको चुराता है ॥ ५५ ॥ सब अर्थशब्दोंहीमें वाच्यभावसे नियतहै और शब्दोंका मूल वाणी है क्योंकि सब बातें शब्दोंहीसे जानकर की जातीहैं इस्से वाणीसे निकले कहे जातेहैं इस्से जो उस वाणीको चुराताहै अर्थात् अन्यथा कहताहै वह मनुष्य सब भाति चोरी करनेवाला होताहै ॥ ५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि ॥ पुत्रे सर्व समासंज्य  
वंसेन्मार्ध्यस्थमाश्रितः॥५७॥एकाकीचिन्तयेन्नित्यं वि विक्ते हितं  
मात्मनः॥एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥५८॥

टीका—गृहस्थहीका यह संन्यास प्रकार कहते हैं वेद पढनेसे महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करनेसे पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूरी करि सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित करि मध्यस्थताका आश्रय ले पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोडि ब्रह्मबुद्धिसे सर्वत्र समदृष्टि ही धरहीमें रहै ॥ ५७ ॥ कामके कर्मोंका और धनके जोडनेका त्याग करि पुत्रकरि करी हुई जीविकासे शरीरानिर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें अपने हितकारी वेदान्तमें कहे

हुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करै जिसे उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कारसे मौक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शार्धती ॥ स्नातकव्रतकल्प  
श्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ ५९ ॥ अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशा  
स्त्रवित् ॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥ २६० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

टीका-यह ऋत आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही गई आपत्तिमें तौ अमित्य कहेंगे और सतोशुणका बढ़ानेवाला अच्छा स्नातकके व्रतका कल्प कहिये विधि कहा गया ॥ ५९ ॥ इस शास्त्रमें कहे हुए आचारसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्यकर्मसे क्षीणपाप हो ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे ब्रह्मही लोक हुआ उसमें लीन हो सबसे अधिक महिमाको प्राप्त होताहै ॥ २६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मतनुजपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रुत्वैतानृपयो धर्मान्स्नातकस्य यथो चितान् ॥ इदमृचुर्माहात्मान  
मर्नलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥ एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठ-  
ताम् ॥ कथं मृत्युः प्रभवंति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

टीका-ऋषियोंने स्नातकके कहे हुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थमें तत्पर और अग्निसे उत्पन्न ऐसे भृगुर्जासिं वचन बोले, यद्यपि पहले अध्यायमें दश प्रजापतियोंमें 'भृगुंनारदमेवच' इस वचनसे भृगुकीभी सृष्टि मनुहीसे कही तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहे जाते हैं इसमें श्रुतिप्रमाणहै जैसे "तस्थयद्रतसः प्रथममुददीप्यततदसावादित्योऽभवद्यद्वितीयमासीत्तद्भृगुरिति" इसीसे यह व्युत्पत्ति की गई कि "भ्रष्टात्रेतसःउत्पन्नत्वाद्भृगुः" अर्थात् गिरे हुए वीर्यसे उत्पन्न होनेसे भृगु कहिये ॥ १ ॥ ऐसे यथोक्त अपने धर्मके करनेवाले और श्रुति तथा शास्त्रके जानने वाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है क्योंकि आयुके कम होनेका कारण जो अधर्म है उसका अभाव है संपूर्ण संदेहोंके दूर करनेमें समर्थ होनेसे प्रभो यह संबोधन दिया ॥ २ ॥

संतीनुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेण  
मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वैज  
नात् ॥ आलस्यादर्द्रदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

टीका—वे मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगु जिस दोषसे थोड़े कालम ब्राह्मणोंको मृत्यु मा  
रने की इच्छा करता है उस दोषको कहते हैं सुनिये इस भांति उन महर्षियोंसे बोलें ॥ ३ ॥  
वेदोंका अभ्यास न करनेसे और अपने आचारके छोड़नेसे और सामर्थ्य होनेपर  
अवज्ञा करनेयोग्य कामोंमें अनुत्साहरूप आलस्यसे और खाने योग्य वस्तुओंके  
दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥ ४ ॥

लग्नं गृह्णन् चैव पलाण्डुं कर्ककानि च ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीना  
ममेध्यप्रभवानि च ॥ ५ ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवास्तै  
था ॥ शैलुं गव्यं च पेर्युषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—वेदका अनभ्यास आदि तो कहचुके अब अन्नके दोष कहतेहैं । लग्न  
गृह्णन् प्याज धरतीके फूल और अशुद्ध विष्टा आदिमें उत्पन्न चोंलाई आदि ये द्विजा-  
तियोंको अभक्ष्य हैं शूद्रोंको नहीं ॥ ५ ॥ लालरंगके वृक्षोंके गांठ और काटनेसे  
उत्पन्न रस और शैलु कहिये बहुवारकफल और नवीन व्याई हुई गौके दूधकी पेउसी  
इन सबोंको यत्नसे वर्जित करै ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावंपार्यसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसानि देवान्ना  
निर्हवीपि च ॥ ७ ॥ अनिर्दशायागोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ॥  
आविकं संधिनीक्षीरं विवर्त्सायाश्च गोः पर्यः ॥ ८ ॥

टीका—वृथा कर कहिये देवताके निमित्त नहीं केवल अपने लिये कृसर कहिये  
तिल चावल मिलकै किया हुआ भात और संयाव कहिये घी दूध गुड और गेहूँके  
चूनसे बनी लफसी और दूध तथा चावलोंकी खीर और पुआ वृथा पक इन सबोंको  
वर्जित करै और यज्ञ आदिमें जो अभिमंत्रित नहीं है ऐसे पशुका मांस और देवतां-  
ओंके लिये किये अन्नोंको नैवेद्य लगानेके पहले और हवीपि कहिये पुरोडाश आदि  
होमसे पहले वर्जित करै ॥ ७ ॥ दशदिनके भीतर व्याई हुई गौका दूध गौके कह  
नेसे जिनका दूध पिया जाता है वे सब पशु जानने चाहिये तिस्से बकरी और  
भैंसकाभी दूध व्यानेसे दशदिनतक वर्जित है तथा छंटका और एक खुरवाले घोडा  
आदिका और भेडका और संधिनी कहिये उठी हुई गौका दूध न पीवै और विवत्सा

कहिये जिसका बछरा मरिगया है ऐसी गौका और जिसका बछरा पास नहीं है उसका भी न पवै और बच्चाके मरनेपर बकरी तथा भैसका मना नहीं है ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना॥स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥ दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम्॥र्यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

टीका-भैसको छोडकै हाथी आदि सब जंगली पशुओंका दूध और स्त्रीका दूध और सशुक्त वर्जित हैं शुक्त उसको कहते हैं जो स्वभावसे मीठा आदिरसका लबलेशसे जल आदिके योगसे खट्टे हो जाते हैं ॥ ९ ॥ शुक्तोंमें दही भक्ष्य कहिये खानेयोग्य है और दहीसे उत्पन्न सब मद्यादि भक्ष्य हैं शुभ कहिये अच्छे पुष्प मूल फल तथा जलसे जो संधाने किये जाते हैं वेभी भक्ष्य हैं शुभ इस विशेषणसे यह जाना गया कि जिन वस्तुओंके संधानेमें नसा होता है वे मने की गई हैं ॥ १० ॥

ऋव्यादाञ्छकुनान्सर्वीस्तथाग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकंशं फांष्टिभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥ कलविकं प्लवं हंसं चक्राङ्ग्यामकुक्कुटम्॥सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुक्रं सारिके ॥ १२ ॥

टीका-ऋव्याद कहिये कच्चे मांसके खानेवाले गीघ आदि सब पक्षियोंका तथा कबूतर आदि ग्रामके पक्षियोंका और नहीं कहे हुए एक खुरवाले पशुओंका तथा टट-हरी पक्षीका मांस वर्जित करै अर्थात् न खाय ॥ ११ ॥ ग्रामके तथा जंगली चिरोटा तथा प्लवनाम पक्षी हंस चक्रवा गांवका मुरगा सारस रज्जुवाल पपैया तोता और मैना ये सब पक्षी अभक्ष्य हैं अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्करान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्यां दान् शौनं वल्लूरमेव च ॥ १३ ॥ विकं चैव बलकांश्च काकोलं खञ्जरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विड्ङ्गराहांश्च मत्स्यानेव चैव सर्वशः ॥ १४ ॥

टीका-प्रतुद कहिये जो चोंचसे फोडकर खाते हैं जैसे कठफोरा आदि और जालपाद कहिये जिनके पंजोंमें महीनखालका जाल होता है जैसे बत्तक आदि और कोयष्टिकनाम पक्षी और नखविष्कर कहिये जो पंजोंसे कुरेदि २ खाते हैं और आज्ञा दिये हुए जंगली कुक्कुट आदिकोंसे जुदे बाज आदि और जो जलमें डूबक मारकै मछलियोंको पकडते हैं जैसे महु आदि और सूना जो मारनेका स्थान है उसमें स्थित मांस और बल्लर कहिये सूखा मांस ये सब वर्जित हैं ॥ १३ ॥ बगला तथा

बलाका द्रोणकाक खंजन और मछलियोंके खानेवाले और भी पक्षियोंसे भिन्न मगर  
व्यादि तथा विडुराह कहिये विष्ठा खानेवाले सूअर और सब प्रकारकी मछलियोंको  
वर्जित करै अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १४ ॥

यौ यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसं उच्यते ॥ मत्स्यादः सर्वमांसं  
स्तस्मान्मत्स्यान्निर्वर्जयेत् ॥ १५ ॥ पाठीनरोहितावाद्या नियुक्तौ  
हव्यकव्ययोः ॥ राजीवांसिहत्तुण्डांश्च शलकंश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

टीका—जो जिसके मांसको खाताहै वह उसके मांसका खानेवाला कहा जाताहै,  
जैसे भिलाव मूषरूका खानेवाला कहाताहै ऐसेही मत्स्याद कहनेसे वह सब प्रकारके  
मांसका खानेवाला कहनेयोग्य है तिससे मछलियोंको न खाय ॥ १५ ॥ पाठीन  
मछली और रोहु मछली आद्य कहिये खानेयोग्य कहीहैं और हव्यकव्यमें नियुक्तहैं  
और आगे कहे हुए लक्षणोंकरि युक्त राजीव सिंहतुंड और शलकसमेत सब आद्य  
कहिये भक्षण करने योग्यहैं अर्थात् ये सब हव्यकव्यके विनाभी खाने योग्यहैं ॥ १६ ॥

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्रिजान् ॥ भक्ष्येष्वपि समुद्रिष्टां-  
न्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्म  
शशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वर्हुरनुष्टांश्चैकतोदरतः ॥ १८ ॥

टीका—जो बहुधा अकेले विचरतेहैं जैसे सर्प आदि उनको न खाय और नाम  
तथा जातिके भेदसे जिनको नहीं जानतेहैं ऐसे मृगों और पक्षियोंको न खाय और  
भक्ष्यत्व करिके कहे हुए सब पंचनखां अर्थात् वानर आदिकों न खाय ॥ १७ ॥  
श्वाविध कहि सेधानाव जीवभेद और शल्यक कहिये ऐसेही और गोह तथा गंडा  
कच्छुआ और शशा इनको पंचनखामें मनुआदि भक्ष्य कहतेहैं और एकओर  
ज्ञातांकी पंक्तिवालोंमें ऊंटको वर्जित कहतेहैं ॥ १८ ॥

छत्राकं विडुराह च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ॥ पलाण्डुं गुंजनं चैव  
मर्त्यां जग्ध्वा पंते द्विजः ॥ १९ ॥ अमत्यैतानि पटं जग्ध्वा कृच्छं सा  
न्तपनं चरेत् ॥ यतिचान्द्रायणं वाँर्षिणे ॥ २० ॥

टीका—व्रतीका फूल विष्ठाखानेवाला सुअर लहसन गांवाका मुरगा प्याज गाजर  
इनमें किसीकी जानकै खाय तौ द्विजाति पतित होय तिस पीछे पतितका प्रायश्चित्त  
करै ॥ १९ ॥ इन छत्राक आदि छः चीजोंको जानि वृद्धि खायकै ग्यारहें अध्यायमें  
कहे हुए सात दिनोंमें होने योग्य कृच्छ्रसांतपन नाम व्रत अथवा यतिचान्द्रायण करै

और इनसे भिन्न लाल बृक्षोंके गोद आदिके खानेमें दिनरात्रिका उपवास करै ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजातिमः ॥ अज्ञातभुक्तशुद्धयर्थं  
ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वर्ध्याः प्रशस्ता  
मृगपक्षिणः ॥ भृत्यानांचैवं वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्यचरेत्पुरा ॥ २२ ॥

टीका—द्विजाति विनाजाने खाये हुएको शुद्धिके लिये एकवर्षमें एकभी कृच्छ्र प्राजा-  
पत्यनाम तत्र करै और फिर जाने हुए अभक्ष्यभक्षणदोषकी शुद्धिके लिये जो कहाहै उसी  
प्रार्थान्त्रिकको करै ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदिकों करिके यज्ञके लिये प्रशस्त कहिये  
शास्त्रमें कहे हुए मृग तथा पक्षी मारने योग्यहैं और अवश्य पालनेयोग्य भृत्यों तथा  
वृद्धमातापिता आदिके पोषणके लिये करै ॥ २२ ॥

वंभूर्बुहि पुरोडाशा भक्ष्याणामृगपक्षिणाम् ॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु  
ब्रह्मक्षत्रसेवेषु च ॥ २३ ॥ र्यात्किचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगं  
हितम् ॥ तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं चैद्रवेत् ॥ २४ ॥

टीका—जिसे पुराने यज्ञोंमें और ऋषियोंके यज्ञोंमें भक्ष्य कहिये खानेयोग्य मृगों  
और पक्षियोंके मांसका पुरोडाश कहिये यज्ञभाग कहाहै ॥ २३ ॥ जो कुछ भोज्य  
वस्तु घी तेल आदि स्नेहसे पकी हुई लड्डू आदि तथा खीर आदिभोज्य वस्तु किसी  
वस्तुके पडनेसे विगडी न होय और वासीभी होय तौ उसका घी तेल आदि मिलकै  
खाय तथा पुरोडाश आदि वासीभी भोजनकालमें स्नेहसंयोगशून्यभी भोजन करै ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वार्थमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः ॥ यवगोधूमजं सर्वं  
पर्यसश्चैवं विक्रिया ॥ २५ ॥ एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्य-  
मशेषतः ॥ मांसस्यातःप्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

टीका—अनेक रात्रिके वसेभी जब गेहूं और दूधके पदार्थोंको चिकनाई मिलकै  
विनाभी द्विजाति भक्षण करै ॥ २५ ॥ द्विजातियोंका यह संपूर्ण भक्ष्य अभक्ष्य कहा  
इस पीछे मांसके खाने और छोडनेकी विधि कहेंगे ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्ष्येन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥ यथाविधि नियुक्त  
स्तु प्राणानामेवं चात्त्यये ॥ २७ ॥ प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिर  
कल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैवं सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

टीका—प्रोक्षणनाम संस्कारसे शुद्ध किये हुये और यज्ञसे बचे हुए मांसको ब्राह्मण

भक्षण करै और जो ब्राह्मणोंकी मांस खानेकी इच्छा होय तौभी नियमहीसे एकवार खाय तथा श्राद्धमें और मधुपर्कमें गृह्यवचनके अनुसार नियमसे मांस खाना चाहिये और दूसरा आहार न मिलनेसे प्राणोंका नाश होता होय और रोगका कारण होय तौ नियमसे मांस खाय ॥ २७ ॥ प्रजापतिने यह सब प्राणका अन्न बनाया । तौ कौनहै सो कहतेहैं जैसे जंगम पशु आदि और स्थावर धान जब आदि यह सब उसके भोजन हैं तिससे प्राणोंकी रक्षाके लिये जीवमांसको खाय ॥ २८ ॥

चराणामन्नमचरां दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥ अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां च वै भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुर्ष्यत्यर्दन्नाद्यान्प्राणनोऽहन्य हन्यपि ॥ धात्रैव सृष्ट्याद्यांश्च प्राणिनोऽत्तारं एवं च ॥ ३० ॥

टीका—चर कहिये चलनेवाले जो हरिण आदिहैं उनके अचर कहिये तृण घास भक्ष्यहैं और डाढवाले वाघ आदिकोंके बिना डाढवाले हरिण आदि भक्ष्यहैं और हाथोंवाले जो मनुष्य आदिहैं उनके बिना हाथोंकी मछली आदि भक्ष्यहैं आर शूर जो सिंह आदिहैं उनको भीरु कहिये डरपोकने हाथी आदि भक्ष्य कहिये खानेयोग्यहैं ॥ २९ ॥ खानेयोग्य प्राणियोंको प्रतिदिन खाता हुआभी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होताहै जिस्से विधाताहीने खानेयोग्य और खानेवाले बनाये इन कहेहुए तीन श्लोकोंमें प्राणोंके नाशका संभव होनेपर मांस खानेकी प्रशंसा कीहै ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष देवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१ ॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेवं वा ॥ देवान्पितृन्श्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुर्ष्यति ॥ ३२ ॥

टीका—यज्ञके लिये उसके अंगभूत मांसका खाना यह देवविधि कही है और इस्से अन्यथा अर्थात् बिना यज्ञके मांस खाना राक्षसविधि कही जाती है ॥ ३१ ॥ मौल लेकर अथवा आप उत्पन्न करिकै अथवा और किसी करि लायकै दिये हुए मांसको देवता तथा पितरोंको देकर शेषको खाता हुआ पुरुष पापको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ॥ जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैर्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥ न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

टीका—मांस खानेकी विधिका जाननेवाला द्विज दिना आपत्तिकालके देवादि



पूजनविधिके विना मांस न खाय जिस्से विनाविधिके मांसको खायकै जिनका मांस वह खाताहै उन करिके परलोकमें वह परवश होकै उन पशुओंकरकै खाया जाताहै ॥ ३३ ॥ धनके लिये मृगोंको मार कर जीविका करनेवाले वंहालिया आदिकोंको वैसा पाप नहीं होता है जैसा देवता तथा पितरोंके विना दिये हुए मांसके खाने-वालेको परलोकमें होताहै ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नार्त्ति मानवः ॥ संप्रेत्यं पशुंतां याति  
संभवांनेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥ असंस्कृतापशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः  
कदाचन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानर्थाच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

टीका—श्राद्धमें तथा मद्युपर्कमें शास्त्रके अनुसार नियुक्त हो जो पुरुष मांसको नहीं खाताहै वह मरके इक्कीस जन्मोंतक पशु होताहै ॥ ३५ ॥ वेदमें कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण आदि संस्कार न किये हुए पशुओंको ब्राह्मण आदि कभी न खाय और शाश्वत कहिये प्रवाहकी अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित संस्कार किये हुए मांसोंको खाय ॥ ३६ ॥

कुर्याद् घृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ॥ न त्वेवं तु वृथा हंतुं  
पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वे  
ह मारणम् ॥ वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्यं जन्मनिजन्मनि ॥ ३८ ॥

टीका—जो बहुतही खानेकी इच्छा होय तौ घीका अथवा चूनका पशु बनाकै खाय और देवताओंके निमित्त विना कभी पशुओंके मारनेकी इच्छा न करै ॥ ३७ ॥ देवताके उद्देशविना अपने लिये जो पशुओंको मारताहै वह वृथा पशु मारनेवाला मरकै जितने पशुके रोमहैं उतनेही जन्मोंमें माराजाताहै तिससे पशुको वृथा न मारै ॥ ३८ ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्यत-  
स्माद्यज्ञे वर्धोऽवधः ॥ ३९ ॥ ओषध्व्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पर्शि-  
णस्तथा ॥ यज्ञार्थं निर्धनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

टीका—यज्ञके लिये पशुके मारनेमें दोष नहीं यह कहते हैं यज्ञकी सिद्धिके लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न किये और यज्ञ कहिये अग्निमें डाली हुई आहुती इस सब जगत्की वृद्धिके लिये होती है तिससे यज्ञमें जो वध है वह अवध है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥ औषधी कहिये धान जव आदि और पशु कहिये छाग आदि और वृक्ष यज्ञस्तंभ आदिके लिये और तिर्यच कहिये कछुआ आदि और पक्षी चिरोटा आदि

यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुए फिर दूसरा जन्म होनेपर ऊंची जातिमें उत्पन्न होतेहैं ॥ ४० ॥

मधुपर्कं च यज्ञे च पितृदेवतकर्मणि ॥ अत्रैव पशवो हिंस्यां नान्यं  
त्रैत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थवि-  
द्विजः ॥ आत्मानं च पशुं चैवं गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥

टीका—‘समांसो मधुपर्कः’ अर्थात् मांस समेत मधुपर्क होताहै इस वचनसे मधुपर्कमें और यज्ञकर्ममें और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा देवकर्ममें पशु मारनेयोग्य हैं अन्यत्र नहीं यह मनुजीने कहा ॥ ४१ ॥ इन मधुपर्क आदि पदार्थोंमें पशुओंको मारता हुआ वेदके तत्वार्थका जाननेवाला द्विज आपको तथा पशुको उत्तमगति जो स्वर्ग आदिके भोगयोग्य अद्भुत देह तथा देशमें पहुँचायदेता है ॥ ४२ ॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ॥ नीवेदविहितां हिंसां  
मार्षद्यापि समाचरेत् ॥ ४३ ॥ यां वेदविहितां हिंसां नियताऽस्मिं  
श्वरांचरे ॥ अहिंसांमेव तां विद्याद्विदाद्धिमौ हि निर्वमौ ॥ ४४ ॥

टीका—गृहस्थाश्रममें तथा ब्रह्मचर्य आश्रममें और वानप्रस्थ आश्रममें वसता हुआ प्रशस्त आत्मावाला द्विज अशास्त्रीय कहिये शास्त्रमें नहीं कही हुई हिंसाको नकरै ॥ ४३ ॥ वेदमें कही हुई कर्मविशेषमें तथा देशकाल आदिमें नियत हिंसाको इस स्थावर जंगम रूप जगतमें अहिंसा जानै जिस्से और प्रमाणोंकाभी धर्म वेदहीसे सब निकलहै ॥ ४४ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ॥ संजीवश्चमृ-  
तंश्चैवं नैकाचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥ यो बन्धनवधकृशान्प्राणिनां न  
चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

टीका—जो अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले जीवोंको मारताहै वह इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं पाता है ॥ ४५ ॥ जो प्राणियोंके बांधने तथा मारनेके क्लेशको नहीं किया चाहता है और सबके सुखका चाहनेवाला है वह अनंत सुखको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

यैद्यथायति यत्कुरुते धीतिं वर्धाति यत्र च ॥ तदवाप्नोत्ययत्नेन  
यो हिनस्ति नैकिचन ॥ ४७ ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्प-  
द्यते काचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं संविवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

टीका-धर्म आदि भेरे होय यह जो चितवन करताहै और जो कल्याण करनेवाले धर्मको करताहै और जिस परमार्थके ध्यान आदिमें धीरजको बांधताहै उन सबको सहजहीमें प्राप्त होताहै जो दुःख देनेवाले डांस मच्छड आदिकोंको भी नहीं मार ताहै ॥ ४७ ॥ प्राणियोंको मारनेविना कहीं मांस नहीं उत्पन्न होता है और प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरकहीका कारण है तिससे मांसको छोडदे ॥ ४८ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधवन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत  
सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा  
पिशाचवत् ॥ सर्गं के प्रियंतां यीं ति व्यधिभिश्च न पीडयते ५० ॥

टीका-शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप विन उपजानेवाली मांसकी उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंके मारने तथा बांधनेको क्रूरकर्म जानि सर्वप्रकारके मांसको अर्थात् कहे हुएभी मांसको न खाय तौ विना कहेका क्या कहना है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कही हुई विधिको छोड पिशाचके समान मांसको नहीं खाता है वह लोक का प्यारा होता है और रोगोंसेभी नहीं पीडित होता है ॥ ५० ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्ता च  
खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥ स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमि-  
च्छति ॥ अनभ्यर्च्य पितृन् देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

टीका-अनुमन्ता कहिये जिसकी आज्ञा विना मार न सकै और विशसिता जो अंगोंको काटकर जुदा करै और क्रयविक्रयी जो मोल ले और बेचै और संस्कर्ता जो पाक करै और उपहर्ता कहिये परोसनेवाला और खादक कहिये खानेवाला ये सब घातक कहिये मारनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ अपने शरीरके मांसको दूसरेके शरीरके मांससे देवता पितरोंकी पूजाके विना जो बढ़ाना चाहताहै उससे और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ मांसानि च न खादेद्य  
स्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥ फलमूलाशनैर्मेघैर्मुन्यन्नानां च  
भोजनैः ॥ न तत्फलं मर्वाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

टीका-जो सौवर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेधसे यजन करताहै और जो जन्मभर मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है ॥ ५३ ॥

पवित्र फलमूलोंके खानेमें और वानप्रस्थोंकरि खानेयोग्य तृण धान्य समा  
आदिके खानेसेही वह फल नहीं मिलताहै जो शास्त्रमें नियम किये हुए मांसके न  
खानेवालेको मिलताहै ॥ ५४ ॥

मांसभक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्भ्यर्हम् ॥ एतन्मांसस्य मांस-  
त्वं प्रवर्दान्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥ न मांसभक्षणे दोषो न मंत्रे न च  
मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषां भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

टीका—इस लोकमें जिसके मांसको मैं खाताहूँ परलोकमें वह मुझको खायगा पंडि-  
तोंने मांसशब्दका यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥ मांस और मदिरा इनके भक्षणमें दोष  
नहीं है जिसे खाने पीने और मैथुन आदम प्रवृत्ति यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म  
है और छोड़नेका तो बड़ा फल है अब इसका अभिप्राय यह है कि मांसभक्षण मदिरा-  
पान मैथुन इन तीनोंके विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वे प्रवृत्ति करानेवाले  
नहीं हैं क्योंकि प्रवृत्ति तो इच्छाहीसे होती है तब ये सब वाक्य व्यर्थ होकै यज्ञमें  
मांसभक्षण विवाहमें मैथुन और सौत्रामणी यज्ञमें मद्य पीना इन सबोंके करनेसे  
दोषका न होना सूचित करते हैं और इन सब वचनोंका अभिप्राय इन तीनोंके  
न करनेमेंही है ॥ ५६ ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥ चतुर्णामपि वर्णानां  
यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥ दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च सं-  
स्थिते ॥ अशुद्धा वान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यन्ते ॥ ५८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोंवर्णोंकी प्रेतशुद्धि कहिये पिता आदिके मरनेपर पुत्र  
आदिकी शुद्धिकी ब्राह्मण आदिके क्रमसे जो जिसवर्णका है उसकी और द्रव्य जो  
तैजस अर्थात् घात आदिकी शुद्धिकी आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥ दांतोंके उत्पन्न होनेपर  
और दांत होनेके पीछे और मुंडन तथा यज्ञोपवीत होनेपर जो लडका मरजाय  
तो सर्पिण्ड और समानोदक वांधव अशुद्ध होतेहैं तैसे लडका लडकीके उत्पन्न होनेमें  
अशुद्ध होतेहैं यह कहते हैं ॥ ५८ ॥

दर्शाहं शार्वमाशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते ॥ अर्वाक् संचयनाद-  
स्थानां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥ सर्पिण्डता तु पुरुषे सप्तमे वि-  
निवर्तते ॥ समानोदकभावस्तु जन्मनामोरवेदने ॥ ६० ॥

टीका—सात पुरुषोंतक सर्पिण्डता कहेंगे सर्पिण्डोंमें मरनेका आशौच कहिये सूतक

ब्राह्मणाम दशराति दिनका कहाहै और अस्थिसंचयनके पीछे तीनि दिनरातिका अथवा एक दिनरातिका होता है इसकी व्यवस्था यहहै कि वेदके मंत्र ब्राह्मण दोनों भागोंको जाननेवाला होय और अग्निहोत्र करता होय उसको एक दिनरातिका तथा जो केवल वेदहीको पढा होय और अग्निहोत्र न करता होय उसको तीनरात्रिदिनतक और जो वेद पढना तथा अग्निहोत्र दोनोंसे रहितहै परंतु स्मृतिमें कही हुई अग्निसे युक्तहै तौ उसको चारि दिनरातितक और सब गुणोंसे हीन होय तौ उसको दशदिन रातितक आशौच होताहै ॥ ५९ ॥ सातमें पुरुषमें सर्पिडता दूर होजाती है और समानोदकभाव तौ फिर हमारं कुलमें असुक नामका हुआ इस प्रकार जन्म और नाम दोनोंके ज्ञान न हानेमें दूर होताहै ॥ ६० ॥

यथेदं शार्वर्माशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते ॥ जननेऽप्येवमेव स्यात्  
त्रिपुणं शुद्धिं मिच्छताम् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां शार्वर्माशौचं मातापि-  
त्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पितां शत्रुः ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे यह दशदिन आदिका आशौच मरनेमें कहा है ऐसेही अच्छी भांति शुद्धि चाहनेवाले सर्पिण्डोंके जन्ममेंभी दशही दिनका सूतक होता है ॥ ६१ ॥ मरनेके कारण नहीं छूनेरूप आशौच सब सर्पिण्डोंकी समान हांता है और जन्मके कारणसे तौ मातापिताहीको दश दिनतक न छूनेरूप सूतक होता है उसमेंभी यह विशेषहै कि, जनननिमित्त सूतक माताको दशदिनतक होता है पिता तौ स्नानसे छूनेयोग्य होताहै ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्धयति ॥ वैजिकादभिसंबन्धां  
दत्तुरुन्ध्यार्दधं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥ अह्ना चैकेन रात्र्यां च त्रिरात्रैरेव  
च त्रिभिः ॥ शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहं दुदकदारिर्नः ॥ ६४ ॥

टीका—मैथुनके विनाभी कामसे वीर्यस्खलन होने अर्थात् निकलनेमें स्नान करनेसे पुरुष शुद्ध होताहै और विना कामके स्वप्न आदिमें मूत्रके समान वीर्यके स्खलित होनेपर स्नानके विनाभी गृहस्थकी शुद्धि होतीहै और ब्रह्मचारीकी तौ कामके विनाभी स्वप्नमें रखालित होनेसे स्नानसे शुद्धि कही है और पहलेपातिको छोडकर जिस स्त्रीने दूसरा पति कियाहै उस स्त्रीमें दूसरे पतिसे संतति उत्पन्न होनेपर पतिको तीनि दिनरातिका आशौच होताहै ॥ ६३ ॥ सर्पिड तीनि दिनरातिमें शुद्धि होते हैं और जो सर्पिड पहले कहे हुए गुणों करि युक्त होय तौ वह एक दिनरातिमें शुद्धि होय वे जो

स्नेह आदिसे मृतक छुवें तौ दशही दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेघं समाचरन् ॥ प्रेतहारैः समं तत्रं  
दर्शरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्योभिर्गर्भस्त्रावे वि-  
शुद्ध्यति ॥ रजस्युपरंते सार्ध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु कहिये आचार्य आदि असर्पिडका दाह करके शिष्यभी प्रेतके लेजानेवाले गुरुके सर्पिडोंके समान दश दिनरातिमें शद्ध होताहै ॥ ६५ ॥ तीसरे महीनेसे लगाके जितने महीनोंके गर्भका पात होताहै उतनेही दिनरातिमें चारोंवर्णकी स्त्रियाँ शुद्ध होतीहैं यह छः महीनेतक जानिये, इसके उपरांत अपनी जातिका कहा हुआ आशौच उनमें जानिये और रजस्वला स्त्री रजके बंद होनेपर पाचवें दिन स्नानसे कर्मयोग्य होती है और छूनेयोग्य ता चौथेदिन स्नानकरनेसेही शुद्ध होती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिनैशिकी स्मृता ॥ निवृत्तचूडकानां तु  
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥ ऊनद्विर्वाषिकं प्रेतं निदध्युर्वा-  
न्धवां बहिः ॥ अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

टीका—विना मुंडन किये हुए बालकोंके मरनेपर सर्पिडोंकी रातदिनेमें शुद्धि होती है और मुंडन होजानेके पीछे यज्ञोपवीतसे पहले मरनेमें तीनि रात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ दो वर्षसे कम विना मुंडन किया हुआ बालक मरे तो उसको माला आदिसे शोभित करि ग्रामके बाहर लेजाके शुद्ध भूमिमें गाडदे अस्थिसंचयन न करै ॥ ६८ ॥

नास्यर्क्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठ-  
वत्यर्क्त्वा क्षपेयुर्हमेव च ॥ ६९ ॥ नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवै-  
रुदकक्रिया ॥ जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ ७० ॥

टीका—इस दोवर्षके मरे हुए बालकका न अग्निसंस्कार करै और न जलदान करै किंतु वनमें काठके समान छोडके तीनि रातिदिनका आशौच मानै ॥ ६९ ॥ तीनि वर्षसे कम अवस्थाके बालकको उसके सर्पिड जलदान न करै और दाँत उत्पन्न होनेपर तथा नामकरण होजानेपर जलदान तथा अग्निसंस्कार करना चाहिये और प्रेतका पिंडश्राद्ध आदि वनिसके, तो करे क्योंकि करनेसे प्रेतको आनंद होताहै और जो न करै तौ कुछ दोष नहीं है ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकौहर्मतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु  
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥ स्त्रीणामसंकृतानां तु त्र्यहाच्छु-  
द्धान्ति बान्धवाः ॥ यथोक्तैर्नैवं कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ॥ ७२ ॥

टीका—साथ पढनेवालेके मरनेमें एकदिनका आशौच होता है और समानोदकोंके पुत्रका जन्म होनेपर तीनरात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ विना व्याही हुई वाग्दत्ता कहिये जिनका बातोंसे संबध हुआ है उन लडाकियोंके मरनेमें बांधव कहिये पति आदि तीन दिनमें शुद्धहोते हैं और विवाह होनेके पीछे मरनेमें पिता भाई आदि तीन दिनमें शुद्धहोते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निर्मज्जैर्युश्चते त्र्यहम् ॥ मांसार्शनं च नाश्री-  
युः शैयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥ ७३ ॥ संनिधावेष वैकल्पः शार्वाशौ-  
चस्य कीर्तितः ॥ असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिवान्धवैः ॥ ७४ ॥

टीका—क्षारलवण कहिये बना हुआ नोनका न खाना तथा नदी आदिमें तीन दिनतक स्नान करना और मांस न खाना तथा जुदे २ भूमिमें सोना चाहिये ॥ ७३ ॥ मृतकके समीप रहनेमें यह शावाशौच कहिये मरणमित्तक आशौच कहाहै और समीप न होनेमें संबन्धी तथा बांधवोंको जो आगे कहेंगे वह आशौच जानना चाहिये सर्पिडोंको संबन्धी कहतेहैं और समानोदकोंको बांधव कहतेहैं ॥ ७४ ॥

विगतं तु विदेशस्थं श्रृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य  
तावदेवांशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशु-  
चिर्भवेत् ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वै वापौ विशुद्ध्यति ॥ ७६ ॥

टीका—विदेशमें मरे हुएके समाचार दशदिनके भीतर सुननेमें आवें तो दशदिनमें जितने दिन बाकी रहे होंय उतने दिनतक आशौच मानना चाहिये ॥ ७५ ॥ दश-दिनके उपरांत सुननेमें आवें तो तीन दिनराति आशौच जानना और एकवर्षके उप-रान्त सुने तो जलका स्पर्श करिकै अर्थात् स्नान करिकै शुद्ध होय ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्मं च ॥ सवासां जलमाप्लुत्य  
शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥ गले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे  
च संस्थिते ॥ सवासा जलमाप्लुत्य संबध एव विशुद्ध्यति ॥ ७८ ॥

टीका—दशदिनके उपरान्त जातिका मरना और पुत्रका जन्म सुननेमें आवै तो बख्खोसमेत स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७७ ॥ परदेशमें समानोदक बालकका मरना सुनिके बख्खोसमेत स्नान करनेसे उसीसमय शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चैत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादर्शुचिर्विप्रो  
यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ७९ ॥ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते  
सति ॥ तस्य पुत्रे च पुत्र्यां च दिवारात्रमिति<sup>३</sup> स्थितिः ॥ ८० ॥

टीका—एकका जन्म होनेपर दशदिनके भीतर दूसरेका जन्म होय और एकके मरनेसे दशदिनके भीतर दूसरा मरै तो पहले आशौचके दूर होनेमें दूसरा भी दूर होजाता है ॥ ७९ ॥ आचार्यके मरनेमें शिष्योंको तीन रातिका आशौच होता है, और आचार्यके पुत्र तथा स्त्रीके मरनेमें एक दिनरातिका आशौच होता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपुत्रे त्रिरात्रमशुचि भवेत् ॥ प्रातुले पक्षिणीरात्रि शि-  
ष्यत्विग्वान्धवेषु च ॥ ८१ ॥ प्रेतै राजनि सज्यो तिर्यस्य स्याद्वि-  
षये स्थितः ॥ अश्रोत्रिये त्वर्हः कृत्स्नमनूचीने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

टीका—वेदशास्त्रका पढनेवाला मरे तो प्रीतिसे उसके समीप रहनेवालेको अथवा उसके घरमें रहनेवालेको तीन रात्रिका आशौच होताहै और मामा शिष्य ऋत्विक् तथा बांधवके मरनेमें पक्षिणी अर्थात् पहले और पिछले दिनसमेत रात्रिका आशौच होता है ॥ ८१ ॥ जिस देशमें ब्राह्मण आदि वसते होय उस देशके राजा अर्थात् अंधिषेकयुक्त क्षत्रिय आदिके मरनेमें सज्योति कहिये दिन होय तो जबतक मूर्ख रहै तबतक और राति होय तो जबतक तारा रहै तबतकका आशौच होताहै और श्रोत्रिय मरै तो तीनिरात्रिका कहाहै रातिमेंभी नहीं और जो रातिमें मरै तो रातिहीभरिका यह जानना चाहिये और अंगोसमेत वेदके पढनेवाले तथा गुरुके मरनेपर एकही दिनका आशौच मानना चाहिये ॥ ८२ ॥

शुद्धचेद्रिप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन  
शूद्रो मासेन शुष्यति ॥ ८३ ॥ नैवर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु  
क्रियाः ॥ न च तर्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽध्यशुचि भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञोपवीत किये हुए सापिंडके मरनेमें तथा पूरे दिनोंमें जन्म होनेपर चंद्रपाठरहित ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होता है और क्षत्रिय बारहादिनमें तथा वैश्य पंद्रह



दिनमें और शूद्र एक महिनेमें । शूद्रके यज्ञोपवीतके स्थानमें विवाह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ आशौचके दिनोंको न बढ़ावै और उन दिनोंमेंभी श्रौत अग्निहोत्रके होममें बाधा न करै जो असमर्थ होय तौ पुत्रादिकोंसे करावै इसमें कारण कहतेहैं कि जिस्से उस अग्निहोत्ररूप कर्मको करता हुआ पुत्र आदि सपिंड अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिसुदर्व्यांचं पतितं सूतिकां तथा ॥ शवं तत्स्पृष्टिनं चैव  
स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥ ८५ ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचि  
दर्शने ॥ सौरान्मंत्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तिः ॥ ८६ ॥

टीका—चांडालको रजस्वलाको ब्रह्महत्यांर आदिको और दशदिनके भीतर प्रसूता स्त्रीको मुर्देको तथा मुर्देछूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होताहै ॥ ८५ ॥ चांडाल आदि अशुद्धके दर्शन होनेपर श्राद्ध तथा देवपूजा आदिको किया चाहता पुरुष स्नान तथा आचमन करि मूर्ध् जिनका देवता ऐसे “उदुत्यंजातवेदसं” इत्यादि मंत्रोंको और पावमानी ऋचाओंको शक्तिके अनुसार जपै ॥ ८६ ॥

नारंस्पृष्ट्वास्थिं संस्नेहं स्नात्वा विप्रोविशुध्यति ॥ आचम्यैव तु निः  
स्नेहं गामालंभ्यां कमीक्ष्य वा ॥ ८७ ॥ आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्र  
तस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥ ८८ ॥

टीका—चिकनाई युक्त मनुष्यकी हड्डीको छूकै ब्राह्मणआदि स्नानसे शुद्ध होतेहैं स्नेहरहित हड्डीको छू आचमन करिकै अथवा गौको छूकै अथवा सूर्यका दर्शन करिकै शुद्ध होताहै ॥ ८७ ॥ ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिपर्यंत प्रेतोदक अर्थात् पूरक पिंडश्राद्ध आदि प्रेतके कृत्य न करै फिर ब्रह्मचर्यके समाप्त होनेपर प्रेतोदक करिकै तीन राति-तक आशौच मानिकै शब्द होताहै ॥ ८८ ॥

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आत्मनस्त्याग्निना  
चैव निवर्ते तोदकक्रिया ॥ ८९ ॥ पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां  
च कामतः ॥ गर्भभर्तृदुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

टीका—अपने धर्मका छोडनेवाला और हीनजातिके पुरुषसे जंची जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा झूठे संन्यासका धारण करनेवाला और व्यर्थ कहिये शास्त्रसे मने किये हुए विष आदिसे जानकर मरनेवाला इन सबोंके मरनेमें जलदान न करै ॥ ८९ ॥ वेदसे बाहर गेरुआ कपडे और मूंड मुंडाना आदि व्रतोंसे पाषंड करनेवाली और अपनी

इच्छासे जहां तहां फिरनेवाली और गर्भपात तथा पतिका वध करनेवाली और मद्य पीनेवाली द्विजातिकी स्त्रीको इन सबोंके मरनेमें जलदान न करना चाहिये ॥ ९० ॥

आचार्य स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ नित्दृत्य तु व्रती  
प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९१ ॥ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण  
निहरेत् ॥ पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

टीका—आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत कराकै संपूर्ण शाखाओंको पढावै और उपाध्याय जो वेदका एकदेश अथवा अंग शिक्षा आदि पढावै पिता माता और गुरु जो एक वेदका अथवा सबवेदोंके एकदेशका व्याख्यान करै इन सबोंकी दाहआदि प्रेतक्रिया करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका लोप नहीं होताहै ॥ ९१ ॥ मरेहुए शूद्रको पुरके दक्षिणद्वारमें होकर निकालै और द्विजातियोंको यथायोग्य कहिये युक्तिसे हीनवैश्य क्षत्रियके क्रमसे पश्चिम उत्तर पूर्वके द्वारोंमें होकर निकालै ॥ ९२ ॥

न राज्ञामर्घदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणां ॥ ऐन्द्रं स्थानमुपा  
सीनां ब्रह्मभूता हि तेसंदा ॥ ९३ ॥ राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः  
शौचं विधीयते ॥ प्रजाणां परिरक्षार्थमासनञ्चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

टीका—राजा व्रती कहिये ब्रह्मचारी चांद्रायण आदि व्रतोंका करनेवाला तथा सत्री कहिये यज्ञ करनेवाला इन तीनोंको सर्पिंडके मरने आदिमें आशौचदोष नहीं लगता है क्योंकि राजा तौ इंद्रके स्थानमें स्थित है और ब्रह्मचारी व्रती तथा यज्ञकरनेवाला ये सदा ब्रह्मका स्वरूपहैं ॥ ९३ ॥ राज्यपदमें बैठे हुए राजाकीसी शुद्धि कहीहै प्रजाओंकी रक्षाके लिये राज्यपदमें बैठनाही आशौच न लगनेका कारणहै ॥ ९४ ॥

डिवाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवार्थ  
यस्य चच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥ सोमाश्रयकार्णिलेन्द्राणां वित्ताप्य  
त्योर्यमस्य च ॥ अर्घानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

टीका—जिसमें राजा नहीं है उस युद्धमें जो मारे गयेहैं और विजली अर्थात् बज्रसे जो मारे गयेहैं मारनेके योग्य अपराध करनेमें राजाकारि जो मारे गये और गौ तथा ब्राह्मणके लिये ये युद्धके विनाभी जल अग्नि तथा व्याघ्र आदि कौ मारे गये और जिस पुरोहित आदिका राजा अपने कामके लिये शुद्धि चाहै उन सबोंकी शीघ्रही शुद्धि होतीहै ॥ ९५ ॥ चन्द्रमा अग्नि मूर्य वायु इंद्र कुबेर वरुण यम इन आठों लोकपालोंके शरीरको राजा धारणकरताहै ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि म-  
र्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्मह-  
र्त्स्य च ॥ सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

टीका-राजा ऊपरके श्लोकमें कहे हुए इंद्र आदि लोकपालोंके अंशोंसे युक्त होताहै इसलिये राजाको आशौच नहीं लगताहै कारण यहहै कि मनुष्योंका जो शौच और आशौचहै सो लोकपालोंसे उत्पन्न होताहै तथा दूरि होताहै ॥ ९७ ॥ संग्राममें उठे हुए खड्ग आदि शस्त्रोंसे लठी पत्थर आदिसे नहीं किंतु क्षत्रियधर्मसे सन्मुख मारे गये पुरुषका उसीसमय ज्योतिष्म आदि यज्ञ समाप्त होताहै अर्थात् यज्ञफलसे वह युक्त होताहै और आशौचभी उसी समय समाप्त होजाताहै यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥ ९८ ॥

विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनयुग्धम् ॥ वैश्यः प्रतोदर-  
श्मीर्न्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥ एतद्द्रोऽभिहितं शौचं स-  
पिण्डेषु द्विजोत्तमाः ॥ असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत १०० ॥

टीका-आशौचके अंतमें श्राद्ध आदि कृत्य करिके ब्राह्मण दाहिने हाथसे जलको छूकर शुद्ध होताहै और क्षत्रिय हाथी आदि वाहनोंको तथा खड्ग आदि शस्त्रोंको और वैश्य अग्रभागमें लोह लगे हुए बैलोंके हांकनेकी लकड़ीको अथवा जोतेको और शूद्र बांसकी दंडिकाको छूकर शुद्ध होताहै ॥ ९९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैंने तुमसे यह आशौच सर्पिण्डोंके मरनेमें कहा अब असर्पिण्डोंके मरनेमें प्रेतशुद्धिको सुनो ॥ १०० ॥

असर्पिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो नित्दृत्यं वन्धुवत् ॥ विशुद्ध्यति त्रिरात्रे  
ण मातुरासांश्च बान्धवान् ॥ १ ॥ यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव  
शुद्ध्यति ॥ अनदन्नममहे वै न चेतस्मिन्मृहे वसेत् ॥ २ ॥

टीका-असर्पिण्ड मरे हुए ब्राह्मणको मित्रतासे श्मशानमें लेजाय करि तथा माताके सगे भाई बहिनि आदि बांधवोंको पहुँचायके ब्राह्मण तीन रात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ जो लेजानेवाला आशौचयुक्त मरे हुएके सर्पिण्डोंको अन्न खाय तो दशही दिनमें शुद्ध होय और जो उनका अन्न न खाय और उनके घरमें न वसे तो तीन दिनरातिहीमें शुद्धहोजाय और उसके घरमें तो वसे परंतु उसके सर्पिण्डोंका अन्न न खाये तो पहले कही हुई तीन रात्रिमें शुद्ध हो ॥ २ ॥

॥ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ॥ स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा-

श्रिं<sup>१०</sup> घृतं प्राश्याविशुद्ध्यति ॥३॥ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शू-  
द्रेण नाययेत् ॥ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः<sup>१२</sup> सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥

टीका—अपनी जातिके तथा और जातिके मृतकके साथ अपनी इच्छासे जायके बख्खोसमेत ज्ञान करि और अग्रिको छू घी खायके शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ समान जातिके स्थित होनेपर पुत्र आदि मृतकको शूद्रसे न उठवावै क्योंकि उसकी आहुति शूद्रके स्पर्शसे दूषित हो स्वर्गके लिये हित नहीं होतीहै अर्थात् स्वर्गमें नहीं पहुँचातीहै अप-  
नोंके होनेपर इसके कहनेसे यह जान गया कि ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय और क्षत्रि-  
यके न होनेमें वैश्य वैश्यके भी न होनेमें शूद्रसेभी उठवाके मृतकको लिवाय जाय ॥ ४ ॥

ज्ञानं तपोग्निराहारो मृन्मनो वार्युपांजनम् ॥ वार्युः कर्मार्ककालौ  
च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं  
स्मृतम् ॥ योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृदारिशुचिः शुचिः ॥ ६ ॥

टीका—ज्ञान तप अग्नि आहार मृत्तिका मन जल लेप पवन कर्म सूर्य और काल  
ये देहियोंकी शुद्धि करनेवालेहैं ॥ ५ ॥ सब शौचोंमें अर्थात् मट्टी पानी आदिम  
देहकी शुद्धि और मनकी शुद्धि इन सबोंमें अर्थशुद्धि कहिये अन्यायसे पराये धनक  
लेनेकी इच्छाको छोडकर धनका इकट्ठा करना सबसे अधिक शौच मनु आदिकोंने  
कहाहै क्योंकि जो धनमें शुद्धहै वह शुद्धहै और जो मृत्तिका तथा जलसे शुद्धहै और  
धनमें अशुद्धहै वह अशुद्धही है ॥ ६ ॥

क्षान्त्यां शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा  
जप्येन तपसा वेदवित्तर्माः ॥ ७ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी  
वेगेन शुद्ध्यति ॥ रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ ८ ॥

टीका—दूसरेके अपकार करनेपर उसके बदलेके झपकार करनेमें बुद्धि न करने  
रूप क्षमासे पंडित शुद्ध होतेहैं और नहीं करनेयोग्य कामके करनेवाले दानसे और  
जिनके पाप छुपै हुएहैं वे जपसे और वेदका अर्थ तथा चांद्रायण आदि तपके जान-  
नेवाले एकादश अध्यायमें कहेंगे उस तपसे शुद्ध होतेहैं ॥ ७ ॥ मल आदिसे दूषित  
शोधने योग्य मृत्तिका तथा जलसे शोधे जातेहैं और श्लेष्मा आदि अशुद्धसे दूषित नदी-  
का प्रवाह वेगसे शुद्ध होताहै और परपुरुषसे मैथुनके संकल्पसे दूषितहै मन जिसका  
ऐसी स्त्री प्रतिभासमें रजोधर्मसे उस पापसे शुद्ध होतीहै और ब्राह्मण छठे अध्यायमें  
जो कहेंगे उस संन्यायसे शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ॥ विद्यातपोभ्यां  
भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ॥ ९ ॥ एष शौचस्य वैः प्रोक्तः शरी-  
रस्य विनिर्णयः । नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ११०

टीका-पसीना आदिसे दूषित अंग जलके धोनेसे शुद्ध होताहै और निविद्ध चिन्ता  
आदिसे दूषित मन सत्यसे शुद्ध होताहै और सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें अवच्छिन्न जी-  
व आत्मा ब्रह्मविद्या तथा पापके नाशकरनेवाले तपसे शुद्ध होताहै और अन्यथा ज्ञानसे  
दूषित बुद्धि यथार्थविषयके ज्ञानसे शुद्ध होतीहै ॥ ९ ॥ मैंने शरीरके शौचका यह  
निश्चय तुमसे कहा अब नानाप्रकारके द्रव्योंमें जो जिस्से शुद्ध होताहै उसके  
निर्णयको सुनौ ॥ ११० ॥

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्मनाद्भिर्मृदा चै-  
वं शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ ११ ॥ निर्लेपं काञ्चन भाण्डमद्भिरे-  
वं विशुद्धयति ॥ अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ १२ ॥

टीका-तैजस कहिये सुवर्ण आदिकोंकी और मरकत आदि मणियोंकी और सब  
पत्थरकी वस्तुओंकी भस्म जल तथा मृदासे मनु आदिकोंने शुद्धि कहीहै ॥ ११ ॥  
उच्छिष्ट आदिके लेपसे रहित सुवर्णका पात्र और जलसे उत्पन्न शंख सीप आदि  
और पत्थरका पात्र तथा रेखारहित चांदीका पात्र भस्म आदिसे रहित केवल जलसे  
शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

अपांमग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्वभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यै-  
वं निर्णेको गुणवर्त्तरः ॥ १३ ॥ ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीस-  
कस्य च ॥ शौचं यथाहै कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ १४ ॥

टीका-जल और अग्निके संयोगसे सोना और रूपा उत्पन्न हुआहै तिस्से उनके  
कारण अर्थात् उत्पन्न करनेवाले जल और अग्निहीसे शुद्धि सबसे उत्तमहै ॥ १३ ॥  
तांबा लोहा कांसा पीतलि रांग और सीसा इनका भस्म तथा खटाईके पानीसे यथा-  
योग्य अर्थात् जो जिसके योग्य होय उस्से उसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

द्रवाणां च सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ॥ प्रोक्षणं संहतानां च  
दारवाणां च तक्षणम् ॥ १५ ॥ मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञक-  
र्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ १६ ॥

टीका-कौआ कीडा आदि करि दूषित किये गये एक पसेभर घी तेल आदिकी प्रादेशप्रमाण दो कुशके पत्रोंको उसमें डालकरि उछालनेसे और शय्याआदि जो उच्छिष्ट आदिसे दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे और काष्ठका कठोता आदि जो उच्छिष्ट आदिसे अत्यं दूषित होय तौ उनकी छीलनेसे शुद्धि होती है ॥ १५ ॥ यज्ञमें चमस ग्रह तथा अन्य यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि पहले हाथसे मलकै जलके धोनेसे हांती है ॥ १६ ॥

चरुणां सुकृस्त्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणां ॥ स्फ्यशूर्पशकटानां  
च मुसलोलूखलस्य च ॥ १७ ॥ अद्रिस्तु प्रोक्षणं शौचं वहूनां धान्य-  
वांससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्रिः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका-चिकनाई करि युक्त चरु सुक आदिकी शुद्धि उष्णजलके धोनेसे होती है और जिनमें चिकनाई नहीं है उनकी यज्ञके लिये केवल जलसे शुद्धि होती है और स्फ्य सूय गाडी मूसल और ओखलीकी शुद्धि उष्णजलसे होती है ॥ १७ ॥ बहुतसे धान्य और वस्त्र जो चांडाल आदि करि दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे उनकी शुद्धि होती है बहुत उसको कहंत हैं जो एक पुरुषके ले चलनेसे अधिक होय उससे थोडेकी शुद्धि मनु आदिने धोनेसे कहं है ॥ १८ ॥

चैलवस्त्रमणां शुद्धिवैदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यं  
वच्छुद्धिरिष्यते ॥ १९ ॥ कौशेयाविकंयोर्हृषैः कुतपानामरिष्ट-  
कैः ॥ श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्पपैः ॥ १२० ॥

टीका-छूनेयोग्य पशुके चर्मके पात्र और वांसके पात्रकी शुद्धि वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये और शाक मूल फल इनकी शुद्धि धान्यकी शुद्धिके समान जानिये ॥ १९ ॥ रेशमी और ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मट्टीसे होती है और नेपालके कंवलोंकी रीठके चूर्णसे और पट्टवस्त्रकी बेलके फलसे और अलसीकी छालिका वस्त्र सपेद सर-सोंसे शुद्ध होता है ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छुद्धिशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥ शुद्धिर्विजानता कार्या  
गोमूत्रेणोर्दकेन वा ॥ २१ ॥ प्रोक्षणार्त्तृणकाष्ठं च पलांलं चैव शु-  
द्ध्यति ॥ मार्जनोपाञ्जनैर्वैश्वं पुनः पाकेन मृन्मथम् ॥ २२ ॥

टीका-शंखका पात्र तथा छूनेयोग्य पशु हाथी आदि तिनके दांत सींग तथा हाडके पात्रकी शुद्धि अलसीके वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये अर्थात् सपेद सरसोंके

कलकसे अथवा गोधूत्रसे शुद्ध होती है ॥ २१ ॥ चांडाल आदिके छूनेसे दूषित वृण काठ और पयार जलके छिडकनेसे शुद्ध होते हैं और रजस्वला आदिके वसनेसे दूषित घर झाडने और लीपनेसे शुद्ध होता है और उच्छिष्ट आदिसे दूषित मट्टीका वासन फिरि पकानेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वोष्टिवनैः पूर्यशोणितैः ॥ सस्पृष्टं नैवं शुद्धयेत्  
 पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २३ ॥ संमार्जनोपाजनेन सेकेनोच्छेखनेन  
 च ॥ गर्वां च परिव्रासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चभिः ॥ २४ ॥

टीका-मद्य मूत्र विष्ठा थूक पीव तथा रुधिरसे विगडा हुआ मट्टीका पात्र फिरि पकानेसे शुद्ध नहीं होता है ॥ २३ ॥ झाडने लीपने छिडकने खोदने अर्थात् कुछ मट्टीके छीलनेसे तथा गौओंके रहनेसे इन पांच बातोंसे भूमि शुद्ध होती है ॥ २४ ॥

पक्षिजग्धं गवात्रातमवधूतमवधुतम् ॥ दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षे-  
 पेण शुद्धयति ॥ २५ ॥ यावन्नापैत्यमेध्यात्तान्धोलेपश्च तत्कृ-  
 तः ॥ तावन्मृद्गारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिर्षु ॥ २६ ॥

टीका-कौआ गीध आदिको छानकै अन्य पक्षियोंकरि कुछ खाया हुआ और गौ करि मूधा हुआ तथा पुरसे छुआ हुआ और जिसके ऊपर छोक हुई और वाल तथा कीडोंसे दूषित थोडी मट्टीके डालनेसे शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ अपवित्र विष्ठा आदिसे लिपी वस्तुसे जबतक उसका गंध तथा लेप शेष रहै तबतक सब वस्तुओंको शुद्धिके लिये मट्टी और जलसे मांजै ॥ २६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिनि-  
 णित्तं यच्च वार्चा प्रशस्यते ॥ २७ ॥ आपः शुद्धा भूमिर्गता वैतृष्ण्यं  
 यासु गोर्भवेत् ॥ अव्याप्ताश्चेदमेधयेन गर्धवर्णरसान्विताः ॥ २८ ॥

टीका-देवताओंने ब्राह्मणों के लिये तीन वस्तु पवित्र की हैं एक तौ अदृष्ट अर्थात् जिसका दूषित होना आंखिसे नहीं देखा गया है और दूसरा दूषित होने की शंका होनेपर जलसे धोना और तीसरा दूषित होनेकी शंका होते ही पवित्र होय इस ब्राह्मणकी वाणीसे जो प्रशस्त है ॥ २७ ॥ जितने जलमें एक गौकी प्यास दूरि होय गंध वर्ण और स्वाद जिसका न विगडा होय और अपवित्र वस्तुसे युक्त न होय शुद्ध भूमिमें स्थित होय ऐसा जल शुद्ध कहा है ॥ २८ ॥

नित्यं शुद्धैः कारुहस्तैः पण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मर्चारिगतं भ-

द्वयं नित्यं मेध्यमिति<sup>१२</sup> स्थितिः ॥२९॥ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां  
शकुनिः फलपातने ॥ प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वी मृगग्रहणे शुचिः १३०

टीका—देवता तथा ब्राह्मण आदिके लियेभी माला आदिके बनानेमें माली आदि कारीगरोंके हाथ शुद्धि विशेषके न करनेपरभी स्वभावहीसे सदा शुद्ध हैं तैसेही जन्म मरणमें अपने काममें शुद्धहै और ब्रह्मचारीकी भिक्षा विना न्हाई स्त्रीके देने और गली आदिमें चलनेपरभी सदा शुद्धहै यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥ २९ ॥ स्त्रियोंका मुख सदा पवित्रहै और कौआ आदि पक्षियोंकी चोचके लगानेसे गिरा हुआ फल शुद्धहै और गौके दुहनेके समय दूधके पन्हुआनेमें बछडेका मुख शुद्ध है और कुत्ता जब मृग आदिकोंको मारनेको पकडै तब उसकाममें वहभी शुद्ध होताहै ॥ १३० ॥

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ क्रव्याद्विश्वं हतस्यीं  
न्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥३६॥ ऊर्ध्वं नोभेर्यानि खानि तानि  
मेध्यानि सर्वशः ॥ यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चै<sup>१२</sup> वं मर्त्याश्च्युताः ॥

टीका—कुत्तोंकरि मारे हुए मृग आदिका मांस मनुजीने शुद्ध कहाहै तथा और कच्चे मांसके खानेवाले वाघ बाज आदिकोंकरि और मृगोंको मारकर जीविका करनेवाले बहेलिया आदिकरि मारे हुए मृग आदिका मांस पवित्र है ॥ ३१ ॥ नाभिके ऊपर जो इंद्रियां हैं वे सब पवित्रहैं इस्मे उनके छूनेमें अपवित्रता नहीं होतीहै और जो नाभिके नीचे हैं वे अशुद्धहैं और देहसे निकले हुए देहके मलसे अशुद्ध होतेहैं ॥ ३२ ॥

मक्षिकां विष्टुषच्छाया गौरैश्चः सूर्यरश्मयः ॥ रजो भूर्वायुरग्नि<sup>११</sup>श्च  
स्पर्शं मेध्यानि निर्दिशेत् ॥३३॥ विण्मूत्रोत्सर्गशुद्धयर्थं भृङ्गार्यादे  
यमर्थवत् ॥ देहिकानां मर्त्यानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥ ३४ ॥

टीका—अपवित्र वस्तुकी छूनेवालीभी मक्खियां और मुखसे निकले हुए छोटे २ जलके कण और पतित आदि न छूनेयोग्यकी छाया और गौ घोडा सूर्यके किरण रज भूमि पवन अग्नि ये चांडाल आदिके छूनेपरभी छूनेमें अशुद्ध नहीं होतेहैं ॥ ३३ ॥ विष्ठा तथा मूत्रका जिनसे त्याग किया जाताहै उन गुदा आदिकी शुद्धिके लिये प्रयो जन मात्र कहिये जितनेसे बारहों छिद्रोंके बसा आदि मलों के गंध तथा लेपकी शुद्धि होजाय उतनी मट्टी तथा जल लेना चाहिये अन्यस्मृतियोंसे जाना गया कि, पहिली



छः इंद्रियोंकी शुद्धिके लिये मही और जल लेना चाहिये और दूसरे छःकी शुद्धिके लिये केवल जल लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

वसां शुक्रमसृष्टमज्जां सूत्रं विट् प्राणकूर्णाविट् ॥ श्लेष्माशुद्धपिकां  
स्वेदो द्वादशैते नृणामेलाः ॥ ३५ ॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्त-  
थैकत्र करे दर्शा ॥ उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिर्मभीप्सता ॥ ३६ ॥

टीका-वसा कहिये देहकी चिकनाई और वीर्य रुधिर मज्जा कहिये शिरके भीतर इकट्ठा हुआ स्नेह मूत्र विष्टा नाक तथा कानका मेल कफ आंसू आंखोंका कीचर तय पासीना ये वारह मनुष्योंके शरीरके मैलहैं ॥ ३५ ॥ मूत्र तथा पुरीषके त्याग कर नेके पीछे शुद्धता चाहनेवाला पुरुष लिंगमें एकवार जलसमेत मही लगावै और गुदामें तीनिवार और एक बांये हाथमें दशवार लगावै और सातवार दोनों हाथ मिलायकै मही लगावै ॥ ३६ ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ त्रिगुणं संन्यासि-  
नानां र्यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ कृत्वामूत्रं पुरीषं वा खान्या-  
चान्तं उपस्पृशेत् ॥ वेदमध्येप्यमाणश्च अन्नमंश्च सर्वदा ॥ ३८ ॥

टीका-यह शौच गृहस्थोंका कहा गया और ब्रह्मचारियोंको इस्से दूना करना चाहिये और वानप्रस्थोंको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना करना चाहिये ॥ ३७ ॥ मूत्र तथा पुरीषका त्यागकरना कहे हुए शौचके पीछे तीनिवार आचमान करिकै इंद्रियोंको अर्थात् नाभिसे ऊपरके छिद्रोंको छुवै और वेदका अध्ययन किया चाहै अथवा अन्न खाना चाहै तौ सदा यह विधि करै ॥ ३८ ॥

त्रिरार्चामेदपःपूर्वे द्विः प्रवृज्यात्ततो मुखम् ॥ शारीरं शौचमिच्छे  
न्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥ ३९ ॥ शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं  
न्यायवर्तिनाम् ॥ वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ४० ॥

टीका-देहकी शुद्धिका चाहनेवाला पुरुष पहले तीनिवार जलका आचमन करै तिस पीछे दोवार मुख धोवै और स्त्री तथा शूद्र एकवार आचमन करै ॥ ३९ ॥ शास्त्रके अनुसार चलनेवाला और ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंका महीने महीनेमें मुंडन करना चाहिये और मृतक सूतक आदिमें वैश्यके समान आशौच मानना चाहिये और ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भोजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्याविप्रुषोऽङ्गं पतन्तियाः ॥ नैश्मश्रूणि गतां

न्यास्यान्नं दन्तान्तराधिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ स्पृशन्तिविन्दवः पादौ य  
आचामयतः परान् ॥ भौमिकैस्ते समाज्ञेयान्तराप्रयतो भवेत् ४२

टीका—मुखमेंसे निकले हुए थूकके छोटे छोटे बूँद शरीरपर गिरनेसे तथा मुखमें गये हुए मूछोंके बाल और दाँतोंकी संधिमें अटका हुआ अन्न अशुद्धताको नहीं करताहै ॥ ४१ ॥ औरोंको आचमन करनेके लिये जल देते हुए मनुष्यके पैरोंपर जलके बूँद गिरतेहैं वे शुद्ध भूमिमें भरे हुए जलके समानहैं उनसे अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ॥ अनिधायैव तद्द्रव्य-  
माचान्तं शुचितामियात् ॥ ४३ ॥ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्रा-  
शनमाचरेत् ॥ आर्चामे देवं भुक्त्वा न्नं स्नानमैथुनिनः स्मृतम् ४४ ॥

टीका—कंधे आदिपर स्थित किसी वस्तुको लिये हुए जो उच्छिष्ट करि छुआ जाय तो उस वस्तुको लियेही हुए आचमन करनेसे शुद्ध होताहै और वह वस्तुभी शुद्ध होतीहै ॥ ४३ ॥ वमन हुआ होय अथवा विरेचन हुआ होय तो स्नान करि घी खाय और जो भोजनके पीछेही वमन करै तो केवल आचमन करै स्नान तथा घृत भक्षण न करै और मैथुन करिकै स्नान करै ॥ ४४ ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्तानृतानि च ॥  
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आर्चामित्प्रयतोऽपि सन् ॥  
॥ ४५ ॥ एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥  
उक्तो वै सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥ ४६ ॥

टीका—सोयकै छिककै थूककै झूठ बोलकै और जल पीकै जो वेद पढा चाहै तो शुद्धभी होनेपर आचमन करै ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण आदिवर्णोंके जन्ममरण आदिमें दशरात्र आदिकी सब आशौचविधि तथा सब द्रव्योंकी अर्थात् धातु वस्त्र जल आदिकी शुद्धि हमसे कही अब स्त्रियोंके करनेयोग्य धर्मोंको सुनिये ॥ ४६ ॥

वालया वा युवत्या वा वृद्ध्या वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण क-  
र्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ ४७ ॥ वालये पितृवशे तिष्ठेत्पाणि-  
ग्राहस्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तृरिष्टे ते न भजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम् ४८ ॥

टीका—बालकपनमें तरुणअवस्थामें अथवा वृद्धअवस्थामें स्थित स्त्रीको घरमें

भी कुछ काम स्वाधीन होके न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बालकपनमें पिताके वंशमें रहै और तरुण अवस्थामें पतिके आधीन रहै और पतिके मरनेपर पुत्रोंके और जो पुत्र न होय तौ उनके सपिंडोंके और सपिंडभी न होय तौ पिताके पक्षके और जो दोनो पक्ष न होय तौ जाति तथा राजा आदिके आधीन रहै कभी स्त्री स्वतंत्र नहोय ॥ ४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतेर्वापि न च्छे द्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण स्त्री गृह्ये कुर्यादुभे कुले ॥ ४९ ॥ सदा प्रहृष्ट्या भान्व्यं गृहका-  
येषु दक्षया ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चांमुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

टीका-पिता पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक् न होय क्योंकि इनसे अलग रहनेसे कुलटापनको प्राप्तहो पिता तथा पतिके दोनों कुलोंको निन्दित करती है ॥ ४९ ॥ सदा प्रसन्नमुख घरके कामोंमें चतुर और कम खर्च करनेवाली स्त्रीको होना चाहिये ॥ १५० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥ ५१ ॥ मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासीं प्रजापतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यं कारणम् ॥ ५२ ॥

टीका-पिता अथवा पिताकी आज्ञासे उसका भाई जिसको देवै जीवते हुए उस पतिकी सेवा करै और मरे हुएका उलंघन न करै अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करै ॥ ५१ ॥ विवाहमें स्वस्त्ययन कहिये शांतिके मंत्रोंका पढ़ना और ब्रह्माके लिये जो योग होताहै सो इन स्त्रियोंके मंगलके लिये होताहै अर्थात् इष्टकी प्राप्तिके निमित्त कर्म है और जो प्रथम प्रदान कहिये वाग्दानरूप कर्म है वही पतिके स्वामी होनेका कारणहै ॥ ५२ ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ॥ सुखस्य नित्यं दीतेह परलोके च योषितः ॥ ५३ ॥ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥ उपचर्यः स्त्रियां सार्ध्या संततं देवैवत्पतिः ॥ ५४ ॥

टीका-ऋतुकालमें अथवा ऋतुभिन्नकालमें मन्त्रसंस्कार करनेवाला पति इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवालाहै ॥ ५३ ॥ शील करि रहित होय अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला होय अथवा विद्या आदि गुणों करि हीन होय तिसपरभी पतिव्रता स्त्रीको पति देवताके समान करने योग्य है ॥ ५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते

यंन तेनै॑ स्वर्गे॑ महीर्यते ॥ ५५ ॥ पाणिग्रोहस्य साध्वी स्त्री जीव-  
तो वा मृतस्यै॑ वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नार्च॑रेत्किंचिदप्रियम् ५६

टीका—जैसे पतिकी किसी स्त्रीके रंजोधर्म आदिके योग्यसे उपस्थित न होनेपर दूसरी स्त्रीसे यज्ञकी सिद्धि होजाती है ऐसे स्त्रियोंकी भर्ताके विना यज्ञसिद्धि नहीं होती है और भर्ताकी आज्ञाविना व्रत तथा उपवासभी नहीं है किंतु भर्ताकी सेवाहीसे स्त्री स्वर्गलोकमें पूजित होती है ॥ ५५ ॥ पतिकी सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोककी इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्री जीवते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछभी अप्रिय न करे मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा कहे हुए श्राद्धके न करनेसे होता है ॥ ५६ ॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृह्णीया-  
त्पत्यो प्रेते परस्य तु ॥ ५७ ॥ आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्र-  
ह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां कौडक्षन्ती तं मनुत्तमम् ॥ ५८ ॥

टीका—पतिके मरनेपर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पतिका नामभी न ले किन्तु पवित्र फूल मूल फलोंसे थोडा आहार करिके देहको क्षीण करे ॥ ५७ ॥ क्षमायुक्त नियमवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्मको चाहनेवाली तथा मधु मांस मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे शोभित मरणपर्यंत रहे और जो पुत्रराहितमी होय तौ पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करे ॥ ५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गतानि विप्राणां-  
मकृत्वा कुलसंततिम् ॥ ५९ ॥ मृते भर्तारि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये  
व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ६० ॥

टीका—बालकपनसे ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक बालखिल्य आदि हजारों ब्राह्मण कुलकी वृद्धिके लिये संततिके उत्पन्न किये विनाभी स्वर्गको गये ॥ ५९ ॥ अच्छा है आचार जिसका ऐसी स्त्री भर्ताके मरनेपर परपुरुषसे मैथुनको न करके पुत्रराहितमी स्वर्गको जाती है जैसे वे सनक बालखिल्य पुत्र न होनेपरभी स्वर्गको गये ॥ ६० ॥

अपत्यलोभाद्यां तु स्त्री भर्तारमतिवर्त्तते ॥ सेहं निन्दामवांप्रोति  
पतिलोकाच्च हीर्यते ॥ ६१ ॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्य-  
न्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां किंचिद्भर्तापदिश्यते ॥ ६२ ॥

टीका-मेरे पुत्र उत्पन्न होय उससे मैं स्वर्गकी जाड़ंगी इस लोभसे जो स्त्री भर्ताका उलंघन करतीहै अर्थात् व्यभिचार करतीहै वह इस लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और उस पुत्रसे स्वर्गको नहीं प्राप्त होतीहै ॥ ६१ ॥ जिसे भर्तासे भिन्न पुरुषसे उत्पन्न वह संतति शास्त्रीय नहीं होतीहै दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न की हुई मजा उत्पन्न करनेवालेकी नहीं होतीहै और अच्छे आचारवाली स्त्रियोंका शास्त्रमें कहीं दूसरा पति नहीं कहाहै ॥ ६२ ॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं यां निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेच्छोकं  
परंप्रैवति चोच्यते ॥ ६३ ॥ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति  
निन्द्यताम् ॥ शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगेऽथ पीड्यते ॥ ६४ ॥

टीका-अपकृष्ट कहिये क्षत्रिय आदि अपने पतिको छोडकर उत्कृष्ट कहिये ब्राह्मण आदिका आश्रय लेतीहै वह लोकमें निन्दित होतीहै और इसका दूसरा भर्ताहै ऐसे कही जातीहै ॥ ६३ ॥ पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निंदाको प्राप्त होतीहै और मरकै सगाली ( स्यारी ) होतीहै और कुष्ठ आदि पापरोगोंकरि पीडित होतीहै ॥ ६४ ॥

पतिं यां नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकमाप्नोति  
सिद्धिः साध्वीति चोच्यते ॥ ६५ ॥ अनेन नारी वृत्तेन मनोवा-  
ग्देहसंयता ॥ ईहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ ६६ ॥

टीका--जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयत हो पतिका उलंघन नहीं करतीहै वह भर्ताके साथ उत्पन्न किये हुए लोकोंको जाती है और सज्जनोंकरि पतिव्रताभी कही जातीहै ॥ ६५ ॥ इस स्त्रीधर्मके प्रकारसे कहे दिये आचारसे मन वाणी और कायसे सावधान स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होतीहै और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किये हुए स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होतीहै ॥ ६६ ॥

एवंवृत्तां सर्वर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण  
यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६७ ॥ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्निन्त्य-  
कर्मणि ॥ पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ ६८ ॥

टीका-दाहके धर्मका जाननेवाला द्विजाति कहे हुए आचार करि युक्त आपसे पहले मरी हुई सर्वर्णां स्त्रीको श्रौत तथा स्मार्त अग्निसे और यज्ञपात्रोंसे दाह करे ॥ ६७ ॥ पहले मरी हुई भार्याके लिये अन्त्यकर्ममें दाहके निमित्त अग्नि देके गृहस्थाश्रमकी

इच्छा करता हुआ पुत्रके होते वा अनहोते दूसरा विवाह करै और श्रौत तथा स्मार्त अग्नियोंका आधान करै अर्थात् अग्निहोत्रको ग्रहणकरै ॥ ६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्नं हापयेत् ॥ द्वितीयमायुषो  
भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

टीका—इस तीसरे अध्यायमें कही हुई विधिसे प्रातिदिन पंचयज्ञोंको न छोडै और दूसरे आयुष्यके भागमें विवाह करिके गृहस्थके कहे हुए धर्मोंको करता हुआ घरमें वसे ॥ १६९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूक  
भट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ शौचविधिकथनोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

एवं गृहांश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ॥ वने वसेत्तु नि-  
यतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपं-  
लितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥२॥

टीका—जिसका समावर्तन कहिये गृहस्थाश्रमका ग्रहण हुआ है ऐसा स्नातक द्विज कहे हुए प्रकारसे शास्त्रके अनुसार गृहस्थाश्रमको करिके निश्चयपूर्वक यथा-विधि आगे कहेहुए धर्मसे विशेष कर जितेन्द्रिय हो वानप्रस्थआश्रमको ग्रहण करै ॥ १ ॥ गृहस्थ जब अपनी देहकी त्वचाको शिथिल देखै और बालोंको संपद देखै और पुत्रके पुत्र उत्पन्न हुआ देखै तब विषयोंमें वैराग्ययुक्तहो वानप्रस्थआश्रमके लिये वनका आश्रय ले ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ॥ पुत्रेषु भार्यां निक्षि-  
प्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादार्यं गृह्यं चाग्नि-  
परिच्छदम् ॥ ग्रामार्दरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

टीका—ग्राम्य जो धान जव आदि हैं तिनके आहारको और गौ, घोडा, शय्या, आसन आदि उपकरणोंको छोडि भार्याके रहते साथ जानिकी इच्छा न होय तौ पुत्रोंमें राखि और जो साथ जाना चाहै तौ उसके साथही वनको जाय ॥ ३ ॥

श्रौत अग्निको तथा उसके उपकरण लुक् खुवा आदिको लेकर ग्रामसे वनमें निकल जितेंद्रिय हो वनमें वसै ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्वि विधैर्मेध्यैः शार्कमूलफलेन वा ॥ एतान्येव महायज्ञा-  
त्रिर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ वसीत चर्म चौरं वा सायं स्नायात्प्रगे  
तथा ॥ जटांश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रूलोमनखानि च ॥ ६ ॥

टीका-मुनियोंके अन्न कहिये नानाप्रकारके नीवार आदि अन्नसे वनमें उत्पन्न हुए पवित्र शाक मूल फलोंसे गृहस्थ कहे हुए इन पंचमहायज्ञोंको शास्त्रके अनुसार करै ॥ ५ ॥ मृगचर्मको अथवा वस्त्रखंडको धारण करै और हारीतने तौ बल्कल आदिकीभी आज्ञा दी है और सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करै और शिरमें जटा डाढी मूछ तथा नखोंको सदा धारण करै ॥ ६ ॥

यद्द्रक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्भ्रूलिं भिक्षांच शक्तिः ॥ अम्मूलफलभि-  
क्षाभिरर्चयेदांश्रमागतान् ॥ ७ ॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो  
मैत्रः समाहितः ॥ दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

टीका-जो भोजन करै उसमेंसे शक्तिके अनुसार बलि तथा भिक्षाको देवै और जल मूल फल तथा भिक्षा देकर आश्रममें आये हुए अभ्यागतोंका पूजन करै ॥ ७ ॥ वेदके अभ्यासमें सदा लगा रहै और शीत घाम आदिके दुःखोंका सहनेवाला और सर्वोंका उपकार करनेवाला और सावधान मन सदा देनेवाला और सदा दान लेनेकी इच्छाका न रखनेवाला और सब जीवोंपर दया करनेवाला होय ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयाद्भिहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौ-  
र्णमासं च योगंतः ॥ ९ ॥ ऋक्षेष्ट्याग्रायणं चैव चातुर्मास्यानि  
चाहेरतं ॥ उत्तरायणं च क्रमशो दक्षिणायनमेव च ॥ १० ॥

टीका-शास्त्रके अनुसार वैतानिक अग्निहोत्र करै और अमावास्या तथा पूर्णिमा इन पर्वोंमें श्रुति स्मृतिमें कहे हुए दर्शपौर्णमाससे यज्ञोंको न छोडै ॥ ९ ॥ नक्षत्रइष्टि तथा आग्रयण कहिये ऋक्सस्यकी इष्टि और चातुर्मास्य तथा उत्तरायण और दक्षिणा-  
यन श्रौतकर्मोंको क्रमसे करै ॥ १० ॥

वासंतशारदैर्मेध्यैमुन्यत्रैः स्वयंमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरुंश्चैव वि-  
धिवन्त्रिर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥ देवताभ्यस्तु तद्भुत्वा वन्यं मेध्यं-

तरं हविः ॥ शेषमात्मानि युञ्जीत लैवणं चै स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

टीका—वसंतऋतुमें तथा शरद्वतुमें उत्पन्न हुए और अपने हाथसे लाये हुए पवित्र मुनियोंके अन्नसे पुरोडाशचरुको शास्त्रके अनुसार उन २ यज्ञोंकी सिद्धिके लिये करै ॥ ११ ॥ उस वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदिसे बने हुए अत्यन्ततासे यज्ञके योग्य हविको देवताओंके लिये देकर वाकी आप खाय और अपने बनाये हुए खारो नोन आदि खाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि चै ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्या-  
त्स्नेहार्थं फलसंभवान् ॥ १३ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कर्वा-  
कानि चै ॥ भूस्तृणं शिशुकं चैव श्लेष्मातकफलानि चै ॥ १४ ॥

टीका—स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए शाकोंको और जंगली यज्ञियवृक्षोंके पुष्प मूल फलोंको तथा हिंगोट आदिके फलोंसे निकले हुए स्नेहोंको खाय ॥ १३ ॥ शहत मांस तथा भूमिमें उत्पन्न हुए धरतीके फूलोंको और मालवदेशमें भूस्तृणनाम शाकको तथा शिशुक कहिये संहिजनेको और श्लेष्मातक कहिये लमेरेके फलोंको वर्जित करै ॥ १४ ॥

त्यजेदार्ययुजे मांसि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चै व वासांसि  
शाकमूलफलानि चै ॥ १५ ॥ नै फालकृष्टमश्रीयादुत्सृष्टमपि के-  
नचित् ॥ नै ग्रामजातान्यातोऽपि मूलानि चै फलानि चै ॥ १६ ॥

टीका—पहले इकट्ठे किये हुए नीवार आदि धान्योंको और जीर्ण वस्त्रोंको और शाक मूल फलोंको आश्विनमासमें त्याग दे ॥ १५ ॥ वनमेंभी हलसे जूते हुए खेतमें उत्पन्न स्वामी करके छोड़े हुएभी धान आदिको न खाय तैसेही ग्राममें विना जूति भूमिमेंभी उत्पन्न लता वृक्षोंके मूल फलोंको भूखाभी वानप्रस्थ न खाय ॥ १६ ॥

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ॥ अश्मकुट्टो भवेद्वापि  
दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥ सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससं-  
चयिकोऽपि वा ॥ षण्मासनिचयो वा स्यात्समांनिचय एव वा ॥ १८ ॥

टीका—अग्निमें पका हुआ जंगली अन्न और कालमें पके हुए फल आदि अथवा ओखली मूसलको छोड़के पत्थरोंसे कूटिके कच्चाही खाय अथवा दांतही हैं ओखलीके स्थानमें जिसके ऐसा होय अर्थात् दांतहीसे चाविले ॥ १७ ॥ एक दिनके खाने-



योग्य अथवा एक मासके योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा एक वर्षके निर्वाह-योग्य नीवार आदि इकठा करै ॥ १८ ॥

नैतं चात्रं समश्रीयादिवा वात्तदृत्य शक्तितः ॥ चतुर्थकालिको वां  
स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चांद्रायणविधानैर्वाशुकृष्णे  
च वर्तयेत् ॥ पर्क्षान्तयोर्वाप्यश्रीयाद्यंवागूं कथितां संकृत् ॥ २० ॥

टीका-सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लायके सायंकाल भोजन करै अथवा दिनहीमें अथवा चौथेकालमें भोजन करनेवाला होय सायंकाल प्रातःकालका भोजन मनुष्योंका देवताओंका बनाया हुआहै वहाँ एकादिन व्रत करिकै दूसरे दिन संध्याको भोजन करै अथवा अष्टमकालिक कहिये तीन राति व्रत करिकै चौथेदिनकी रातिमें भोजन करै ॥ १९ ॥ कृष्णपक्षमें एक २ पिंड घटावै और शुक्लपक्षमें एक एक बढावै इत्यादि ग्यारह अध्यायमें वक्ष्यमाण चांद्रायण व्रतोंसे जीवै ॥ २० ॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा ॥ कालपक्वैः स्वयंशीर्षै-  
र्वैखानसमते स्थितः ॥ २१ ॥ भूमौ विपरिवर्तत तिष्ठेद्वा प्रप-  
दैर्दिनम् ॥ स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

टीका-अथवा कालमें पके हुए अग्निसे नहीं पके वृक्षसे आप गिरे हुए फलोंसे जीवै और वैखानस जो वानप्रस्थहै उसके धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थित रहै ॥ २१ ॥ विना विछौने भूमिमें लोटता हुआ आवै जाय अथवा स्थान आसन आदिमें बैठा रहै और उठै अर्थात् घूमै आवश्यक भोजन आदिको छोड़कै यह नियमहै ऐसेही आगेभी जानिये अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिनभर खडा रहै और कुछकाल ठहरा रहै वा कुछकाल बैठा रहै बीचमें फिरै नहीं और सवनोंमें अर्थात् संध्यासमय प्रातःकाल तथा मध्याह्नमें स्नान करै ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्द्रव्यास्वभ्रावकाशिकः ॥ और्द्रवासास्तु हे-  
मन्ते क्रमंशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितृन्दे-  
वांश्च तर्पयेत् ॥ तपश्चरंश्चोर्त्तरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

टीका-अपना तप बढानेके लिये ग्रीष्म कहिये गरमीकी ऋतुमें चारों ओर रक्खी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावै और वर्षाऋतुमें मेघवर्षनके समय खुले स्थानमें छाता आदिके विना स्थित होय और हेमन्तऋतुमें गीले वस्त्र पहिरै एकवर्षकी गर्मी जाडा चौमासा ये तीन ऋतु करकै यह एकवर्षका

नियमहै ॥ २३ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न तथा सायंकालके तीनों म्नाओंमें देवता ऋषि और पितरोंके तर्पणको करता हुआ तथा औरभी पक्ष तथा मासके व्रत आदि तीव्र-तप करता हुआ अपने शरीरको सुखावै ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ॥ अनग्रिरनिकेतः  
स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्म-  
चारी धर्माशयः ॥ शरणेष्वममश्चैवं वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥

टीका—चैवानसशास्त्रके विधानसे भस्म आदिका पीकर श्रौत अग्रियोंको अपने भीतर स्थापित करिके लौकिक अग्नि और घरसे रहित हो मौनव्रतको धारण करि फल मूल खाय नीवार आदि न खाय ॥ २५ ॥ सुखके प्रयोजनोंमें अर्थात् स्वादिष्ठ फलोंके खाने और शीत तथा घामके बचानेमें उपाय न करे स्त्रीसे भोग न करे भूमिमें सोवै और रहनेके स्थानोंमें ममता न करे वृक्षोंके नीचे रहै ॥ २६ ॥

तापसेध्वेवं विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्वि-  
जेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वांश्रीयादृष्टौ ग्रामान्वने  
वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैवं पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

टीका—वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणोंकी रक्षाके योग्य शिक्षा लावै और उनकं न होनेमें अन्य वनके बसनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंसे लावै ॥ २७ ॥ ग्रामसे लाके ग्रामके बन्नके आठग्रास पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खंडमें अथवा हाथोंहीमें लेकर वानप्रस्थ भोजन करै ॥ २८ ॥

एतांश्चान्यांश्च सेवेतं दीक्षां विप्रो वने वसन् ॥ विविधांश्चौ पानिप-  
दीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैवं गृहस्थैरेवं  
सेविताः ॥ विद्यातपोविवृद्धयर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

टीका—वानप्रस्थ इन नियमोंका तथा वानप्रस्थके शास्त्रमें कहे हुए अन्य नियमोंका अभ्यास करै और उपनिषदोंमें पढी हुई ब्राह्मणका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियोंका अपनी ब्रह्मत्वसिद्धिके लिये ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै ॥ २९ ॥ जिस्से ये उपनिषद् ऋषियों और संन्यासियों तथा वानप्रस्थों करिके अद्वैतब्रह्मके ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये सेवन किये गयेहैं तिस्से इनका सेवन करै ॥ ३० ॥

अपराजितां वांस्थाय ब्रैजेदिशामजिह्वांगः ॥ आनिपातां च्छरीरस्य

युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्तवान्यै-  
तमयातनुम् ॥ वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

टीका-जिसकी चिकित्सा न होसकती होय ऐसे रोग आदिके उत्पन्न होनेमें अप-  
राजिता जो ईशान्यदिशाहै तिसका आश्रय लेकै योगमें निष्ठ हो जल तथा पवनका  
आहार करता हुआ शरीरके गिरनेतक सीधा चला जाय महाप्रस्थाननाम यह मरण  
शास्त्रमें कहाहै इस्से विधिके बिना मरनेका निषेधहै शास्त्रमें कहे हुएका नहीं ॥ ३१ ॥  
इन पहले कहे हुए अनुष्ठानोंमेंसे किसीएकसे शरीरको छोडि दुःखके भयसे रहित हो  
ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष पाताहै ॥ ३२ ॥

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भार्गमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्य-  
क्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥ आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो  
जितेन्द्रियः ॥ भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

टीका-जो मरता नहीं है उसकेलिये कहते हैं इस भांति वनमें विहार करिकै  
अर्थात् नानाप्रकारके कठिन तपोंके करनेसे विषयोंके रागकी शान्तिके लिये आयुके  
तीसरे भागमें कुछ कालतक वानप्रस्थोंके आश्रममें रहिकै आयुके चौथे भागमें अर्थात्  
बाकी आयुके समयमें सब भांति विषयोंके संगको छोडि संन्यासाश्रमको धारण करै  
॥ ३३ ॥ पहले पहले आश्रमसे आगे आगेके आश्रममें जायकै अर्थात् ब्रह्मचर्यसे  
गृहस्थाश्रममें और गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थाश्रममें जायकै शक्तिके अनुसार गये हुए  
आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसा भिक्षा तथा वलिदानके बहुत दिनोंतक करने-  
से थका हुआ संन्यासको करता हुआ परलोकमें मोक्षके लाभसे ब्रह्मभूत वडीभारी  
ऋद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य मो-  
क्षं तु सेवमानो ब्रजत्यर्थः ॥ ३५ ॥ अधीत्य विधिवद्देदान्पुत्रांश्चो-  
त्पाद्य धर्मतः ॥ इष्ट्वा च शक्तिं तो यज्ञं नो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

टीका-आगेके श्लोकमें कहे हुए तीन ऋणोंको दूर करिकै ब्राह्मण मोक्षके अंगरूप  
संन्यासमें मनको लगावै उन ऋणोंके बिना दूर किये जो मोक्ष कहिये चौथे आश्रम  
को धारण करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३५ ॥ उन्हीं ऋणोंको दिखाताहै उत्पन्न  
होता हुआ ब्राह्मण तीन ऋणोंसे ऋणी होताहै अर्थात् यज्ञसे देवताओंका और संत-  
तिसे पितरोंका तथा वेदके पढ़नेसे ऋषियोंका यह श्रुतिमें लिखाहै इसीसे शास्त्रके अ-

नुसार वेदोंको पढिकै और पवोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मोंसे पुत्रोंको उत्पन्न करिकै और सामर्थ्यके अनुसार ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकोभी करकै मोक्षके अंगरूप चौथे आश्रममें मनको लगावै ॥ ३६ ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ॥ अनिष्ट्वा चैवं यज्ञै-  
श्च मोक्षमिच्छन्त्रजंत्यर्थः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यां निरूप्यैष्टं सर्ववेद  
सदाक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नींस्मारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ ३८ ॥

टीका—द्विज वेदोंको न पढकै और पुत्रोंको न उत्पन्न करिकै आर यज्ञोंसे यजन न करिकै मोक्षको चाहता हुआ नरकमें जाताहै ॥ ३७ ॥ यजुर्वेदके उपाख्यान ग्रंथोंमें कहा हुआ और सर्वस्व है दक्षिणा जिसमें और प्रजापति जिसकी देवता ऐसे यज्ञको करिकै उसकी हुई विधिसे अपनेमें अग्निको स्थापित करकै वानप्रस्थाश्रमको करिकै चौथे आश्रममें वास करै ॥ ३८ ॥

योदत्त्वां सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥ तस्य तेजोमया लोका  
भवंति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥ यस्मादण्वपि भूतानां द्विजांनोत्प-  
द्यते भयम् ॥ तस्य देहांदिसुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥

टीका—जो सब स्थावरजंगम प्राणियोंको अभय देकर गृहस्थाश्रमसे संन्यासको लेताहै वह ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले उपनिषद्में निष्ठावाले उस पुरुषके तेजसे सूर्यआदिके प्रकाशरहित हिरण्यगर्भ आदिकोंके लोक प्रकाशित होतेहैं उनको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे भूतोंको थोडाभी भय नहीं होताहै उसके वर्तमानदेहके नाश होनेपर किसीसेभी भय नहीं होताहै ॥ ४० ॥

आंगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोदेषु कां-  
मेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥ एक एव चरोन्नित्यं सिद्धिचर्यम-  
सहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्नं जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

टीका—घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कमंडलु आदि करि शुक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामोंमें अर्थात् किसीकारि पहुँचाये हुए स्वादिष्ट अन्नआदिमें इच्छा-रहित हो संन्यास धारण करै ॥ ४१ ॥ सब संगरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होतीहै इस बातको अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरै एकही इसके कहनेसे पहले पहिचाने हुए पुत्र आदिका त्याग कहा गया और असहायवान् कहिये सहायक कोई न होय जो एकाकी विचरताहै वह किसीको नहीं छोडताहै और न

किसीके छोड़नेका दुःख पाताहै न किसी करि वह छोडा जाताहै और न कोई इस ककै छोड़नेके दुःखको अनुभव कराया जाताहै तिससे सर्वत्र ममतारहित सुखसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्त्रार्थमांश्रयेत् ॥ उपेक्षकोऽसंकुसु-  
कोमुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥ कंपालं वृक्षमूलानि कुचेल-  
मसहायता ॥ समता चैवं सर्वस्मिन्नैतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥

टीका-लौकिक अग्निके छूनेसे तथा घरसे रहित और उपेक्षाकरि कहिये शरीरमें रोग आदिके उत्पन्न होनेपर उसके दूरि होनेका उपाय न कर और असंकुसुक कहिये स्थिरबुद्धि रहै और मुनि कहिये मौनी हो भाव जो ब्रह्महै तिसमें मनको एकाग्र लगाकै वनमें दिनराति वसता हुआ केवल भिक्षाहीके लिये ग्राममें आवै ॥ ४३ ॥ मट्टीका खपरा आदि भिक्षाका पात्र और वसनेके लिये वृक्षोंके मूल और मोटा फटा वस्त्र कहिये कौपीन कंथा आदि और सर्वोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रका न होना यह मुक्तिका साधन होनेसे मुक्तका चिन्हहै ॥ ४४ ॥

नाभिर्नन्देत मरणं नाभिर्नन्देत जीवितम् ॥ कालमेव प्रतीक्षेत  
निर्देशं भूतको यथा ॥ ४५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं  
जलं पिबेत् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

टीका-जीवने और मरनेकी इच्छा न करै किंतु अपने कर्मके आधीन जो मरण-कालहै तिसकी प्रतीक्षा करै जैसे सेवक अपने सेवनकालके शोधनेकी प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥ बाल तथा हाड आदि बचानेके लिये आखोंसे देखकर भूमिमें पैर रक्खै और वस्त्रसे छानिकै जल पीवै तथा सत्यसे पवित्र वाणी बोलै और निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितीक्षेत नावर्मन्येत कंचन ॥ न चैवं मर्दहर्माश्रित्य वै-  
रं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥ क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुद्धयेदाक्रुष्टः कु-  
शलं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णं च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

टीका-दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहिले किसीका अपमान न करै और रोग आदिकोंके स्थानमें इस चंचल देहका आश्रय लेकर इसके लिये किसीसे वैर न करै ॥ ४७ ॥ क्रोध करनेवालेके ऊपर क्रोध न करै और दूसरा निंदा करै तो मधुर वाणी बोलै आपभी निंदा न करै और सप्तद्वारावकीर्ण अर्थात् चक्षु आदि पांच

बुद्धीन्द्रिय और मन तथा बुद्धि इन सातों करिके ग्रहण किये हुए पदार्थोंके मध्ये कुछ वचन न कहै किंतु ब्राह्मणोंके विषयक कहै अनृत कहिये नाश होनेवाले कार्योंके मध्ये वाणीको न उच्चारण करै किंतु अविनाशी ब्रह्मके मध्ये प्रणव तथा उपनिषद्रूप वाणीका उच्चारण करै ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरौसीनो निरूपेक्षो निरामिपः ॥ आत्मनैव सहायेन सु  
खार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥ न चोत्पातजिभित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गवि-  
द्यया ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

टीका-सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ और स्वस्तिक आदियोगके आसनमें बैठा हुआ दंड कर्मदण्ड आदिमें भी विशेष करि अपेक्षा रहित और निरामिप कहिये विषयोंकी इच्छारहित अपने देहहीके सहायसे मोक्षके सुखका चाहनेवाला संसारमें विचरै ॥ ४९ ॥ भूकंप आदि उत्पातोंका और नेत्रोंके फटकने आदि निमित्तोंके और अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तथा सामुद्रिकसे हाथोंकी रेखाओंके फल कहनेसे और नीति-मार्गके उपदेशसे और शास्त्रका अर्थ कहनेसे कर्मा भिक्षा पानेकी इच्छा नकरै ॥ ५० ॥

नैतापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ आकीर्णं भिक्षुकैर्वा-  
न्यैरगौरमुपसंब्रजेत् ॥ ५१ ॥ क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुं-  
सुम्भवान् ॥ विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

टीका-वानप्रस्थों करिके तथा अन्य खानेवाले ब्राह्मणों करिके और पक्षियों तथा कुत्तों करि युक्त घरमें भिक्षाके लिये न जाय ॥ ५१ ॥ केश नख तथा डाढ़ी मूछोंका रखाये हुये और भिक्षापात्र दंड तथा कर्मदण्डको लिये हुए सब प्राणियोंको पीडा न देताहुआ सदा विचरै ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामद्भिः स्मृतं  
शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥ अलावुं दारुपात्रं च मृन्मयं वेदं  
लं तथा ॥ एतानि र्यतिपात्राणि मनुःस्वायंमुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

टीका-सुवर्ण आदि धातुओंको छोडके छेदोंकरि रहित संन्यासीके भिक्षापात्र होय उन पात्रोंकी यज्ञमें चमसोंके समान जलसे शुद्धि होतीहै ॥ ५३ ॥ तूंबी काठ मृत्तिका तथा बाँस आदिके खंडसे बने हुए संन्यासियोंके भिक्षापात्र होतेहैं यह स्वयंभु मनुने कहाहै ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भक्षं न प्रसंजेत विस्तरे ॥ भैक्षे प्रसक्तो हि यं-  
तिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥ विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गरे भु-  
क्तवज्जने ॥ वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—एकवार प्राणधारणके लिये भिक्षा करै अधिक न करै क्योंकि बहुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतिकी प्रधान धातुके बढनेसे स्त्री आदि विषयोंकी इच्छा होगी ॥ ५५ ॥ रसोईकी धुआँ दूर होनेपर और मूसलके कूटनेका शब्द बंद होनेपर तथा रसोईकी आगि बुझि होनेपर और गृहस्थतक सबोंके भोजन करलेंनेपर त्याग किये हुए सरावोंमें यति सदा भिक्षाको करै ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः  
स्यान्मौत्रासंगाद्भिर्निर्गतः ॥ ५७ ॥ अभिपूजितलाभास्तु जगुप्सते-  
व सवशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि वैध्यते ॥ ५८ ॥

टीका—भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय प्रा-  
णोंके निर्वाह योग्य भोजन किया करै और दंड कमंडलु आदि मात्राओंमेंभी यह बुराहै इसको छोडताहूँ यह अच्छाहै इसको लेताहूँ ऐसी बातोंको छोडदे ॥ ५७ ॥ आदरसमेत भिक्षाके लाभकी सदा निंदा करै अर्थात् ग्रहण नकरै जिस्से सत्कारपूर्वक भिक्षा लेनेसे देनेवालोंमें स्नेह ममता आदिसे आसन्नमुक्तिभी यति जन्मरूप बंधनकी प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ द्वियमाणानि विषयै-  
रिन्द्रियाणि निर्वर्तयेत् ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष-  
क्षयेण च ॥ अहिंसया च भूर्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

टीका—थोडे आहारके खानेसे और एकांत स्थानमें रहनेसे रूप आदि विशेषों  
कार खींची गई इंद्रियोंको निवृत्त करै अर्थात् विषयोंसे हटावै ॥ ५९ ॥ इंद्रि-  
योंके रोकनेसे और रागद्वेषके दूर होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे मोक्षके योग्य होताहै ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं याते-  
नाश्च यर्मक्षये ॥ ६१ ॥ विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तर्थापि-  
यैः ॥ जरया चाभिर्भवं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहेहुएके न करने और निन्दितके करनेरूप कर्मके दोषसे उत्पन्न हुई मनुष्योंकी पशु आदि योनिकी प्राप्तिका और नरकमें गिरनेका और यमलोकमें स्थितका तीव्र खड्गसं काटने आदिसे उत्पन्न श्रुति पुराण आदिमें कही हुई तीव्र पीडाओंका चिंतवन करै ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदिके वियोगको और अनिष्ट कहिये न चाहे हुए हिंसक आदिके मिलनेको और बुढापे करि दवायलेनेको तथा रोग आदिसे पीडित होने आदिको कर्मके दोषोंसे उत्पन्न चिंतवन करै ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥ योनिर्कोटिसहस्रेषु  
सूतीश्र्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ अधर्मप्रभवं चैवं दुःखयोगं शरी-  
रिणाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैवं सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

टीका—इस देहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मके भेद न करनेवाले बडे रोगों करि घिरे हुए और कफ आदि दोषों करि घिरे हुए कंठसे बडी व्यथाका तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बडे दुःखयुक्त कुत्ता स्यार आदिकी नीच करोडों योनियोंमें जानेको अपने कर्मके बंधन चिंतवन करै ॥ ६३ ॥ जीवात्माओंको अधर्मकारण दुःख होनेका और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्मका साक्षात् होना तिस्से उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुखके मिलनेका चिंतवन करै ॥ ६४ ॥

सूक्ष्मतां चान्वेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥ देहेषु च संसृ-  
त्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥ दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्रा-  
श्रमे रतः ॥ समः सर्वेषु भूतेषु नैलिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

टीका—योगसे अर्थात् विषयोंसे चित्तकी वृत्तिके रोकनेसे परमात्माके स्थूल शरीर आदिकी अपेक्षासे सबके अंतर्धामीभावसे सूक्ष्मता कहिये अवयवरहित होनेका उसके त्यागसे ऊँच नीच देव पशु आदि शरीरोंमें जन्मोंके शुभ अशुभ फल भोगनेके लिये उत्पन्न होनेका चिंतवन करै ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रममें स्थित उस आश्रमके विरुद्ध आचारसे दूषित होनेपरभी और आश्रमके चिह्नोंसे रहित भी सब भूतोंमें ब्रह्मबुद्धिसे समानदृष्टि होता हुआ धर्मको करै दंड आदि चिह्नोंके धारण करनाही धर्मका कारण नहींहै किंतु शास्त्रमें कहे हुएका करना यह धर्मकी मुख्यता दिखानेके लिये कहाहै कुछ दंड आदि चिह्नोंके त्यागसे लिये नहीं कहाहै ॥ ६६ ॥

फलं कर्तकवृक्षस्य यद्यप्येभ्युप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेर्व तस्य  
वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥ संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रौ वहनि वा-



सदा ॥ शरीरस्यात्यये चैवं समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

टीका-यद्यपि रीठके वृक्षका फल जलका निर्मल करनेवालाहै तबभी उसके नाम लेनेसे जल निर्मल नहीं होताहै किंतु फलके डारनेसे ऐसेही केवल चिह्नधारण करनाही धर्मका कारण नहींहै किंतु कहे हुएका करना ॥ ६७ ॥ शरीरको दुःख होनेपरभी छोटी चीठी आदिकी रक्षाके लिये रातिमें अथवा दिनमें सदा भूमिको देखकै विचरै ॥ ६८ ॥

अह्नां रात्र्यांच याञ्जन्तून्निहन्स्त्वज्ञानतो यतिः॥तेषांस्नात्वाविशु-  
द्धयर्थं प्राणायामान्ब्रह्मण्यचरेत् ॥ ६९ ॥ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयो-  
ऽपि विधिवत्कृताः॥व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमंतपः ॥ ७० ॥

टीका-यति रातिदिनमें अज्ञानसे जिन प्राणियोंको मारताहै उनके मारनेसे उत्पन्न पाप दूर होनेके लिये स्नान करिकै छः प्राणायामोंको करै ॥ ६९ ॥ सात व्याहृति और प्रणव करिकै युक्त पूरक कुंभक रेचक विधिसे कियेगये तीनि भी प्राणायाम ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप जानना चाहिये ॥ ७० ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः॥ तथेन्द्रियाणां द-  
ह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निर्ग्रहात् ॥ ७१ ॥ प्राणायामैर्देहे दोषान्धारणां  
भिर्श्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ७२

टीका-जैसे धरियामें रक्कै तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओंके मल जल जाते हैं ऐसेही प्राणायामके करनेसे इंद्रियोंके सब दोष भस्म हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ प्राणायामोंसे राग आदि दोषोंको जलावै और अपेक्षित देशमें परं ब्रह्म आदिमें मनकी धारणासे पापका नाश करै और प्रत्याहार कहिये विषयोंसे इंद्रियोंके स्वीचनेसे विषयोंके योगका निवारण करै और ब्रह्मके ध्यानसे जो ईश्वरविषयक नहींहै ऐसे क्रोध लोभ अमूया आदि गुणोंको निवारण करै ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥ ध्यानयोगेन संपश्ये-  
द्भूतिस्यैन्तरात्मनः ॥ ७३ ॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न  
निर्वध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

टीका-शास्त्रसे जिनका अंतःकरण संस्कारयुक्त नहींहै ऐसे पुरुषोंकरि दुःखसे जाननेयोग्य ऐसी इस जीवकी ऊंच नीच देव पशु आदिमें जन्मकी प्राप्तिको ध्यानके योगसे कारणसाहित भलीभांति जानै तिसपीछे ब्रह्मज्ञानमें निष्ठ होय ॥ ७३ ॥ तत्वसे

ब्रह्मका साक्षात्करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नहीं बंधताहै और कर्म उसके फिर जन्मके लिये नहीं समर्थ होतेहैं कारण यहहै कि पहले इकठे किये हुए पापपुण्यका ब्रह्मज्ञानसे नाश होजाताहै और दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात्करनाहै तिस्से रहित संसार कहिये जन्ममरणके प्रबंधको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अहिसयेन्द्रियांसंगैर्वैदे<sup>१</sup> कैश्चैर्वकर्मभिः ॥ तपसंश्चरणैश्चोग्रैः सा-  
धयन्तीहै<sup>२</sup> तत्पदम् ॥ ७५ ॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणि-  
तलेपनम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

टीका—निषिद्ध हिंसाके बचानेसे और विषयोंके संगसे इंद्रियोंके रोकनेसे और वेदमें कहे हुए नित्य कर्मोंके करनेसे और तप जे हैं उपवास चांद्रायण आदि तिनके करनेसे इस लोकमें उसके पद अर्थात् ब्रह्ममें अत्यन्त लयको प्राप्त होतेहैं ॥ ७५ ॥ हड्डीही जिसमें थूनीके समान हैं और आयुरूपी रस्सियोंसे बंधा हुआ है मांस तथा रुधिरसे लिपा हुआहै और चर्भसे मढा हुआ मूत्र तथा विष्ठासे भरा हुआहै इस्से दुर्गन्धयुक्तहै ॥ ७६ ॥

जराशोकसर्माविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वल्मनित्यं च भू-  
तावासर्मिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ नदीकूलं यथावृक्षो वृक्षं वा शकु-  
निर्यथा ॥ तथा त्यजन्निमं देहं<sup>१</sup> कृच्छ्राद्ग्राहाद्भिमुर्च्यते ॥ ७८ ॥

टीका—बुढापा तथा शोककरि युक्त और नानाप्रकारके रोगोंका स्थान और आतुर कहिये शुधा पिपासा शीत उष्ण आदिमें घबरानेवाला तथा रजोगुण करिके युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भूतोंसे बने हुए इस आवास कहिये जीवके धररूप देहको छोडदे जैसे फिर देह न धारण करने परै सो करै ॥ ७७ ॥ जो कर्मार्थिन देहके पातको देखताहै वह नदीके किनारेको जैसे वृक्ष छोड देताहै अर्थात् अपने गिरनेको नहीं जानता हुआ नदीके वेग करि गिराया जाताहै तैसे देहको छोडता हुआ ज्ञान तथा कर्मकी अधिकतासे भीष्म आदिकोंके समान स्वाधीनमृत्यु हो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छासे वृक्षको छोडि देताहै तैसे इस देहको छोडता हुआ ग्राहसे मानों ऐसे संसारके कष्टसे छूटि जाताहै ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विसृज्य ध्यानयोगेन  
ब्रह्माभ्येति<sup>१</sup> सनातनम् ॥ ७९ ॥ यदा भावेन भवति सर्वभावेषु  
निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नो<sup>२</sup>ति प्रेत्यै च हं चं शाश्वतम् ॥ ८० ॥

टीका- ब्रह्मके जानने रूप अपने प्रियके हित करनेवालोंमें सुकृतको और अप्रिय कहिये अनहित करनेवालोंमें दुष्कृत जो पाप है ताहि राखिकै ध्यानके योगसे नित्य ब्रह्ममें लीन होताहै ॥ ७९ ॥ जब परमार्थसे विषयोंमें दोषोंकी भावना करिकै सब विषयोंमें अभिलाषरहित होता है तब इस लोकमें संतोषसे उत्पन्न सुख होताहै और परलोकमें अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥

अनेन विधिना सर्वास्त्यर्क्त्वा संगान् शनैःशनैः ॥ सर्वद्वन्द्ववि-  
निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ ध्यानिकं सर्वमे वैतर्द्यदेतदभि-  
शब्दितम् ॥ नैर्ह्यनर्ध्यात्मवित्कर्णश्रित्क्रियाफलमुपांश्नुते ॥ ८२ ॥

टीका-पुत्र स्त्री वित्त आदिमें ममतारूप सब संगोंको छोडकै दृढ़ जे मान अपमान आदिहै तिनसे छूटि करि इस कहे हुए ज्ञानकर्मके करनेसे ब्रह्ममें आत्यंतिक लयको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूप होजाताहै ॥ ८१ ॥ जो यह पुत्र पौत्र आदिकी ममताका त्याग और मान अपमान आदिकी हानि कही सो सब यह ध्यानिक है अर्थात् आत्माका परमात्मारूपसे ध्यान करने करिकै होताहै जब आत्माको परमात्मा यह जानताहै तब सब सत्त्वोंसे विशेष नहीं होताहै अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होताहै और जो जीवका परमात्मापन कहाहै उसको जो नहीं जानताहै वह ममताका त्याग तथा मान अपमान आदिकी हानिको और मोक्षरूप ध्यानके फलको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ८२ ॥

अधिर्यज्ञं ब्रह्मं जपदोषिदैविकैमेवै च ॥ आर्ध्यात्मिकं च सततं वे-  
दान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥ इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजा-  
नताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

टीका-यज्ञकेमध्ये जो वेद प्रवृत्तहै तथा देवताओंके मध्ये जो प्रवृत्तहै तथा जीवके मध्ये जो वेदांतमें “ सत्यज्ञानमनंतंब्रह्म ” इत्यादिक ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले वेदहै उसको सदा जपै ॥ ८३ ॥ यह वेदनाम ब्रह्म उसका अर्थ नजाननेवालोंकी भी शरण कहिये गतिहै अर्थात् पाठमात्रभी पापके क्षयका कारणहै तौ स्वर्ग तथा मोक्षके चाहनेवाले जो उसके अर्थके ज्ञाताहैं उनका उनके उपायका उपदेश करने और प्राप्तिका कारण होनेसे यही शरण कहिये गतिहै ॥ ८४ ॥

अनेन कर्मयोगेन परिव्रजति यो द्विर्जः ॥ स विधूयेह पार्थ्मानं  
परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥ एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां निर्य-

तात्मनाम् ॥ वेदसंन्यासिकांनां तु कर्मयोगं निवोधंत ॥ ८६ ॥

टीका—इस क्रमसे कहे हुए अनुष्ठानसे जो संन्यासको धारण करताहै वह इस लोकमें पापको छोड़कर परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस है संज्ञा जिनकी ऐसे चारों यति कहिये संन्यासियोंका साधारण धर्म तुमसे कहा अब यतिविशेष जे कुटीचकनामहैं जो वेदमें कहे हुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागीहैं उनके मुख्य वक्ष्यमाण कर्मसंबंधको सुनिये ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थप्रभवाश्च  
त्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥ सर्वेषामपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं नि-  
षेविताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नैयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

टीका—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये पृथक् आश्रम कहे ये चारों गृहस्थसे उत्पन्नहैं ॥ ८७ ॥ शास्त्रके अनुसार सेवन किये हुए ये चारों आश्रम कहे हुएके अनुसार करनेवाले ब्राह्मणको मोक्षरूप गतिको पहुंचातेहैं ॥ ८८ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ॥ गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः संजी-  
नेतान्विभेति हि ॥ ८९ ॥ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति  
संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ९० ॥

टीका—इन सब ब्रह्मचारी आदिकोंमें गृहस्थ अग्निहोत्र आदिके करनेसे मनु आदि-  
कोंने श्रेष्ठ कहाहै जिसे यह गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यति इन तीनोंको  
भिक्षा देनेसे पालन करताहै इसेभी यह श्रेष्ठहै ॥ ८९ ॥ जैसे सब नदीनदंगाशोण  
आदि समुद्रमें अवस्थितिको प्राप्त होतेहैं ऐसे गृहस्थसे अन्य सब आश्रमी गृह-  
स्थके आधीन जीवन होनेसे उसके समीप अवस्थितिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ९० ॥

चतुर्भिरपि चैते नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥ दशलक्षणको धर्मः  
सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥ धृतिः क्षमा दैमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-  
निग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दर्शकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

टीका—इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमी द्विजों करिके दशप्रकारकाहै स्वरूप  
जिसका ऐसा धर्म यत्नसे सदा कले योग्यहै ॥ ९१ ॥ धृति कहिये संतोष और  
क्षमा कहिये दूसरे करि अपकार करनेपरभी उसका बदलेका अपकार न करना और  
दम कहिये विकारके कारण विषयके निकट होनेपरभी मनका नहीं विगडना और

अस्तेयं कहिये अन्यायसे पराये धनका न लेना और शौच कहिये मट्टी तथा जलसे देहका शुद्ध करना और इन्द्रियनिग्रह कहिये विषयोंसे चक्षु आदिका रोकना और धी कहिये शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान और विद्या कहिये आत्मज्ञान और सत्य कहिये यथार्थ कहना और अक्रोध कहिये क्रोधका कारण होनेपरमी क्रोध न होना यह दशप्रकारका धर्मका स्वरूपहै ॥ ९२ ॥

दर्शं लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ॥ अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ॥ वेदान्तं विधिवंच्छ्रुत्वा संन्यसेदनुवृणो द्विजैः ॥ ९४ ॥

टीका-जो ब्राह्मण ये दशप्रकारके धर्मस्वरूपोंको पढतेहैं और पढकर आत्मज्ञानकी सहायतासे अनुष्ठान करतेहैं वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ९३ ॥ कहे हैं लक्षण जिसके ऐसे दशप्रकारके धर्मको सावधानमनसे करता हुआ गृहस्थकी अवस्थामें उपनिषद् आदिके अर्थके अध्ययन धर्मोंको गुरुके मुखसे सुनिके देवआदि तीनि ऋणोंका शोधन करि संन्यासको करै ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्मणि कर्मदोषानपानुदन् ॥ नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्यं सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥ एवं संन्यस्य कर्मणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः ॥ संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

टीका-गृहस्थ करि करने योग्य अग्निहोत्र आदिकर्मोंको छोडकर विना जाने हुए जीवोंके वध आदिसे उत्पन्न हुए पापोंको प्राणायाम आदिसे नाश करता हुआ जितेन्द्रिय हो उपनिषदोंका ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करि पुत्रके घरमें पुत्र करि दिये हुए भोजन वस्त्रसे जीविकाकी चिंतारहित हो सुखसे बसै कुटीचकका यही मुख्य धर्म कहाहै ॥ ९५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे वर्तमान अग्निहोत्र आदि गृहस्थके कर्मोंका त्याग करि आत्माका साक्षात्कारस्वरूप कार्य है प्रधान जिसके ऐसा और बंधका कारण होनेसे स्वर्ग आदिकीभी इच्छारहित संन्यासधर्मसे पापोंको नाश करि ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥

पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥ ९७ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

टीका-ऋषियोंको संबोधन देकर भृगुजी कहतेहैं कि, तुमसे यह ब्राह्मणका

क्रियाकलाप धर्म कहा उसीका ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ आदिके भेदसे परलोकमें अक्षय चारिप्रकारका फल कहा अब राजसंबंधी धर्मोंको मुनिये इस श्लोकमें तो ब्राह्मणको चारों आश्रमोंका उपदेश होनेसे और “ब्राह्मणःप्रव्रजेत्” यह पहले कहा है तिससे ब्राह्मणहीका संन्यासमें अधिकार है ॥ ९७ ॥

इतिश्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूक-  
भट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥ संभवंश्च यथा तस्य  
सिद्धिंश्च परमां यथा ॥१॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा-  
विधि ॥ सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥

टीका—राजा शब्द यहां क्षत्रिय जातिहीका कहनेवाला नहीं है किंतु जिसको राज्यमें अभिषेक हुआ है और जो पुरका पालन करनेवाला है उसका वाची है इसीसे “यथावृत्तोभवेन्नृपः” अर्थात् जैसे आचारवाला राजा होय उसके करनेयोग्य धर्मोंको कहेंगे और जिसप्रकारसे राजाको प्रभुने उत्पन्न किया इत्यादिसे उसकी उत्पत्ति और जैसे दृष्ट बृष्ट फलकी संपत्ति है उस सबको कहेंगे ॥ १ ॥ ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रके अनुसार उपनयन संस्कारको प्राप्त जो क्षत्रिय है उसको शास्त्रके अनुसार अपने सब देशकी रक्षा नियमसे करनी चाहिये इस्से यह दिखाया गया कि, क्षत्रियही मुख्य राज्यका अधिकारी है ॥ २ ॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ॥ रक्षार्थमस्य  
सर्वस्य राजानममृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च  
वरुणस्य च ॥ चन्द्रवितेशयोश्चैवं मात्रां निर्द्वेत्यं शांश्वतीः ॥४॥

टीका—जिससे राजारहित जगत्को भयसे सब ओरोंमें चलायमान होनेपर इस सब चर अचरकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया तिससे राजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इंद्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चंद्र और कुबेर इन सबोंके सारभूत अंशोंको खींचिकारि प्रभुने राजाको बनाया ॥ ४ ॥

यस्मादेर्षां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥ तस्मादभिभव-  
त्येषं सर्वभूतानि तेजसां ॥५॥ तपत्यादित्यवैश्वेषं चक्षुषि च मनां-

सि च ॥ न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्याभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

टीका-जिस्से इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओंके अंशसे राजा उत्पन्न किया गया है तिससेही राजा सब प्राणियोंसे पराक्रममें अधिक होता है ॥ ५ ॥ यह राजा अपने तैजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आखों और मनको तपाता है पृथ्वीमें इस राजाको कोई सामनेसे नहीं देख सकता है ॥ ६ ॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः सं धर्मराट् ॥ सं कुवेरः सं वरुणः सं महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥ बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महंती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

टीका-ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओंके अंशसे उत्पन्न होने और उनका धर्म करनेसे वह राजा शक्तिकी अधिकतासे अग्नि आदिका रूप होता है ॥ ७ ॥ मनुष्य ऐसा समझिकै बालकभी राजा अपमानके योग्य नहीं है जिस्से यह कोई बड़ी देवता मनुष्यके रूपसे स्थित है ॥ ८ ॥

एकमेव दर्हत्यग्निं नरं दुरूपसर्पिणम् ॥ कुलं दर्हति राजाग्निः सप-  
शुद्रव्यसंचर्यम् ॥ ९ ॥ कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्धयर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

टीका-जो असावधानीसे अग्निके समीप जाता है वह दुरूपसर्पी कहाता है उस एक-को अग्नि जलाता है उसके पुत्र आदिको नहीं और क्रोधित हुआ राजारूप अग्नि पुत्र स्त्री भाई आदि सब कुलको और गौ घोडा आदिको सुवर्ण आदि धनसंचयसमेत द्रोधीको मारता है ॥ ९ ॥ वह राजा प्रयोजनकी अपेक्षासे देश काल तथा अपनी शक्तिको देखि कार्यकी सिद्धिके लिये तत्त्वसे वारंवार बहुतसे रूपोंको करता है और शक्तिके न होनेपर क्षमा करता है और शक्तिको पाकै उखाड देता है ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे  
सर्वतेजोमयो हि संः ॥ ११ ॥ तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्सं विनश्य-  
त्यसंशयम् ॥ तस्य ह्यैशुं विनाशाय राजां प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

टीका-जिसकी प्रसन्नतामें बहुतसी लक्ष्मी होती है इस्से लक्ष्मीकी इच्छावालेकी राजा सेवन करनेयोग्य है और जिसके पराक्रममें विजय होता है और जिसके क्रोधमें मृत्यु बसता है अर्थात् जिसपर क्रोध करता है उसको मारता है तिससे जो पुरुष जीवना चाहे वह राजाको क्रोधित न करे जिस्से वह राजा सूर्य अग्नि और चन्द्रमा

आदिके तेजको धारण करताहै ॥ ११ ॥ मूर्खतासे जो उस राजासे द्वेष करताहै अर्थात् उसको अप्रसन्न करताहै वह राजाके क्रोधसे निश्चय नाशको प्राप्त होताहै जिस्से राजा उसके नाशमें मन लगाताहै ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु सं व्यवस्येन्नराधिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु  
तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥ तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं  
धर्ममात्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोर्मयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

टीका—जिस्से राजा सर्वतेजोमय है तिस्से अपेक्षितोंमें जिस धर्मको शास्त्रसे करने योग्य निश्चय करताहै उसको स्थापित करताहै उस धर्मका उलंघन न करे ॥ १३ ॥ उस राजाकी प्रयोजनसिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले धर्म-स्वरूप पुत्र दंडको ब्रह्मके केवल तेजसे बनाया ब्रह्माने पहले पंचभूतोंसे बने हुए देह-को नहीं बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ भयाद्भोगाय क-  
ल्पन्ते स्वधर्मान् चलन्ति च ॥ १५ ॥ तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां  
चावेक्ष्य तत्त्वतः ॥ यथाहृतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यार्वर्तिषु ॥ १६ ॥

टीका—उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणि भोग करनेको समर्थ होतेहैं और जो दंड न होता तो बलवान् दुर्बलके धन दारा आदिके लेनेमें और उस्से बलवान्को उसके तौ किसीकाभी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटनेमें भोगकी सिद्धि न होती तैसेही सज्जनोंकोभी नित्यनैमित्तिक अपने धर्मका करना योग्य हुआ न करनेमें यमयातना कहिये दंडके भयसेही ॥ १५ ॥ उस दंड तथा देश काल शक्ति और विद्या आदिको और जिस अपराधमें जो दंड योग्य होय इत्यादिको शास्त्रके अनुसार तत्त्वसे समझके अपराधियोंको दंड दे ॥ १६ ॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ॥ चतुर्णामाश्रमाणां  
च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १७ ॥ दण्डः शास्तिं प्रजाः सर्वा दण्डं  
एवाभिरक्षति ॥ दण्डः सुतेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥

टीका—वही दंड वास्तवमें राजाहै और वही पुरुषहै और सब स्त्रियाँ हैं और वही नेता कहिये सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला और वही शासिता कहिये आज्ञा देनेवाला और वही चारों आश्रमोंका जो धर्महै उसके प्रतिपादन करनेमें प्रतिभू जो जमानत करनेवालाहै उसके समान मुनियोंने कहाहै ॥ १७ ॥ दंड सब प्रजाओंक.



शासन करताहै और दंडही सब प्रजाओंकी रक्षा करताहै और सबोंके सोनेपर दंडही जागताहै अर्थात् उसके भयसे चोर आदि नहीं आतेहैं और दंडहीको धर्मका कारण होनेसे दंडहीको धर्म जानते हैं यहाँ कार्यमें कारणका उपचार और इस लोक तथा परलोकके धर्म दंडहीके भयसे किये जाते हैं ॥ १८॥

समीक्ष्यं स धृतेः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः॥ असमीक्ष्यं प्रणी-  
तंस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥ यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं द-  
ण्डेष्वतन्द्रितः॥शूलेमत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्वलान्वलवताराः २०

टीका—शास्त्रकी रीति भली भांति विचारिके अपराधके अनुसार देह धन आदिमें कियो गया दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करताहै और विना विचारके लोभ आदिसे किया हुआ सब देश धन पुत्र आदिकोंको नाश कर देता है ॥ १९ ॥ जो राजा आलस्यरहित होके दंड न दे तो बलवान् दुर्वलोंको ऐसे मारे जैसे शूलमें छेदिके मछलियोंको भूजते हैं ॥ २० ॥

अद्यात्कारकः पुरोडाशं श्वां च लिह्याद्धविस्तथा॥स्वाम्यं च नै स्यात्  
त्कस्मिंश्चित्प्रवृत्तेताधरोत्तरम्॥२१॥सर्वोदण्डजितो लोको दुर्लभो  
हि शुचिर्नरः॥दण्डस्य हि भयान्तसर्वं जगद्भोगाय कल्पते॥२२॥

टीका—जो राजा दंड न दे तो यज्ञोंमें सब प्रकारसे हविके अयोग्य कौआ पुरो-  
डाश जो यज्ञभागहै तिसे खाय जाय तैसेही कुत्ता खैर आदि हविको चाटि जाय  
और किसीका कहीं अधिकार न होय क्योंकि बलवान् उसको छीनले और ब्राह्मण  
आदिवर्णोंमें जो नीच शूद्र आदिहैं वही मुख्य होजाय ॥ २१ ॥ दंड करि नियममें  
स्थापित किया गया सब लोक सन्मार्गमें स्थित रहताहै स्वभासे शुद्ध मनुष्य  
कठिनतासे मिलताहै तैसेही यह सब जगत् दंडहीके भयसे आवश्यक भोजन आदिके  
भोगमें समर्थ होताहै ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ॥ तेषु भोगाय कल्पन्ते  
दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥ दुष्येयुः सर्ववर्णांश्च भिद्येरन्सर्वसे-  
तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

टीका—इंद्र, अग्नि, सूर्य, वायु आदि देवता तथा दानव गंधर्व राक्षस पक्षी और सर्पभी  
जगदीश्वरके परमार्थ भयसे पीडितही बरसने आदिके उपकारके लिये प्रवृत्त होतेहैं  
॥ २३ ॥ दंडके न करनेसे अथवा अनुचित करनेसे ब्राह्मण आदि वर्ण आपसमें

स्त्रीगमन करनेसे वर्णसंकर होजाय और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं फल जिनका ऐसे सब शास्त्रोंके नियम नष्ट होजाय और चोरी तथा साहस आदिसे दूसरेका अपकार करनेसे सब लोकमें उपद्रव उत्पन्न होजाय ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यं-  
ति नेतां चेत्साधुं पश्यति ॥ २५ ॥ तस्यार्हुः संप्रणेतारं राजानं सत्य-  
वादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

टीका—जिस देशमें शास्त्रके प्रमाणसे जाना हुआ श्यामवर्ण लाल जिसके नेत्र ऐसीहै देवता जिसकी ऐसा दंड विचरताहै वहां प्रजा व्याकुल नहीं होतीहै जो दंड देनेवाला विषयके अनुरूप दंडको भलीभांति जानता होय ॥ २५ ॥ सत्यबोलनेवाले और विचारके करनेवाले तथा तत्त्व अतत्त्वके विचारमें उचित बुद्धिसे शोभायमान और धर्म अर्थ कामके जाननेवाले अभिषेक आदि गुणोंकरि युक्त राजाको मनु आदि दंडका प्रवर्तक अर्थात् चलानेवाला कहते हैं ॥ २६ ॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिर्वर्धते ॥ कामात्मा विषमः  
क्षुद्रो दण्डनेव निहन्यते ॥ २७ ॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चा-  
कृतात्मभिः ॥ धर्माद्रिचलितं हन्ति नृपमेवै सवान्धवम् ॥ २८ ॥

टीका—उस दंडको भलीभांति प्रवृत्त करता हुआ राजा धर्म अर्थ और कामसे वृद्धिको प्राप्त होताहै और जो विषयकी इच्छा रखनेवाला तथा विषम क्रोध करनेवाला क्षुद्र तथा छलका दंडनेवाला राजा होताहै वह अपनेही किये हुए दंडकरि मंत्री आदिके कोपसे अथवा अधर्मसे नष्ट किया जाताहै ॥ २७ ॥ दंड अति उत्कृष्ट तेजस्वरूपहै और अपने शास्त्र कहिये राजनीतिकरि जिसके आत्माका संस्कार नहीं है ऐसे पुरुषकरि दुःखसे धारण किया जाताहै इस्से राजधर्म रहित राजाहीको पुत्रबंधुसमेत नाश क ताहै ॥ २८ ॥

ततो दुर्गे च राष्ट्रं च लोकं च सर्वराचरम् ॥ अंतरिक्षगतांश्चैवं मु-  
नीन् देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृत-  
बुद्धिना ॥ नैशक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

टीका—दोष आदिकोंकी अपेक्षा विना जो दंड किया जाताहै वह बंधुसमेत राजाके नाशके पीछे धन्व आदि दुर्गकी और राष्ट्र कहिये देशको तथा स्थावरजंगमसमेत पृथ्वीलोकको और हविके न देनेके कारण आकाशमें स्थित ऋषियों तथा देवता-

ओंको पीडित करताहै ॥ २९ ॥ मंत्री सेनापति और पुरोहित आदिकी सहायतासे हीन मूर्ख लोभी और जिसकी बुद्धिका शास्त्रसे संस्कार नहीं हुआ है अर्थात् जिसने नीतिशास्त्र नहीं पढ़ाहै और जो विषयोंमें लगा हुआहै ऐसे राजा करि न्यायसे दंड नहीं दिया जासक्ताहै ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणे<sup>०</sup> तुं शक्यते दण्डः  
सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥ स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्ड-  
श्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वजिह्वः सिग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमां न्वितः ॥ ३२ ॥

टीका—द्रव्य आदिकी शुद्धतासे जो युक्तहै और जिसकी प्रतिज्ञा सत्यहै और जो शास्त्रसे व्यवहारको करताहै और जिसके सहायक मंत्री आदि अच्छेहैं और जो तत्त्वकी जानताहै ऐसा राजा दंड कर सकताहै ॥ ३१ ॥ अपने देशमें शास्त्रकी रीतिसे व्यवहार करनेवाला होय और शत्रुओंमें तेज दंड देनेवाला होय और स्वभावसे जेहके स्थान मित्रोंमें कुटिल न होय और थोडा अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंमें क्षमा युक्त होय ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेनापि<sup>३</sup> जीवतः ॥ विस्तीर्यते यंशो  
लोके तैलविन्दुरिवांभसि ॥ ३३ ॥ अतस्तु विपरीतस्य नृपतेर-  
जित्तात्मनः ॥ संक्षिप्यते यंशो लोके<sup>०</sup> घृत्तविन्दुरिवांभसि ॥ ३४ ॥

टीका—शिलोच्छ्वत्तिसेभी जीविका करनेवाला अर्थात् जिसके द्रव्यका मंडार खाली होगयाहै ऐसेभी उक्त प्रकारसे चलनेवाले राजाकी कीर्ति जलमें तेलकी बुँदके समान लोकमें फैलजातीहै ॥ ३३ ॥ कहे हुए आचारसे विपरीत आचारवाले अजितेंद्रिय राजाकी कीर्ति जलमें धीकी बुँदके समान लोकमें सकुडि जातीहै ॥ ३४ ॥

स्वेस्वे धर्मो निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ॥ वर्णानामाश्रमाणां च  
राजां संघोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥ तेन यद्यत्सभृत्येन कर्तव्यं र-  
क्षता प्रजाः ॥ तत्तद्वा<sup>३५</sup> हं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

टीका—क्रमसे अपने अपने धर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण आदि सब वर्णों तथा ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न कियाहै तिस्से उनकी रक्षा न करता हुआ राजा प्रायश्चित्ती होताहै इससे यह सूचित हुआ कि, अपने धर्मके त्यागियोंकी न रक्षा करनेमेंभी राजा प्रायश्चित्ती नहीं होताहै ॥ ३५ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करते हुए मंत्रीसमेत राजाको जो जो कर्तव्यहै वह सब तुमसे कहेंगे ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ॥ त्रैविद्यं वृद्धान्विदुष-  
स्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥ वृद्धांश्च नित्यं सेवेतं विप्रान्वेद-  
विदः शुचीन् ॥ वृद्धसेवी हि संततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

टीका—प्रतिदिन प्रातःकाल उठिके ऋक्, यजु, साम, नाम तीनों विद्याओंके ग्रंथोंके  
अर्थ जाननेवाले और नीतिशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणोंका सेवन करै अर्थात् उनकी  
आज्ञासे काम करै ॥ ३७ ॥ व्यवस्था तथा तपस्या आदिसे वृद्ध और अर्थ तथा ग्रंथसे  
वेदके जाननेवाले और बाहर भीतर द्रव्य आदिसे शुद्ध ऐसे ब्राह्मणोंका सदा सेवन करै  
जिसे वृद्धका सेवन करनेवाला सदा हिंसा करनेवाले राक्षसोंकरिके भी पूजा जाता  
है अर्थात् वेभी उसका हित करतेहैं और मनुष्य तो बहुतही हित करतेहैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापिनित्यंशः ॥ विनीतात्मा हि  
नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ बहवोऽविनयान्नष्टा राजा-  
नः सपरिच्छदाः ॥ वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिषे दिरे ४०

टीका—स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदिके ज्ञानसे नम्रभी अधिक नम्रताके  
लिये उनसे विनयका अभ्यास करै जिसे नम्र राजाका कभी नाश नहीं होता  
है ॥ ३९ ॥ हाथी घोडा धनके भंडार आदि सामग्रीकरि युक्तभी राजा विनय-  
रहित होनेसे नष्ट होगये और सामग्रीहीन वनके रहनेवालेभी बहुतसे विनयकारि-  
राज्यको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

वेनोविनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैवं पार्थिवः ॥ सुंदासो र्ववनश्चैवं सुमु-  
खो निमिरेवं च ॥ ४१ ॥ पृथुस्तु विनयाद्द्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेवं  
च ॥ कुवेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैवं गाधिजः ॥ ४२ ॥

टीका—वेन तथा नहुष राजाभी और यवनका पुत्र सुदासनाम तथा सुमुख और  
निमि ये अविनयसे नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुनें विनयसे राज्य  
पाया और कुवेर विनयसे धनके स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्रने क्षत्रिय  
होनेपरभी उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं चा-  
त्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकेतः ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां जये योगं समा-  
तिष्ठेद्वानिशम् ॥ जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ४४

टीका-त्रिवेदीरूप विद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनों वेदोंको ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै और शाश्वती कहिये सदासे चली आई हुई नीतिविद्या जो अर्थशास्त्रहै तिसको उसके जाननेवालोंसे सीखै तथा युक्ति और प्रत्युत्तरमें सहायता देनेवाली आन्वीक्षिकी कहिये तर्कविद्याको तथा उदय और दुःखमें हर्ष विषादकी शांत करने वाली ब्रह्मविद्याको सीखै और वाणिज्य पशुपालन आदि वार्त्ताको और उसके आरंभ धनके उपायार्थोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदिकोंसे सीखै ॥ ४३ ॥ चक्षु आदि इंद्रियोंको विषयोंमें आसक्त होनेसे रोकनेमें सदा यत्न करै क्योंकि जितेंद्रिय राजा सदा प्रजाओंको वशमें रखनेके लिये समर्थ होताहै ॥ ४४ ॥

दर्शं कामसमुत्थानि तर्थाष्टौ क्रोधजानि च। व्यसनानि दुरन्तानि  
प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥४५॥ कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु मही-  
पतिः ॥ विर्युज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेर्ष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

टीका-आदिमें सुख और अंतमें दुःख देनेवाले दश कामके और आठ क्रोधके व्यसनोंको यत्नसे त्याग करै ॥ ४५ ॥ जिसे कामके व्यसनोमें प्रसक्त कहिये लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थसे हीन होजाताहै और क्रोधके व्यसनोमें प्रसक्त प्रकृति कोपसे देहके नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिव्रादः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथाख्या  
चं कामजो दंशको गणः ॥४७॥ पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूर्यार्थदू-  
र्षणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥४८॥

टीका-उन व्यसनोको नामसे दिखातेहैं मृगया कहिये अहेर और अक्ष कहिये जुआ खेल्ना और सब कामोंकी नाश करनेवाली दिनकी नींद और पराये दोषका कहना तथा स्त्रीका भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक कहिये नाचना गाना वजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दशका गण काम जो सुखकी इच्छाहै उससे उत्पन्नहै ॥ ४७ ॥ पैशुन्य कहिये अज्ञातदोषका प्रगट करना और साहस कहिये बंधन आदिसे दंड देना और द्रोह कहिये छलसे मारना और ईर्ष्या कहिये दूसरेके गुणोंका न सहना और असूया कहिये पराये गुणोंमें दोषोंका प्रकट करना और अर्थदूषण कहिये द्रव्यका ले लेना तथा देनेयोग्यको न देना और वाक्दंड कहिये गाली देना और पारुष्य कहिये ताडन आदि यह आठका गण क्रोधसे उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वं कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जयेच्छोभं

तंजावेतांबुभौ गणौ ॥ ४९ ॥ पांनमंक्षाः स्त्रियश्चैवं मृगया च  
यथाक्रमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

टीका-जिसको कामसे तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणका कारण स्मृतियोंके बनानेवाले जानते हैं उस व्यसनोंके कारणरूप लोभको यत्नसे त्याग करै जिसे ये दोनों गण लोभसे उत्पन्न होतेहैं कहीं धनके लोभसे और कहीं दूसरे प्रकारके लोभसे ॥ ४९ ॥ मद्यका पीना फांसोंसे खेलना स्त्रीका भोग और मृगया कहिये अहेर क्रमसे पढे हुए ये चारि कामसे उत्पन्न व्यसनोंमेंसे बहुत दोषयुक्त होनेसे इन चारोंकी अतिशय करिकै दुःखका कारण जानै ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैवं वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजेऽपि गणे वि-  
द्यात्कष्टमेतत्रिकं सदा ॥ ५१ ॥ सप्तकस्यार्य्यं वर्गस्य सर्वत्रैवानु-  
षङ्गिणः ॥ पूर्वपूर्वं गुरुतरं विद्याद्वयसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

टीका-क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणमें दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थदू-  
षण इन तीनोंको बहुत दोषयुक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जानै ॥ ५१ ॥  
काम तथा क्रोधसे उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनोंके गण जो सब राज-  
मंडलमें बहुधा स्थितहैं उसमेंसे प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहलेको अगले अग-  
लेसे अति कठिन जानै सोई कहते हैं जैसे जुबासे मद्यका पीना अतिकष्ट देनेवालाहै  
क्योंकि मद्य पीनेसे संज्ञा न रहनेके कारण इच्छापूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके  
विगाडनेवाले दोष होतेहैं और जुआमें तौ धन आताहै अथवा जाताहै और स्त्रीव्य-  
सनसे जुआ अति कष्टका देनेवालाहै जुआमें बैरका उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्रके  
कहे हुए दोष होतेहैं और मूत्रपुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे रोगकी उत्पत्ति होतीहै  
और स्त्रीव्यसनमें फिर संतानकी उत्पत्ति आदि गुणोंका योगभीहै और मृगया  
तथा स्त्रीका व्यसन इन दोनोंमें स्त्रीव्यसन दृष्टहै उसमें कार्योंका नहीं देखना और  
कालके उलंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगयामें तौ श्रम करनेसे  
आरोग्य आदि गुणोंकाभी योगहै इस प्रकार कामसे उत्पन्न चारि व्यसनोंके गणमें  
पहला पहला भारी दोषयुक्तहै और क्रोधसे उत्पन्न वाक्पारुष्य आदि तीनिमें पा-  
रुष्यसे दंडपारुष्य दृष्टहै क्योंकि अंगच्छेद आदिका समाधान नहीं होसकताहै और  
वाक्पारुष्यमें तौ दान मान और पानीके छिडकनेसे क्रोधरूप अग्निकी शांति  
होसकतीहै और अर्थदूषणसे वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थानको पीडा देनेवाला  
है क्योंकि वाक्पारुष्यकी चिकित्सा अति कठिनहै सोई कहाहै, “न प्ररोहतिवाक्कृतं”

अर्थात् वाणीका किया हुआ फिर नहीं उगताहै अर्थदूषणका तौ बहुत साधन देनेसे समाधान होसकताहै इस भांति क्रोधज तीनि व्यसनोमें पहला पहला आते दुष्टहै इस्से इसका यत्नसे त्यागिदे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥ व्यसन्यधोऽधो व्रंजति  
स्वर्गात्यव्यसनी मृतः ॥५३॥ मौलञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षा-  
न्कुलोद्भूतान् ॥ सचिवाँन्सर्त चाँष्टौ वाँ प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५४॥

टीका-ऊपर कहेहुये व्यसन और मृत्यु उसमेंसे व्यसन बहुत दुःखदहै कारण व्यसनी मनुष्य व्यसनसे नीचेनीचे बहुत नरकमें जाताहै और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्गमें जाताहै ॥ ५३ ॥ मौल कहिये वापदादेके क्रमसे सेवक होंय बेभी लोभ आदिके क्रमसे अन्यथा करसकतेहैं इसके रोकनेके लिये शास्त्रविदः कहिये शास्त्रके जाननेवाले होंय और शूर होंय तथा शास्त्रविद्याको भली भांति जानते होंय और शुद्ध कुलमें उत्पन्न होंय ऐसे सात अथवा आठ मंत्रियोंको मंत्र आदि करनेके लिये नियत करै ॥ ५४ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसहायेन  
किंतु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥ तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं  
संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

टीका-सुखसेभी करनेयोग्य कामको एक मनुष्य कठिनाईसे करसकताहै विशेष करिके राज्य जिसका बड़ा फल है उसको एक कैसे कर सकताहै ॥ ५५ ॥ उन मंत्रियोंके साथ सामान्य कहिये मंत्रोंमें नहीं छुपानेयोग्य ऐसे संधि विग्रह आदिकाँको सोचै और जिससे स्थित होय ऐसे स्थान तथा दंड कांश पुर देशरूप चारि प्रकारके सोचै और जिस्से दंड दिया जाय ऐसे दंड कहिये हाथी घोडा रथ पयादे आदिके पोषणका चिंतवन करै और कांश कहिये धनका समूह उसकी आमदनी तथा खर-चका तथा पुरकी रक्षा आदिका और देशके बसनेवाले मनुष्य पशु आदिके धारणकी योग्यताका चिंतवन करै और समुदय कहिये धान्य हिरण्य आदिके उत्पात्तिस्थानका चिंतवन करै तथा गुप्ति कहिये अपनी और देशकी रक्षाका चिंतवन करै और अपने परीक्षा किए हुए अन्नका भोजन करै और प्राप्त हुए धनके प्रशमन कहिये सत्पात्रम देने आदिका चिंतवन करै ॥ ५६ ॥

तेषां स्वस्वमाभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् ॥ समस्तानां च  
कार्येषु विद्व्याद्धितमात्मनः ॥५७॥ सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन

विपश्चिताँ ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजाँ षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

टीका-एकान्तमें उन सब सचिवोंके अपने अपने अभिप्रायोंको जानि कार्योंमें जो अपना हित होय उसको करै ॥ ५७ ॥ इन्हीं सब सचिवोंमेंसे विशिष्ट कहिये विद्वान् ब्राह्मणके साथ संधिविग्रह आदि वक्ष्यमाण छः गुणोंकरि युक्त प्रकृत मंत्रका निरूपण करै ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्रितः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं विनि-  
श्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥ अन्यांनपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्रा-  
ज्ञानवस्थितान् ॥ सम्यगर्थसमाहर्तृन्मातुर्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥

टीका-उस ब्राह्मणमें : सदा विश्वासयुक्त हो जिनको करै उन सर्वोंका समर्पण करै तिसपीछे उसके साथ निश्चय करिकै सब कामोंका आरंभ करै ॥ ५९ ॥ द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभांति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे परीक्षा किये गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥ ६० ॥

निवर्ततास्य यावद्भिरतिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतोऽतन्द्रितान्  
दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् द-  
क्षान् कुलोद्भूतान् ॥ शुचीनां कर्मकर्मन्ते भीरून् नर्तनिवेशने ॥ ६२ ॥

टीका-इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्यरहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहां नियत करै ॥ ६१ ॥ उन सचिवोंमेंसे वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखनेवाले शुद्ध तथा निस्पृहोंको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रखै और अंतर्निवेशने कहिये भोजन शयन तथा रनवास आदिमें भीरु कहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं  
दक्षं कुलोद्भूतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकाल-  
लवित् ॥ वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका-दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि सुखकी प्रसन्नता अथवा विकृत होना रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्त्वका जाननेवाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन



दूत नियतं करै ॥ ६३ ॥ अनुरक्त कहिये लोगोंमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमं शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमान् कहिये संदेशको न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सुरूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृत-आदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अर्मात्ये दण्डे आयत्तो दण्डे वैर्नयिकी क्रिया ॥ नृपतौ कोशराष्ट्रे  
चं दूते संधि विपर्ययो ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिनत्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ ६६ ॥

टीका-सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आधीन देश तथा कोश कहिये द्रव्यसमूह हैं और मेल तथा विगाड दूतके आधीनहै क्योंकि उसकी इच्छासे होतेहैं ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नोको मिलताहै और जो मिले हैं उनको फोडताहै और दूत परदेशमें उस कर्मको करताहै जिस्से मिले हुए फूट-जातेहैं अथवा नहीं फूटतेहैं ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्यै कृत्येषु निर्गूढेद्भितचेष्टितैः ॥ आकारमिद्भितं चेष्टां  
भृत्येषु चं चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्ध्यां चं सर्वं तत्त्वेन परराजचि-  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका-वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्त्तव्य कामोंका आकार तथा हृदयका भाव और चेष्टासे जानै और गुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका परिजन होकै उस समीप नियोजित किये गये क्रोधी लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उनके आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे हैं ऐसे दूतके द्वारा प्रतिपक्षी राजाके चाहे हुये कर्त्तव्य कामोंको तत्त्वसे जानिकै ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्थप्रायमनाविलम् ॥ रम्यमानतंसामन्तं  
स्वाजीव्यं देशमार्वसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्ष-  
मेव वा ॥ नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

टीका-जिस देशमें जल तथा तृण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदिकरि युक्त होय जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते होंय और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता

आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नम्रतापूर्वक विकाररहित रहती होय और खेती वाणिज्य आदि जीविका मुलभ होय ऐसे देशका आश्रम लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्ग कहिये जिसके चारों ओर १० कोशतक मरु कहिये जलरहित देश होय और महीदुर्ग कहिये पत्थरों अथवा ईटोंसे बना हुआ चौड़ाईसे दुगुना ऊंचा अर्थात् वारह हाथ आदि ऊंचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरोखा वा रंदोकारि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्ग कहिये जलसे सब ओर घिरा हुआ और वार्शदुर्ग बाहर चारों ओर चारि कोशतक बड़े वृक्ष काटोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्ग चारों ओर रहनेवाले हाथी घोडा रथ युक्त बहुतसे पयादों करि रक्षा किया गया होय और गिरिदुर्ग कहिये बडी कठिनतासे चढनेके योग्य पहाडऊपर सैकडों मार्गोंकरि युक्त भीतर नदी झरणा आदिके जलसे युक्त और बहुत अन्न जिनमें उत्पन्न होता है ऐसे खेतोंकरि युक्त ऐसे दुर्गोंमेंसे किसी एक दुर्गका आश्रय लेकर राजा अपना नगर बसावै ॥ ७० ॥

सर्वैर्णं तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥ एषां हि बहुगुण्येन  
गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगर्गता  
श्रयाऽपचराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः पूर्वङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

टीका—इन सब दुर्गोंमें गिरिदुर्गके गुण अधिकहैं तिससे संपूर्ण प्रयत्नोंसे गिरिदुर्गका आश्रय ले क्योंकि इसमें शत्रु कठिनाईसे चढि सकताहै और दूरिसे थोडेही यत्नसे चलाई हुई शिला आदिसे बहुत शत्रुकी सेना मारी जा सकती है इत्यादिक बहुतसे गुणहैं ॥ ७१ ॥ इन दुर्गोंमेंसे तीन पहले दुर्गोंमें मृग आदि रहतेहैं उनसे पहले धन्वदुर्गमें मृग रहतेहैं और महीदुर्गमें विलोंमें रहनेवाले मूसे आदि रहतेहैं अप्दुर्गमें मगर आदि जलजीव रहतेहैं और अन्य तीन वृक्षदुर्ग आदिकोंमें बंदर आदि रहतेहैं उनमें वृक्षदुर्गमें बंदर और नृदुर्गमें मनुष्य तथा गिरिदुर्गमें देवताहैं ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नो पाहंसन्ति शत्रवः ॥ तथारियो न हिंसन्ति  
नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ एकः शतं योधयति प्राकारस्थो  
धनुर्धरः ॥ शतं दर्शसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

टीका—जैसे दुर्गमें रहनेसे मृगादिकोंको व्याघ्र आदि शत्रु नहीं मार सकतेहैं ऐसेही दुर्गमें बैठे हुए राजाको शत्रु नहीं मारसकते ॥७३॥ जिस्से प्राकार जो किला आदि है उसमें बैठा हुआ एक सौ शत्रुओंसे युद्ध कर सकता है और प्राकारमें बैठे

हुए सौ धनुष्यधारी दशहजार शत्रुओंको लडा सकते हैं तिस्से दुर्ग वनानेका उपदेश किया जाता है ॥ ७४ ॥

तत्सूर्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभि-  
र्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥ तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्ब्र-  
ह्मात्मनः ॥ गुप्तं सर्वतुल्यं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

टीका-वह दुर्ग खड्ग आदि शस्त्रों तथा धन धान्य हाथी घोडे आदि वाहनों और ब्राह्मणों तथा कारीगरों और यंत्रों तथा घास पानी आदिसे भरा हुआ होय ॥७५॥ उस दुर्गके मध्यमें सुंदर और पर्याप्त कहिये पृथक् २ स्त्रीगृह देवालय शस्त्र अस्त्रोंका गृह तथा अग्निशाला आदिक बने होय और वह खाई परकोटे आदिसे रक्षित होय और सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फल फूलोंकरि युक्त होय और चूनेसे पोता हुआ सपेद होय और बावडी आदिके जलसे युक्त होय और वृक्ष जिसमें होय ऐसा अपने रहनेका घर बनवावै ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्धेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ कुले महति संभूतां  
हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥ पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव  
चर्त्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुंयुर्वैतानिकानि च ॥ ७८ ॥

टीका-उस घरमें स्थित होके समानवर्ण और शुभसूचक लक्षणों करि युक्त बडे कुलमें उत्पन्न मनकी हरनेवाली सुंदर रूपवती गुणवाली स्त्रीसे विवाह करै ॥ ७७ ॥ अथर्वणकी विधिसे पुरोहितको करै और कर्म करनेके लिये ऋत्विजको बरै वे इस राजाके गृहमें कहे हुए तीनों अग्नियों करि होनेयोग्य कर्मोंको करै ॥ ७८ ॥

यजेत राजा ऋतुभिर्विविधैरासदक्षिणैः ॥ धर्मार्थं च वै विप्रैभ्यो  
दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥ सांवत्सरिकमातैश्च राष्ट्रादाहार-  
येद्बलिम् ॥ संयाच्चांम्रायपरो लोके वैतैत पितृवन्मृषु ॥ ८० ॥

टीका-राजा अनेक प्रकारके बहुत दक्षिणावाले अश्वमेध आदि यज्ञोंको करै और ब्राह्मणोंका स्त्री गृह शय्या आदि भोगोंको तथा सुवर्ण वस्त्र आदि धनोंको दे ॥७९॥ राजा समर्थ मंत्रियोंसे वर्षमें लेनेयोग्य धान्य आदिके भागको मंगवावै और लोकमें कर आदिके लेनेमें शास्त्रके द्वारा निष्ठ होय तथा अपने देशके रहनेवाले मनुष्योंमें स्नेह आदिसे पिताके समान वत्तै ॥ ८० ॥

अध्यक्षान् विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ॥ तेऽस्य संवाण्य-

वे<sup>२</sup>क्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥ अंवृत्तानां गुरुकुलाद्रि-  
प्राणांपूजको भवेत् ॥ नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

टीका—हाथी घोडा रथ पयादोंके तथा घनो स्थानोंमें पंडित और कामोंके चतुर देखनेवाले मनुष्योंको जुदे २ रक्खै वे इस राजाके उन हाथी घोडे आदि-के स्थानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंके सब कामोंको अच्छेप्रकारसे करनेके लिये देखें ॥ ८१ ॥ वेद पढिकै गुरुकुलसे लौटे हुए गृहस्थकी इच्छा करनेवाले ब्राह्म-णोंकी नियम करिकै धन धान्यसे पूजा करै ॥ ८२ ॥

नंतं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्राज्ञा निधा-  
तव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥ न स्कन्दते न व्यथते न विन-  
श्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥८४॥

टीका—ब्राह्मणमें रक्खी हुई निधिको न तो चोर ले सकतें न शत्रु अन्यनिधि-के समान भूमिमें रक्खा हुआ कालवशसे नाशको प्राप्त होताहै अथवा स्थानके भ्रमसे नहीं दीखताहै तिस्से अक्षय और अनंतफल जो यह निधिके समान निधि कहिये धनका समूहहै सो राजा करि ब्राह्मणोंमें रखनेयोग्यहै अर्थात् उनके देनेयोग्यहै ॥ ८३ ॥ अग्निमें जो हवि होमी जातीहै वह कभी नीचे गिर जातीहै कभी व्यथा करेहै अर्थात् सूख जातीहै और कभी दाह आदिसे नष्ट होजातीहै और ब्राह्मणके मुखमें जो होमाजाताहै उसमें कहे हुए दोष नहीं होतेहैं तिस्से अग्निहोत्र आदिसे ब्राह्मणका देना श्रेष्ठहै ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणंब्राह्मणब्रुवे ॥ प्रार्थिते शतसाहस्रम-  
नन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥ पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धानतयै-  
र्वचं ॥ अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदिके लिये जो दान देनाहै वह समानफल है अर्थात् जिस देने योग्य वस्तुका फल सुनाहै उससे अधिक वा न्यून नहीं होताहै जो क्रियारहित ब्राह्मण आपको ब्राह्मण कहता उसको ब्राह्मणब्रुव कहतेहैं उसको देनेका फल पहलेकी अपेक्षा दूना होताहै ऐसे प्रकांत कहिये वेदाध्ययनके आरंभ करनेवाले ब्राह्मणमें लाखगुना फल होताहै और सब शास्त्रके पढनेवालेमें अनंत फल होताहै ॥ ८५ ॥ पात्रको पाकर श्रद्धासे दिया हुआ दान देनेवालेको परलो-कमें थोडा बहुत फल देनेवाला होताहै ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ॥ न निर्वर्तेत संग्रामा-

तक्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैवं  
पालनम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥ ८८ ॥

टीका-बराबरके बलवाले अथवा अधिक बलवाले वा हीनबलवाले राजा करि युद्धके लिये बुलाया हुआ राजा प्रजाओंका पालन करता हुआ युद्धसे न हटै और युद्धके लिये बुलाये हुय क्षत्रियको अवश्य युद्ध करना इस क्षत्रियके धर्मका स्मरता रहै ॥ ८७ ॥ युद्धसे न हटना और प्रजाओंका पालन करना तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करना ये सब राजाके बहुतही स्वर्ग आदि कल्याणके उपायहैं ॥ ८८ ॥

आह्वेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ॥ युध्यमानाः परं  
शक्त्यां स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥ न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्य-  
मानो रणे रिपून् ॥ न कर्णाभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वालते-  
जनैः ॥ ९० ॥

टीका-आपसम स्पर्द्धासे एकको एक मारनेकी इच्छा करनेवाले राजा बडी शक्तिसे सन्मुख हो युद्धको करते हुए स्वर्गको जातेहैं ॥ ८९ ॥ कूटआयुध कहिये ऊपरसे काठ आदिसे बने होंय और भीतर उनके तीक्ष्ण शस्त्र छुप हुए होंय ऐसे आयुधोंसे युद्ध करता हुआ राजा शत्रुको न मारै और जिनके फल काँटेके आकार टेढ़े मांसके खींचनेवाले होंय तथा विषके बुझे हुये और अग्नि करि तपाये हुए ऐसे वाणोंसे शत्रुको न मारै ॥ ९० ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं ना-  
सी<sup>३२</sup> न न त्वास्मीति<sup>३३</sup> वादिनम् ॥ ९१ ॥ न सुप्तं न विसन्नाहं न  
नग्नं न निरायुधम् ॥ नायुध्यमानं पर्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

टीका-आप रथमें बैठा हुआ रथको छोड़िके भूमिमें खड़े हुएको न मारै तथा नपुंसकको और हाथ जोरिके सन्मुख आये हुयेको और बाल जिसके खुले होंय और जो बैठा होय तथा मैं तुम्हारा हौं ऐसे कहनेवालेको न मारै ॥ ९१ ॥ सोते-  
हुएको बिना कवचवालेको नंगको शस्त्ररहितको नहीं लडनेवालेको युद्ध देखने वालेको और दूसरेसे युद्ध न करनेवालेको न मारै ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नाति नातिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं  
सैतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥ यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते  
परैः ॥ भर्तुर्यदुक्कृतं किं चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूटि गयेहैं और जो पुत्र आदिके शोकसे व्याकुल है आर जो बहुत चोटोंसे व्याकुलहै तथा जो युद्धसे भागाहै इन सर्वोंको कठिन क्षत्रिय धर्मका स्मरण करताहुआ न मारै ॥ ९३ ॥ डरिकै भागाहुआ जो युद्धमें मारा जाताहै वह पालन करनेवाले अपने स्वामीके समस्त पापोंको प्राप्त होताहै ॥ ९४ ॥

यञ्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपाजितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते  
परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥ रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्  
स्त्रियः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्यति तस्यै तर्तु ॥ ९६ ॥

टीका—युद्धमें भागिकर मारे गये पुरुषका परलोकके लिये जो कुछ जोडा पुण्य वह सब उसके स्वामीको मिलताहै ॥ ९५ ॥ रथ घोडा हाथी छत्र धन धान्य पशु स्त्री ये सब और गुड नोन आदि वस्तु और कुप्य कहिये सोना चांदी छोडकै तांबा आदि जो जुदा जीतिकर घरको लवै वह उसीकाहै और सोना चांदी रत्न आदि धन तौ राजाहीको देना चाहिये ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च द्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ राज्ञां धं सर्वयोधेभ्यो  
दातव्यमंपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥ एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः  
सनातनः ॥ अस्माद्धर्मात्रं च्यवेत क्षत्रियो धन्ररणे रिपून् ॥ ९८ ॥

टीका—वे योद्धा जीते हुए धनमेंसे राजाको उद्धार दें अर्थात् जितने उसमें सुवर्ण चांदी रत्न आदि उत्तम धन होय सो और हाथी घोडे आदि वाहनभी राजाको देने चाहिये और राजाभी साथ जीते हुए धनमेंसे सब योद्धाओंको उनके अधिकारके योग्य बांटे ॥ ९७ ॥ यह जो निंदारहित सनातन योद्धाओंका धर्म कहाहै युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको न छोडै ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैवं लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ रक्षितं वर्धये चैवं  
वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥ एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयो-  
जनम् ॥ अस्यै नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

टीका—नहीं जीतेहुए भूमि सुवर्ण आदिके जीतनेकी इच्छा करै और जीतेहुएको यत्नसे रक्षा करै और रक्षा किये हुयेको वाणिज्य आदिसे बढ़ावै और बढेहुयेको पात्रोंमें दान करै ॥ ९९ ॥ यह चारिप्रकारका पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदिहै तिसका प्रयोजन ऐसा जानै इससे आलस्यरहित हो सदा इसको करै ॥ १०० ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ॥ रक्षितं वर्धयेद्दृष्ट्या वृद्धं

दानेन निःक्षिपेत् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृत-  
पौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ २ ॥

टीका—जो नहीं प्राप्त है उसकी हाथी घोडा रथ पयादेरूप दंडसे जीतनेकी इच्छा करे और जीते हुएकी देखनेसे रक्षा करे और रक्षा कियेहुएको स्थल तथा जलके मार्गसे वाणिज्य आदि बढ़नेके उपायोंसे बढ़ावे और बढ़े हुयेको शास्त्रमें कहे हुए विभागसे पात्रोंको दान करे ॥ १ ॥ हाथी घोडा युद्ध आदिकी शिक्षाका अभ्यास रखे और सदा प्रकाश कीहुई शास्त्रविद्या आदिसे अपने पुरुषार्थको प्रकट करे और मंत्र आचार चेष्टा आदिको सदा गुप्त रखे और सदा शत्रुके व्यसन आदि छिद्रोंके देखनेमें लगा रहे ॥ २ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्भिर्जते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भू-  
तानि दण्डेनैवं प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥ अमाययैवं वर्तेत न कथंचन  
मायया ॥ बुद्ध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ ४ ॥

टीका—जिसका दंड सदा उद्यत है उसे सब जगत् डरता है तिससे सब जगत्को दंडहीसे अपने आधीन करे ॥ ३ ॥ मंत्री आदिकोंमें कपटसे न बने जो कपट करे तो सर्वोका विश्वासयोग्य न रहे धर्मकी रक्षाके लिये सत्यहीसे व्यवहार करे और यत्नसे अपने पक्षकी रक्षा करताहुआ शत्रुकी कीहुई प्रजाके भेदरूप मायाको दूतके द्वारा जानै ॥ ४ ॥

नास्यं छिद्रं परोविद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्यं तु ॥ गृहेत्कूर्म ईवा-  
द्भानि रक्षेद्विर्वरमात्मनः ॥ ५ ॥ वृकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च  
पराक्रमेत् ॥ वृकवच्चैवलुम्पेत शर्शवच्च विनिष्पतेत् ॥ ६ ॥

टीका—ऐसा यत्न करे जिससे शत्रु प्रकृतिके भेद आदि अपने छिद्रको न जानै और शत्रुके प्रकृतिभेद आदि छिद्रोंको गुप्त दूतोंसे जानै और कछुआ जैसे अपने मुख चरण आदि अंगोंको अपने देहमें छुपाय लेता है ऐसे राज्यके अंग मंत्री आदिकोंको दान सन्मान आदिसे अपने वश करे और दैवसे जो प्रकृतिभेदरूप छिद्र होजाय तो यत्नसे उसका निवारण करे ॥ ५ ॥ जैसे बगला जलमें अतिचंचलभी मछलीको पकडनेके लिये एकाग्र मनसे ध्यान लगाके चितवन करता है ऐसेही एकान्तमें रक्षा युक्तभी शत्रुके देश लेने आदि अर्थोंका चितवन करे और जैसे सिंह प्रबल बहुत मोटेभी हाथीके मारनेको उछलताही है ऐसे बलवान् करि दवायाहुआ थोडे बल-  
वाला संपूर्ण शक्तिसे शत्रुके मारनेको चढाई करे और जैसे भेडियां पालनेवाले करि

रक्षा किये हुएभी पशुको रक्षककी असावधानीमें मारिहीं लेताहै ऐसे दुर्ग आदिमें स्थितभी शत्रुको असावधान पाके मारै और जैसे शशां नानाप्रकारके धनुषधारी व्याधोंके बीचमें आके टेढ़ी गतिसे उछलकर भागि जाताहै ऐसे आप निर्बलभी बलवान् शत्रुसे घेरे जानेपर कैसेहू शत्रुकी असावधानी पाके गुणवान् दूसरे राजाका आश्रय लेनेके लिये भागिजाय ॥ ६ ॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः॥ तानानयेद्वंशं सर्वा-  
न्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ७ ॥ यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमै-  
स्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यैर्ताच्छन्नकैर्वंशमानयेत् ॥ ८ ॥

टीका—इस कहेहुए प्रकारसे विजयमें प्रवृत्त राजाके जे विरोधी होंय उन सर्वोंको साम दान भेद दंड इन उपायोंसे वशमें लावै ॥ ७ ॥ वे जो विजयके विरोधी पहले तीनि उपायोंसे न मानें तौ उनको बलसे देश आदिके विगाडने करि युद्धसे हौले २ लघु गुरु दंडके क्रमसे दंडहीसे वश करै ॥ ८ ॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः॥ सामदण्डौ प्रशंस-  
न्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ ९ ॥ यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं  
च रक्षति ॥ तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥

टीका—चारों सामादिक उपायोंमें साम दंडहीकी देशकी वृद्धिके लिये पंडित सदा प्रशंसा करतेहैं ॥ ९ ॥ जैसे खेतमें साथ उत्पन्नहुए धान्य तृण आदिकोंमेंसे निराव करनेवाला धान्योंकी रक्षा करताहै और तृणोंको उखाडताहै ऐसे राजा देशमें दुष्टोंको मारै और शिष्टोंसमेत देशकी रक्षा करै ॥ ११० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया॥ सौऽर्चिराद्भ्रश्यते रा-  
ज्याञ्जी वितान्च सर्वान्धवः ॥ १११ ॥ शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीर्यन्ते  
प्राणिनां यथा॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीर्यन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ११२ ॥

टीका—जो राजा दुष्ट शिष्टके ज्ञान विना अपने देशके सब मनुष्योंको शास्त्रमें कहे हुए धन लेने तथा मारने आदिके कष्टसे पीडा देता है वह शीघ्रही देशके वैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करि राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिकोंसमेत भ्रष्ट होजाताहै ॥ १११ ॥ जैसे आहार आदिके रोकने करि शरीरके सुखानेसे प्राणियोंके प्राण क्षीण होजातेहैं ऐसेही राजाओंकेभी देशको पीडा देनेसे प्रजाके कोप आदि करि प्राण नाशको प्राप्त होतेहैं तिससे राजाको अपने शरीरके समान देशकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११२ ॥



राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि  
पार्थिवः सुखमेधते ॥ १३ ॥ द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्मम-  
धिष्ठितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्ग्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ १४ ॥

टीका-देशकी रक्षा करनेमें आगे कहे हुए इस उपायको करै जिसे देशकी रक्षा करनेवाला राजा विना श्रमके बढताहै ॥ १३ ॥ दो ग्रामोंके मध्यमें तथा तीन के व पांचके अथवा सौ ग्रामोंके बीचमें गुल्म कहिये रक्षा करनेवाले पुरुषोंके समूहको सबे प्रधानपुरुषको उसका अधिष्ठिता करिके देशकी रक्षाका स्थान करै ॥ १४ ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ॥ विंशतीशं शतेशं  
च सहस्रपतिमेवं च ॥ १५ ॥ ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः  
शनकैः स्वयम् ॥ शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशि-  
नम् ॥ १६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥  
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ १७ ॥

टीका-एकग्रामका दशग्रामका वीसका तथा सौके स्वामी नियत करै ॥ १५ ॥ एकगांवका स्वामी जो गांवमें हुए चोर आदि दोषोंका आप प्रबंध न करसकै तौ दश गांववालेसे कहै और ऐसेही दशगांववाला वीस गांववालेसे और वीस गांववाला सौगांववालेसे कहै ऐसा होनेपर चोर आदि कंटकोका अच्छी रीतिसे उद्धार होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ॥

अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

टीका-एक ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहतेहैं जो अन्न पान ईधन आदि ग्रामवा-  
सियोंको प्रतिदिन राजाके लिये देनेयोग्य होय उसको वर्षमें देनेयोग्य धान्यके  
अष्टम भाग आदिको छोडके ग्रामका स्वामी जीविकाके लिये ग्रहण करै ॥ १८ ॥

दशीकुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुर्लानि च ॥ ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः  
सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ १९ ॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्या-  
णि चैव हि ॥ राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः १२०

टीका-धर्मका एक हल आठ वैलोंका होताहै और जीविकावालोंका छः वैलों-  
का और गृहस्थोंका चार वैलों और दो वैलोंका ब्रह्महत्यावालोंका एक हल

होताहै यह हारीतस्मृतिमें लिखाहै छः वैलोंका मध्यम हल होताहै ऐसे दो हलोंसे जितनी भूमि जोती जाय उसको कुल कहतेहैं उसको एक ग्रामका स्वामी जीविकाके लिये ग्रहण करै ऐसेही बीस ग्रामका स्वामी पांच कुलोंको ग्रहण करै और सौ ग्रामका स्वामी एक मध्यम ग्रामकी और हजारका स्वामी दश मध्यम पुरको जीविकाके लिये ग्रहण करै ॥ १९ ॥ उन ग्रामके बसनेवालोंके ग्राम-संबंधी कामों तथा निज कामोंको राजाका हित करनेवाला मंत्री आलस्यको छोडकर देखै ॥ १२० ॥

नगरेनगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं न-  
क्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ २१ ॥ स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदां  
स्वर्यम् ॥ तेषां वृत्तं परिणयेत्संभ्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ २२ ॥

टीका—प्रत्येक नगरमें उच्चैःस्थानं कहिये कुल आदिसे बडे और प्रधानभूत तथा हाथी घोडे आदि सामग्रीसे मयानक नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रहके समान तेजस्वी कार्यद्रष्टाको नगरका स्वामी करै ॥ २१ ॥ वह नगरका अधिकारी ग्रामके स्वामी आदिकोंको बिना प्रयोजन सबकालमें बलसे देखै और दूतोंसे सबोंकी मनकी बातोंको जानै ॥ २२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥ भृत्या भवन्ति  
प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ २३ ॥ ये कार्यािकेभ्यो ऽर्थमेव  
गृह्णीयुः पापचेतसः ॥ तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवीसनम् २४

टीका—बहुधा राजाके अधिकारी पराये धनके लेनेवाले और शठ कहिये वंचक होते हैं इसलिये राजा उनसे प्रजाकी रक्षा करै ॥ २३ ॥ जो पापबुद्धि रक्षाके अधि-कारी कार्यार्थियों (सुकहमेवालों) से वाणीके छल आदिको प्रकट कर लोभसे अशा-स्त्रीय धनको लेते हैं राजा उनका सर्वस्व छीनके अपने देशसे निकालदे ॥ २४ ॥

राजां कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्ति  
स्थानं कर्मानुरूपतः ॥ २५ ॥ पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य  
वेतनम् ॥ षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तुं मासिकः ॥ २६ ॥

टीका—राजाओंका काम करनेवाले जो स्त्री और भृत्यजनहैं उनकी उत्कृष्ट मध्यम तथा अपकृष्ट स्थानके योग्य प्रतिदिनकी जीविका करै ॥ २५ ॥ घरके झारनेवाले और पानी लानेवालेको एक पण नित्य दे पणका लक्षण आगे कहेंगे और मही-

नेमें एक द्रोण अन्न दे छठे महीने दो वस्त्र दे और उत्तम कर्म करनेवालेको छः पण नित्य दे और छठे मासमें छः जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास छः द्रोण धान्य दे और इसी रीतिसे मध्यम कर्म करनेवालेको तीन पण नित्य दे और छठे महीने दो जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास तीन द्रोण धान्य दे आठ मुठीकी एक कुंची होती है और आठ कुंचियोंका एक पुष्कल होताहै और चारिं पुष्कलोंका एक आढक और चारिं आढकोंका एक द्रोण होताहै और चारिं द्रोणकी एक खारी कहतेंहैं ॥ २६ ॥

ऋयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो द्रौपयेत्करान् ॥ २७ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ॥ तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रं कल्पयेत्सर्ततं करान् ॥ २८ ॥

टीका—यह वस्त्र नोन आदि वस्तु कितनेमें मोल ली है और बेचनेमें कितना मिलेगा और कितनी दूरसे लायाहै और इस वणिजके भोजनमें शाकदालि आदिके खरचमें कितना लगाहै और वन आदिमें चोर आदिकोंसे रक्षा करनेमें कितना खर्च हुआहै और इसके नफेका योग कितनाहै इन सब बातोंको देखकर बनियोंसे कर लेंवें ॥ २७ ॥ जैसे राजा प्रजापालन आदि कर्मके फलसे और जे किसान बनिया आदि खेती वाणिज्य आदि कर्मोंके फलसे युक्त होताहै ऐसा सोचके राजा देशके करोंको लेंवें ॥ २८ ॥

यथाल्पालर्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ॥ तथाल्पालपो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २९ ॥ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ॥ धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वां ॥ १३० ॥

टीका—इसमें दृष्टांत कहतेंहैं जैसे जोक बछडा और भ्रमर थोडा २ रक्त दूध तथा मधुको खाते हैं ऐसे ही राजा राज्यसे वर्षके करको थोडा २ लेंवें ॥ २९ ॥ पशु और सुवर्णके लाभमेंसे राजा पचासवां भाग लेंवें ऐसेही धान्योंका छठवां आठवां अथवा बारहवां भाग लेंवें भूमिकी उत्कर्षता न्यूनता तथा जुताईके न्यूनके अधिक श्रमको देखके यह कर लेनेकी न्युनाधिकताका विकल्पहै ॥ १३० ॥

आर्ददीतार्थ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ॥ गन्धोषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ ३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ॥ मृन्मर्यानां च भाण्डानां सर्वस्योश्ममयस्य च ॥ ३२ ॥

टीका-वृक्ष १ मांस २ मधु ३ घी ४ गंध ५ औषधी ६ रस ७ पुष्प ८ मूल ९ फल १० पत्र ११ शाक १२ तृण १३ चर्म १४ वांसका पात्र १५ मट्टीका पात्र १६ पत्थरका पात्र १७ इन सत्रहोंका छठा भाग राजा लेवै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

त्रियमाणोऽप्याददीतं न राजा श्रोत्रियोत्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य  
संसीदे च्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ ३३ ॥ यस्य राज्ञस्तु विषये श्रो-  
त्रियः सीदति क्षुधाः तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचि रेणैव सीदति ३४

टीका-धनके क्षीण होनेपरभी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे कर न लेवै और इसके देशमें वसताहुआ वेदपाठी भूंखसे पीडित न होय ॥ ३३ ॥ जिस राजाका देशमें श्रोत्रिय भूंखसे दुःख पाताहै उसका देशभी उसकी क्षुधासे थोड़ेही कालमें नष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धन्यां प्रकल्पयेत् ॥ संरक्षेत्सर्वतश्चैनं  
पितां पुत्रमिवोरसम् ॥ ३५ ॥ संरक्ष्यमाणो राज्ञायं कुरुते धर्म-  
मन्वहम् ॥ तेनायुं वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ ३६ ॥

टीका-शास्त्रका पढना और आचरण जानिके उसकी उनके अनुरूप धर्मसे जीविका नियत करै और जैसे पिता अपने निजपुत्रकी रक्षा करता है ऐसे चोर आदिकोंसे इसकी रक्षा करै ॥ ३५ ॥ राजा करि अच्छी भांति रक्षा कियाहुआ वह श्रोत्रिय जिस धर्मको प्रतिदिन करताहै उससे राजाकी आयु धन तथा देश बढताहै ॥ ३६ ॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य दीपयेत्करसंज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं  
राजां राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ ३७ ॥ कारुकांश्चिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मो-  
पजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्म मासिमासि महीपतिः ॥ ३८ ॥

टीका-राजा अपने देशमें थोड़े मोलकेभी शाकपत्ते आदिके खरीदने बेचनेसे जीविका करनेवाले निकृष्ट मनुष्यसे थोडामी कर वर्षमें दिवावै ॥ ३७ ॥ कारुक कहिये सुतार आदि शिल्पियोंसे जो कुछ ऊंचे हैं और शिल्पी कहिये लुहार आदि और शूद्र जो शरीरसे श्रम करीके जीविका करतेहैं जैसे वोझा ढोनेवाले उनसे राजा महीने महीनेमें एक एक दिन काम करवा लेवै ॥ ३८ ॥

नोच्छिन्धादात्मनो मूलं परेषांचातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्म-  
नो मूलं मात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३९ ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार-  
यं वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ४० ॥

टीका-प्रजाके स्नेहसे कर तथा महसूल आदिके न लेनेसे अपने मूलको न उखाडै तथा अतिलोभसे बहुतसा कर लेकै दूसरोंका मूल न उखाडै ये दोनों बातें न करै जिसे अपने मूलको उखाडके कोश कम होनेसे आपको पीडा देताहै तथा दूसरोंका मूल उखाडकै उनको पीडा देताहै ॥ ३९ ॥ कार्यविशेषको देखकै किसी काममें तेज और किसीमें मृदु होय एक रूपको न धारण करै जिसे उक्तरूप राजा सबको प्यारा होताहै ॥ १४० ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ॥ स्थायीपयेदांसनेत-  
स्मिन् खिन्नैः कार्येक्षणे नृणाम् ॥४१॥ एवं सर्वे विधायेदमितिक-  
र्तव्यमात्मनः ॥ युक्तश्चैवं प्रमत्तश्चैव परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥४२॥

टीका-आप कार्योंके देखनेमें खेदयुक्त राजा धर्मके जाननेवाले पंडित जितेंद्रिय तथा कुलीन श्रेष्ठ मंत्रीको उस कार्यदर्शनके स्थानमें नियत करै ॥ ४१ ॥ इस भाँति कहेहुए प्रकारसे अपने सब कार्योंको करिकै मनको लगाय प्रमादरहित हो प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्यराष्ट्राद्धिर्यन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यतः स-  
भृत्यस्य मृतः सं न तु जीवति ॥४३॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजा-  
नामेव पालनम् ॥ निदिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥४४॥

टीका-मंत्री आदिकों समेत जिस राजाके देखते देशसे पुकारतीहुई प्रजा चौर आदिकोंकरि लूटी जाती है वह मरा हुआ है जीवता नहीं है ॥ ४३ ॥ प्रजाकी रक्षा करनाही क्षत्रियका सबसे बडा धर्म है जिसे कहा हुआ है लक्षण और फल जिसका ऐसे कर आदिका भोगनेवाला राजा धर्मसे युक्त होताहै ॥ ४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचैः समाहितः ॥ हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चाच्यं  
प्रविशेत्सं शुभां संभाम् ॥४५॥ तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य  
विसर्जयेत् ॥ विसृज्यं च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥४६॥

टीका-वह राजा रातिके पिछले पहर उठिकै मूत्रपुरीपत्याग आदि शौचको करिकै एकाग्रमन हो अग्निहोत्रको करि ब्राह्मणोंको पूजि सुंदर शुभसभामें प्रवेश करै ॥ ४५ ॥ उस सभामें बैठा हुआ राजा दर्शनके लिये आई हुई सब प्रजाको बोलने और दर्शन देने आदिसे आनंदित करिकै विदा करै उनको पठवाकै मंत्रियोंके साथ संधिविग्रहादिकोंका विचार करै ॥ ४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारूढ्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ अरण्ये निःशलाके वा  
मन्त्रयेदविभाविताः ॥ ४७ ॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथ-  
ग्जनाः ॥ स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनो ऽपि ० पार्थिवः ॥ ४८ ॥

टीका—पर्वतके ऊपर बैठके अथवा मूने महलके ऊपर और वनमें अथवा एकांत  
स्थानमें मंत्रके भेद करनेवालोंसे छुपिके कामोंके आरंभका उपाय १ पुरुषद्रव्यसंपत्ति  
२ देशकालविभाग ३ विनिपातका प्रतीकार ४ और कार्यकी सिद्धि ५ इस पंचांग  
मंत्रका विचार करै ॥ ४७ ॥ जिस राजाके मंत्रियोंसे भिन्न और लोग मिलिके उसके  
मंत्रको नहीं जानते हैं वह कोश क्षीण होनेपरभी सब पृथिवीको भोगताहै ॥ ४८ ॥

जडमूकान्धवधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ॥ स्त्रीम्लेच्छं व्याधित-  
व्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥ ४९ ॥ भिन्दन्त्यर्वमता मन्त्रं तिर्यग्यो-  
नांस्तैश्चैव च ॥ स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥ १५० ॥

टीका—बुद्धि वाणी नेत्र कान आदिसे विगडेहुए मनुष्योंको तथा तिर्यग्योनि  
तोता मैना आदिको और अति बूढ़े स्त्री म्लेच्छ रोगी और अंगहीनोंको मंत्रके  
समय निकाल देवै ॥ ४९ ॥ पुराने पापके कारण जडपन आदिके पानेवाले थे  
अधर्मके कारण अपमानित होनेपर मंत्रभेदको करि देतेहैं तैसेही तोता आदि और  
आतिवृद्ध और स्त्री विशेषकरि चंचल बुद्धि होनेसे मंत्र भेद कर देतेहैं तिससे उन  
सवोंको यत्नसे निकाल देवै ॥ १५० ॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥ चिन्तयेद्धर्मकामार्था-  
न्साधै तै रेके एव वा ॥ ५१ ॥ परस्परविरुद्धानां तेषां च समु-  
पार्जनम् ॥ कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ ५२ ॥

टीका—दिनके मध्यमें अथवा रात्रिके मध्यमें स्वस्थ शरीर राजा मंत्रियोंके साथ  
अथवा अकेला धर्म अर्थ कामके करनेका चिंतवन करै ॥ ५१ ॥ बहुधा आपसमें  
विरोधवाले धर्म अर्थ कामके विरोधको वचाके उनके अर्जनका उपाय शोचै और अपने  
कार्यकी सिद्धिके लिये पुत्रियोंके देनेका निरूपण करै और विनयके सिखाने तथा  
नीतिशास्त्रकी शिक्षाके लिये कुमारोंकी रक्षाका चिंतवन करै ॥ ५२ ॥

दूतसंप्रेषणं च व कायशपं तैश्चैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्रणि-  
धीनां च चेष्टितम् ॥ ५३ ॥ कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च  
तत्त्वतः ॥ अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ ५४ ॥

टीका- गुप्त चिन्ती पत्री आदि लेखके लेजानेवाले दूतोंके पराये देशमें भेजनेका चिंतवन करै तथा आरंभ कियेहुए कामोंके शेष पूरे होनेका चिंतवन करै स्त्रियोंका चेष्टित बहुतही विषम होताहै जैसे चोटीमें छिपाये हुए शस्त्रसे गनीने विदूरथको मारा और विषसे लिपेहुए विष्णुसे विरक्त रानीने काशिराजको मारा इत्यादिक वातोंको जानकर रनवासकी स्त्रियोंका चेष्टित सखी दासी आदिकोंसे जानै और दूसरे राजाओंके यहां भेजेहुए दूतोंके चेष्टितोंको दूसरे दूतोंसे जानै ॥ ५३ ॥ प्रजाओंसे कर लेना १ भृत्योंको धन देना २ इस लोक तथा परलोकके लिये कर्म करना ३ तथा न करना ४ इस बातकी मंत्रियोंको आज्ञा देना कार्यसंदेहमें आज्ञा देना ५ प्रजाके लेन देन आदिके व्यवहारका देखना ६ व्यवहारमें जो हारि उस्से शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियोंको प्रायश्चित्त कराना ८ इन आठों कर्मोंका चिंतवन करना और तत्त्वसे अर्थात् सिद्धांतसे पंचवर्गका चिंतवन करै वह पंचवर्ग लिखतेहैं दूसरेका भीतरी बातका जाननेवाला निर्भय बोलनेवाला कपटव्यवहार करनेवाला ऐसा मनुष्य जीविकाके लिये आवै तौ उसको दान मानसे अपना करकै एकांतमें कहै कि, जिसका दृष्ट कर्म देखो उसी समय हमसे कहो १ संन्याससे जो भ्रष्टै उनका दोष तौ लोकमें विदितहै उनको बुद्धि तथा पवित्रासे युक्त करिकै बहुत पैदा वाले मठमें स्थापित करिकै एकांतमें पहलेकी भांति बोलै और जिस भूमिमें बहुतसा धान्य उत्पन्न होय वह भूमि उसको जीविकाके लिये देवै वह भ्रष्टसंन्यासी राजाके काम करनेवाले जो दूसरे संन्यासीहैं उनको भोजन और वस्त्र देवै २ और जीविकासे रहितको खेतीकरनेको बुद्धि तथा शौचसे गुप्त करिकै एकांतमें पहलेकी भांतिसे बोलै और खेती करनेकेलिये अपनी भूमि देवै ३ और जीविकारहित वनियाको पहलेकी भांति कहिकै धन तथा मानको दे अपने आधीन करिकै वनियोंके कर्म करावै ४ जीविकासे रहित मुडिया होय अथवा जटाधारी होय उसको गुप्तजीविका देकर एकांतमें पहलेकी भांति कहै और कपटी बहुतसे मुडिये तथा जटाधारी शिष्योंसमेत तपस्या करै महीने दो महीने सर्वोंके आगे सुटीभर बेर आदिका भोजन करै और रातिमें कोई न जानै तब भोजन करै और शिष्य उसकी सिद्धाईको प्रकाशित करै कि, गुरुजी भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके जाननेवालेहैं इस्से सब लोग अपने २ अर्थको कहेंगे ५ ये पांचों क्रमसे कापाटिक उदास्थित गृहपति वैदिक तापस कहातेहैं इन पांचों कर्मोंका चिंतवन करै इन्होंसे दूसरे राजाकी और अपने मंत्री आदिकी प्रीति तथा अप्रीतिको जानिकै उसका उपाय करै कि कौनसा राजा मेल चाहताहै और कौनसा विगाड चाहताहै यह जानिकै वैसा उपाय करै ॥ ५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥ उदासीनप्रचारं च

शत्रो<sup>०</sup> श्वैवं प्रयत्नतः ॥५५॥ एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समा-  
सतः ॥ अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैवं तु ताः स्मृताः ॥ ५६ ॥

टीका—अरि विजिगीषु अर्थात् जीतनेकी इच्छा करनेवाला और मध्यम अर्थात् अरिविजिगीषु इन दोनोंकी भूमिके समीपमें रहनेवाला मिलेहुए दोनों राजाओंके अनुग्रहमें और विगडहुए इन दोनोंके निग्रहमें समर्थ इन सबका चेष्टित अर्थात् करनेकी इच्छाका चिंतन करै ॥ ५५ ॥ संक्षेपसे राजमंडलके ये चारि मूल प्रकृति हैं तथा आठ और हैं उनको कहतेहैं शत्रुकी भूमिके आगे मित्र अरिमित्र मित्रमित्र अरिमित्रमित्र और पीछे पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये पहले कहे हुए आठ चारोंको मिलकै बारह होतेहैं ॥ ५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डारख्याः पञ्च चापरैः ॥ प्रत्येकं कथितां  
ह्येताः संक्षेपेण द्विसंततिः ॥ ५७ ॥ अनन्तरमरिं विद्यादरिसे-  
विनमेव च ॥ अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ ५८ ॥

टीका—चारि मूलप्रकृति आठ शाखाप्रकृति इन्होंमें एकएकके पांच पांच द्रव्य प्रकृतिहैं उन पांचोंके ये नामहैं जैसे अमात्य कहिये मंत्री १ राष्ट्र कहिये राज्य २ दुर्ग कहिये किला ३ अर्थ कहिये धन ४ और दंड ५ ये सब मिलिके संक्षेपसे बह-  
त्तरि ७२ प्रकृतिहैं ॥ ५७ ॥ अपने राज्यके समीपका राजा शत्रुहै और उसका सेवन करनेवालाभी शत्रुहै और उसके आगेका राजा मित्रहै और अरि तथा मित्रसे जो परेहै वह उदासीनहै ॥ ५८ ॥

तान्सर्वानभिसंद्ध्योत्सामांदिभिरुपक्रमैः ॥ व्यस्तैश्चैवं सम-  
स्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ ५९ ॥ संधिं च विग्रहं चैवं यानमा-  
सनमेव च ॥ द्वैधीभावं संश्रयं च पङ्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥ १६० ॥

टीका—उन सब राजाओंको साम दान भेद दंड इन उपायोंसे संभवके अनुसार जुदे जुदासे अथवा सबोंसे वशमें लावै अथवा पौरुष कहिये केवल दंडहीसे अथवा नीति कहिये एक सामहीसे वशमें लावै सोई कहाहै कि, देशकी वृद्धिके लिये साम तथा दंडकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ५९ ॥ संधि कहिये मिलाप विग्रह कहिये लडाई यान कहिये शत्रुके ऊपर चढाई करना आसन कहिये शत्रुको घेरिके पडे रहना द्वैधीभाव कहिये फोडफाड करना संश्रय कहिये बलवान्का आश्रय लेना इन छः गुणोंका सदा चिंतन करै ॥ १६० ॥

आसनं चैवं यानं च संधिं विग्रमेव च ॥ कार्यं वीक्ष्यं प्रयुञ्जीत



द्वैधं संश्रयमेवं च ॥ ६१ ॥ संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रह-  
मेवं च ॥ उभे यानासने चैवं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६२ ॥

टीका—अपनी समृद्धि और शत्रुकी हानि आदिक कार्योंको देखकै विग्रह यान  
आसन द्वैधीभाव और संश्रय इनमेंसे किसीके साथ संधि और किसीके साथ विग्रह  
इत्यादि करै ॥ ६१ ॥ राजा संधि विग्रह यान आसन तथा द्वैधीभाव और संश्रय  
इन छहों गुणोंको दो प्रकारके जानै ॥ ६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥ तदा त्वार्यतिसंयुक्तः सं-  
धिज्ञो यो द्विलक्षणः ॥ ६३ ॥ स्वयंकृतं च कार्यार्थमकाले कालं  
एव वा ॥ मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ ६४ ॥

टीका—तत्कालके फलके लाभके लिये अथवा आगेको फलके लाभके लिये जहा  
दूसरे राजाके साथ अन्यराजाके ऊपर चढाई आदि कर्म किये जातेहैं वह समानकर्मा  
संधिहै और जो फिर तुम यहां जाओ मैं यहां जाऊंगा यह उसी कालके तथा  
आगेके फलकी चाहनासे की जातीहै उसको असमानकर्मा संधि कहतेहैं ऐसे दो  
प्रकारकी संधि जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥ शत्रुके विजयरूप प्रयोजनके लिये शत्रुका  
कष्ट आदि जानिकै आगे कहेहुए मार्गशीर्ष आदि कालसे दूसरे कालमें अथवा कहे  
हुएही कालमें आप करि कियाहुआ एक विग्रहहै और दूसरे राजा करि मित्रका  
अपकार करनेपर मित्रकी रक्षाके लिये दूसरा विग्रह होताहै इस प्रकार दो  
प्रकारका विग्रह होताहै ॥ ६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥ संहतस्य च मित्रे-  
र्ण द्विविधं यानमुच्यते ॥ ६५ ॥ क्षीणस्य चैवं क्रमशो देवात्पूर्व-  
कृतेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६६ ॥

टीका—अपना आवश्यक काम तथा शत्रुके व्यसन आदि अकस्मात् होनेपर सम-  
र्थका अकेले चढाईकरना यह एक प्रकारका यान हुआ और असमर्थका मित्र सहित  
चढाई करना यह दो प्रकारका यान कहा जाताहै ॥ ६५ ॥ पूर्व जन्ममें अथवा  
इस जन्ममें कियेहुए पापोंसे जिसके हाथी घोडा कोश आदि क्षीण होगयाहै तब  
दूसरे पर चढाई न करना अथवा संपन्नका मित्रके अनुरोधसे उसके कार्यकी रक्षाके  
लिये चढाई न करना यह दो प्रकारका आसन मुनियोंने कहाहै ॥ ६६ ॥

वलस्यै स्वामिनश्चैवं स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्तयते

द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥६७॥अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्यै  
शत्रुभिः ॥ साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—अपनी प्रयोजनके सिद्धिके लिये सेनापतिसमेत सेनाको शत्रुके उपद्रवकी शातिके लिये एक स्थानमें रक्खे और दूसरे स्थानमें किलेके भीतर कुछ सेनासमेत राजा रहै इस भांति संधि आदि छः गुणोंके उपकार जाननेवालोंमें दो प्रकारका द्वैध कहाहै ॥ ६७ ॥ शत्रुओंकरि पीडा दिया शत्रुकी पीडाकी निवृत्तिरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अथवा उस समय पीडाके न होनेपर आगे होनेवाली शत्रुपीडाकी शंकासे यह राजा इस महाबली राजाका आश्रितहै यह व्यपदेश सर्वत्र प्रकट करनेके लिये बलवान्का आश्रय लेना इस भांति संश्रय दोप्रकारका कहा गयाहै ॥ ६८ ॥

यदावर्गच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः॥तदात्वे चाल्पिकां पीडां  
तदा संधिं समाश्रयेत् ॥६९॥ यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृ-  
तीर्भृशम्॥अत्युच्छ्रितं तथार्त्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १७० ॥

टीका—जब युद्धके उपरांत निश्चय अपनी अधिकता जानै उस कालमें थोड़े धन आदिके क्षयकोभी अंगीकार करिके संधि करि लेवै ॥ ६९ ॥ जब मंत्री आदि सब प्रकृतियोंको दानसन्मान आदिसे बहुतही संतुष्ट जानै और आपको हाथी घोड़े खजाना आदिसे पुष्ट जानै तब विग्रह कहिये युद्ध करै ॥ १७० ॥

यदा मन्येत भावेन तृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ॥ परस्य विपरीतं च  
तदा यायाद्रि पुं प्रति ॥७१॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन  
वलेन च ॥ तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ ७२ ॥

टीका—जब अपनी अमात्य आदि सेनाको हर्षयुक्त और धन आदिसे पुष्टत्वसे जानै और शत्रुको अमात्य आदि बलको अपनेसे विपरीत जानै तब शत्रुपर चढाई करै ॥ ७१ ॥ जब हाथी घोडा आदि वाहनोंसे और मंत्री आदि सेनासे क्षीण होय तब हौले २ सामसे भेट आदि देनेसे शत्रुको शांत करता हुआ यत्नसे आसन करै अर्थात् चुपाचाप बैठ रहै ॥ ७२ ॥

मन्येतारि यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्॥तदा द्विधा बलं कृत्वा  
सांधयेत्कार्यमात्मनः ॥ ७३ ॥ यदा परबलानां तु गमनीयतमो  
भवेत् ॥ तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ ७४ ॥

टीका—जब राजा सब भांति शत्रुको बलवान् और संधि न करता हुआ जान तब कुछ सेनासमेत आप किलेमें रहै और सेनाके एक भागसे शत्रुके साथ युद्ध करै ऐसे सेनाके दो भाग करिकै मित्रसंग्रह आदि अपना काम सिद्ध करै ॥ ७३ ॥ जब तौ अमात्य आदि प्रकृतिके दोष आदिसे बहुत ही ग्रहण करनेयोग्य होय और सेनाके दो भाग करिकै किलेमें रहनेपरमी अपनी रक्षा न कर सकै तब शीघ्रही धर्मात्मा तथा बलवान् राजाका आश्रय लैवै ॥ ७४ ॥

निर्ग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिवलस्य च ॥ उपसेवेत तं नित्यं  
सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ ७५ ॥ यदि तत्रापि संपश्येदोषं संश्रय-  
कारितम् ॥ संयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ ७६ ॥

टीका—कैसा बलवान् होय सो कहतेहैं जिनके दोषसे यह अत्यंत जानेयाग्य हुआ उन प्रकृतियोंका और जिसे शत्रुके बलसे इसको भय उत्पन्न हुआ होय उन दोनोंको जो दंड देनेको समर्थ होय उस राजाका नित्य गुरुके समान सेवन करै ॥ ७५ ॥ जिसको गति नहीं है उसकी गति आश्रय लेनाहै जो उसमें भी आश्रयका कियाहुआ दोष देखै तौ उस कालमें निस्संदेह होकै युद्धही करै दुर्बलकामी बलवानसे विजय देखा गयाहै और जो माराजाय तौ स्वर्ग मिलै ॥ ७६ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥ यथास्यभ्यधिका  
न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ७७ ॥ आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं  
च विचारयेत् ॥ अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ ७८ ॥

टीका—सब सामआदि उपायोंसे नीतिका जाननेवाला राजा ऐसा यत्न करै जिसमें इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत न होय अधिकता होनेपर यह उनके ग्रहण करने योग्य होजाता है क्योंकि धनके लोभसे मित्रभी शत्रु होसकतेहैं ॥ ७७ ॥ सब थोड़े वा बहुतकार्योंके उत्तरकाल तथा गुणदोषका विचार करै और वर्तमानकालका तौ शीघ्रही करनेके लिये विचार करै और बीतेहुए सब कार्योंके गुणदोषोंको इनमें क्या किया और क्या दोष है ऐसे यथार्थ विचार करै ॥ ७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥ अतीते कार्यशेषज्ञः  
शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ७९ ॥ यथैनं नाभिंसदध्युर्मित्रोदासीन-  
शत्रवः ॥ तथा सर्वं संविदध्यादिषु सामांसिको नयः ॥ १८० ॥

टीका—उत्तरकालमें कार्योंके गुणदोषको जानता है वह गुणवान् कार्यका आरंभ

करताहै और दोषयुक्तका परित्याग करताहै और जो वर्तमानकालमें शीघ्रही निश्चय करिके कार्यको करताहै और वीतेहुए कार्यमें शेषको जानताहै वह उस कार्यकी समाप्तिमें फलको पाताहै जिसे ऐसे तीनों कालोंमें सावधान होनेसे कभी शत्रुओं करके नहीं दबाया जाताहै ॥ ७९ ॥ जैसे इस राजाको कहेहुए मित्र उदासीन तथा शत्रु बाधा न देंवें ऐसा सब समान करै यह नीतिका संक्षेपहै ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिणोऽर्षुप्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन यया-  
दरिपुरं शनैः ॥ ८१ ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासि ययाद्यात्रा मही-  
पतिः ॥ फाल्गुनं वार्थ चैत्रं वा मांसौ प्रति यथावलम् ॥ ८२ ॥

टीका—जब समर्थ हो शत्रुके देशपर चढाईका आरंभ करै तब इस आगे कहेहुए प्रकारसे शत्रुके देशको शीघ्रता न करिकै जाय ॥ ८१ ॥ चतुरंगसेनाकरि युक्त राजा हाथी रथ आदिकी यात्राके विलम्बसे देरमें यात्रा करताहुआ तथा हेमंत ऋतुके बहुतहै धान्य जिसमें ऐसे शत्रुके देरपर चढाई किया चाहता वह अपनी यात्राके लिये सुंदर मार्गशीर्षके महिने में यात्रा करै और जिस राजाके घोड़े बहुत होंय और शीघ्रगति होंय वह राजा वसंतऋतुके जिसमें धान्य बहुतहै ऐसे शत्रुके देशपर चढाई करना चाहता होय वह फागनमें अथवा चैतमें अपनी सेनाके जाने योग्य कालका उलंघन न करिकै यात्रा करै ॥ ८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्दधुवं जयम् ॥ तदा ययाद्वि-  
गृह्येव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ ८३ ॥ कृत्वा विधानं मूलेतु  
यात्रिकं च यथाविधि ॥ उपगृह्यास्पर्दं चैव चारान्सम्यग्वि-  
धाय च ॥ ८४ ॥ संशोध्य वि विधं मार्गं षड्विधं च वलं स्वकम् ॥  
सांपरायिककल्पेन ययादरिपुरं शनैः ॥ ८५ ॥

टीका—कहेहुए कालोंसे भिन्न कालोंमेंभी जब निश्चय अपना जय जानै तब अपनी सेनाके योग्य ग्रीष्म आदि कालमेंभी हाथी घोड़े आदि बहुत सेनावाला विरोधही करिकै यात्रा करै और शत्रुका अमात्य आदि प्रकृतिमें दंड पारुष्य आदि व्यसन उत्पन्न होनेपर शत्रुके पक्षमें उसकी प्रजाके होनेपर कहे हुए कालसे और कालमेंभी चढाई करै ॥ ८३ ॥ मूल कहिये अपने किले तथा देशमें पार्ष्णिग्राह किये गये प्रधान पुरुषको अधिष्ठाता करिकै रक्षा करनेके योग्य सेनाको एक स्थानमें स्थापित करि यात्राके उपयोगी वाहन आयुध और कवचका शास्त्रकी रीतिसे यात्राका विधान करिकै जैसे पराये देशमें गये हुए इस राजा-

का उधरना होय ऐसेको लेकर शत्रुके पक्षवाले भृत्योंको अपने आधीन करिके कपट करनेवाले दूतोंको शत्रुके देशकी वार्ता जाननेके लिये भेजिके भलीभांति जांगल अनूप आटविक भेदसे तीन प्रकारके मार्गको वृक्षगुल्म आदिके काटने और ऊंचे नीचेके बराबर करने आदिसे शोधन करि हाथी घोडा रथ पयादोंकी सेना और कर्मकर कहिये कामकरनेवालों समेत छः प्रकारकी सेनाको आहार औषध सत्कार आदिसे शोधन करिके संग्रामकी उचित विधिसे शीघ्रही शत्रुके देशको यात्रा करै ॥८४॥८५॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥

गतप्रत्यागते चैवं स हि कर्तुरो रिपुः ॥ ८६ ॥

टीका—जो मित्र गुप्तरूपसे शत्रुका सेवन करताहै और जो भृत्य आदि पहले विगडकर चला गया और पीछे आगया होय उन दोनोंसे सावधान रहै जिस्से वह बहुतही काठन शत्रु है ॥ ८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ॥ वराहमकराभ्यां वा सूच्यां वा गरुडेन वा ॥ ८७ ॥ यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्रलम् ॥ पद्मेन चैवं व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ ८८ ॥

टीका—दंडकी आकृति व्यूहकी रचना आदिहै उसको दंडव्यूह कहतेहैं ऐसही शकट आदि व्यूह भी होते हैं दंडव्यूहमें सेनाके आगे सेनाका स्वामी मध्यमें राजा पीछे सेनापति बगलोंमें हाथी उनके समीप घांटे तिस पीछे पयादे ऐसे रचना करनेसे सब ओरसे बराबर स्थितियुक्त दंडव्यूह होताहै उस्स चहुँ ओर भय होनेपर चलनेयोग्य मार्गको चले और मुख तथा पीछेका भाग पतला बीचका भाग भारी ऐसा बराहव्यूह होजाताहै इसीका जो बीचका भाग बहुत भारी होय तौ गरुडव्यूह होताहै जो दोनों बगलोंसे भय होय तौ इन दोनों व्यूहोंसे यात्रा करै बराहव्यूहका उलटा मकरव्यूह होताहै उस्से आगे पीछे दोनों ओर भय होनेपर यात्रा करै और चीडियोंकी पंक्तिके समान आगे पीछे इकट्ठे होके जहां जहां सेनावालोंकी स्थितिहै और वीरपुरुष जिसकेआगेके भागमें स्थितहैं वह सूचीमुखव्यूह उस्से आगे भय होनेपर यात्रा करै ॥ ८७ ॥ जिस दिशासे शत्रुके भयकी शंका होय उसीमें अपनी सेनाको फैलावे जिसके चारों ओर बराबर सेना फैली होय और बीचमें जिसके राजा स्थितहैं उस कमलव्यूहकारि पुरसे निकलके सदा पडाव डालै ॥ ८८ ॥

सेनापतिबलाच्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ८९ ॥ गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसं-

ज्ञान्समंततः॥स्थाने युद्धे च कुशलानभीरुनविकारिणः ॥१९०॥

टीका—हाथी घोड़े रथ पयादेरूप दश अंगका एक पति करना चाहिये उसको पत्तिक कहतेहैं दशपत्तिकका एक स्वामी सेनापति कहाताहै दश सेनापतिका नायक एक एक सेनानायक वा बलाध्यक्ष होताहै उन दोनों सेनापति और बलाध्यक्षको सब दिशाओंमें युद्धके लिये नियुक्त करै और जब जिस दिशासे भयकी शंका होय तब उस दिशाको आगे करै ॥ ८९ ॥ विश्वासवाले पुरुष जिनके अधिष्ठाताहैं ऐसे गुल्मनाम सेनाके भागोंको तथा स्थित होके अथवा हटिकै युद्ध करनेके लिये कियाहै भेरी ढोल शंख आदिका संकेत जिन्होंने और ठहरने तथा युद्धमें प्रवीण निर्भय व्यभिचार रहित सेनापति बलाध्यक्षोंको दूरि सब दिशाओंमें दूसरेका प्रवेश रोकनेके लिये और शत्रुकी चेष्टा जाननेके लिये नियत करै ॥ १९० ॥

संहतान्योर्धयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून्॥सूच्या वज्रेण चैवैतान्-  
नू व्यूहेन व्यूह्य योर्धयेत् ॥ ११ ॥ स्यन्दनाश्वैः समे युद्धयेदूनूपे  
नौ द्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्माम्युधैः स्थले ॥१२॥

टीका—थोड़े योद्धाओंको इकट्ठे करिकै लडावै और बहुतोंको अच्छे प्रकारसे फैला-  
यदे पहले कही हुई सूचीसे अथवा वज्रनाम व्यूहसे तीनि प्रकारसे खडी है सना जिसकी  
ऐसी रचना करिकै योद्धाओंको लडावै ॥ ११ ॥ समान भूमिके भागमें रथ तथा घोड़ोंसे  
युद्ध करै वहां उनकी युद्धकी सामर्थ्य है और जिस देशमें जल बहुतहै वहां नाव तथा  
हाथियोंसे युद्ध करै और वृक्ष तथा गुल्मोंसे घिरेहुए स्थानमें धनुषधारियोंसे और गढि-  
ल्ले कंटक पत्थर आदिरहित स्थलमें ढाल तलवारि भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करै ॥१२॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान्॥दीर्घांश्च धूंश्चैव न-  
रानग्रा नीकेषु योजयेत् ॥ १३ ॥ प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्  
परीक्षयेत् ॥ चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥१४॥

टीका—कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको तथा मत्स्य कहिये विराट देशके निवासियोंको  
और पंचाल कहिये कान्यकुब्ज तथा अहिच्छत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको और शूरसेन  
कहिये माथुरांको बहुधा भारी शरीर शूरता तथा अहंकारके योग होनेसे सेनाके  
आगे युद्ध करावै तैसेही और देशोंकेमी छोटी बडी देहवाले युद्धके अभिमानी मनु-  
ष्योंको सेनाके आगेही रक्खै ॥ १३ ॥ सेनाकी व्यूहरचना करिकै विजयमें धर्मका  
लाभ और सन्मुख मारे गयेको स्वर्गका लाभ और भगनेमें स्वामीके पाप तथा नष्ट  
ककी प्राप्ति होतीहै ऐसे कहिकै उनको युद्धका उत्साह करावै और वे किस अभिप्रा-

यसे प्रसन्न होतेहैं और किससे कुपित होतेहैं इस बातकी परीक्षा करै ऐसेही शत्रुओंसे युद्ध करते हुएभी योद्धाओंकी सकपट निष्कट चेष्टाओंको जानै ॥ ९४ ॥

उपरुध्यारिमसीत राष्ट्रं चार्स्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चार्स्यं संततं  
यवंसान्नोदकेन्धनम् ॥ ९५ ॥ भिन्द्वाच्चैर्वं तडांगानि प्राकारपरि-  
स्वास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ ९६ ॥

टीका-किलेमें होवै अथवा वाहर होय ऐसे युद्ध करते हुए राजाको घेरिके पडा रहै और इसके देशको उजाडै और इसके घास अन्न पानी ईंधनको नष्ट वस्तुओंके मिलाने आदिसे दूषित करै ॥ ९५ ॥ शत्रुके जल पीनेयोग्य तलाव आदिकोंको और किला परकोटा आदिको तोडदे और उसकी खाइयोंको तोडने भरदने आदिसे जलरहित करदे ऐसे शत्रुओंको शंकारहित होकै दवावै और शक्तिको लेखै और रात्रिमें ढक्का कांहलिक आदि शब्दोंसे डरपावै ॥ ९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्बुद्धयेतैर्वं च तत्कृतम् ॥ युक्ते च देवे युद्धयेत्  
जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ ९७ ॥ सांभ्रा दानेन भेदेन समस्तेरथां  
पृथक् ॥ विजेतुं प्रथेतेतारिर्द्धं युद्धेन कदाचन ॥ ९८ ॥

टीका-भेदके योग्य राज्यके चाहनेवाले शत्रुके वंशके लोगोंको तथा क्षोभयुक्त अमात्य आदिकोंको फोडै और भेदसे अपने किये गये उनकी चेष्टाको जानै और शुभग्रहकी दशा आदिसे फलयुक्त देवकी जानिके जयकी इच्छासे निर्भय युद्ध करै ॥ ९७ ॥ प्रीति तथा आदरसे देखने और हितके कहने आदि रूप सामसे और शत्रुकी हाथी घोडा रथ सुवर्ण आदिके देनेरूप दानसे और शत्रुकी प्रजा और राज्य चाहनेवाले उसके अनुगामियोंके फोडनेरूप भेदसे इन सब उपायोंसे सामर्थ्यके अनुसार शत्रुओंके जीतनेका यत्न करै युद्धसे कभी नहीं ॥ ९८ ॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ॥ पराजयश्च संग्रामे  
तस्माद्बुद्धं विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥ त्रयाणामध्युपायानां पूर्वोक्तानाम-  
सम्भवे ॥ तथा युद्धयेत् संपन्नो विजयेत् रिपून्यथा ॥ २०० ॥

टीका-युद्ध करते हुए राजाओंकी थोडे बल और बहुत बलकी अपेक्षाके विनाही नियमसे जीति हारि हो देखीजातीहै तिससे और उपायोंके होनेपर युद्धको नहीं करै ॥ ९९ ॥ पहले कहे हुए तीनि साम आदि उपायोंसे काम न होनेपर जीति हारिके संदेहमेंभी यत्नवाला ऐसे युद्ध करै जैसे शत्रुओंको जीति लेवै जिस्से जीतिमें बर्षका

लाभ होताहै और सन्मुख मरनेमें स्वर्ग मिलताहै और जहां निस्संदेह पराजय कहिये हारना पड़े वहां युद्धसे हठिगाना अच्छाहै जैसे आगे कहेंगे कि आत्मा तु रक्ष्य इति अर्थात् अपनी सदा रक्षा करै यह मेधातिथि और गोविंदराजने लिखाहै ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैवं धार्मिकान् ॥ प्रंदद्यात्परिहारंश्च  
ख्यैापयेद्भयानि च ॥ १ ॥ सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चि-  
कीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्द्रव्यं कुर्याच्च समयाक्रियाम् ॥ २ ॥

टीका—पराये देशको जीतिकै उसमें जो देवता होंय उनको तथा धर्मप्रधान ब्राह्मणोंको भूमि सुवर्ण आदिके दान तथा सन्मानसे पूजन करै जीते हुए द्रव्यके एक भागके देने आदिहासे यह पूजन करै सो याज्ञवल्क्यने कहाहै “नातःपरतरो धर्मो नृपाणां यद्राजाजित्वाविप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाऽभयं सदा” अर्थ—इस्से परे राजाओंको धर्म नहींहै कि रणमें जोडा हुआ धन ब्राह्मणोंको दियाजाय और प्रजाको सदा अभय दिया जाय इति ॥ तथा देवता और ब्राह्मणोंके लिये मैंने यह दिया ऐसे देशके वासियोंको परिहार दे तथा स्वामीकी भक्तिसे जिन्होंने हमारा अपकार कियाहै उनकी मैंने क्षमा की अब निर्भय हो मुखसे व्यापार करौ ऐसे अमय करै ॥ १ ॥ शत्रु और उसके मंत्री आदि सर्वोहीका संक्षेपसे अभिप्राय जानकर उस देशमें बलसे मारै हुए राजाके वंशहीके पुरुषको राज्यमें स्थापित करै और तुमको यह करना चाहिये यह न करना चाहिये यह उसके लिये तथा उसके मंत्रियोंके लिये नियम करै ॥ २ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजये-  
देनं प्रधानपुरुषैःसह ॥ ३ ॥ आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकार-  
कम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशंस्यते ॥ ४ ॥

टीका—उन पराये मनुष्योंके लिये देशके धर्मसे शास्त्रसे प्राप्त आचारोंकी प्रमाण करै और इस राज्यमें बैठाए हुये राजाको मंत्री आदिके समेत रत्न आदिकोंके देनेसे पूजन करै ॥ ३ ॥ यद्यपि वांछित वस्तुओंका ले लेना अप्रिय करनेवालाहै और देना प्रिय करनेवालाहै यह स्वभावहै तिसपरभी समय समयमें लेना देना प्रशंसाके योग्य होताहै इस्से उसी कालमें पूजन करै ॥ ४ ॥

सर्वे कर्मदेमार्यत्तं विधाने दैवमानुषे ॥ तयोदैवमचिन्त्यं तु मां-  
नुषे विद्यते क्रिया ॥ ५ ॥ सह वापि ब्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा  
प्रयत्नतः ॥ मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ ६ ॥



टीका-पूर्वजन्ममें इकट्ठे किये पुण्य पापरूप कार्य दैवके आधीनहैं और- इस जन्ममें इकट्ठे किये हुए मनुष्यके व्यापारके आधीनहैं उन दोनोंमेंसे दैवका तौ चिंतबन नहीं हो सकताहै मानुषमें तौ विचार होसकताहै इस लिये मानुषके ही द्वारा कार्य सिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥५॥ चढाई करनेयोग्य शत्रुसे युद्ध करना चाहिये अथवा वही मित्र होजाय और उस करिके सुवर्ण दिया जाय अथवा भूमिका एक देश दिया जाय इन तीनोंको यात्राका फल जानिके उसके साथ संधि कहिये मिलाप करिके यत्नसे चलदे ॥ ६ ॥

पार्षिणग्राहं च संप्रेक्ष्य तथार्क्रन्दं च मण्डले॥मित्रार्दथाप्यमित्रा-  
द्वां यात्राफलमवाप्नुयात् ॥७॥ हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न  
तथैवते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमर्ष्यायतिक्षमम् ॥ ८ ॥

टीका-जीतनेकी इच्छासे शत्रुपर गये हुए राजाके पीछे जो आके उसके देश आदिको दवाताहै वह पार्षिणग्राह कहाताहै वैसा करनेवाले उसका रोकनेवाला जो अनंतर राजा है उसको आक्रन्द कहतेहैं उन दोनोंको देखकर यात्रा करनी चाहिये अथवा मित्रताको प्राप्त हुए शत्रुसे यात्राका फलग्रहण करे उन दोनोंके विना देखे करता हुआ राजा कदाचित् उनके किये हुए दोष करि ग्रहण किया जाय ॥ ७ ॥ सुवर्ण और भूमिके लाभसे राजा ऐसा नहीं वृद्धिको प्राप्त होताहै जैसा इस समय दुर्बलभी आगेकी वृद्धियुक्त स्थिर मित्रको पाके वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेवं च ॥ अनुरक्तं स्थिरारम्भं  
लघु मित्रं प्रशस्यते ॥९॥ प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दार्तार-  
मेवं च ॥ कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमार्हुररिं बुधाः ॥ २१० ॥

टीका-धर्मका जाननेवाला तथा किये हुए उपकारका जाननेवाला और जिसकी प्रकृति कहिये स्वभाव संतोषयुक्त होय ऐसा और प्रीति करनेवाला और जिनके आरम्भ स्थिरहैं ऐसे कामोंका करनेवाला मित्र प्रशस्त कहिये उत्तमहै ॥ ९ ॥ विद्वान् कुलीन शूर चतुर दाता कियेका जाननेवाला और धीरजवाला अर्थात् सुख-दुःखमें एकरूप ऐसे शत्रुको पंडित दुरुच्छेद कहिये दुःखसे उखाडने योग्य कहते हैं तिस्से ऐसे शत्रुके साथ मिलाप करना चाहिये ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥ स्थौललक्ष्यं च सत-  
तमुदासीनगुणोदयः ॥११॥ क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धि-

करीमपि ॥ परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ १२ ॥

टीका—साधुपन पुरुषविशेषका जानना शूरता दयावान् होना बहुत देनेवाला होना ये उदासीनके सब गुणहैं तिससे इस प्रकारसे उदासीनका आश्रय लेकर जिसके लक्षण कहि चुकेहैं ऐसे शत्रुके साथभी युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ अनामय कहिये रोग न होने आदि कल्याणकी देनेवाली और नदीमातृक होनेसे सदा सब सस्योकी देनेवाली और बहुतसे तृण, आदिके योगसे पशुओंकी बढानेवाली भूमिको अपनी रक्षाके लिये राजा शीघ्रही अपनी रक्षाका और प्रकार न होनेपर त्याग करै ॥ १२ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्द्वारान् रक्षेद्धनैरपि ॥ आत्मानं संततं रक्षेद्द्वारै-  
रपि धनैरपि ॥ १३ ॥ सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो  
भृशम् ॥ संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् सृजेद्बुधैः ॥ १४ ॥

टीका—आपत्तिनिवारण करनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये और धनके परित्यागसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी फिर स्त्री तथा धनके त्यागसे भी रक्षा करै ॥ १३ ॥ कोपका क्षय प्रकृतिका कांप मित्रका व्यमन इत्यादिक आपत्तियोंको एकसाथ अधिकतासे उत्पन्न जानिकै मोहको न प्राप्त होय किन्तु जुदे जुदे अथवा सब सामादिक उपायोंको शास्त्रका जाननेवाला काममें लावै ॥ १४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥ एतन्नयं समाश्रित्य प्र-  
यतेताऽर्थसिद्धये ॥ १५ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रि-  
भिः ॥ व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ १६ ॥

टीका—उपेता कहिये उपाय करनेवाले आपको और उपेय कहिये प्राप्त होने योग्य-  
को और उपाय सामादिक ये सब परिपूर्ण इन तीनोंका आश्रय लेकै सामर्थ्यके अनु-  
सार प्रयोजनसिद्धिके लिये यत्नकरै ॥ १५ ॥ ऐसे पहले कहेहुए प्रकारसे मंत्रियोंके साथ  
सब राज्यके वृत्तांतका विचार करि पीछे शस्त्र आदिकोंके अभ्यासकी कसरत करिकै  
मध्याह्नमें स्नान आदि तथा मध्याह्नके कृत्य करि भोजनको रनवासमें जाय ॥ १६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैर्रहार्थैः परिचारकैः ॥ सुपरीक्षितमन्त्राद्यम-  
द्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥ १७ ॥ विषत्रैर्रगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि यो-  
जयेत् ॥ विषघ्नानि च रत्नानि निर्यतो धारयेत्सदा ॥ १८ ॥

टीका—वहां रनवासमें अपने तुल्य भोजन करनेके समयके जाननेवाले दूसरे करि  
नहीं फोडनेयोग्य ऐसे रसोई करनेवालोंकरि किये हुए और अच्छी भांति चकोर

आदिक देखनेसे परीक्षा किये गये अर्थात् सविष अन्नको देखकै चकोरकी आंखें लाल होजातीहैं और विषके दूर करनेवाले मंत्रोंकरि जपे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ विषकी नाश करनेवाली औषधियोंसे सब भोजनके पदार्थोंको मिलावै और विषके हरनेवाले रत्नोंको यत्न करिकै सदा धारण करै ॥ १८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ॥ वेपामरणसंशुद्धाः स्फु-  
शेयुः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासना-  
शने ॥ स्नाने प्रसाधने चैवं सर्वालंकारकेषु च ॥ २२० ॥

टीका-गूढ चारके द्वारा परीक्षा की गई और गुप्त शस्त्रका ग्रहण तथा विषसे लिपे हुए आभरणोंके धारण करनेकी शंकासे जिनके वेष और आभरण देखि लिये गयेहैं जिनका मन अन्यत्र नहींहै ऐसी स्त्रियां चामर स्नान पान जल और धूप देना इन सब बातोंसे राजाकी सेवा करै ॥ १९ ॥ ऐसे वाहन शय्या आसन भोजन स्नान और चन्दन आदि अनुलेप इन सब अलंकारकी वस्तुओंमें नाना प्रकारकी परीक्षा आदि प्रयत्न करै ॥ २२० ॥

भुक्तवान् विहरैच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥ विहृत्य तु यथार्कालं  
पुनः कार्योगि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥ अलंकृतश्च संपश्येदायधीयं  
पुनर्जनम् ॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२ ॥

टीका-भोजन करिकै वहीं रनवासमें भार्याओंके साथ विहार करिकै दिनके सातमें भागतक क्रीडा करि आठमें भागमें राज्यसम्बन्धी कार्योंका विचार करै ॥ २१ ॥ अलंकृत अर्थात् सब वस्त्र आभूषण आदिकोंको धारण किये हुए शस्त्र धारण करनेवाले मनुष्योंको अर्थात् सिपाहियोंको देखै और सब वाहनोंको तथा शस्त्रों और आभरणोंको देखै ॥ २२ ॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् ॥ रहस्याख्यायिनां  
चैवं प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ २३ ॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समै-  
नुज्ञाप्य तं जनम् ॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥ २४ ॥

टीका-उसके पीछे संध्योपासन करिकै अंतःपुरके एकांतस्थानमें जाकै शस्त्रोंको लिये हुए एकांतमें कहनेवाले दूतोंके कामोंको सुनै ॥ २३ ॥ उन मनुष्योंको आज्ञा देकर दूसरी कक्षामें जाकै स्त्रियों करि युक्त भोजनके लिये फिरि रनवासमें जावै ॥ २४ ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥ संविशेत्तु यथार्कालं-

लमुँत्तिष्ठेच्चं गतक्लमः ॥२५॥ एतद्विधानमा तिष्ठेदरोगः पृथिवी-  
पतिः ॥ अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनि<sup>१</sup>योजयेत् ॥ २२६ ॥  
इतिमानवेधर्मशास्त्रेभृशुप्रोक्तायांसंहितायांराजधर्मोनामसप्तमोऽध्यायः

टीका—वहां कुछ खायके नगरोंके शब्दसे आनंदित हो उचित समयमें शयन कर  
फिर श्रमरहित हो पहर भरके तडके उठै ॥ २५ ॥ रोगरहित राजा इस कहे हुए  
विधानको आप करै और जो अस्वस्थ अर्थात् रोग आदिसे ग्रस्त होय तौ यह सब  
सेवकोंसे करावै ॥ २२६ ॥

इतिश्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मद्विवेदितनुजश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैवं  
विनीतैः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥ तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्य-  
म्य दक्षिणम् ॥ विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् ॥ २ ॥

टीका—इस प्रकारके शत्रु राजाओंसे प्रजाकी रक्षासे पाई है जीविका जिसने  
ऐसा उन्हीं प्रजाओंके आपसके विवादसे उत्पन्न पीडाकी शांतिके लिये ऋणा-  
दान आदि अठारह हैं विषय जिसके विरोधयुक्त अर्थी प्रत्यर्थी ( मुहई मुहआलह ) के  
वचनोंसे उत्पन्न हुए संदेहके हरनेवाले विचारको व्यवहार कहतेहैं उन व्यवहारोंके  
देखनेकी इच्छा करता हुआ राजा जो आगे कहे जायगे उन लक्षणोंकरि लक्षित  
ब्राह्मणों और मंत्रियोंके और सातमें अध्यायमें कहे हुए पंचांग मंत्रोंके साथ  
नम्र तथा वाणी हाथ पांवकी चपलता न होनेसे शांतस्वरूप क्योंकि राजाके  
उद्धत होनेसे वादी प्रतिवादियोंकी बुद्धि ठीक न रहनेसे अच्छी भांति न कहसक-  
नेपर तत्त्वका निर्णय नहीं होताहै इस भांति आगे कही सभामें प्रवेश करै ॥ १ ॥  
उस सभामें भारी कामकी अपेक्षासे बैठा हुआ और छोटे काममें खडा हुआभी  
दाहिनी भुजाको उठाय अनुद्धत वेष अलंकारी हो राजा कार्योंका विचार करै ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥

अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

टीका—अठारह व्यवहारके मार्गोंमें पढे हुए और देश जाति कुलके व्यवहारके

जाने गये उन ऋणादान आदि कार्योंकी शास्त्रसे निश्चय किये हुए दिव्य कहिये शपथ आदि कारणोंसे पृथक् २ प्रतिदिन विचार करै उन्हीं अठारहको गिनाते हैं ॥ ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः॥संभूय च समुत्थानं  
दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यति-  
क्रमः ॥ क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥ सी-  
माविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥ स्तेयं च साहसं चैव  
स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥ स्त्रीपुंघमो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव  
च ॥ पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

टीका—उनमें पहला ऋणादान अर्थात् उधार लेना १ निक्षेप कहिये धरोहड  
२ अस्वामिविक्रय कहिये स्वामिके विना बेचिदेना ३ संभूयसमुत्थान कहिये  
इकठे हो बनियां आदिकोंकी क्रियाका करना ४ दत्तस्यानपकर्म कहिये दिये हुए  
धनका अपात्रकी बुद्धिसे अथवा क्रोध आदिसे ले लेना ५ नौकरका मासिक न देना  
६ किई हुई व्यवस्थाको न मानना ७ लेने तथा बेचनेमें पछितावा करनेसे बदल-  
जाना ८ स्वामीका और पशुओंके पालनेवालेका झगडा ९ ग्राम आदिकी सीमाका  
झगडा १० वाक्पारुष्य कहिये गाली आदिका देना ११ दंडपारुष्य मारना आदि  
१२ स्तेय कहिये चुराकै धन लेना १३ साहस कहिये बलसे धन छीन लेना १४  
स्त्रीका पराये पुरुषसे संयोग १५ स्त्रीसहित पुरुषकी धर्मव्यवस्था १६ पिता आदिके  
धनका विभाग १७ फांसोंसे खेलना अथवा दाव लगाके पक्षी मेंढा आदिका लडाना  
१८ ये अठारह व्यवहारके स्थान हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥

धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

टीका—इन ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें बहुधा विवाद करनेवाले  
मनुष्योंके अनादि तथा परंपरासे चले आये हुए नित्य धर्मका आश्रय ले कार्यका  
निर्णय करै भूयिष्ठ शब्दसे और भी विवादके स्थानहैं यह सूचित करताहै वे प्रकीर्णक  
शब्दसे नारदादिकोंने कहेहैं सोई नारदने कहाहै जैसे "न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकी-  
र्णकमिति" अर्थ जो पहले कहेहुए अठारहमें नहीं देखे गये हैं वे सब प्रकीर्णकहैं ॥८॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुज्याद्विद्वी-  
सं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९॥ सोऽस्य कार्याणि सर्पश्येत्सभ्यैरेव

त्रिभिर्वृतः ॥ सभामेवं प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

टीका—जब दूसरे कामोंकी आवश्यकतासे अथवा रोग आदिसे राजा आप कार्योंको न देखै तब उनके देखनेके लिये कार्य देखना जाननेवाले ब्राह्मणको नियत करै ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण राजाके देखनेयोग्य कार्योंको सभाके योग्य धर्मात्मा और कार्य देखनेके जाननेवाले तीनि ब्राह्मणोंकरि युक्त उसी सभामें जाय बैठिकै अथवा खडा होकै फिरता हुआ नहीं उन ऋणादान आदि कार्योंको देखै ॥ १० ॥

यस्मिन्दे शे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो विद्वा-  
न्ब्राह्मणस्तीं सभां विदुः ॥ ११ ॥ धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोप-  
तिष्ठते ॥ शल्यं चास्यं न कृन्तन्ति विद्वास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

टीका—जिस स्थानमें ऋक् यजु और सामके जाननेवाले तीनिभी ब्राह्मण और राजाका अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण बैठताहै उस सभाको चतुर्मुख सभा मानतेहैं ॥ ११ ॥ भा प्रकाशको कहतेहैं उस करिकै सहित होय उसको सभा कहतेहैं यहां विद्वानोंके समूहको सभा मानतेहैं देशमें विद्वानोंके समूहरूप सभामें सत्यकथनसे उत्पन्न धर्म मिथ्याकथनसे उत्पन्न अधर्म करि पीडित होताहै अर्थात् अर्थिप्रत्यर्थियोंको मध्यमें एकके सत्य कहनेसे और दूसरेके झूठ कहनेसे वे सभासद इस धर्मके पीडा होनेवाले होनेसे काटिके समान अधर्मको नहीं निकालतेहैं तब वेही उस अधर्मरूपी शल्यसे विधिजातेहैं ॥ १२ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥ अर्बुवन्विंश्रुवन्वापि  
नैरो भवति किं लिषी ॥ १३ ॥ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रा-  
नृतेन च ॥ ह्यन्यते प्रेक्षमाणानां ह्येतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

टीका—सभाको जानकर व्यवहार देखनेके लिये उसमें न जाना चाहिये और जो पूंछा जाय तो सत्यही कहना चाहिये चुप बैठा हुआ अथवा झूठ कहता हुआ दोनों प्रकारसे शीघ्रही पापी होताहै ॥ १३ ॥ जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए उनका अनादर करिकै अर्थिप्रत्यर्थियों करि अधर्मसे धर्म नहीं दिखाई देताहै और जहां साक्षियोंकरि सत्य झूठसे नाश किया जाताहै और वे सभासद उसका यथार्थ निर्णय नहीं करसकते वहां वेही सभासद उस पापसे नष्ट होजातेहैं ॥ १४ ॥

धर्म एव ह्येतो ह्यन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो  
मी नो धर्मो ह्येतोऽवधीतः ॥ १५ ॥ वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः

कुरुते ह्यलम् ॥ वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥

टीका—अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्मही इष्ट अनिष्टसमेत नाश कर देताहै अर्थात् प्रत्यर्थी आदि नहीं वही धर्म अनतिक्रान्त कहिये माना हुआ इष्ट अनिष्टसमेत रक्षा करताहै तिस्से धर्मका अतिक्रमण न करना चाहिये अतिक्रमण कियाहुआ धर्म तुम समेत हमको न मारै सभासदोंके कुमार्गमें प्रवृत्त होनेपर यह प्राङ्गुलिकाका संबोधनहै अथवा जो यह निषेध अर्थमें अव्यय है तौ नोहती धर्मों मावधीत अर्थात् नहीं अतिक्रमण किया हुआ धर्म नहीं मारताहै यह अभिप्रायहै ॥ १६ ॥ कामनाओंको जो वरसै उसको वृष कहतेहैं वृषशब्दसे धर्मही कहा जाताहै और अलं शब्दका अर्थ वारण कहिये मना करनाहै तिस्से जो धर्मका वारण करताहै उसको देवता वृषल जानतेहैं जाति वृषल नहीं है तिस्से धर्मका लोप न करै ॥ १६ ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति र्यः ॥ शरीरेण संमं नौशं सं-  
वमन्यर्द्धि गच्छति ॥ १७ ॥ पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिण-  
मृच्छति ॥ पादः संभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

टीका—धर्मही एक मित्रहै जो मरनेके समयभी वांछित फल देनेके लिये साथ जाताहै और सब स्त्री पुत्र आदि शरीरहीके साथ नाशको प्राप्त होतेहैं तिस्से पुत्र आदिकोंके स्नेहकी अपेक्षासेभी धर्म न छोडना चाहिये ॥ १७ ॥ दुष्टव्यवहार देखनेसे अर्थात् सत्यनिर्णय न करनेसे अधर्मका चौथा भाग अधर्म करनेवाले अर्थी वा प्रत्यर्थीको प्राप्त होताहै और दूसरा चौथा भाग झूठ बोलनेवाले साक्षीको और तीसरा चौथा भाग सब सभासदोंको और शेष चौथा भाग राजाको पहुंचताहै इस भांति सब पापके भागी होतेहैं ॥ १८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च संभासदः ॥ एनो गच्छति कर्तारं  
निन्दाहो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥ जातिमात्रोपजीवी वा कॉमं स्या-  
द्ब्राह्मणब्रुवः ॥ धर्मप्रवक्ता नृपते न तु शूद्रैः कथंचन ॥ २० ॥

टीका—जिस सभामें झूठ बोलनेसे निन्दाके योग्य अर्थी वा प्रत्यर्थी अच्छे प्रकार न्यायके देखनेसे निन्दा किये जाते हैं वहां राजा पापरहित होताहै और सभासदोंकोभी पाप नहीं लगताहै करनेवाले अर्थी आदिकोंहीको पाप प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ जिसकी केवल जाति ब्राह्मणहै कर्म नहीं है और वैश्य आदिके समान साक्षी आदिकोंसे न्याय अन्यायके करनेको समर्थ ऐसा ब्राह्मणजातिभी अथवा जिसका संदेहहै आपको ब्राह्मण कहता है वहभी कहे हुए योग्य ब्राह्मणके न होनेपर कहीं राजाके कार्य

दर्शनमें नियुक्त होताहै और धर्मात्मा व्यवहारका जाननेवालाभी शूद्र कभी नहीं होताहै अर्थात् योग्य ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यभी कार्यका देखनेवाला होताहै शूद्र कभी नहीं होताहै ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तुं कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ॥ तस्य सीदति तद्राष्ट्रं  
पङ्के गौरिवं पश्यतः ॥ २१ ॥ यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिककान्तम-  
द्विजम् ॥ विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥

टीका—जिस राजाके धर्मका निर्णय शूद्र करताहै उसके देखते हुए उसका देश कीचमें गौके समान दुःखी होताहै ॥ २१ ॥ जिस देशमें शूद्र बहुतेहैं और नास्तिक अर्थात् जो परलोकको नहीं मानते ऐसे बहुत होंय और जो ब्राह्मणोंसे शून्य होय वह सब दुर्भिक्ष तथा रोगसे पीडित हो शीघ्रही नष्ट होजाताहै ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यः  
कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥ अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्या धर्माधर्मौ च केव-  
लौ ॥ वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कारिणाम् ॥ २४ ॥

टीका—धर्म देखनेके लिये आसनपर बैठकै देहको ढके हुए एकाग्रमन हो लोक-पालोंको प्रणाम करि कार्योंको देखै ॥ २३ ॥ प्रजाकी रक्षा तथा उखाडनेरूप वे-दसंबंधी अर्थ और अनर्थको जानकर परलोकके लिये केवल धर्म अधर्मका अनुरोध करि जिसमें विरोध न होय ऐसे कार्यार्थियोंके ( मुकद्दमेवालोंके ) कार्योंको ( मुकद्द-मोंको ) देखै जो कोई वर्णोंके होय तो ब्राह्मण आदिके क्रमसे देखै ॥ २४ ॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ स्वरवर्णेङ्गिताकारै-  
श्चक्षुषां चेष्टितेन च ॥ २५ ॥ आकारैरिङ्गितैर्गत्यां चेष्टया भाषि-  
तेन च ॥ नेत्रवक्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

टीका—बाहरी स्वर आदि चिन्होंमें अर्थी ( मुद्दई ) और प्रत्यर्थी ( मुद्दआलह ) के भीतरी अभिप्रायको लक्षित करै स्वरका गद्गद होना कहिये बोलनेमें गलाभरि आना और वर्ण कहिये स्वाभाविक रंगसे मुखका रंग बदलजाना अर्थात् मुखमें कालापन आदिका होजाना और इंगित कहिये नीचकी देखना आदि और आकार कहिये देहमें पसीना आना रोमोंका खडा होना आदि और चेष्टा कहिये हाथोंका फटकारना आदि इन सब बातोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके हृदयकी सच्ची झूठी बातोंको लक्षि-त करै ॥ २५ ॥ पहले कहे हुए आकार आदिसे और गतिसे अर्थात् पैरोंके ठीक



न रखनेसे - चेष्टासे बोलनेसे और नेत्र तथा मुखके विकारसे मनकी भीतरी बात जानी जातीहै ॥ २६ ॥

बालदार्यादिकं रिक्थं तावद्राजानुर्पालयेत् ॥ यावत्सं स्यात्सर्मावृ-  
तो यावच्चातीतशैशवं ॥ २७ ॥ अवशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्द्रक्ष्यं नि-  
ष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥

टीका-जिसको बालकके चाचा ताऊ आदि अन्यायसे लिया चाहते होंगे ऐसे अनाथ बालकके धनकी राजा तबतक रक्षा करै जबतक यह बालक छत्तीस वर्षके कहे हुए ब्रह्मचर्यको पूरा करिके गुरुके कुलसे न लौटके आवै. ऐसेका बालकपन अवश्य दूर होनायगा और जो असमर्थ होनेसे बालकही लौट आवै उसकाभी जबतक बालकपन न निकल जाय तबतक उसके धनकी रक्षा करै बालकपन सोलह वर्षतक रहताहै क्योंकि 'बाल आपोडशादर्शात्' सोलह वर्षतक बालक रहताहै यह नारदका वचनहै ॥ २७ ॥ जिसके पतिने दूसरा विवाह कर लियाहै ऐसी स्वामीकारि निर्वाहके लिये दिया हुआ वांझ स्त्रीका धन और पुत्ररहितका और पतिव्रता विधवाका और रोगिणी स्त्रीका जो धनहै उसकी बालकके धनके समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीवन्ती .।ं तु तासां य तद्वरेयुः स्वबान्धवाः ॥ तार्च्छिष्याञ्चोरेद-  
ण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥ प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा  
त्र्यब्दं निर्धापयेत् ॥ अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ३०

टीका-हम इस तुह्यारे धनकी और अधिकारियोंसे रक्षा रखेंगे ऐसे बहानेसे जो बांधव जीवती हुई स्त्रीके धनको ले ले उनको आगे कहे हुए चोरके दंडसे धर्मात्मा राजा दंड देवै ॥ २९ ॥ जिसका स्वामी नहीं जाना भया उसको वही राजा किसका क्यों खोगयाहै ऐसे डांडी पिटवाके राजद्वारा आदिमें रखवाके तीनि वर्षतक राह देखै जो तीनि वर्षके भीतर धनका स्वामी आय जाय तौ वही लेवै और तीनि वर्षके पीछे राजा अपने काममें लावै ॥ ३० ॥

ममेदमि ति यो ब्रूयात्सो ऽनुयोज्यो यथाविधि ॥ संवाद्यं रूपसंख्या-  
दीन्स्वामी तद्व्यैर्मर्हति ॥ ३१ ॥ अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं  
चै तत्त्वतः ॥ वैर्णं रूपं प्रमाणं च तत्संमं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

टीका-जो कहे कि यह मेरा धनहै उस्से कैसाहै कितनाहै और कहां खोया इसभांति

पूँछना चाहिये तिस पछि जो वह रूप और संख्या आदिको सत्य कहै तौ वह धनका स्वामी धन पानेके योग्यहै ॥ ३१ ॥ नष्ट हुए द्रव्यके देश कालको अर्थात् इस देशमें आर इस समयमें नष्ट हुआहै और वर्णकहिये सपेद आदि रंग वाकडा मुकुट आदि और प्रमाणको न जानता हुआ पुरुष उस नष्ट हुए द्रव्यके बराबर दंडको योग्यहै ॥ ३२ ॥

आददीतांथ षड्भागं प्रणैष्टाधिगतान्नृपैः ॥ दशमं द्वादशं वापि  
सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥ प्रणैष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधि-  
ष्ठितम् ॥ यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् रीजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जो खोयाहुआ धन राजाने पायाहै उसमेंसे छठा दशमां अथवा वारहवां भाग रक्षा आदिके कारणसे पहले साधुओंका यह धर्म है इस बातको जानता हुआ राजा ग्रहण करै धनके स्वामीका निर्गुणताकी तथा सगुणताकी अपेक्षा यह छठे भाग आदिके लेनेका विकल्पहै वाकी धनके स्वामीको देवै ॥ ३३ ॥ जो किसीका खोया हुआ धन राजाके नौकरोंको मिलै उसको राजा पहरमें रखवावै उसकी चोरीमें जिन चोरोंको पकडै उनको हाथीसे मरवावै ॥ ३४ ॥

ममार्थमिति यो ब्रूयान्नधिं सत्येन मानवः ॥ तस्याददीत षड्भागं  
राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥ अनृतं तु वैदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशम-  
ष्टमम् ॥ तस्यैव वा निर्धानस्य संख्यायां लपीयसीं कलाम् ॥ ३६ ॥

टीका—जो मनुष्य आप निधिको ( भूमिमें गडी द्रव्यको ) पाकै अथवा औरकी पाई हुईको मेरी यह निधिहै यह सत्य प्रमाणसे अपने संबंधको प्रगट करै उस पुरुषकी सगुण निर्गुणकी अपेक्षा उस निधिसे आठवां भाग राजा लेवै और शेष उसको देवै ॥ ३५ ॥ जो अपना नहींहै उसको अपना कहाता हुआ पुरुष अपने धनके आठमं भागसे दंड योग्यहै अथवा उसी निधिके बहुतही छोटे भागको गनिकै जिस्से उसको दुःख न होय दंड करै ॥ ३६ ॥

विद्वान्स्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निर्धिमम् ॥ अशेषतोऽप्याददीत  
सर्वस्याधिपतिं हि सः ॥ ३७ ॥ यं तु पश्येन्नधिं राजां पुराणं नि-  
हितं क्षितौ ॥ तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वा धर्मं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

टीका—विद्वान् ब्राह्मण तौ पहले रक्खी हुई निधिको देखकर सब ले लेवै छठा भाग राजाको न देवै जिस्से वह सब धनसमूहका स्वामीहै ॥ ३७ ॥ जो पुरानी

भूमिमें गडी हुई बिना स्वामीकी निधिको राजा पावै तौ उसमेंसे आधी ब्राह्मणोंको देकर आधी अपने भंडारमें जमा करै ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ॥ अर्धभाग्यक्षणाद्गार्जा-  
भूमेराधिपतिं हिंसः ॥ ३९ ॥ दातव्यं सर्ववर्णैभ्यो राजा चौरैर्हृतं  
धनम् ॥ राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्रोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

टीका-अपनी नहीं पुरानी भूमिमें गडी हुई निधिको और सुवर्ण आदिकी खानिको जो ब्राह्मणको छोड़के अन्य जाति पावै तौ उसके आधेका राजा स्वामीहै कारण यह है कि वह रक्षा करताहै और भूमिकामी स्वामीहै ॥ ३९ ॥ लोगोंका जो धन चोर लेजाय राजा उसको चोरोंसे मँगवाके धनके स्वामीको दे देवै उस धनको आप लेनेसे राजा चोरके पापको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्मा-  
श्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥ स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽ-  
पि मानवाः ॥ प्रियार्थैर्भवन्ति लोकस्य स्वैस्वे कर्मण्यर्बस्थिताः ४२

टीका-जातिधर्म कहिये ब्राह्मण आदि जातिमें नियत याजन आदि धर्मोंको तथा जानपद कहिये देशमें व्यवस्थित वेदसे विरुद्ध नहीं ऐसे धर्मोंको और श्रेणीधर्म कहिये वनिया आदि क्रयविक्रय करनेवालोंके कुलमें स्थित धर्मोंको जानिके उनसे विरुद्ध न होय ऐसे धर्मोंका राजा व्यवहारमें स्थापित करै ॥ ४१ ॥ जाति देश कुल धर्मादिक अपने कर्मोंको करते हुए और अपने २ नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें स्थित दूर रहनेपरभी निकटरहनेका स्नेह न रहनेपरभी लोकके प्यारे होते हैं ॥ ४२ ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्ये-  
नैर्ग्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥ यथा नर्यत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः  
पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

टीका-प्रसंगसे आवे हुए इसको कहिके फिरि प्रकृतको कहते हैं राजा अथवा राजाका नियत किया हुआ प्राइविकाक आदि धनके लोभ आदिसे कार्य जो ऋण आदिका विवाद ( झगडा ) है उसको आप न उत्पन्न करै और अर्थी अथवा प्रत्यर्थी करि-पहुँचाये हुए कार्यकी धन आदिके लोभसे उपेक्षा ( वेपरवाही ) न करै ॥ ४३ ॥ जैसे बहोलिएडा शत्रुसे मारे हुए मृगके स्थानमें रुधिरके गिरनेसे पहुंच जाताहै वैसेही अनुमानसे अथवा दृढ प्रमाणसे राजा धर्मके तत्त्वका निश्चय करै ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः॥दे<sup>१</sup> शं रूपं च कालं  
च व्यवहारविधौ स्थितः ॥४५॥सद्भिराचरितं यत्स्याद्भार्मिकैश्च  
द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत्॥४६॥

टीका—व्यवहारके देखनेमें प्रवृत्त राजा छलको छोडके सत्यको देखै तैसेही  
अर्थकोभी अर्थात् गौ सुवर्ण आदि धनके विषयमें स्थित व्यवहारको देखै आंखि-  
मटकके इसने मेरी हंसी की इत्यादि छोटे अपराधोंको न मुनै और तत्त्वके निण-  
यमें स्वर्ग आदिके फल पानेवाले आपको और सत्य बोलनेवाले साक्षियोंको  
और देश तथा कालको अर्थात् देश तथा कालमें उचितहै स्वरूप जिसका ऐसे  
व्यवहारके स्वरूपकी गुरुता लघुता आदि देखै ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धर्ममें प्रधान  
कहिये मुख्य ऐसे ब्राह्मणों करि देखै हुए और उस देश कुल तथा जातिसे विरुद्ध नहीं  
ऐसे शास्त्रको लेकरि व्यवहारका निर्णय करै ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्धयर्थमुत्तमर्णेन चो<sup>३</sup>दितः॥दा<sup>३</sup>पयेद्भनिकस्या<sup>३</sup>र्थम-  
धमर्णाद्विभा<sup>३</sup>वितम् ॥ ४७ ॥ ये<sup>३</sup> यैरुपायैरर्थं स्व<sup>३</sup>ं प्राप्नुयादुत्तम-  
र्णिकः ॥ तैरुपायैः संगृह्य दा<sup>३</sup>पयेदाधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

टीका—अधमर्ण जो ऋण लेनेवाला है उसकी अर्थसिद्धिके लिये दिये हुए धनकी  
सिद्धिके लिये धनके स्वामी करि सूचित किया गया राजा जो आगे कहे जायगे ऐसे  
लेख्य ( तमस्सुक ) आदिके प्रमाणसे निश्चय किये हुए धनको अधमर्ण कहिये ऋण-  
लेनेवालेसे उत्तमर्ण अर्थात् धन देनेवालेको दिवावै ॥ ४७ ॥ कैसे दिवावै सो कहते  
हैं जो आगे कहे जायगे उन उपायोंसे दिये हुए धनको उत्तमर्ण पवै धन उन उपायोंसे  
वशमें करिकै उस धनको दिवावै ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनार्चरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्च-  
मेन वलेन च ॥ ४९ ॥ यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णि-  
कात् ॥ नै सं राज्ञाभि<sup>३</sup> योक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

टीका—उन उपायोंको कहते हैं धर्मसे व्यवहारसे छलसे आचरितसे तथा पांचमें  
बलसे दिये हुए धनका साधन करै ॥ ४९ ॥ जो उत्तमर्ण दिये हुए धनको अधमर्ण  
पर आपही बल आदिसे साधित करे वह अपने धनको भली भांति साधन करता  
हुआ हमसे विना कहे तुमने क्यों बल आदि किया ऐसे कहकर राजाको न मना  
करना चाहिये ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभाषितम् ॥ दापयेद्धनिकस्यार्थं  
दण्डंलेशं च शक्तिः ॥ ५१ ॥ अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य  
संसदि ॥ अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्धिं शत ॥ ५२ ॥

टीका-मैं इसका देनदार नहीं हों ऐसे धनके विषयमें छुपानेवाले अधमर्णको कारण कहिये लेख्य तथा साक्षी और दिव्य ( कसम ) आदिसे सावित किये हुए धनको राजा उत्तमर्णके लिये दिवावै और छुपानेमें पुरुषशक्तिसे आगे कहे हुए दशमें भागसे न्यूनभी दंड दिवावै ॥ ५१ ॥ उत्तमर्णका धन दे इस भांति सभामें प्राड्विवाक कारि कहे हुए अधमर्णके मैं इसका देनदार नहीं हों ऐसे मुकरनेपर अभियोग ( नालिश ) करनेवाला अर्थां धन देनेके समय वर्त्तमान साक्षिको लवै क्योंकि बहुधा स्त्री मूर्ख आदिके धनका निर्णय साक्षियोंहीसे होताहै इस्से प्रथम साक्षी देवै अथवा और लेख्य आदि दिखवै ॥ ५२ ॥

अदेश्यं यश्च दिशति नि दिश्यापह्नते च यः ॥ यश्चाधरोत्तरान्-  
थान्विगीतान्निवबुद्धयते ॥ ५३ ॥ अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वै-  
पधावति ॥ सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टं संभ्रांभिनन्दति ॥ ५४ ॥  
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ॥ निरुच्यमानं प्रश्रं च  
नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रूहीत्युक्तं न ब्रूयादुक्तं च  
न विभावेयेत् ॥ नच पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थोत्सं हीर्यते ॥ ५६ ॥

टीका-जो अदेश्य कहिये जिस देशमें ऋण लेनेके समय अधमर्णकी सदा स्थि-  
तिका संभव नहीं है उसको कहै अथवा जो देश आदिको कहिकै मैंने यह नहीं  
कहाहै ऐसे मुकर जाय और जो पहले तथा पीछे अपने कहे हुए अर्थोंको विरुद्ध नहीं  
जानताहै और जो मेरे हाथसे इसने सुवर्णका एक पल लियाहै ऐसे कहिकै फिर  
कहै कि, मेरे पुत्रसे लियाहै और जो भलीभांति प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको तुमने  
रातिमें साक्षियोंके विना क्यों दिया ऐसे प्राड्विवाकके पूछनेपर समाधान न करै और  
जो बात करनेके अयोग्य निर्जन आदि देशमें साक्षियोंके साथ परस्पर बात करै  
और जो कहे हुए अर्थकी दृढताके लिये प्राड्विवाकके कहे हुए प्रश्नकी इच्छा न करै  
और निष्पतेत् कहिये यहां ठहरना योग्य नहीं जो तुम्हारे औरोंका ऐसा व्यवहार होने-  
पर ऐसे कहिकै नियत स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाय और जो कहाँ ऐसे कह-  
नेपर कुछ न कहै और जो कहे हुए साध्यको प्रमाणसे सिद्ध न करै और जो पहले  
साधनको और दूसरे साध्यको नहीं जानताहै असाधानको साधन करिकै कहताहै

असाध्यही जैसे इसने शशके सींगका वना मेरा धनुष लियाहै इसको देना चाहिये  
इत्यादि बातोंको साध्यत्वसे कहै वह इस साध्यअर्थसे हीन होजाताहै ॥ ५३ ॥  
॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेत्र्यः ॥ धर्मस्थः का-  
रणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥ अभियोक्ता न चेद्भूयाद्द-  
ध्यो दण्डयश्च धर्मतः ॥ नचे त्रिपक्षात्प्रभूयाद्भर्मप्रतिपराजितः ५८ ॥

टीका—मेरे साक्षिहैं ऐसे कहिकै उनको लाओ ऐसा कहनेपर जो साक्षियोंको  
नहीं लाताहै उसको धर्ममें स्थित प्राड्विवाक पहले कहे हुए इन कारणोंसे हारा  
हुआ कहै ॥ ५७ ॥ जो अर्थी राजस्थानमें निवेदन ( नालिश ) करिकै भाषामें ( इज-  
हारोंके समय ) न कहै तौ विषम तथा भारी मुकद्दमेकी अपेक्षासे वधके योग्यहै और  
हलकेमें धर्मसे दंडके योग्यहै और जो प्रत्यर्थी तीन पक्षमें न कहै तौ धर्मसे  
हारताहै छलसे नहीं ॥ ५८ ॥

यो यावन्निह्वीतार्थं मिथ्यां यावति वा वदेत् ॥ तौ नृपेणं ह्यधर्मज्ञौ  
दोष्यौ तद्विगुणं दर्मम् ॥ ५९ ॥ पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो  
धनैषिणां ॥ त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

टीका—जो प्रत्यर्थी जितने धनको मुकारि जाय अथवा अर्थी जितने धनमें मिथ्या  
बोलै वे दोनों अधर्मी छुपाने तथा झूठ कहे हुए धनसे दुगुना दंड दिवाने योग्यहैं  
अधर्मज्ञौ इस वचनसे जानिकै छुपाने तथा मिथ्या कहनेके मध्ये यह दंडहै प्रमाद  
आदिसे छुपाने तथा झूठ नियोग ( दावा ) करनेमें सौका दशमां भाग कहेंगे ॥ ५९ ॥  
धनके चाहनेवाले उत्तमर्ण करि राजपुरुषोंसे बुलवाया गया और प्राड्विवाक करि पूछा  
गया जब मैं नहीं देनदार हों ऐसे छुपाय जाय तब राजाके अधिकारी ब्राह्मणके आगे  
तीनसे कम न होय ऐसे साक्षियोंसे अर्थीको साबित करना चाहिये ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ॥ तादृशान्संप्रवक्ष्या-  
मि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥ गृहिणः पुत्रिणो मौला क्षत्रवि-  
द्भूद्रयो नयः ॥ अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

टीका—उत्तमर्ण आदि धनियोंको ऋण लेने आदि व्यवहारोंमें जैसे साक्षी करने  
चाहिये उनको मैं कहोंगा और जैसे उनको सत्य बोलना चाहिये उस प्रकारको भी कहोंगा  
॥ ६१ ॥ गृहस्थ पुत्रयुक्त उसी देशके और जातिमें क्षत्रिय वैश्य शूद्र हों ऐसे अर्थीके

बतलाये हुए साक्षीके योग्य होतेहैं वे निश्चय करि आदिके विनाशके भयसे और उस देशके बसनेवालेसे विरोधके कारण अन्यथा नहीं कहेंगे ऋण लेने आदिसे जो कोई साक्षी नहीं होतेहैं आपत्तिमें तौ वाग्दंडपारुष्य स्त्रीसंग्रहण आदिमें तौ कहे हुए साक्षियोंसे भिन्न साक्षी होतेहैं ॥ ६२ ॥

आत्माः सर्वेषु वर्णेषु कार्योः कार्येषु साक्षिणः ॥ सर्वधर्मविदोऽलुब्धा  
विपरीतास्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ नार्थसंबन्धिनात्मा न सहाय्यं न  
वैरिणः ॥ न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यात्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥

टीका—सब वर्णोंमें आत्त कहिये यथार्थ कहनेवाले सब धर्मोंके जाननेवाले और लंभरहित करने चाहिये और इनसे विपरीत न करै ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थके संबंधी अर्थात् अधमर्ण आदि और आत्त कहिये मित्र और सहायता करनेवाले और वैरी और दृष्टदोष कहिये जिनका कहीं झूठी गवाही देना जाना गयाहै और रोगी तथा जिनको महापातक आदि दोष लगी रहाहै ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ॥ न श्रोत्रि-  
यो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥ नाध्य-  
धीनो न वर्त्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥ न वृद्धो न शि-  
शुर्न को नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

टीका—प्रभुहै इस कारणसे पूँछने योग्य न होनेसे राजा साक्षी नहीं करनेयोग्यहै और कारुक कहिये सुतार आदि कुशीलव कहिये नट आदि क्योंकि वे अपने कामसे अवकाश नहीं पाते हैं और बहुधा धनके लोभसे साक्षी होतेहैं और वेदका पढ़ना तथा अग्निहोत्र आदि कर्ममें लगे रहनेसे वेदपाठीको साक्षी न करै लिङ्गस्थ कहिये ब्रह्मचारी और संगविनिर्गत कहिये संन्यासी ये दोनों भी अपने कर्ममें व्याकुल तथा ब्रह्मके ध्यानमें लगे रहतेहैं इस्से येभी साक्षी नहीं करनेयोग्यहैं श्रोत्रियके कहनेसे अग्निहोत्र आदिमें लगे हुए ब्राह्मणसे अन्य ब्राह्मणका निषेध नहीं है ॥ ६५ ॥ अध्यधीन कहिये जो बहुतही पराधीन होय ऐसा गर्भदास विहित कर्मके त्यागसे लोकमें निंदितहै इस कारण साक्षी नहीं करना चाहिये और दस्यु कहिये चोरकर्म करनेवाला और विकर्मकृत् कहिये निषिद्ध कर्म करनेवाला क्योंकि उनसे राजाके द्वेषआदिका संभवहै और वृद्ध न करना चाहिये क्योंकि बहुधा वृद्धकी बुद्धिमें अंतर पडिजाताहै और बालक न करना चाहिये क्योंकि वह व्यवहारसे बाहरहै और एक न करना चाहिये और अंत्य कहिये चांडाल आदि और विकलेन्द्रिय कहिये

जिसकी कान आदि इंद्रियां विगडी होय ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥६५॥६६॥

नात्तो नै मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोर्पपीडितः॥न श्रमात्तो न का-  
मात्तो न कुद्धो नापि तस्करः॥६७॥स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां  
सदृशा द्विजाः॥शूद्रार्थं संतः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ६८॥

टीका—आर्त्त कहिये बंधुविनाश आदिसे दुःखी और मद्य आदिसे मतबारा और भूत आदिके आवेशसे उन्मत्त और भूख प्यास आदिसे पीडित और श्रमार्त्त कहिये मार्गके चलने आदिसे थकाहुआ और कामके जो वशमें होय तथा जिसको क्रोध उत्पन्न हुआ होय और चोर ए सब साक्षी न करने चाहिये ॥ ६७ ॥ स्त्रियोंके आपसके ऋण लेने आदि व्यवहारमें स्त्री साक्षिणी होतीहैं और द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सदृश कहिये समान जातिके साक्षी होतेहैं ऐसेही शूद्रके सज्जन शूद्र साक्षी होतेहैं और चांडालोंके चांडाल आदि साक्षी होतेहैं और सजातीय साक्षी न होनेपर और जातिकेभी होतेहैं ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु र्यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ॥ अन्तर्वैश्मन्यर-  
ण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥ स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बाले  
न स्थविरेण वा ॥ शिष्येण वन्धुना वापि<sup>३</sup> दासेन भूतकेन वा ॥ ७० ॥

टीका—घरके भीतर अथवा वन आदिमें चोरों करि किये हुए उपद्रवमें देहमें चोट लगनेपर अथवा आततायी आदिके कियेहुए उपद्रवमें जो कोई मिलजाय वह वादियोंका साक्षी होताहै ऋगादान आदिके समान कहे हुए लक्षण करि युक्त साक्षी नहीं होतेहैं ॥ ६९ ॥ घरके भीतर आदिमें कहेहुए साक्षी न होनेपर स्त्री बालक वृद्ध शिष्य मित्र सेवक और कर्म करनेवालेभी साक्षी होतेहैं ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ॥ जानीयादस्थिरां वा-  
चमुत्सर्क्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥ साहस्येषु च सर्वेषु स्तेर्यसंग्रहणे-  
षु च ॥ वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षित साक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—बालक वृद्ध रोगी और उपद्रवयुक्त मनवाले मत्त उन्मत्त आदिकोंके गवाही देनेमें झूट बोलनेवालोंकी वाणी स्थिर नहीं होतीहै इस्से उनको अनुमानसे जानै ॥ ७१ ॥ घर जलादने आदि साहसमें और चोरी छिप्तग्रहण और वाग्दण्डपारुष्यमें साक्षियोंकी कहीहुई परीक्षा न करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

वहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वये नराधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान्



गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥ समंक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव  
सिद्धयति ॥ तत्र सत्यं श्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

टीका-साक्षियोंके आपसमें विरुद्ध कहनेपर जिसको बहुतसे कहे उसको राजा निर्णय प्रमाण करै जो बराबर होय तौ गुणवानोंका प्रमाण करै गुणवानोंमेंभी जो विरोध पड़े तौ ब्राह्मणोंमें जो क्रियावान् उत्तम होय उनको प्रमाण करै ॥ ७३ ॥ सामने देखनेसे और कानोंसे सुननेसेभी साक्षी होताहै सत्य बोलताहुआ साक्षी धर्म तथा अर्थ करि मुक्त नहीं होताहै ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ॥ अवाङ्मकमभ्येति प्रेत्यं  
स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥ यत्रानिवद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि  
किंचन ॥ पृष्टस्तत्रापि तद्रूयार्थादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

टीका-साधुओंकी सभामें देखे हुए और सुननेसे अन्यथा कहताहुआ साक्षी नीचा मुखही नरकको जाताहै और परलोकमेंभी अन्य कर्मोंसे प्राप्त स्वरूप फलसे हीन होजाताहै ॥ ७५ ॥ तुम इस विषयमें साक्षी हो ऐसे कहकै नहीं किया हुआभी जो कुछ ऋणका लेना आदि देखै अथवा वाक्पारुष्य आदिको सुनै वहां साक्षी देखे मुनेके अनुसार कहै ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्ब्रह्मचर्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धे  
रस्थिरत्वाच्च दोषे श्रान्येऽपि ये वृत्ताः ॥ ७७ ॥ स्वभावेनैव यद्रूयु-  
स्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतोयदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थक्यम् ७८

टीका-लोभरहित एकभी साक्षी होताहै और अपनी शुद्धताईसे युक्त बहुतभी स्त्रियां बुद्धि स्थिर न होनेके कारण ऋणादान आदि पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षिणी नहीं होती हैं और अपर्यालोचित चोरी तथा वाग्दंड पारुष्य आदि व्यवहारमें असंभव होनेपर स्त्रीकोभी साक्षी करना चाहिये तथा औरभी जो चोरी आदि दोषों करि युक्त हैं वेभी पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ जो साक्षी भय आदिके विना स्वभावसे कहै वह व्यवहारके निर्णयके लिये ग्रहण करना चाहिये और जिसको वे स्वाभाविकसे तथा अन्य किसी कारणसे कहै वह धर्मके विषयमें निष्प्रयो-जनहै उसको न ग्रहण करै ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राड्विर्वाकोऽनुयुञ्जी-

त विधिर्ना ते न सान्त्वयन् ॥७९॥ यद्द्वयोरनयोर्वैत्थं कार्येऽस्मिन्  
चेष्टितं मिथः ॥ तद्भूते सर्वे सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥८०॥

टीका—सभामें आये हुए साक्षियोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके सामने राजाका अधिकारी ब्राह्मण  
मीठी बातें कहता हुआ आगे कहे हुए प्रकारसे पूछे ॥ ७९ ॥ इन दोनों अर्थी प्रत्यर्थियों  
के आपसके इस काममें जो जानते हो वह सब सत्य कही तुम इसमें साक्षीहैं ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानामोति पुष्कलान् ॥ इह चानुत्तमां  
कीर्तिं वागेषां ब्रह्मपूजिता ॥८१॥ साक्ष्येऽनृतं वदन् पार्श्वैर्द्वयते  
वारुणैर्भृशम् ॥ विवशः शतमार्जातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥८२॥

टीका—साक्षी अपने काममें सत्य कहता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मलोक आदि लोकोंको  
प्राप्त होताहै और इस लोकमें अतिउत्कृष्ट ख्यातिको प्राप्त होताहै जिसे यह सत्य-  
रूप वाणी ब्रह्माकारि पूजितहै ॥८१॥ साक्षी झूठी वाणीको कहता हुआ वरुणकी पाश  
अर्थात् सर्परूप रसियोंसे बंधा हुआ और जलोदर नाम रोगके पराधीन हो सौ जन्म-  
तक अत्यंत पीडित रहताहै तिससे साक्षीको सत्य बोलना चाहिये ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥ तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं स-  
र्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा  
तथात्मनः ॥ मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

टीका—साक्षी सत्य कहनेसे पूर्वजन्ममें भी इकठे किये हुए पापसे छूटि जाताहै और  
सत्य कहनेसे इसका धर्म बढ़ताहै तिससे सर्ववर्णके विषयमें साक्षीको सत्य कहना  
चाहिये ॥ ८३ ॥ शुभ अशुभ कर्ममें स्थित आत्माही अपना रक्षकहै तिससे मनुष्योंके  
मध्यमें उत्तम साक्षी आत्माको झूठ बोलनेसे मत तिरस्कार कर ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न काश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवीः प्रप-  
श्यन्ति स्वस्यैवांतरपूरुषः ॥८५॥ द्यौर्भूमिरापो तद्दयं चन्द्रार्का-  
ग्रियमानिलाः ॥ रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८६॥

टीका—पाप करनेवाले ऐसा जानतेहैं कि, अधर्म करनेमें हमें कोई नहीं देखताहै  
परन्तु उनको आगे कहे हुए देखतेहैं और अपना अन्तरात्मा पुरुष देखताहै ॥ ८५ ॥  
शुलोक, पृथिवी, जल, हृदयमें स्थित जीव, चद्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि  
और दोनों संध्या और धर्म ये सब देहधारियोंके शुभाशुभ कर्मको जानतेहैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदंतं द्विजान् ॥ उदंडमुखान्प्रांडुमुखान्वा पूर्वाह्ने वै शुचिः शुचीन् ॥ ८७ ॥ ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ॥ गोवीजकांश्चनैवैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥

टीका-प्रतिमाआदिकोंसे जो पूर्वको अथवा उत्तरको मुख किये होय आप प्राङ्नि-  
वाक शुद्ध होकै पूर्वाह्निकाल अर्थात् दुपहरके पहले साक्ष्य ( गवाही ) पूँछै ॥ ८७ ॥  
ब्रूहि कहिये कहौ ऐसा शब्द कहिकै ब्राह्मणसे पूँछै और सत्य कहौ ऐसा कहिकै  
क्षत्रियसे पूँछै और गौ, बीज तथा मुवर्णके चुरानेमें जो पाप होताहै सो तुमको झूठ  
बोलनेमें होगा ऐसे कहिकै वैश्यसे पूँछै और जो झूठ बोलोगे तो जिनको आगे कहेंगे  
उन सब पापों करि युक्त होंगे ऐसे कहिकै शूद्रसे पूँछै ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृतां लोकान्ये च स्त्रीवालघातिनः ॥ मित्रद्रुहः कृतघ्न-  
स्यते ते स्युर्बुध्वतो मृषा ॥ ८९ ॥ जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भ-  
द्रत्वया कृतम् ॥ ते सर्वे गुणो गच्छेद्यदि ब्रूयैस्त्वमन्यथा ॥ ९० ॥

टीका-ब्राह्मणके मारनेवालेको तथा स्त्री और बालकके मारनेवालेको और मित्र-  
द्रोहीको तथा कृतघ्नीको जो लोक मिलतहैं वे झूठ गवाही देनेवालेको प्राप्त होते  
हैं ॥ ८९ ॥ हे शुभ आचारवाल ! जन्मसे लगाकै जो कुछ तुमने सुकृत कियाहै सो  
सब तुम्हारा सुकृत झूठी गवाही देनेसे कूकुर आदिमें चला जायगा ॥ ९० ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणमन्यसे ॥ नित्यं स्थितस्ते  
तद्वेषं पुण्यं पापेक्षिता मुनिः ॥ ९१ ॥ यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष  
तद्वि स्थितः ॥ तेन चेदविवा दस्ते मां गङ्गां मां कुर्वन् गर्मः ॥ ९२ ॥

टीका-हे भद्र ! मैं जीवात्मक एकहीहों यह जो तुम आपको मानते हो तौ ऐसा  
मति मानौ क्यों कि पापों और पुण्योंका देखनेवाला मुनि कहिये सर्वज्ञ परमात्मा  
सदा तुम्हारे हृदयमें स्थितहै ॥ ९१ ॥ सबके संयमनसे यम और दंडधारी होनेसे  
वैवस्वत और क्रीडा करनेसे देव जो यह तुम्हारे हृदयमें स्थितहै उसके साथ यथार्थ  
कहनेसे जो तुम्हारा विवाद न होय जब तुम्हारे मनोगतको यह और प्रकारसे जानता  
है और तुम और प्रकारसे कहतहैं तौ अन्तर्यामीके साथ तुम्हारा विरोध होगा इससे  
सत्य कहनेहीसे तुम पापरहित और कृतकृत्य हौ पाप दूर करनेके लिये गंगा तथा  
कुरुक्षेत्रको मति जाओ ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कर्पालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं

गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥ अवाकिञ्चरास्तमैस्यन्धे किं-  
ल्विषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्रं विरथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥ ९४ ॥

टीका—जो झूठ साक्ष्य देताह वह नंगा तथा मुडिया हो खपरेमें भीख मांगनेको शत्रुकुलमें जाताहै ॥ ९३ ॥ धर्मके निश्चयके लिये पूछा गया जो पुरुष झूठ बोलताहै वह पापी अधोमुख हो बड़े अंधकारमें जो नरकहै उसमें जाताहै ॥ ९४ ॥

अन्धो मत्स्यानिवांश्राति स नरः कण्टकैः सह ॥ यो भार्पतेर्थवै-  
कल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥ र्थस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो  
नाभिशाङ्कते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लो कऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥

टीका—सभामें गया हुआ जो पुरुष तत्व अर्थके ठीक ३ भावको न जानि घूसी आदि सुखके लेशसे कहाताहै वह अंधके समान कांटेसमेत मछलियोंको खाताहै सुखकी बुद्धिसे तो प्रवृत्त होता है परन्तु बड़े दुःखको पाताहै ॥ ९५ ॥ जिसको कहते हुए सर्वज्ञ अंतर्यामी क्या यह झूठ बोलताहै अथवा सत्य ऐसी शंका नहीं कहताहै किन्तु सत्यही कहताहै ऐसे शंकारहित होताहै लोकमें उस पुरुषसे अन्य देवता नहीं जानते हैं ॥ ९६ ॥

यावतो वान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तावतः सं-  
ख्यया तस्मिन् शृणुं सौम्यानुपूर्वशः ॥ ९७ ॥ पञ्च पञ्चनृते हन्ति  
दर्शं हन्ति गवानृते ॥ शर्तमश्वांनृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥

टीका—जिस पशु आदिके निमित्त साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ कहता हुआ जितने पिता आदि बांधवोंको नरकमें डालताहै गणनासे गिनाये हुए उनको है साधो! मुझसे सुनो अथवा जितने बांधवोंको मारताहै उनको मारनेके फलको पाताहै उनको सुनो दोनों पक्षाम झूठ बोलनेकी निंदा हुई ॥ ९७ ॥ पशुके मध्ये झूठ बोलनेमें पांच बांध-  
वाको नरकमें डालताहै अथवा पांच बांधवोंके मारनेके फलको पाताहै ऐसे गौओंके विषयमें दशके और अश्वके मध्ये सौके और पुरुषके विषयमें एकहजारके यह संख्याका गौरव प्रायश्चित्तके गौरवकेलिये है ॥ ९८ ॥

हन्ति जातानर्जातांश्च हिरण्याथऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति  
मौ स्मै भूम्यनृतं वदीः ॥ ९९ ॥ अप्सु भूमिर्वदित्याहुः स्त्रीणां  
भो गे च मैथुने ॥ अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वर्म्मयेषु च ॥ १०० ॥

टीका—सुवर्णके लिये झूठ बोलता हुआ पुरुष उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए

पुत्र पौत्र आदिको नरकमें डालताहै अथवा इनके मारनेके फलको पाताहै और भूमिके विषयमें झूठ बोलता हुआ सब प्राणियोंके मारनेके फलको पाताहै तिससे भूमिके मध्ये झूठ मत बोले यह शिष्यकी शिक्षाका कथनहै ॥ ९९ ॥ वैदूर्य आदि मणियोंकी झूठमें भूमिके समान दोष हैं यह कहतेहैं तलाव तथा कुआके लेनेयोग्य जलके मध्ये और स्त्रियोंके मैथुन नाम उपभोगमें और अब्ज कहिये जलसे उत्पन्न हुए मोती आदिकोंके मध्ये और पाषाणमयी वैदूर्य आदिके मध्ये झूठमें भूमिके समान दोष कहतेहैं ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ॥ यथांश्रुतं यथांष्टुष्टं  
सर्वमेवाञ्जसां वद ॥ १ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुं कुशी-  
लवान् ॥ प्रैष्यान्वांघ्रुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदांचरेत् ॥ २ ॥

टीका-झूठ बोलनेमें तुम इन सब दोषोंको देखि जैसा देखा और सुना होय वैसाही तत्त्वसे कहौ ॥ १ ॥ गौओंकी रक्षासे जीनेवाले और वाणिज्यसे जीनेवाले तथा सुतार आदि कारु कर्मसे जीनेवाले तथा नटके कामसे और नाचने गानेसे जीने-वाले और दासकर्मसे जीनेवाले और निषिद्ध जीविका करनेवाले ब्राह्मणोंसे साक्षीके प्रश्नमें शूद्रके समान पूछे ॥ २ ॥

तद्वदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ॥ न स्वर्गाच्चर्यंवेते लोका-  
है<sup>१०</sup> वीं वाचं वदन्ति ताम् ॥ ३ ॥ शूद्रविदक्षत्रविप्राणां यत्रतोक्तौ  
भवेद्वैधः ॥ तत्र वर्तव्यमनृतं तंद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ ४ ॥

टीका-साक्ष्यको अन्यथाभी जानता हुआ मनुष्य धर्मसे दया आदि कर व्यवहा-रामें अन्यथा कहता हुआ स्वर्गसे नहीं भ्रष्ट होताहै, जिस्से यह कारणविशेषसे जो झूठ कहना है उसको मनु आदि देवतासंबंधिनी वाणी कहतेहैं ॥ ३ ॥ जहां सत्य कहनेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रका वध होता होय वहां झूठ बोलना चाहिये क्योंकि वह झूठ सत्यसे अधिकहै ॥ ४ ॥

वाग्देवत्यैश्च चरुभिर् यजेरस्ते सरस्वतीम् ॥ अनृतस्य न सस्तेस्य  
कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ ५ ॥ कूर्षमाण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमग्नी  
यथांविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैर्वतेन वा ॥ ६ ॥

टीका-वे झूठ बोलनेवाले साक्षी झूठसे उत्पन्न हुए पापकी उत्कृष्ट शुद्धिको करते हुए वाणीहै देवता जिसकी, ऐसे चरुसे सरस्वतीका यजन करें ॥ ५ ॥ यजु-

वेदके " यद्देवादेवहेडनं " इत्यादि कृष्णामंडमंत्रहैं उन मंत्रोंसे देवताके निमित्त अग्निमें विधिपूर्वक घृतका होम करै और अपने गृहमें कहे हुए परिस्तरण आदि होमके धर्मसे वरुण है देवता जिसके ऐसी " उदुत्तमंवरुणपाशम् " इस ऋचासे और उदक जिसकी देवता है ऐसी " आपोहिष्ठा " इस ऋचासे घीका अग्निमें होम करै ॥ ६ ॥

त्रिपँक्षादश्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नैरोऽगर्दः ॥ तद्वृणं प्रांप्रुयार्त्सर्वं  
दर्शवन्धं च सर्वतः ॥ ७ ॥ यस्य दृश्येत सर्वाहारुक्तवाक्यस्य  
साक्षिणः ॥ रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाय्यो दमं च संः ॥ ८ ॥

टीका—जो रोगरहित साक्षी ऋणादानादि व्यवहारोंमें तीनि पक्षोंतक जो गवाही न दे तो उस विवादका सब धन उत्तमर्णको देवै और उस सब ऋणका दशमा भाग राजाको दंड देवै ॥ ७ ॥ जो गवाही दे चुकाहै ऐसे साक्षीके जो सात दिनके भीतर रोग आदि लगना अथवा समीपी पुत्र आदि ज्ञातिके मरणमेंसे कोई होय तो मिथ्याका दोष प्रकट होनेके कारण उत्तमर्णका ऋण और राजाका दंड उस्से दिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

असाक्षिकेषु त्वथेषु मिथो विवदमानयोः॥अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं  
शपथेनापि लम्भयेत्॥९॥महर्षिभिश्च देवैश्चकार्यार्थं शपथाः  
कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शेषैर्वै यवने नृपे ॥ ११० ॥

टीका—जिनके साक्षी नहीं हैं ऐसे व्यवहारोंमें आपसमें विवाद करनेवालोंके तत्त्वको छल आदिके विना नहीं प्राप्त होता हुआ प्राङ्गुविवाक जो आगे कहेंगे उस शपथसे सत्यको जानै ॥ ९ ॥ सप्तऋषियोंने और इंद्रादिक देवताओंने संदेहयुक्त कार्योंके निर्णयके लिये शपथ बनाये इसने सौ पुत्र खायलिये ऐसे विश्वामित्रकारि दोष लगाये गये वसिष्ठमुनिने अपनी शुद्धिके लिये यवननाम राजाके पुत्र सुदामा राजाके भागे शपथ किया यहां शप धातुका करना अर्थ किया है ॥ ११० ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यथै नैरो बुधः॥ वृथाहि शपथं कुं-  
र्वन् प्रेत्यं चेहं च नश्यति॥११॥कार्मिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये  
तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकंम् ॥ १२ ॥

टीका—पंडित छोटेली काममें वृथा शपथ कहिये सौगंद न करै क्योंकि वृथा शपथ करता हुआ मनुष्य परलोकमें तथा इस लोकमें नरकके मिलने तथा अयशके मिलनेसे नाशकी प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जिसको बहुत स्त्री हैं वह एक स्त्रीसे ऐसे कहै कि, मैं औरको नहीं चाहता हौं तूही मेरी प्यारी है इस भांति अच्छे भोगके लाभके

लिये शपथ करै और विवाहमें जैसे म और व्याह न करौंगा और गाँक लिये घास आदिके ले लेनेमें और अग्निमें हाँमके लिये ईंधनके लेनेमें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अंगीकार किये हुए धन आदिमें वृथा शपथ करनेसे पाप नहीं होताहै ॥ १२ ॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ १३ ॥ अग्निं वाहारेयेदेनमस्सु चैनं निर्मज्जयत् ॥ पुत्रदारस्य वाप्ये न शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ १४ ॥

टीका—ब्राह्मणको सत्य शब्दका उच्चारण करिके शपथ करावै और क्षत्रियको वाहन तथा आयुधोंसे अर्थात् भेरे सब वाहन तथा आयुध निष्फल होंय ऐसे शपथ करावै और गौ बीज तथा सुवर्ण निष्फल होय ऐसे वैश्यसे और मुझको सब पाप होंय ऐसे शूद्रसे शपथ करावै ॥ १३ ॥ अग्निके समान पचास पलका आठ अंगुलके लोहेके गोलको शूद्र आदिके दोनों हाथोंमें सात पीपलके पत्ते रखके धरावै और पितामह आदि करि कही हुई विधिसे सात पैडतक चलवै और जोक आदि करि रहित जलमें इसको गोता दिवावै और पुत्राँका तथा स्त्रीका शिर जूदा जूदा इसको छुवावै ॥ १४ ॥

यमिद्धो न दंहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चाति मृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥ १५ ॥ वत्सस्य ह्यभिशाप्तस्य पुरा भ्राता यवीयसा ॥ नाग्निर्देदाह रोमां पि सत्येन जगंतः स्पृशः ॥ १६ ॥

टीका—जिसको प्रकाशमान अग्नि न जलवै और जल जिसको उपरको न उछाळै और जो बडी पीडाको न प्राप्त होय वह शपथम शुद्ध जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पहले समयमें वत्सनाम ऋषिको वैमात्र छोटे भाईने यह दोष लगाया कि तू ब्राह्मण नहींहै शूद्रका पुत्रहै इसके शपथके लिये अग्निमें धसे हुए उस ऋषिके रोमकोभी अग्निने सत्यके कारणसे नहीं जलाया ॥ १६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्निवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ॥ तत्तर्कार्यं निर्वर्तत कृतं चाप्यैकृतं भवेत् ॥ १७ ॥ लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कार्मात्क्रोधात्तथैव च ॥ अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ १८ ॥

टीका—जिस जिस व्यवहारमें साक्षियोंने झूठ कहाहै यह निश्चय होजाय नहीं पूरे हुए उस उस कामको प्राड्विवाक लौटाय देवै जो दंडकी समाप्ति तकभी पहुँचि गया होय उसकोभी फिर परीक्षा करै ॥ १७ ॥ लोभसे और मोह कहिये विपरीत ज्ञानसे और भयसे, स्नेहसे, कामसे, क्रोधसे, अज्ञानसे और बालभाव कहिये असावधानीसे झूठी गवाहा दीजातीहै १८

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ तस्य दण्डविशेषास्तु ।  
 प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ १९ ॥ लोभात्सहस्रं दण्डयस्तु मोहात्पूर्वं तु  
 साहसम् ॥ भयाद्द्वौ १० मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥

टीका—इन लोभादिकोंमेंसे किसी कारणके होनेपर जो साक्षी झूठी गवाही देता है उसके दंड विशेषोंको क्रमसे कहोंगा ॥ १९ ॥ लोभसे झूठी गवाही देनेपर जिसको आगे कहेंगे ऐसे हजार पण दंड देना चाहिये मोहसे प्रथम साहस जो आगे कहा जायगा और भयसे मध्यम साहस जो आगे कहेजायगे और मैत्रीसे चौगुना प्रथम साहस जानिये ॥ १२० ॥

कामादशगुणं पूर्वं क्रोधोत्तु त्रिगुणं परम् ॥ अज्ञानाद्द्वौ १० शीते पूर्णे  
 वालिश्यच्छतमेव तु ॥ २१ ॥ एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डा-  
 न्मनीपिभिः ॥ धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ २२ ॥

टीका—खीसंभोगरूप कामसे झूठी गवाही देतेहुएको दशगुणा प्रथम साहस दंड देना चाहिये और क्रोधसे बक्ष्यमाण तिगुणा मध्यम साहस और अज्ञानसे दोसौ पण और वालिश्य कहिये असावधानीसे एकसौही पण दंड देना चाहिये ॥ २१ ॥ सत्य-  
 रूप धर्मके न लोप होनेके लिये और असत्यरूप अधर्मके निवारणके लिये झूठी गवाही देनेमें पहले मुनीश्वरोंके कहेहुए दंडोंको मनु आदि कहतेहैं ॥ २२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः ॥ प्रवासयेदण्डयि-  
 त्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ २३ ॥ दर्शस्थानानि दंडस्य मनुः स्वा-  
 यंभुवोऽब्रवीत् ॥ त्रिपु वर्णेषु यानि स्युरंक्षितो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ २४ ॥

टीका—झूठी गवाही देनेमें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको धर्मात्मा राजा पहलें  
 कहे हुये दंडको देकर अपने देशसे निकाल देवै और ब्राह्मणको तो धन दंडके  
 विनाही अपने देशसे निकाल देवै ॥ २३ ॥ स्वायंभुव मनुने दंडके दश स्थान कहे  
 हैं जो क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंमें होतेहैं और ब्राह्मण तो बडे अपराध (कमूर) के  
 होनेपर अक्षत शरीर देशसे निकाला जाताहै ॥ २४ ॥

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ॥ चक्षुर्नासा च कर्णौ च  
 धनं देहस्तं तैव च ॥ २५ ॥ अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्व-  
 तः ॥ सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत् ॥ २६ ॥



टीका-लिंग १ उदर २ जीभ ३ हाथ ४ पांव ५ आंखि ६ नाक ७ कान ८ धन ९ और देह १० ये दश दंडके स्थान कहेहैं इनमेंसे जिस २ अंगसे अपराध होय तौ अपराधकी लघुता गुरुता देखके उस २ अंगका ताडन आदि करना चाहिये थोड़े अपराधमें धन दंड और महापातक आदिमें छेदन देहदंडन कहिये मारना कहाहै ॥ २५ ॥ वारंवार इच्छासे अपराध करनेको देखि ग्राम और वन आदि अपराधके स्थानहैं और दिनराति आदि अपराधके कालहैं इनको भलीभाँति देखि सार कहिये अपराध करनेवालेका धन शरीर आदिकी सामर्थ्यको और थोड़े अथवा बहुत अपराधको देखि दंडके योग्य पुरुषोंको दंड देंवै ॥ २६ ॥

अधर्मदंडनं लोके यशाग्र कीर्तिनाशनम् ॥ अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्पारिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ अदण्डचान्दण्डयत्राजा दण्डयान्श्चैवाप्यदण्डयन् ॥ अयंशो महदाप्नोति नैरकं चैव गच्छति ॥ २८ ॥

टीका-जीवते हुयेके ख्यातिको यश कहतेहैं और मरे हुएकी ख्यातिको कीर्ति कहतेहैं तिससे दोष आदिके जाने विना दंड देनेसे इस लोकमें यशका नाश होताहै और परलोकमें मरे हुएकी कीर्तिका नाश होताहै अर्थात् और धर्मसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गका रोकनेवालाहै उससे उसका त्याग करै ॥ २७ ॥ जो दंडके योग्य नहींहैं उनको धनलोभ आदिसे दंड देता हुआ और दंड देनेके योग्यहैं उनको अनुरोध आदिसे नहीं दंड देता हुआ राजा बड़े अयशको पाताहै तथा नरकमेंभी जाताहै ॥ २८ ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ॥ तृतीयं धनदण्डं तु बध्दण्डमंतः परम् ॥ २९ ॥ बधेनापि यदा त्वेतांनिग्रहीतुं न शक्नुयात् ॥ तदैषु संवमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

टीका-तुमने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसे वाणीसे धमकाना वाग्दण्डहै सो प्रथम अपराधमें गुणवान्को करना चाहिये तिसपरभी जो शांत न होय तो धिक्काररूप दंड करै अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कारहै ऐसे कहै तिसपरभी न मानै तौ तीसरा धनदंड ( जुर्माना ) करै तिसपरभी निषिद्ध कर्म करै तो बध्दंड अर्थात् ताडना तथा अंगका काटना आदि करै मारै नहीं ॥ २९ ॥ जब अंगच्छेद आदि उलटे दंडसे जो दंडयोग्यको बशमें न करसकै तब इसमें वाग्दंड आदि चारों करै ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ तां प्रहृष्यसुवर्णानां तां प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं

दृश्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रवक्षते ॥ ३२ ॥

टीका—तांवे रूपे और सुवर्ण आदिकी जो पण आदि संज्ञा मोललेने बेचने आदि लोकके व्यवहारके लिये पृथिवीमें प्रसिद्धहै उनको दण्ड आदिके लिये में संपूर्णतासे कहताहैं ॥ ३१ ॥ झरोखेमें होकर आये हुए मूयके किरणोंमें जो सूक्ष्म रज दीखताहै उस रजके परिमाणोंमें पहलेको त्रसरेणु कहतेहैं ॥ ३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षिका परिमाणतः ॥ तां राजसर्षपस्ति-  
स्रस्ते<sup>१</sup> त्रयो गौरसर्षपः ॥ ३३ ॥ सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वे-  
ककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते<sup>२</sup> सुवर्णस्तु षोडश ॥ ३४ ॥

टीका—आठ त्रसरेणुकी एक लिखा होतीहै उन तीनि लिखाओंका एक राजसर्षप होताहै उन तीनि राजसर्षपांका एक गौरसर्षप जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ उन छः गौर सर्षपांका मध्यम अर्थात् न बहुत मोटा न छोटा एक जंव होताहै तीनि जवोंकी एक घुँघची अर्थात् रत्ती होतीहै और उन पांच रत्तियोंका एक मासा होताहै उन सोलह मासोंका एक सुवर्ण होताहै ॥ ३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दशं ॥ द्वे कृष्णले समधृते वि-  
ज्ञ यो रौप्यमाषकः ॥ ३५ ॥ ते षोडशं स्याद्धरणं पुराणश्चैव रा-  
जतम् ॥ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ३६ ॥

टीका—चारि सुवर्णका एक पल होताहै और दशपलका एक धरण होताहै और दो घुँघची बराबर करिकै कांटेमें धरी जाय तौ उनका एक रूप्यमाषक जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन सोलह रूप्यमाषकोंका एक रौप्यधरण और पुराण राजत कहिये रजतसंबंधी होताहै और तांवेके कर्षभरको कार्षापण तथा पण जानना चाहिये और कार्षिक शास्त्रके पलका चौथाई भाग जानना चाहिये इसीसे कोशवाले चारि कर्षको पल कहतेहैं ॥ ३६ ॥

धरणानि दशज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ चतुःसौवर्णिको निष्कको  
विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ ३७ ॥ पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साह-  
सः स्मृतः ॥ मध्यमः पञ्च विज्ञेयः संहस्रं त्वेवं चोत्तमः ॥ ३८ ॥

टीका—दशरौप्य धरणका एक रौप्यशतमान होताहै और चारि सुवर्णका एक निष्क परिमाणसे जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ पचास अधिक दोसौ अर्थात् द्वाइसौ

पणका मन्त्रादिकोंने प्रथम साहस कहा है और पांचसौ पणका मध्यम साहस जानना चाहिये और हजार पणका उत्तम साहस जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ॥ अपह्वं तद्विगुणं तन्म-  
नोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्विंशतिवर्धि-  
नीम् ॥ अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्दार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

टीका—मुझे उत्तमणका धन देना है ऐसे सभामें अधमणके कहनेपर सैकडा पीछे पांच दंड देने योग्य है और जो सभामें भी ऐसे कहै कि, मैं इसका कुछ नहीं देनदार हों ऐसे मुकर जाय तौ सैकडा पीछे दशपण दंड देने चाहिये यह मनुस्मृतिमें दंडका प्रकार है ॥ ३९ ॥ वसिष्ठने कही हुई वृद्धि ( व्याज ) धनकी बढ़ानेवाली है उसको वृद्धिसे जीविका करनेवाला लावै उसीको दिखाते हैं सौ देनेपर उसका अस्सीमा भाग ले अर्थात् सौ पणपर सवापण प्रतिमहीने वृद्धि लैवै ॥ १४० ॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ द्विकं शतं हि गृह्णी-  
नो न भवत्यर्थकिं लिखी ॥ ४१ ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च  
शतं समम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्दर्शानामनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥

टीका—साधुओंका यह धर्म है ऐसा मानता हुआ दिये हुए सौपणोंपर दो पण प्रत्येक महीनेमें लैवै जिसे सैकडेपर दो लेता हुआ वृद्धिके धन लेनेमें दोषी नहीं होता है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच सैकडेपर महीनेमें वृद्धि लैवै इस्से अधिक न लैवै ( शंका ) जो कहौ कि अस्सीमा भाग थोडा है और सैकडेपर दो बहुत है तौ ब्राह्मणके यह थोडे बहुतका विकल्प कैस होय इसपर मेघा-  
तिथि और गोविंदराजनाम दोनों टीकाकारोंने लिखा है कि जो पहली वृद्धिसे निर्वाह न होय तौ सैकडेपर दो लेने चाहिये परन्तु हम यह कहतें हैं कि बंधक ( गिरवी ) सहितमें अस्सीमा भाग और बिना बंधकमें सैकडेपर दो लेने चाहिये सोई याज्ञवल्क्यने कहा है “अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासिमासि सर्वंधके ॥ वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुः पंचकमन्यथा” अर्थ—बंधकसहितमें महीने अस्सीमा भाग वृद्धि होती है और अन्यथा कहिये बंधकरहितमें वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच वृद्धि होती है ॥ ४२ ॥

नै त्वेवांगौ सोपकारे कौसीदिं वृद्धिमाप्नुयात् ॥ नै चो-

धः कालंसरोधात्रिसगौऽस्ति नै विक्रयः ॥ ४३ ॥

नै भोक्तव्यो वलादाधिभुञ्जानो वृद्धिसुतसृजेत् ॥ मूल्ये-

न तो<sup>११</sup> षपेच्चै<sup>१२</sup> नमाधिस्ते<sup>१३</sup> नोऽन्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥

टीका—भूमि गौ दास आदि बंधक भोगके लिये देनेपर धनके देनेमें पहले कही हुई वृद्धिको उत्तमर्ण नहीं पाताहै बहुत कालतक रहनेको कालसंरोध कहतेहैं भोग्य आदिके बहुत कालतक रहनेसे मूल धनके दुगुने होजानेपरभी दूसरेको देना अथवा बेचना नहीं हो सकता है मेधातिथि और गोविंदराज कहतेहैं कि आधिके बहुत कालतक रहनेपरभी निसर्ग कहिये दूसरेके यहां धरना नहीं होसकताहै यहां तौ गहने धरीहुई भूमिआदिके दूसरेके यहां धरनेके समाचारसे सब शिष्टाचारसे विरोध होताहै ॥ ४३ ॥ कपडा गहना आदि रक्षा करने योग्य आधि नहीं भोगने योग्य है जो भोग करै तौ उसकी वृद्धिको छोडदे पहले मोलसे इसको संतुष्ट करै अथवा भोगनेसे जो आधि असार होजाय अर्थात् किसी कामकी न रहै तौ अच्छी दशाका मूल्य देकर स्वामीको संतुष्ट करै जो ऐसा न करै तो बंधकका चोर होय ॥ ४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ<sup>१</sup> न कालात्ययमर्हतः ॥ अवर्ह्यौ भवेतां<sup>२</sup>  
तौ<sup>११</sup> दी<sup>१२</sup> र्घकालमवस्थितौ ॥ ४५ ॥ संप्रीत्याभुज्यमानानि न नश्यं-  
न्ति कदाचन ॥ धेनुर्गृष्टो वर्हन्नश्चो<sup>३</sup> यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ ४६ ॥

टीका—आधि कहिये बंधक अर्थात् जो वस्तु गहने धरीजाय और उपनिधि कहिये जो भोगके लिये प्रीतिसे दीहुई वस्तु ये दोनों निधि उपनिधि बहुत कालतक रहने परभी समय उलाघनेके योग्य नहीं है अर्थात् जब उनका स्वामी मांगै तभी देने योग्य हैं ॥ ४५ ॥ दुही जाती हुई कहिये दूध देनेवाली गौ और सवारी देता हुआ ऊंट तथा घोडा और काढनेके लिये दियाहुआ बैलआदि ये प्रीतिसे औरकरि भोग किये गये स्वामीके कभी नष्ट नहीं होते हैं ॥ ४६ ॥

यत्किञ्चिदृशं वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते र्धनी ॥ भुज्यमानं परैस्तू-  
र्षणीं न संतुल्यधुर्मर्हति ॥ ४७ ॥ अजडश्चैदपौगण्डो विषये चास्य  
भुज्यते ॥ भ्रंशं तद्रथवहारेण भोक्तां तद्रव्यमर्हति ॥ ४८ ॥

टीका—जो कोई धन प्रीति आदिके बिना दश वर्षतक दूसरों करि भोगा जाय और स्वामी देखै और कभी यह न कहै कि, मत भोगो तौ स्वामी पानेयोग्य नहीं होताहै उसका उसमें स्वामीपन दूर होजाताहै ॥ ४७ ॥ जिसकी बुद्धि विकल होय अर्थात् यथावस्थित न होय उसको जड कहतेहैं और सोलह वर्षसे जिसकी अवस्था अधिक न होय उसको पौगंड कहते हैं जो धनका स्वामी जड तथा पौगंड न होय और

उसके सामने उसका धन भोगा जाय तौ स्वामीका स्वामित्व व्यवहारसे नष्ट होजाताहै भोगने वालेहीका वह धन होजाताहै ॥ ४८ ॥

आधिःसीमा वालधनं निक्षेपोपनिधिःस्त्रियैः॥राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥४९॥ यःस्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्ते-  
ऽविचक्षणः॥तेनार्धवृद्धिर्भोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः॥१५०

टीका—आधि कहिये गहने धरीहुई वस्तु और सीमा कहिये ग्राम आदिकी मर्यादा बालकका धन निक्षेप कहिये वासनमें रक्खा हुआ विना गिनाया वंद किया हुआ धन अर्थात् धरोहड उपनिधि और स्त्री कहिये दासी और राजा तथा वेदपाठीका धन ये कहे हुए दशवर्षके भोगसे स्वामीके नष्ट नहीं होतहैं और इनमें भोगनेवालेका स्वत्व नहीं होताहै ॥४९॥ जो मूर्ख वृद्धि (व्याज) से दियाहुई वस्तु क स्वामीकी आज्ञा विना छुपाके भोगताहै तौ उसको उस भोगकी शुद्धिके लिये आधी वृद्धि छोडदेनी चाहिये और बलसे भोगनेमें तौ संपूर्ण वृद्धिकाही त्याग कहाहै ॥ १५० ॥

कुंसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहता ॥ धान्ये संदे लवे वाद्ये  
नातिर्क्रामति पञ्चताम् ॥ ५१ ॥ कृतानुसारादधिकं व्यति-  
रिक्ता न सिद्ध्यति॥कुंसीदपथर्माहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥५२॥

टीका—व्याजपर धनके देनेको कुंसीद कहतेहैं उसपर जो एकवार व्याज ले लिया जाय जो वह दूनेसे अधिक नहीं होताहै मूलसे दूनाही होताहै और व्याज दिये हुए धान्यमें और सदा कहिये वृक्षके फलमें और लव कहिये ऊन आदि रोमोंमें और जोतने योग्य बैल आदिमें मूल धन धान आदि समेत पंचगुनेसे अधिक नहीं होताहै ॥ ५१ ॥ वर्णोंके क्रमसे शास्त्रके अनुसार की हुई दो तीनकी वृद्धिसे भिन्न विना की हुई अधिक नहीं होतीहै किंतु की हुईभी वृद्धि वर्णोंके क्रमसे दो तीन सैकरेपर मासमासमें लेनी चाहिये विना कीहुई वृद्धिमेंभी दूसरा विशेष कहतेहैं कि कुत्सितसे जो मार्ग चल उसको कुंसीदपथ कहतेहैं यह उत्तमर्ण जो शूद्रके मध्ये कहे सैकरेपर पांच द्विजातिसेभी लेवै तौ यही कुत्सित पंथाहै अर्थात् पहले कहेहुए धर्म सम्बन्धी वृद्धि करनेवालेसे अपकृष्टहै यह मनुआदि कहतेहैं यह विना की हुई वृद्धि उद्धारके विषयमें मांगनेसे उपरांत जाननी चाहिये क्योंकि कात्यायनका बचनहै कि प्रीतिसे दियाहुआ जबतक न मांगाजाय तबतक नहीं बढ़ताहै और जो मांगनेपर न दियाजाय तौ सैकरेपर पांच बढै ॥ ५२ ॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् ॥ चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः  
कारिता कायिका च यौ ॥५३॥ ऋणं दातुमर्शतो र्यः कर्तुमिच्छे  
त्पुनः क्रियाम् ॥ स दत्वा निजितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥५४॥

टीका—एक महीना या दो महीना अथवा तीन महीना बीतनेपर हमारे व्याजका  
हिासाव करके एकवारही देना इस नियमसे जो उत्तमर्ण एक वर्षतक व्याजलेवै, और  
वर्षके बीतनेपर नियमके वृद्धिको न लेवै, और शास्त्रसे नहीं देखी गई तथा कही  
हुई धर्मसम्बन्धिनी दो तथा तीन पण सैकडेसे अधिक न लेवै. अधर्मता दिखानेके  
लिये यह निषेध है और शास्त्रमें नहीं कही हुई चक्रवृद्धि आदि चारिको न लेवै. उन  
चारोंका स्वरूप कहतेह वृहस्पतिः—“कायिकाकायसंयुक्ता मासग्राह्याचकालिका ॥ वृद्धे  
वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृता” अर्थ—कायकरि युक्त होय उसको कायिका  
कहतेहैं और जो महीने २ पर लीजाय उसको कालिका कहतेहैं और वृद्धिपर जो  
वृद्धि ( व्याजपर व्याज ) होती है उसको चक्रवृद्धि कहतेहैं उनमें चक्रवृद्धि स्वरूपही  
से निंदितहै कालवृद्धि तौ दुगुनेसे अधिक लेनेसे होताहै और कायिका बहुत जोतने  
तथा दुहनेसे होतीहै और कारिता वह होतीहै जो उत्तमर्णके दवावसे आपत्तिकालमें  
ऋणीकरि कीजाय ये चारों वृद्धियां शास्त्रमें नहीं है इनको न लेवै ॥ ५३ ॥ जो  
ऋणी धनदेनेकी असामर्थ्यसे फिर लेख्य ( तमस्सुक ) आदि क्रिया करनेकी इच्छा  
करै वह निजित कहिये उक्त मार्ग करि सच्चाईसे अपने आधीन कीहुई वृद्धिको देकर  
करण जो लेख्य ( तमस्सुक ) है उसको फिर लिखदेवै ॥ ५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ॥ यावती संभवेद्वृद्धिस्तां  
वंतां दातुमर्हति ॥ ५५ ॥ चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यैव  
स्थितः ॥ अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जो दैवगतिसे वृद्धि और हिरण्यकोभी न दे सकै तौ उसको मिलायकै  
उसीको फिर लिखे जाते हुए कागजपर वृद्धि और हिरण्य आदि अर्थात् मूल और  
व्याजको चढाय देवै उस समय जितना चक्रवृद्धिका धन होगा वह सब देना  
पडैगा ॥ ५५ ॥ चक्रशब्दसे यहां चक्रवाले छकडे आदिके भाडारूप वृद्धि अभि-  
मतहै चक्रवृद्धिका आश्रय लेनेवाला उत्तमर्ण देश तथा कालकी व्यवस्थायुक्त होता  
है जैसे जो काशीतक नोन आदि छकडेसे लेजाळंगा तौ मुझको इतना धन देने  
योग्य होगा यह मूल्यरूप देशकी व्यवस्था हुई और जो महीनेभरतक लेजाळंगा तौ  
मुझे इतना देना होगा यह कालकी व्यवस्था हुई ऐसे अंगीकार किये हुए देश

तथा कालके नियमको दैवयोगसे नहीं पूरा करता हुआ अर्थात् शकट आदिसे नहीं लेजाता हुआ लाभरूप संपूर्ण फलको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥

समुद्रयानकुशला देशकार्थदर्शनः ॥ स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं  
सा तत्राधिगमं प्रति ॥ ५७ ॥ यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेदर्शनायेह  
मानवः ॥ अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वर्धनादृणम् ॥ ५८ ॥

टीका-स्यलके मार्ग तथा जलके मार्गके जानेमें चतुर इतने देशतक तथा इतने कालतक लेजानेपर इतना लेना योग्यहै इस भांति देश तथा कालके लाभरूप धनके जाननेवाले बनियां आदि वैसे विषयमें जिस वृद्धिको व्यवस्थापित करें वही वहां व्यवस्था है और वही वहां वृद्धिके धनकी प्राप्तिमें प्रमाणहै ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य जिसके दर्शनका प्रतिभू (जामिन) होय अर्थात् धन देनेके समय में इस ऋणीको दिखादूंगा (हाजिर करदेऊंगा) और वह उस कालमें उत्तमर्णको न दिखावे तौ अपने धनमेंसे उस धनके देनेका यत्न करे ॥ ५८ ॥

प्रातिभाष्यं वृथादानमौक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दण्डंशुल्कार्थे  
षं च नपुत्रो दातुमर्हति ॥ ५९ ॥ दर्शनप्रातिभाष्ये तु विधिः स्यात्  
त्पूर्वचोदितः ॥ दानप्रतिभूवि प्रेतं दार्यादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥

टीका-प्रतिभूनसे अर्थात् जमानतसे जो धन देनेयोग्यहै उसको प्रातिभाष्यं कहते हैं और वृथा दान जो हँसीके निमित्त पंडा आदिके अर्थ देनेकी योग्यतासे पिताने अंगीकार किया और आक्षिप्त कहिये जुआके निमित्त तथा सौरिक कहिये मद्यके निमित्त और दंडके निमित्त और शुल्कं कहिये महसूल विसका वाकी धन जो पिताको देना है उसको पिताके मरनेपर पुत्र देने योग्य नहीं है ॥ ५९ ॥ प्रातिभाष्य जमानतके धनको पुत्र नहीं देनेयोग्य है वह दर्शनप्रतिभू अर्थात् हाजिर-जामिनी करनेवाले पिताके देने योग्य जानना चाहिये और देनेकी जमानत करनेवाले पिताके मरनेपर पुत्र आदिकोंसे भी ऋण दिावे ॥ १६० ॥

अदांतरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ॥ पश्चात्प्रतिभूवि प्रेतं  
परीप्सत्केन हेतुना ॥ ६१ ॥ निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलं  
धनः ॥ स्वर्धनादेवं तद्द्वान्निरादिष्टं इति स्थितिः ॥ ६२ ॥

टीका-दानप्रतिभू अर्थात् देनेवाले जामिनसे दूसरा दर्शनप्रतिभू अथवा विश्वासप्रतिभूके मरनेपर पीछे धन देनेवाला उत्तमर्ण अपना धन कैसे पावे, क्योंकि

प्रतिभू मरगयाहै तो यह दर्शनप्रतिभू अथवा प्रत्ययप्रतिभू जो अधमर्ण करि निरा-  
दिष्ट अर्थात् निमृष्ट धन होय और प्रतिभूके पास उसके देनेयोग्य धन होय तौ वह  
अथवा उसका पुत्र उत्तमर्णको ऋण देवै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्वालेन स्थविरेण वा ॥ असंवद्धकृतश्चैवं व्य-  
वहारो न सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्या  
त्प्रतिष्ठिता ॥ बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्भ्यावहारिकात् ॥ ६४ ॥

टीका—मद्य आदिसे मतवारे और रोग आदिसे उन्मत्त और बालक तथा वृद्ध  
करि तथा भाईकी आज्ञाविना कियेहुए ऋणका व्यवहार सिद्ध नहीं होताहै ॥ ६३ ॥  
यह मुझको करनाहै इत्यादिक भाषालेख्य आदिसे स्थिर की गई भी होय परन्तु  
जो शास्त्रके धर्मसे और परंपरासे चलेआयेहुए व्यवहारसे बाहर कही जाय तौ  
वह सत्य नहीं होती है उसको न मानना चाहिये ॥ ६४ ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युर्पाधि पश्येत्-  
त्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ ६५ ॥ ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थं कृतो  
व्ययः ॥ दातव्यं वा न धैवेस्तत्स्योत्प्रविभक्तैरपि स्वैतः ॥ ६६ ॥

टीका—योग कहिये छलसे कियेहुए बंधक कहिये गिरवी और दान तथा प्रति-  
ग्रह किये जाय परन्तु सत्यतासे नहीं और अन्यत्र कहिये धरोहर आदिमें जहां  
छल ज्ञानाजाय अर्थात् वास्तवमें धरोहर न रखी होय वह सब लौटि जाताहै  
॥ ६५ ॥ पहलेसे बटे हुए अथवा विना बटेहुए भाई तथा कुटुंबके पालनेके लिये  
जो धन लेकर ऋणी मरजाय तौ उस ऋणको बटेहुए और विना बटेहुए सब  
अपने धनसे देवै ॥ ६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदेशे  
वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥ ६७ ॥ बलाद्धतं बलाद्धुक्तं बलाद्ध-  
र्चापि लेखितम् ॥ सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुर्ब्रवीत् ॥ ६८ ॥

टीका—स्वामी उसी देशमें होय अथवा दूसरे देशमें होय उसके कुटुंबके खरचके  
लिये जो सेवकभी ऋण करे तो स्वामी उसको वैसाही अंगीकार करै ॥ ६७ ॥ बलसे  
दियाहुआ और बलसे भोगीगई भूमि आदि और बलसे लिखाया गया चक्रवृद्धिका  
आदिपत्र इन सब बलसे कियेहुए व्यवहारोंको मनुने लौटाने योग्य कहाहै ॥ ६८ ॥

त्रयः परार्थे किंश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूपची-



यन्ते विप्र आढ्यो वैणिङ् नृपः ॥६९॥ अनादेयं नाददीतं परिक्षीणो  
ऽपि पार्थिवः ॥ न चोदेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममर्ष्यैर्मुत्सृजेत् ॥ ७० ॥

टीका—साक्षी प्रतिभू और कुल ये तीनों धर्मार्थ व्यवहारोंमें पराये लिये क्लेश पाते हैं तिस्से इनसे साक्ष्य ( गवाही ) प्रातिभाव्य ( जमानत ) और व्यवहारका देखना नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण उत्तमर्ण वनियों और राजा ये चारि पराये लिये दानके फलका उत्पन्न करना ऋणके द्रव्यका देना विक्रय और व्यवहारका देखना इन बातोंको करते हुए धनकी वृद्धिको प्राप्त होतेहैं तिस्से ब्राह्मण देनेवालेको और धनाढ्य अधमर्णको और वनियों बंचनेवालेको और राजा व्यवहार करनेवालेको बलसे न प्रवृत्त करै ॥ ६९ ॥ राजा क्षीणधन होनेपरभी नहीं लेनेयोग्य धनको न लेवै और धनवान् होनेपरभी लेनेयोग्य थोडाभी न छोडै ॥ ७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं रथ्याप्यते  
राज्ञः सं प्रेत्येह च नश्यति ॥ ७१ ॥ स्वादानाद्घर्णसंसर्गात्त्वैवलांनां  
च रक्षणात् ॥ वैलं संजायते राज्ञः सं प्रेत्येह च वैधते ॥ ७२ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्यके लेनेसे और शास्त्रमें कहे हुए लेनेयोग्यके न लेनेसे पुरवासी राजाका असामर्थ्य स्थापित करतेहैं तिस्से मरिक्के अधर्मसे नरक आदिके भोगसे और इस लोकमें अपयशसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ न्याय्य कहिये उचित धनके लेनेसे और वर्णोंके सजातीय शास्त्रोक्त विवाह आदिके संबंधसे अथवा वर्णोंका संसर्ग कहिये वर्णसंकर तिस्से रक्षा करनेसे और दुर्बल प्रजाओंकी बलवान्से रक्षा करनेसे राजाका सामर्थ्य उत्पन्न होताहै तिस्से वह इस लोक तथा परलोकमें वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७२ ॥

तस्माद्यमद्वं स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ॥ वर्तते याम्यया वृत्त्या  
जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कु-  
र्यान्नराधिपः ॥ अचिरात्तं दुरात्मानं वंशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ ७४ ॥

टीका—तिस्से यमके समान राजा क्रोधको वशमें करि जितेन्द्रिय हो अपने भी प्रिय अप्रियको छोडि यमकी चेष्टासे सर्वत्र समानरूप वर्त्ते ॥ ७३ ॥ जो राजा लोभ आदिके व्यामोहसे अधर्मसे व्यवहारदर्शन आदि कार्योंको करताहै उस दुष्टचित्तको प्रजा तथा पुरवासियोंकी अप्रीतिसे शीघ्रही शत्रु दंड देतेहैं ॥ ७४ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ॥ प्रजास्तमनुवर्त-

१३ न्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ ७५ ॥ यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्ध-  
निकं नृपे ॥ स राज्ञा तच्चतुर्भागं दार्थ्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ७६ ॥

टीका—जो राजा रागद्वेषको छोडकर धर्मसे कार्योंको देखताहै उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करतीहै जैसे समुद्रको नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती हैं उसीके साथ एकताको प्राप्त होतीहै प्रजाभी ऐसेही राजाकी अनुगामिनी होतीहै ॥ ७५ ॥ जो अधमर्ण में राजाको प्याराहै इस गर्वसे अपनी इच्छासे धन सावित करनेवाले उत्तमर्णका राजासे निवेदन ( नालिश ) करताहै उसपर राजा ऋणका चौथाई भाग दंड करै और उसका धन दिवावै ॥ ७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधर्मणिकः ॥ समोऽवकृष्टजातिस्तु  
दद्याच्छ्रेयास्तु तच्छनैः ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना राजा मिथो विवद  
तानृणां ॥ साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ ७८ ॥

टीका—समानजाति अथवा हीनजाति अधमर्ण कहिये ऋणी धनके न होनेपर अपनी जातिके अनुरूप करनेसेभी बराबर करै अर्थात् उत्तमर्ण अधमर्णपरसे निवृत्त हो धनीके समान आपको करै और जो ऋणी ऊंचा जातिका होय तौ उससे कर्म न करावै किंतु वह होले २ प्रासिके अनुसार उस धनको देवै ॥ ७७ ॥ इस कहे हुए प्रकारसे आपसमें विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीके साक्षी आदिसे निर्णय किये हुए कार्योंको विरोध दूर करिके बराबर करै ॥ ७८ ॥

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ॥ महापक्षे धर्निन्याये निः  
क्षेपं निक्षिपेद्बुधः ॥ ७९ ॥ यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य  
मानवः ॥ स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथाग्रहः ॥ १८० ॥

टीका—उत्तम कुलमें उत्पन्न होय और सदाचारवान् होय धर्मका ज्ञाता तथा सत्य बोलनेवाला होय और बहुत पुत्र आदि कुटुंबवाला होय और सरलप्रकृतिका होय ऐसे मनुष्यके समीप व्यभिचार न होनेसे धरोहर रक्खै ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारसे मूडा हुआ अथवा विना मूडा हुआ साक्षियोंके होनेपर अथवा विना साक्षियोंके जिस सुवर्ण आदि धनको जिसके हाथमें रक्खै वह धन उस रखनेवालेको वैसाही लेना चाहिये जिससे जिस भाँति देना है उसी भाँति लेना उचितहै भूदेहुएभी सुवर्ण आदिकी मुद्राको आपही खोलि रखनेवाला जब कहै कि, मेरा यह तौलकर दे तब यह दंड आदिके लियेहै ॥ १८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ॥ स याच्यः प्राड्विवा  
केन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ॥८१॥ साक्ष्यभावे प्राणिधिभिर्वयोहूपस-  
मन्वितैः ॥ अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

टीका—रक्खा हुआ मेरा सुवर्ण आदि द्रव्य दे ऐसे रखनेवाले करि कहा गया जो पुरुष उसको जव न देवै तव रखनेवालेके सूचित करनेपर प्राड्विवाकको उस रखनेवालेके पीछे माँगना चाहिये ॥ ८१ ॥ पहली धरोहरमें साक्षी न होनेपर समाके योग्य अवस्थामें बाल नहीं और स्वरूपवान् और राजाका उपद्रव आदि कहनेवाले ऐसे अपने चार पुरुषोंसे सुवर्ण आदि द्रव्यको रखवाकै उन्हीं राजपुरुषोंको उस धरोहरवालेसे चार पुरुषों करि रक्खीहुई धरोहर प्राड्विवाकको माँगनी चाहिये ॥ ८२ ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् ॥ न तत्र विद्यते किं  
चिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ ८३ ॥ तेषां नदद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथा  
निधिः ॥ उभौ निर्गृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥८४॥

टीका—वह धरोहर लेनेवाला मूँदी हुई अथवा खुलीहुई जैसी रक्खीथी कडे मुकुट आदिके आकारसे बनी हुईको वैसेही मानले कि सच्चीहै लीजिये तो पहले रखनेवाले जिसने प्राड्विवाकसे आवेदन ( नालिश ) कियाहै उसका कुछ नहीं है वह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ उन चारपुरुषोंका रक्खा हुआ सुवर्ण जैसा रक्खाथा वैसा न दे तो दोनों धरोहर अर्थात् पहले सूचित करनेवालेकी और चार पुरुषोंकरि रक्खी हुई उसको दवाकै दिलवानी चाहिये इस प्रकारकी धर्मकी धारणा कहिये निश्चयहै ॥८४॥

निक्षेपोपनिधी भित्तयं न देयौ प्रत्यनन्तरे ॥ नश्यतो विनिपाते ता  
वनिपाते त्वनाशिनौ ॥ ८५ ॥ स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्य-  
नन्तरे ॥ न स राज्ञो नि योक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च वन्धुभिः ॥८६॥

टीका—जो रक्खा जाय वह निक्षेप कहा जाताहै और मुहर लगा हुआ बिना गिना अथवा वासनमें रक्खाहुआ जो रक्खा जाय उसको उपनिधि कहतेहैं इनका ब्राह्मण और संन्यासीकी भांति उपदेशमें भेदहै, वे दोनों निक्षेप और उपनिधि रखनेवाले और जिसके समीप रक्खीहै उसके जीवतेहुए तदनंतर कहिये उसके पुत्र आदिकी और उसके अनंतर उसके धनके अधिकारीको निक्षेप धारनेवाला कभी न देवै जिसे उसके पुत्र आदिकी पिताके दिये विना नाश होनेपर वे निक्षेप और उपनिधि नष्ट होतेहैं फिर पुत्रादिकोंके अविनाशमें और देनेमें कदाचित् अविनाशी

होजाय तिससे अनर्थके संदेहसे न देने चाहिये ॥ ८५ ॥ मरे हुए रखनेवालेके धनको जिसके समीप रक्खा है वह रक्खे हुए धनको उसके धनके अधिकारी पुत्र आदिको विना माँग आपही जो देता है वह राजा करि और उसके पुत्र आदिकों करि ऐसे कहनेयोग्य नहीं है कि, तेरे पास और भी रक्खा है ॥ ८६ ॥

अच्छलनैर्व चांन्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ॥ विचार्य तस्य वा वृत्तं  
साम्रैर्व परिसाधयेत् ॥ ८७ ॥ निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परि  
साधने ॥ समुद्रे नाग्युयात्किञ्चिद्वादि तस्मान्न संहरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—उसके समीप और धन होनेकी शंका रूप वाणीके कहे विना प्रीतिपूर्वक निश्चय करै और शीघ्र शपथ आदिके देनेसे न निश्चय करै उस निक्षेपघारिके शील आदिको देखि यह धर्मात्मा है ऐसा जानिके साम दान उपायसे निश्चय करै ॥ ८७ ॥ नहीं मानी हुई सब धरोहरोंके सावित करनेमें यह पहले कही हुई विधि होतीहै और मूँदी आदिमें निक्षेपका धारण करनेवाला जो दूसरीवार बंद करनेसे उसमेंसे कुछ न लैवे तो उसमेंभी उसको कुछ दूषण नहीं लगता है ॥ ८८ ॥

चौरैर्हृतं जलेनोदमग्निना दग्धमेव वा ॥ न दद्याद्वादि तस्मा-  
त्सं न संहरति किञ्चन ॥ ८९ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेपार-  
मेव च ॥ सर्वरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥

टीका—चोरों करि चुराय गये वँहायकै दूसरे देशमें पहुँचाये गये अग्नि करि जलाये गये निक्षेप आदिको निक्षेप धारण करनेवाला न देवै जो आप-उसमेंसे कुछ न लैवे ॥ ८९ ॥ धरोहरके छुपानेवालेको और विना रक्खे माँगनेवालेको राजा साम आदि सब उपायोंसे तथा वेदमें कहे हुए सौगंदोंसे निश्चय करै ॥ १९० ॥

यो निक्षेपं नाप्यति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ तांबुभौ चौरैर्वच्छां  
स्यौ दाप्यौ वा तत्समं दर्मम् ॥ १९१ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं  
दापयेदर्मम् ॥ तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पाथिवः ॥ १९२ ॥

टीका—जो रक्खी हुई धरोहरको न देवै और विना रक्खे माँगै वे दोनों सोना मोती आदिकी बडी धरोहरमें चोरके समान दंड देने योग्य हैं ॥ १९१ ॥ धरोहरके छुपानेवालेको तथा विना रक्खे माँगनेवालेको रक्खे हुए धनके बँरोवर दंड करै ( शंका ) जो कही कि, पहले श्लोकमेंभी यही कहाहै तो पुनरुक्ति हुई सो नहींहै क्योंकि बडे अपराधके होनेपर ब्राह्मणको छोडि दूसरी जातिको चोरके समान दंड दे

इसप्रकार पहले श्लोकसे शरीरका दंड प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये यह कहाहै और दापयेत् कहिये दिवावै इस्से धनदंडका नियम होनेसे इस्से पहले श्लोककी व्यर्थता नहीं हुई इसको प्रथम अपराधविषयक होनेसे पहले कहे हुएके अभ्याससे चोरके लिये कहेहुए उत्तम साहस आदि धनदंडका बोधक होनेसे मोहर आदि चिह्न करके रक्खेहुए धनको उपनिधि कहते हैं उसके हरनेवालेको राजा कहे हुए दंडको देवै ॥ ९२ ॥

उपदाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ॥ संसहायः संहन्तव्यः प्रं  
काशं वि विधै वैधैः ॥ ९३ ॥ निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलं  
सन्निधौ ॥ तांवानेवं स विज्ञेयो विद्वुवन्दण्डमर्हति ॥ ९४ ॥

टीका-राजा तरे ऊपर क्रोधित है उससे मैं तुझे वचाऊंगा तू मुझे धन दे ऐसे झूट कहिकै जो पराये धनको लेताहै वह छलसे धन लेनेवाले सहायकोसमेत बहुतसे मनुष्योंके सामने हाथ पाँव तथा शिर काटने आदि नानाप्रकारके बधके उपायोंसे राजा करि मारनेयोग्य है ॥ ९३ ॥ जो सुवर्ण आदि जितना जिस करके निक्षेप किया गया उस परिमाण आदिमें अंतर पडनेसे साक्षियोंके वचनसे उतनाही जानना चाहिये अंतर करता हुआभी कहेके अनुसार दंड देने योग्यहै ॥ ९४ ॥

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥ मिथ एव प्रदातव्यो  
यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ ९५ ॥ निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनि  
हितस्य च ॥ राजा वि निर्णयं कुर्यादक्षिष्वत्र्यासधारिणम् ॥ ९६ ॥

टीका-एकांतमें जिसने धरोहर दी और एकांतहीमें लेनेवालेने ली वह धरोहर एकांतहीमें फिर देने योग्यहै लौटा कर देनेमें साक्षियोंकी अपेक्षा नहीं है जिस्से जिस भाँति देनाहै उसी भाँति लौटनाहै धरोहर लेनेवालेके लिये यह नियमकी विधिहै ॥ ९५ ॥ मृदे हुए अथवा खुले हुए उपनिधिरूप धरोहरके धनको तथा कुछ थोडे काल भोगनेके लिये दिये हुएको इस कहे हुए प्रकारसे रक्खे हुए धनके धारण करने वाले पुरुषको पीडा विना दिये राजा निर्णय करै ॥ ९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ॥ न तं नयेत्  
साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ ९७ ॥ अवहार्यो भवेच्चैवं सान्वयः  
षट्शतं दर्मम् ॥ निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चोरं किल्विषम् ॥ ९८ ॥

टीका-जो वस्तुका स्वामी नहीं है और स्वामीकी आज्ञा विना पराये द्रव्यको बँच

ताहै वास्तवमें वह चोरहै और आपको चोर नहीं मानताहै उसको साक्षी न करै और न कहीं उसका प्रमाण माने ॥ १७ ॥ यह पराये द्रव्यका बेंचनेवाला जो स्वामीका भाई आदि संबंधी होय तो छःसौ पण दंड देनेयोग्य है और जो स्वामीका संबंधी न होय और स्वामीके संबंधी पुत्र आदिसे धन दान विक्रय आदि होय तो वह चोरके पापको प्राप्त होता है और चोरके समान दंड करने योग्यहै ॥ १८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ॥ अकृतः संतुं विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ १९ ॥ संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्ये तागमः क्वचित् ॥ आगमः कारणं तत्र न संभोगं इति स्थितिः २००

टीका—स्वामीके बिना जो दिया गया और जो बेंचा गया अथवा मोल लिया गया उसको बिना कियाही जानिये व्यवहारमें जैसी मर्यादा है वह वैसा नहीं किया गया होताहै ॥ १९ ॥ जिस वस्तुमें भोगना तो है और मोल लेने आदिका लेख नहीं है वहां पहले पुरुषके आगे लेखही प्रमाणहै भोग नहीं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २०० ॥

विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्द्वितीयात्कुलसन्निधौ ॥ क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥ १ ॥ अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ॥ अदर्ण्डयो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ २ ॥

टीका—जो द्रव्य विक्रय कहिये बेंचनेसे व्यवहारियोंके आगे मोल देकर जिस्से लेताहै वह न्यायसे शुद्ध द्रव्यको पाताहै ॥ १ ॥ जो मूलस्वामी बेंचनेसे अथवा परदेशमें जाने आदिसे व्यवहार न करसके और प्रकाशित क्रयसे यह निश्चयहै तो दंडके योग्य नहीं है मोल लेनेवाला राजाकीर छोडा जाताहै और नष्ट धनका स्वामी बिना स्वामीके बेंचे हुए द्रव्यको मोल लेनेवालेके हाथस पाताहै इस विषयमें मोल लेनेवालेको आधा मोल देकर स्वामीको अपना धन लेना चाहिये यहां व्यवहारसे दोनोंका आधा धन मारा जाताहै ॥ २ ॥

नान्यदन्येन संस्पृष्टरूपं विक्रयमर्हति ॥ न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥ ३ ॥ अन्यां चेद्दर्शयित्वा न्या वोढुः कन्या प्रदीयते ॥ उभेते एकंशुल्केन वै हेदित्यर्वावीर्मनुः ॥ ४ ॥

टीका—केशर आदि द्रव्योंमें कुमूम आदि मिलाकै न बेंचना चाहिये और असारको सार कहिकै न बेंचे और तराजु आदिमें कमती न तोलै और पीठि पीछे न बेंचे

और भीतिसे रक्खे हुये द्रव्यको न बँचे विना स्वामीके विक्रयके समान होनेसे विना स्वामीके बँचनेहीका दंड होताहै ॥ ३ ॥ मोलसे देनेयोग्य कन्याको मोलके समय निदोष सुंदर दिखाकै जो वरको दोषसहित कुरूपा दीजाय तौ दोनों कन्याओंको वर उस एकही मोलसे व्याहि लेवै यह मनुने कहाहै मोलका द्रव्य लेकर कन्याका दान करना बँचनाही है इससे इसको द्रव्यके बँचने मोल लेनेके साथ कहाहै ॥ ४ ॥

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च यो रूषूषमैथुना ॥ पूर्वं दोषानभि  
ख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥५॥ ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म  
परिहापयेत् ॥ तस्य कर्मानुरूपेण दे योऽशः संह कर्तृभिः ॥ ६ ॥

टीका—उन्मत्ताके कोठिनीके और मैथुनसंसर्गवालीके उन्माद आदि दोषोंको ब्राह्म आदि विवाहोंसे पहले वरको सूचना करके देनेवाला दंडयोग्य नहीं होताहै और विना कहे दंडयोग्य होताहै ॥ ५ ॥ अब संभूयसमुत्थानको कहतेहैं यज्ञमें वरण किया हुआ ऋत्विक् जो थोडासा कर्म करिकै रोग आदिसे कर्मको छोडदे तौ उसको और ऋत्विजोंसे विचार करिकै उसके कियेके अनुसार दक्षिणाका अंश ( हिस्सा ) देना चाहिये ॥ ६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥ कृत्स्नमेव लभेतांशमै  
न्येनैव च कारयेत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्र-  
त्यङ्गदक्षिणाः ॥ स एव तां अददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ ८ ॥

टीका—माध्यंदिनी यज्ञ आदिमें दक्षिणाके समय दक्षिणाओंके देनेपर रोगआदिसे कर्मको छोडता हुआ नटखटीसे नहीं तौ वह संपूर्ण दक्षिणाके भागको पावै और बाकी कर्मको औरसे करवावै ॥ ७ ॥ जिस आधान आदि कर्ममें अंग अंग प्रति जिसके संबंधसे सुनी हुई जो दक्षिणा होतीहै वही उनको ले अथवा केवल उसी उसी भागको सब बांटके ले लेवै ॥ ८ ॥

रथं हरेत् वांघ्वर्युर्ब्रह्मार्थाने च वाजिनम् ॥ होता वापि हरेद-  
श्वमुद्रांता चाप्यनःक्ये ॥९॥ सर्वेषामर्थि नो मुख्यास्तदर्थेनार्थि-  
नोऽपरे ॥ तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पाँदिनः ॥ २१० ॥

टीका—यहा सिद्धांत कहतेहैं कि किन्ही शाखावालोंके आधानमें अघ्वर्युको रथ देना चाहिये यह कहाहै और ब्रह्माको वेगवान् घोडा और होताकोभी घोडा और उद्गाताके लिये सोमके मोलमें सोमका लेचलने वाला छकडा इस व्यवस्थाकी सामर्थ्यसे जो

दक्षिणा जिसके संबंधसे सुनी जाती है वही उसको ग्रहण करे ॥ ९ ॥ दक्षिणाका विभाग कहते हैं ॥ उसको सौसे दीक्षायुक्त करता है यह सुना जाता है वहां सब सोलह ऋत्विजोंके मध्यमें जो चारि ऋत्विज अर्थात् होता, अश्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता ये सब दक्षिणाके आधे भागके पानेवाले हैं और अरतालीस गौके पानेवाले होते हैं इसीसे कात्यायनने बारहवारह आधोंके कहिये पहलोंके लिये इस भांति प्रत्येकको बारह गोदान कहे हैं यद्यपि सौके आधे पचास होते हैं तिसपरभी यहां न्यून आधा लेनेसे ये आधेवाले कहे जाते हैं और समीपत्तासे मैत्रावरुण, प्रतिस्तोता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता ये मुख्य ऋत्विक्की पाईहुई दक्षिणाका आधा लेनेसे अर्द्धी अर्थात् आधे भागके पानेवाले कहे जाते हैं और तीसरे अच्छावाक नेष्टा आग्नीध्र प्रतिहर्ता ये मुख्य ऋत्विक्की दक्षिणाका तीसरा भाग पाते हैं और चौथाईवाले उन्नेता होता सुब्रह्मण्य ये मुख्य ऋत्विक्की पाईहुई दक्षिणाका चौथा भाग पाते हैं यह तौ छः छः दूसरोंसे और चार चार तीसरोंसे और तीनि तीनि चौथोंसे सूत्रमें लिखते हुए कात्यायनने स्फुट किया है ॥ २१० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ॥ अनेन विधियोगेन कं  
तव्यांशप्रकल्पना ॥ ११ ॥ धर्मार्थयेन दत्तां स्यात्कस्मैचिद्यां चते  
धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न दे यंतस्य तद्भवेत् ॥ १२ ॥

टीका—मिलकरि घरके बनाने आदि अपने कर्मोंको लोकमें स्थपति ( राजा ) सूत्रकार ( बढई ) आदि मनुष्योंसे करवानेवालोंका इस यज्ञदक्षिणाविधानके आश्रयसे विशेष ज्ञान ( कारीगरी ) और व्यापार कहिये कामकी अपेक्षासे भागकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अव दत्तानपकर्म कहिये दियेका निषेधकरदेना कहते हैं ॥ जिसने यज्ञ आदि कर्मके लिये किसी माग्नेवालेको धन दिया अथवा देनेकी प्रतिज्ञा की होय पीछे वह इस धनको यज्ञके लिये न लगावै तब यह दिया हुआभी धन ले लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया हुआ न देना चाहिये ॥ १२ ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दैर्पाच्छोभेन वा पुनः ॥ राज्ञा दीप्यः सुवर्णं  
स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥ दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथा  
वदनपक्रिया ॥ अंत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतेनस्यानंपक्रियाम् ॥ १४ ॥

टीका—जो उस दिये हुये धनको लेनेवाला लोभसे अथवा अहंकारसे न देवै और प्रतिज्ञा किये हुएको बलसे ले तौ उस चोरीके पापकी शुद्धिके लिये राजाको सुवर्ण प्रमाण दंड देनेयोग्य होता है ॥ १३ ॥ धर्मसे रहित यह दिये हुएका न देना तत्त्वसे



कहा इसके उपरांत भृतिका अर्थात् नौकरीका न देना आदि कहेंगा ॥ १४ ॥

भृतोऽनातो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ॥ संदण्डयःकृष्णं  
लान्यंशौ न दे<sup>१०</sup> यं चास्य<sup>११</sup> वेतनम् ॥ १५ ॥ अर्त्तस्तु<sup>१२</sup> कुर्यात्स्वस्थःसन्  
थाभाषितमादितः ॥ स<sup>१३</sup> दी<sup>१४</sup> र्वस्यापि<sup>१५</sup> कालस्य तल्लभैतव<sup>१६</sup> वेतनम् १६

टीका-नौकरीपर रक्खा हुआ जो मनुष्य रोगके विना अहंकारसे कहे हुए कामका न करै तौ उसपर कर्मके अनुरूप आठ रत्ती सोना दंड करना चाहिये और नौकरीका धनभी न देना चाहिये ॥ १५ ॥ जब रोगआदिकी पीडासे काम न करै आराम होके पहले कहेके समान काम देवै तौ वह बहुत दिनोंकाभी वेतन ( तनखाह ) पावै ॥ १६ ॥

यथोक्तमार्तःसुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥ न तस्य वेतनं दे  
यमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥ १७ ॥ एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान  
कर्मणः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्म समयभेदिनाम् ॥ १८ ॥

टीका-जो काम जैसा कहा गया उसको पीडित होनेपर दूसरे न करावै अथवा स्वस्थ रहनेपर आप न करै और न करावै तौ उसको उस किये हुए कामके शेषकाभी वेतन ( तनखाह ) न देना चाहिये ॥ १७ ॥ वेतनादान कर्मकी यह सब व्यवस्था कही इसके उपरांत संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंके दंड आदिकी व्यवस्था कहेंगे ॥ १८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सन्त्येन संविदेम् ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं  
राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ १९ ॥ निर्गृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारि-  
णम् ॥ चतुःसुवर्णान्घणिकाञ्छतमानं च राजतम् ॥ २० ॥

टीका-ग्राम और देशशब्दोंसे उनके बसनेवाले लक्षित होतेहैं संघ कहिये वनिये आदिका समूह हम इस कर्मको करेंगे और इसको न करेंगे इस प्रकारके संकेत ( इशारा ) को सत्य आदिकी सौगंदसे निश्चित करिके उसको जो मनुष्य लोभ आदिसे उलंघन करै उसको राजा देशसे निकाल देवै ॥ १९ ॥ इस संविद्व्यतिक्रम काटि अर्थात् प्रतिज्ञा उलंघन करनेवालेको रोककर उसपर चारि सुवर्ण छः निष्क प्रत्येक चारिसुवर्ण प्रमाण और चांदीके सौ मान और तीनसौ बीस रत्ती परिमाण ये तीनों प्रकारके दंडहैं इनमेंसे विषय कहिये कार्यके भारीपन और हलकेपनकी अपेक्षासे सब इकट्ठे अथवा एक एक दंड राजा करै ॥ २० ॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्भार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ग्रामजातिसमूहेषुस

मैयव्यभिचारिणाम् ॥२१॥ क्री<sup>३</sup> त्वा विक्रीय वा<sup>३</sup> किञ्चिद्यस्येहानु<sup>३</sup>  
शयो भवेत् ॥ सोऽन्तर्दशार्हात्तद्व्यं दद्याच्चै<sup>३</sup> वा<sup>३</sup> ददीतं च ॥ २२ ॥

टीका—ग्राम कहिये ब्राह्मण आदिकें जाति समूहमें संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंपर इस धर्मप्रधान विधिको राजा दंड करै ॥ २१ ॥ नाश न होनेवाली स्थिर मोलकी भूमि वा तांविका पट्टा आदिको मोल लेकर अथवा बेंचकर लोकमें जिसको पछतावा होय किं, मैंने अच्छा नहीं तोल लिया वह उस मोल लियेको दशदिनके भीतर लौटादे और बेंचे हुएको लौटा लैवै ॥ २२ ॥

परेण तु दंशाहस्य न दद्यान्नपि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चै<sup>३</sup> व<sup>३</sup>  
राज्ञां दण्डयः शर्तानि षट् ॥ २३ ॥ यस्तु दोषवती कन्यामनाख्याय  
प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवति पणान् ॥ २४ ॥

टीका—दश दिनके उपरांत मोल ली हुई भूमि आदिको न छोडै और बेंची हुई को मोल लेनेवालेसे बल करि न दिलवावै बेंचे हुएको बलसे लेता हुआ और मोल लियेको छोडता हुआ राजाकरि सौ पण दंड करने योग्यहै ॥ २३ ॥ नोन्मत्तया इत्यादि जो पाहिले कहाहै दंडविशेषके लिये यहां कहतेहैं उन्माद आदि दोषोंकी न कहकर दोषयुक्त कन्याको जो बरके लिये देताहै उसपर राजा आप आदरसे छ्यानेव पण दंड करे पछतावेके प्रसंगसे यह कन्याके मध्ये कहा ॥ २४ ॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्वेषेण मानवः ॥ स शतं प्राप्नुय्याद्दण्डं  
तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २५ ॥ पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्र-  
तिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २६ ॥

टीका—यह कन्या नहीं है क्षतयोनि है ऐसे जो मनुष्य द्वेषसे कहै वह उसके दोष को न प्रकटकर सके तो सौ पण प्रमाण राजाके दंडको प्राप्त होय ॥ २५ ॥ “अर्यमणानु देवं कन्या अभिमयक्षत” इत्यादि मनुष्योंकी विवाहके मंत्र कन्या शब्दके श्रवणसे कन्याओंमें व्यवस्थितहै अकन्याके विषयमें भिन्नार्थ होनेसे शास्त्रमें कही नहीं धर्म-विवाहकी सिद्धिके लिये व्यवस्थितहै इसीसे कहतेहैं कि, विवाहके मंत्रोंसे संस्कार की गईंभी वे क्षतयोनि स्त्रियां धर्मविवाह आदिकी क्रिया जिनकी दूरि हुई है ऐसी होतीहै इसका अर्थ यहहै कि, यह धर्मविवाह नहीं है यह क्षतयोनिका विवाहके मंत्रोंसे होम आदिका निषेध करनेवाला नहीं है “या गर्भिणी संस्क्रियते” और “बोद्धुः कन्यास-मुद्भवम्” यह आगे मनुजीनेही क्षतयोनिकाभी विवाहसंस्कार कहाहै और देवलने

तो गांधर्वाविवाहोंमें कहा है कि “पुनर्वैवाहिको विधिः” अर्थात् यह पुनर्विवाहकी विधि है तथा “कर्त्तव्यश्च त्रिभर्वाणैस्समयेनाग्निसाक्षिकः” इति ॥ अर्थ—तीनविवाहोंको समय पाकै अग्नि साक्षी देकर करना चाहिये गांधर्वाविवाहोंमें होममन्त्र आदिकी विधि कही है और गांधर्व तो उपगमनपूर्वकभी होता है उसका क्षत्रियोंमें धर्मपन मनुने कहा है इस कारण सामान्य विशेषके न्यायसे यह इतर विषयकहै क्षत्रयोनिके विवाहको अधर्म धर्मसे बाहर कहा ॥ २६ ॥

पाणिग्राहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठां तु विज्ञेयां  
विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २७ ॥ यस्मिन् यस्मिन् कृते कार्ये यस्येहा-  
नुशयो भवेत् ॥ तर्तमेनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २८ ॥

टीका—विवाहके मंत्र निश्चय भार्यात्व कहिये स्त्रीपनके कारणहैं क्योंकि शास्त्रके अनुसार प्रयोग किये गये उन मंत्रोंसे भार्यात्व सिद्ध होता है उन मंत्रोंसे “सखा सप्तपदीभव” इस मंत्रसे कन्याको सातमें पांवके रखनेपर भार्यात्वकी सिद्धिकी शास्त्रके जाननेवालोंको समाप्ति जाननी चाहिये और सातमा पांव रखनेके पहले भार्यात्वकी सिद्धि नहीं है पश्चात्ताप होनेपर छोड़दे पीछे नहीं ॥ २७ ॥ केवल स्वरीदने चंचनेमेंही नहीं किंतु अन्यत्र भी संविद्वतनादि कामोंमें जिसकी पश्चात्ताप होय वह इस दशादिनकी विधिसे राजा धर्मयुक्त मार्गमें चलवै ॥ २८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैवं पालानां च व्यतिक्रमे ॥ विवादां संप्रवक्ष्यामि  
यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २९ ॥ दिवा वर्त्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि  
तद्द्वे ॥ योगक्षेमेऽन्यथा चेतु पालो वर्त्तव्यतामियात् ॥ ३० ॥

टीका—गौ आदि पशुओंमें स्वामीका और चरानेवालेके व्यतिक्रम होनेपर विवाद कहिये झगडेको धर्मके तत्त्वसे यथार्थ कहेंगा ॥ २९ ॥ दिनमें पशु पालनेवालेको सोंपे हुए पशुओंसे जो खेती आदिर्म जो कुछ उपद्रव होजाय तौ पालनेवालेकी बुराई है और रातिमें चरवाहेके लौटाय देनेसे स्वामीके घरमें बंधे हुए पशुओंसे जो कोई निकल कर कुछ उपद्रव करै तौ स्वामीका दोष है और जो दिनराति चरानेवालेके पास रहते होय तौ उसीकी बुराई होगी ॥ ३० ॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुर्गादर्शतो वराम् ॥ गोस्वाम्यनुमते भृत्यः  
सां स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥ ३१ ॥ नष्टं विनष्टं कुंभिभिः श्वहतं  
विषमे मृतम् ॥ चीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ ३२ ॥

टीका—जो गोपाल कहिये अहीर केवल दूधपर नौकर होय भोजन आदिसे कुछ काम नहीं वह स्वामीकी आज्ञासे दश गौओंमेंसे श्रेष्ठ एक गौकी अपनी नौकरीके मध्ये दुहि लैवै यह भोजन आदिरहित गौ पालनेवालेकी नौकरी हुई अर्थात् एक गौका दूध देनेसे दस गौओंको पालै ॥ ३१ ॥ नष्ट कहिये दृष्टिसे बाहर हुएको और कीड़ों करि नाश किये हुएको और छूत्तों करि खाये हुएको और गढिल्ले आदिमें गिरिकर मरे हुएको जो पालनेवालेका कोई मनुष्य न होय तौ मरे और भागे हुए गौ आदि पशुको पालनेवालाही स्वामीको देवै ॥ ३२ ॥

विधुष्य तु हतं चोरैर्न पालो दातुमर्हति ॥ यदि दे शै च काले च  
स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ ३३ ॥ कर्णौ चर्म च वालांश्च वस्ति  
स्नायुं च रोचनाम् ॥ पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ३४

टीका—जो थोड़ीही दूर लेजानेके पीछेही पालनेवाला अपने प्रभुके स्वामीसे कहि देवै तौ ढोल आदिसे शब्द करिकै चोरों करि हरे गये पशुको पालनेवाला स्वामीको न देवै विधुष्य कहिये ढोल आदि वजायके इसके कहनेसे चोरोंकी बहुतायत और प्रबलता जानी जाती है ॥ ३३ ॥ पशुओंके आपसे मरनेपर पालनेवाला कान चाम घूँछ बाल नाभिके नीचेका भाग नसें और रोचना स्वामियोंको देवै और भी मुख्य चिह्न सींग खुर आदि दिखावै ॥ ३४ ॥

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनार्यति ॥ यां प्रसंहर वृको ह्यन्या  
त्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ३५ ॥ तांसां चेद्वरुद्धानां चरतीनां  
मिथो वने ॥ यामुत्प्लुत्य वृको ह्यन्यात्र पालस्तत्र किं लिषी ॥ ३६ ॥

टीका—भेडबकरियोंको भेडियोंके घेरनेपर पालनेवाला न आवै तौ जिस एक भेड अथवा बकरीको वनमें भेडिया मारै वह पालनेवालेका दोष होताहै ॥ ३५ ॥ पालनेवाले करि रोकी हुई और वनमें इकट्ठी होके चरती हुई भेड बकरियोंमेंसे जो कोई भेडिया कहीं उछल कर गुप्त हो जिस किसी भेड वा बकरीको मारै वहां पालकको दोष नहीं होता है ॥ ३६ ॥

धनुःशतं परीहारी ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥ शम्यापातास्त्रयो  
वार्षि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ ३७ ॥ तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः  
पशवो यदि ॥ न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ ३८ ॥

टीका—चारि हाथका एक धनुष्य होताहै शम्या लाठीको कहते हैं उसका पात गिरना ग्रामके समीप सब दिशाओंमें चार सौ हाथ अथवा तीनि लाठीकी नापतक

पशुओंके चरनेके लिये भ्रम्र बोने आदिसे रोकबेका त्याग करनेयोग्यहैं और फिरि नगरके समीप यह तिगुणा करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस त्यागके स्थानमें जो कोई आवृति अर्थात् खाई आदिसे घेरिके धान्यको बोवै और उसको जो पशु खाजाय तौ वहां राजा पशुपालोंको दंड न देवै ॥ ३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्टो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं  
श्वसूकरमुखानुगम् ॥ ३९ ॥ पृथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा  
पुनः ॥ स पालः शतदण्डाहो विपालांश्चारयेत्पशून् ॥ २४० ॥

टीका-उस परिहारके स्थानमें खेतके चारों ओर कांटे आदिकोंसे ऐसी ऊंची वृत्ति बनावै कि, जिसको बाहरसे ऊंट न देखिसकै और उसमें जो कुत्ता वा सूकरके मुखके जानेके योग्य छिद्र हों उन सबोंको बंद कर देवै ॥ ३९ ॥ मार्गके समीप अथवा ग्रामके समीप अथवा कंटक आदिसे घेरे हुए परिहार ( वचावमें ) स्थित खेतको पालसमेत पशुपालन करि नहीं रोकेहुए द्वार आदिसे कैसे हू धसिके खाय तौ सौ पण दंड देना चाहिये पशुके दंडका असंभवहै तिससे पालहीको दंड देना चाहिये और पालके विनाही खानेको प्रवृत्त पशुओंको खेत रखनेवाला हांकि देवै ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पर्णमर्हति ॥ सर्वत्र तु सौदो देयःक्षेत्रि  
कंस्येति<sup>३३</sup> धारणा ॥ ४१ ॥ अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशून्स्त  
था ॥ सपालान्वा विपालान्वा न दण्डयान्मनुरर्षवीत् ॥ ४२ ॥

टीका-मार्ग और ग्रामके खेतोंसे अन्य खेतोंको खाता हुआ पशु सवा पण दंड के योग्यहै यहां भी पालनेवालेकोही दंड देना योग्य है सब खेतोंमें पशुके खाये हुएका फल क्षेत्रके स्वामीके लिये पाल अथवा पशुका स्वामी अपराधके अनुसार देवै यह निश्चय है ॥ ४१ ॥ दशदिनके भीतरकी व्याई हुई गौ तथा चक्र शूलसे अंकित छोडा हुआ बैल और देवतासंबंधी पशु चाहै पालसहित होय चाहै पालरहित होय खेत खाते होय तौ मनुने उनको अदंडच कहहै छोडेहुए बैलोंको गौओंके गर्भके लिये गोकुलमें पाल रखते हैं इस लिये पालका संबंधहै ॥ ४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दर्शगुणो भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भू-  
त्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥ ४३ ॥ एतद्विधानमतिष्ठेद्वार्मिकः  
पृथिवीपतिः ॥ स्वांमिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥ ४४ ॥

टीका-खेत जोतनेवाले निज बैल जो खेत खायजाय अथवा बोनेके समय न

बोया जाय इन अपराधोंके होनेपर जिस राजाके भागकी हानी उससे होय उससे दश-  
गुणा दंड उसपर होना चाहिये और जो खेतवालेके विनाजाने उसके नौकरोंसे उक्त  
अपराध होजाय तो खेतवालेहीपर दश गुनेका आधा दंड होना चाहिये ॥ ४३ ॥  
स्वामीके और पालकोंके रक्षाके अपराधसे पशुओंके खेत खानेरूप व्यतिक्रम होनेपर  
धर्मप्रधान राजा यह पहले कहा हुआ काम करै ॥ ४४ ॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः॥ज्येष्ठेर्मासि नयेत्सीमां  
सुप्रकांशेषु सेतुषु ॥ ४५ ॥ सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्चत्थ  
किंशुकान्॥शालमलीन्सालतालांश्च क्षीरिणंश्च व पादपान्॥४६॥

टीका—दो ग्रामोंकी सीमाके मध्ये झगडा उत्पन्न होनेपर ज्येष्ठके महीनेमें सूर्यके  
तापसे वृणोंके सूखि जानेसे सीमाके चिह्नोंके प्रगट होनेपर राजा सीमाका निश्चय  
करै ॥ ४५ ॥ वट, पीपल, ढाक, सेमल शाल, ताल और दूधवाले वृक्षको बहुत  
कालतक रहनेके कारण सीमाके चिह्नके लिये लगावै ॥ ४६ ॥

गुल्मान्वेषुंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ॥ शरान्कुब्जकंगु-  
ल्मांश्च तथा सीमां न नश्यति ॥४७॥ तडांगान्युदपानानि वाप्यः  
प्रसंवणानि च ॥ सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ ४८ ॥

टीका—गुल्मोंको जिनमें शाखा नहीं निकलतीहै और बाँसोंको और बहुत काटें  
तथा थोडे काटे आदिके भेदसे नानाप्रकारके सीमावृक्षोंको और लताओंको लगावै  
और स्थल कहिये ऊंचे बनायेहुए भूमिके भागोंको और शरपत्तोंको और छोटे  
गुल्मोंको सीमाके चिह्न करै ऐसा करनेपर सीमा नष्ट नहीं होतीहै ॥ ४७ ॥ तालाव,  
कुवा, बावडी, जल निकलनेके मार्ग, देवताओंके मंदिर, शिवालय आदिको दो ग्रामोंकी  
संधिके स्थानमें बनवावै सीमाके निर्णयके लिये लोकमें प्रासिद्ध करिकै बनवाये हुए इन  
तालाव आदिकोंमें जल पीनेवालेभी सुननेकी परंपरासे बहुतकालतक साक्षी रहतेहैं ॥४८॥

उपेच्छन्नानि चान्यानि सीमांलिङ्गानि कारयेत्॥सीमांज्ञाने नृणां  
वीक्ष्यं नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ ४९ ॥ अश्मनोऽस्थीनि गोवा-  
लांस्तुषान्भस्मं कपालिकाः ॥ करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छंकरा वालुं-  
कास्तथा ॥ २५० ॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्ष  
येत् ॥ तानि संधिषु सीमायामप्रकांशानि कारयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—इस लोकमें सीमानिर्णयके मध्ये सदा मनुष्योंको भ्रमसे सीमाका ज्ञान

होताहै इस बातको देखि कहेहुएसे भिन्न गूढ जिनको भागे कहेंगे ऐसे सीमाके चिह्नको करावै ॥४९॥ पत्थर, हड्डी, गौके बाल, घानकी भूसी, कपाल, करस, ईट, अंगारे, ठीकरियां, बालू तथा औरभी इसी प्रकारकी वस्तु कालाअंजन, विनौला आदि जिनको बहुत दिनोंमेंभी भूमि अपने रूपमें न मिला लैवै उनको ग्रामकी संघियोंमें सीमाके मध्यमें डालकर घडोंमें भरके सीमाओंके अंतमें रखिदेवै इस वृहस्पतिके वचनसे बडे पत्थरोंको छोडके घडीमें भरिकै गुप्त भूमिमें गाडि देवै ॥ २५० ॥५१॥

एतौलिङ्गैर्न येत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥

पूर्वभुंतया च सततमुदकस्यांगमेन च ॥ ५२ ॥

टीका—झगडा करनेवाले ग्रामोंकी सीमाका पहले कहेहुए इन चिह्नोंको राजा निर्णय करै और बसनेवालोंकी सीमाका अविच्छिन्न कहिये बराबर चले आये भोग ( कब्जे ) से निर्णय होताहै तीन पुरुष आदिके भोगसे नहीं क्योंकि “तस्याधिःसीमा” यह पर्युदासहै और दो ग्रामोंके बीचमें स्थित नदी आदिके प्रवाहसे इसपर उत्तपारके ग्रामोंकी सीमाका निश्चय करै ॥ ५२ ॥

यदि संशय एवं स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ॥ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सी  
मावादविनिर्णयः ॥ ५३ ॥ ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीं त्रि  
साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैवं विवादिनोः ॥ ५४ ॥

टीका—जो गुप्त और प्रकट चिह्नोंके देखनेसेभी निर्णय न होय अर्थात् किसीने छिपे हुए कोयले भूसी आदिके ये घडे लेकर दूसरे स्थानमें गाडि दिर्येहै और यह बड सीमाका वृक्ष नहीं है वह नष्ट होगया इत्यादि संदेह जो होय तो साक्षियोंसे सीमा विवादका निर्णय होवै ॥ ५३ ॥ ग्रामके मनुष्योंकी समूहमेंसे दोनों ग्रामके नियत किये हुए मनुष्यों और वादी प्रतिवादियोंके सामने सीमाके मध्ये सीमाके चिह्नोंमें संदेह होनेपर साक्षियोंसे चिह्न पूछने चाहिये ॥ ५४ ॥

तेपृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीं त्रि निश्चयम् ॥ निर्वध्नीयात्तथा  
सीमां सर्वास्तांश्चैवं नामतः ॥ ५५ ॥ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वा सग्वि  
णो रक्तवाससः ॥ सुकृतैः शीपिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ५६

टीका—पूछे गये वे सब साक्षी सीमाके मध्ये जिस भाँति निर्णय करै उसी प्रकारसे न भूलनेके लिये सीमाको पत्रमें लिखै और उन सब साक्षियोंके नाम लिखै ॥ ५५ ॥ लाल फूलोंकी मालाको धारण किये हुए और लालही बन्धोंको पहिरे हुए और साथ-

पर मट्टी कंकरोको रखकै जो हमारा सुकृतैह वह निष्पल होय ऐसे अपने सुकृतौ करि शाप दिये गये वे शक्तिके अनुसार सीमाका निर्णय करें ॥ ५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते<sup>३</sup> पूर्यन्ते सत्यसाक्षिणः ॥ विपरीतं नयन्तस्तु<sup>४</sup>  
दौष्याः स्थुर्द्विशतं दंमम् ॥ ५७ ॥ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः  
सामन्तवासिनः ॥ सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रथता राजसन्निधौ ॥ ५८ ॥

टीका—सत्यहै प्रधान जिनके ऐसे वे साक्षी शास्त्रमें कहे हुए विधानसे निर्णय करते हुए पापरहित होतेहैं और झूठसे निश्चय करते हुए प्रत्येक सौ पण दंड देनेयोग्य होतेहैं ॥ ५७ ॥ दोग्रामोंकी सीमाके विवादमें साक्षी न होनेपर चारों ओरोंके निकट बसने-वाले चारि ओरके चारि ग्राम साक्षियोंके धर्मसे राजाके आगे सीमाका निर्णय करें ॥ ५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीमां साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुयु-  
ज्जीत पुरुषान्वर्नगोचरान् ॥ ५९ ॥ व्याधश्छाकुनिकान्गोपान्कैर्व  
तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्रहानुञ्जवृत्तीनन्योर्ध्वनंचारिणः २६०

टीका—साक्षिधर्मसे राजाके सामने और पासके चारि ग्रामोंके बसनेवाले विस्वा-सयुक्त और ग्राम बसनेके लगाके पुरखोंके क्रमसे उस ग्रामके रहनेवाले ऐसे सीमाके साक्षियोंके न होनेपर जो आगे कहे जायंगे ऐसे निकट वर्तमान वनके फिरनेवाले मनुष्योंसे पूछे ॥ ५९ ॥ बहेलियोंसे अहीरोंसे धीवरोंसे कंजरोसे सांप पकडनेवालोंसे शिलोञ्जवृत्तिवालोंसे तथा औरभी फल फूल ईधनके लिये वनके व्यवहारियोंसे पूछे ये तो अपने प्रयोजनके लिये उस ग्रामसे सदा वनको जाते हुए उस ग्रामकी सीमाके जाननेवाले होतेहैं ॥ २६० ॥

ते पृष्टास्तु तथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तं तथा स्थोपयेद्वा  
जा धर्मेण ग्रामयोद्देयोः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य  
गृहस्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ ६२ ॥

टीका—पूछे गये वे व्याधआदि सीमारूप ग्रामकी संधियोंमें जिस प्रकारसे चिह्न कहैं उसी प्रकारसे राजा दोनों ग्रामोंकी सीमाको स्थापित करै ॥ ६१ ॥ एक ग्राममेंभी खेत कुआ तालाव बाग और घरोंकी सीमाके झगडेमें और पासके ग्रामोंके बसनेवाले साक्षियोंके प्रमाणसेही मर्यादाके चिह्नोंका निश्चय जानना चाहिये व्याध आदिकोंके प्रमाणसे नहीं ॥ ६२ ॥

सामन्तार्थेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ॥ सर्वे पृथक्पृथग्द-



ण्डयो राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥६३॥ गृहं तडागमौरामं क्षेत्रं वा भी  
षया हरन् ॥ शतानि पञ्च दण्डयः स्यादज्ञानाद्विशतो दर्मः ॥६४॥

टीका-सीमाके चिह्नोके लिये झगडनेवाले मनुष्योंके और पास देशके बसनेवाले जो झूठ कहें तो वे सब प्रत्येक राजाकरि मध्यम साहसका दण्ड देनेयोग्य हैं ऐसे ही जो और पासके नहीं हैं उनको पहले कहा हुआ दोसौ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ६३ ॥ घर तालाब वाग खेत इनमेंसे किसीको मारना बांधना आदि भय दिखा दवाकर ले लेवै तो पांचसौ दंड करनेयोग्य होय और जो अपनेके भ्रमसे ले ले तो उसपर दोसौ दंड किया जाय ॥ ६४ ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥ प्रदिशद्भूमिमेतेषामुप  
कारादि ति स्थितिः ॥६५॥ एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमावि  
निर्णये ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ ६६ ॥

टीका-चिह्न तथा साक्षी आदिके न होनेसे सीमाका प्रमाण न होसकनेपर धर्मज्ञ राजा पक्षपातरहित हो दो ग्रामोंके बीचमें स्थित झगडेकी भूमिको जिन ग्रामके वंसनेवालोंका अधिक उपकार होता होय उसकेविना निर्वाह न होता होय उन्हींको देवै यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥६५॥ यह सीमाके निश्चयका धर्म संपूर्ण कहा इसके उपरांत वाक्पारुष्य कहूंगा दंडपारुष्यसे पहले वाक्पारुष्य होतीहै इस्से पहले कही ॥ ६६ ॥

शतं ब्राह्मणमङ्कुशय क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा  
शूद्रस्तु वर्धमर्हति ॥ ६७ ॥ पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्डयः क्षत्रियस्या  
भिशांसने ॥ वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दर्मः ॥ ६८ ॥

टीका-यह चोर है ऐसे ब्राह्मणके आक्षेपरूप वचन कहिकै क्षत्रिय सौ पण दंडके योग्य होता है ऐसे डेढ सौ अथवा दोसौ कार्यका हलकापन तथा भारीपनकी अपेक्षासे वैश्य गूद्रभी ऐसेही ब्राह्मणकी बुगई करनेसे ताडनादिरूप वधके योग्य होताहै ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण जो पहले कहा हुआ आक्षेप क्षत्रियका करै तो पचास पण दंडके योग्य है और वैश्य तथा गूद्रका जो कहा हुआ आक्षेप करै तो ब्राह्मण पचीस और चारह पण क्रमसे दंड करने योग्य होय ॥ ६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वादेष्ववचनीयेषु तदेवं  
द्विशुणं भवेत् ॥६९॥ एकजातिद्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिप-

न् ॥ जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जर्घन्यप्रभवो हि<sup>१</sup> सैः ॥२७०॥

टीका—द्विजातियोंकी बराबरकी जातिमें कहे हुए आक्षेपके होनेपर बारह पण दंडहै और नहीं कहनेयोग्य बुरे वचनोंमें तथा भाई बहिनी आदिकी गाली देनेमें वही पहले कहे हुए सौ पणका दूना अर्थात् दोसौ पण दंड होताहै ॥ ६९ ॥ शूद्र द्विजातियोंको पातक लगानेवाली वाणीसे गाली देकर जीभ काटनेके योग्य होताहै जिससे पाद नाम निकृष्ट अंगसे उत्पन्नहै ॥ २७० ॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥ नि<sup>१</sup>क्षेप्योऽर्थोमयः शं  
ङ्कुर्वलत्रास्ये दशाङ्गुलः ॥७१॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्यं  
कुर्वतः ॥ तप्तमासेचयेत्ते<sup>१</sup>लं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७२ ॥

टीका—अभिद्रोह आक्रोशको कहतेहैं ब्राह्मण आदिकोंका जैसे अरे यज्ञदत्त ! तू ब्राह्मणोंमें नीचहै इत्यादिक आक्रोशसे नाम तथा जातिके ग्रहण करनेवालेके मुखमें अग्निसे तपी हुई दशअंगुलकी लोहेकी खील डालनेयोग्यहै ॥ ७१ ॥ कैसे हू धर्मके लेशको जानके तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसे अहंकारसे ब्राह्मणको उपदेश करनेवाले शूद्रके मुखमें और कानोंमें जलता हुआ तेल राजा डलवावै ॥ ७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ॥ वितथेन ब्रुवन्दर्पादा  
प्यैः स्याद्विशंतं दर्मम् ॥७३॥ काणं वाप्यथवा स्वअमन्यं वापि तं  
थाविधम् ॥ तथ्येनापि ब्रुवन् दौप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥७४॥

टीका—दंडकी लघुतासे यह समानजातिविषयकहै शूद्र करि किये हुए द्विजातिके आक्षेपविषयक नहीं है ॥ तुमने यह नहीं सुनाहै तुम इस देशमें नहीं उत्पन्न हुए हो तुम्हारी यह जाति नहीं है और तुम्हारे शरीरका संस्कार यज्ञोपवीत आदिकर्म नहीं किया गयाहै ऐसे अहंकारसे मिथ्या कहता हुआ दोसौ पण दंड देनेयोग्य होताहै ॥ ७३ ॥ कानेको पंगुओ तथा औरभी ऐसे हाथ आदि अंग हीनको सत्यभी काने आदि शब्दसे कहता हुआ बहुतही थोडा अर्थात् एक कार्षापण दंडके योग्य होताहै ॥ ७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तर्नयं गुरुम् ॥ आक्षारयच्छतं दार्प्यैः  
पन्थानं चार्ददद्दुरोः ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डैः कार्यो  
विजानता ॥ ब्राह्मणे सार्हसः पूर्वः क्षत्रिये<sup>१</sup> त्वेवं मध्यमः ॥७६॥

टीका—माता, पिता, स्त्री, भाई, पुत्र, गुरु इनको पातक आदि लगानेवाले और

गुरुको न मार्ग देनेवालेपर सौ पण दंड करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियों कारि आपसमें जो जातिसे पतित होनेयोग्य पातक लगानेपर दंडशास्त्रके जाननेवाले राजाकारि दंड करनेयोग्यहै दंडहीको विशेष कारि कहतेहैं क्षत्रियको पातक लगानेवाले ब्राह्मणपर प्रथम साहस और ब्राह्मणको पातक लगानेवाले क्षत्रियपर मध्यम साहस दंड करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विदुःशूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥ छेद्वर्जं प्रणयनं दण्डं  
स्येति विनिश्चयः ॥ ७७ ॥ एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य  
तत्त्वतः ॥ अतं ऊर्ध्वं प्रवेक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ ७८ ॥

टीका-वैश्य तथा शूद्रोंकी जातिमें आपसमें जातिसे पतित होनेके योग्य पातक लगानेपर ब्राह्मण क्षत्रियके समान शूद्रको पातक लगानेवाले वैश्यपर प्रथम साहस और वैश्यको पातक लगानेवाले शूद्रपर मध्यम साहस ऐसे जीभ काटनेके बिना तथा योग्य दंड करना चाहिये वह शास्त्रका निश्चयहै ॥ ७७ ॥ यह पीछे कही हुई वाक्-पारुष्यके दंडकी विधि यथावत् कहिये ठीक ठीक कंही अब इसके उपरांत ताडन आदि दंडपारुष्यके निर्णयको कहेंगे ॥ ७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्र्याञ्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ॥ छेत्तव्यं तत्तेद्वारस्यै  
तन्मनोरनुशासनम् ॥ ७९ ॥ पाणिमुर्धस्य दण्डं वा पाणिच्छेद-  
नमर्हति ॥ पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

टीका-अन्त्यज शूद्र जिस किसी हाथ पाँव आदि अंगसे साक्षात् अथवा छिपिके द्विजातिपर प्रहार करे वही इसका अंग काटना चाहिये यह मनुका उपदेशहै मनुका ग्रहण आदरके लियेहै ॥ ७९ ॥ मारनेके लिये हाथको अथवा दंडको उठाके हाथ काटनेको प्राप्त होताहै और कुपितहो लातसे मारता हुआ पाँवके काटनेरूप दंडको प्राप्त होताहै ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ॥ कर्त्यां कृताङ्गो निर्वा  
स्यः स्फिचं वास्यावकंतेयेत् ॥ ८१ ॥ अवनिष्ठीवतो दर्पाद्वावोष्ठी  
छेदयेन्नृपः ॥ अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ ८२ ॥

टीका-ब्राह्मणके आसनपर बैठा हुआ शूद्र कटिमें तपाये हुए लोहेसे चिद्र करिके दंशसे निकालने योग्यहै अथवा जैसे यह मरै नहीं ऐसे इसके स्फिच अर्थात् कटिके मांसपिण्डको कटवाय देवै ॥ ८१ ॥ गर्वसे कफको थूक करि ब्राह्मणका अपमान

करनेवाले शूद्रके राजा दोनों ओष्ठ कटवाय देवै और मूत्र डालनेसे अपमान करने वालेका लिंग कटवाय देवै और पादनेसे अपमान करनेवालेकी गुदाको कटवाय देवै ॥८२॥

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ॥ पाँदयोर्दाढिकार्यां च  
ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८३ ॥ त्वग्भेदकः शतं दण्डयो लोहितस्य  
च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तु षण्णिकान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ ८४ ॥

टीका—अहंकारसे ब्राह्मणके बाल पकडनेवाले शूद्रके इसको पीडा होगी अथवा न होगी इसका विचार न करता हुआ राजा दोनों हाथोंको कटवाय देवै और मारनेके लिये पांव डाढी गर्दन और अंडकोशोंके पकडनेवालेके दोनोंही हाथोंको कटवाय देवै ॥ ८३ ॥ जो समानजातिकी त्वचामात्रका भेदन करै तो सौ पण दंड करने-योग्यहै और रक्त निकालनेवालाभी सौपण दंडके योग्यहै मांसका भेदन करनेवाला छः निष्क दंड करनेयोग्यहै और हाडका भेदन करनेवाला तो देशसे निकालने योग्यहै ॥ ८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ॥ तथातथा दमः कायौ  
हिंसायामिति धारणा ॥ ८५ ॥ मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय  
प्रहते संति ॥ यथायथा महदुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ ८६ ॥

टीका—वृक्ष आदि सब उद्भिज्जांका उपभोग जिस जिस प्रकारसे फल पुष्प पत्र आदिसे उत्तम मध्यम अधमरूपसे होताहै वैनेही हिंसामेंभी उत्तम साहस आदि दंड करना चाहिये यह निश्चयहै ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके तथा पशुओंके पीडा उत्पन्न करनेके लिये जो प्रहार करनेपर जैसी जैसी पीडाकी अधिकता होय वैसा वैसा दंड अधिक करै ऐसे मर्मस्थान आदिमें त्वचाका भेद आदि करनेपर त्वचाका भेदन करनेवाला सौ पण दंड करनेयोग्यहै दुःखविशेषकी अपेक्षासे इस कहे हुए दंडसे अधिकभी दंड करने योग्यहै ॥ ८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं दांप्यः  
सर्वदण्डमथापि वा ॥ ८७ ॥ द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽ  
ज्ञानतोऽपि वा ॥ संतस्योत्पादयेत्तुष्टिराज्ञोर्दद्याच्चैतत्संमम् ॥ ८८ ॥

टीका—हाथ पांव आदि अंगोंकी और व्रण ( घाव ) शोणित कहिये रुधिरकी पीडा होनेपर समुत्थान व्यय कहिये जितने समय करि पहली दशाका माप्तिरूप समुत्थान होय अर्थात् अच्छा होके पहलासा हो जाय कालमें पथ्य औषध आदिसे

जितना खर्च होय वह उससे दिवाना चाहिये जो उस खर्चको पीडाका उत्पन्न करानेवाला न देना चाहै तो जो उसपर उत्थानव्ययहै और दंडहै उसीको दंडभावेसे राजा दिलवावै ॥ ८७ ॥ जिनका विशेष दंड नहीं कहाहै ऐसी कडे और तांविके कडाह आदि वस्तुओंमें जो जिसकी जानकर अथवा विना जाने विगाडै उसका दूसरी वस्तु आदिसे संतोष करावै और नाश कियेहुए द्रव्यकी बराबर राजाको दंड दैवै ॥ ८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः  
पुष्पमूलफलेषु च ॥ ८९ ॥ यानस्य चै वै यातुश्च यानस्वामिन  
एव च ॥ दंशातिर्वर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

टीका-चमडेके वर्त्तन आदिमें और चर्म काठ मट्टी आदिके बने हुए अन्यके वासनोके नाश करनेपर उनके मोलसे पांच गुणा दंड राजाको देना चाहिये और स्वामीकामी संतोष करानेही योग्यहै ॥ ८९ ॥ रथ आदि यान कहिये सवारीका और उसके चलानेवाले सारथीका तथा उसके स्वामीका जिसका वह यानहै उनके नाथ कटिजाना आदि दश कारण दंडको उल्लंघन करि वर्त्तमानहै अर्थात् इन निमित्तोंके होनेपर प्राणियोंके मारनेमें और द्रव्यके नाश होनेमें स्वामी आदिकोको दंड नहीं होताहै यह मनुआदि कहतेहैं और इनसे भिन्न कारणोंमें दंड होताहै ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥ अक्षभङ्गे च यानस्य  
चक्रभङ्गे तथैव च ॥ ९१ ॥ छेदने चै वै यन्त्राणां योक्ररश्म्यो  
स्तथैव च ॥ आक्रन्दे चाप्यपैहीति नंदण्डं मनुर्ब्रवीत् ॥ ९२ ॥

टीका-वैलोंकी नाथके कटि जानेपर जुआके टूट जानेपर अथवा भूमिके ऊंची नीची होनेसे तिरछा जानेपर और यानकी धूरिके टूटनेपर तथा पहियाके टूटनेपर और चमडेके बंधनोंके टूटि जानेपर और जोतोंके तथा पगहियोंके टूट जानेपर और सारथी आदि करि कियेहुए हटजाओ हटजाओ ऐसे ऊंचे शब्दके होनेपर जो यानसे प्राणीकी हिंसा तथा द्रव्य आदिका नाश होजाय तो सारथीआदिको दंड नहींहै यह मनुजी कहतेहैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

यत्रार्पवर्तते युग्मं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥ तत्र स्वामी भवेदण्डयो  
हिंसायां द्विशतं दमम् ॥ ९३ ॥ प्राजकश्चेद्भवेदातः प्राजको दण्डमं  
हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनात्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥ ९४ ॥

टीका-जहां सारथीके कुशळ न होनेसे रथ इधर उधर मार्गको छोडिके चलै और

उरसे हिंसा होनेपर विना सीखे हुये सारथी रखनेके कारण स्वामीपर दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ ९३ ॥ जो सारथी कुशलय तो सारथीही कहे हुए दोसौ पण-दंडके योग्यहै स्वामी नहीं और सारथी जो कुशल न होय तो उसमें सारथीके स्वामी के सिवाय औरभी यानमें बैठे हुए मनुष्य अकुशल सारथीके यानमें चढ़नेके कारण प्रत्येक सौसौ पण दंडके योग्यहै ॥ ९४ ॥

सं चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतस्तं  
त्र दण्डोऽविचारितः ॥ ९५ ॥ मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवर्तिक्लिब  
षं भवेत् ॥ प्राणभृतसु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ ९६ ॥

टीका—जो वह सारथी सामनेसे आती हुए बहुतसी गौओं करि अथवा दूसरे रथ करि रोका हुआ अपने रथके चलानेकी असावधानीसे पीछे न हट सकै और संकोचित मार्गमें अपने रथके घोड़ोंको हांकता हुआ चले और जो घोड़ोंसे अथवा रथसे अथवा रथके अङ्ग-पहिया आदिकोंसे प्राणियोंको मारे तो वहांभी न विचारा हुआ दंड करना चाहिये ॥ ९५ ॥ सारथीकी असावधानीके कारण रथ आदि यानसे मनुष्यको मर जानेपर शीघ्रही चोरका दंड उत्तम साहस होताहै और गौ गज आदि बड़े प्राणि-योंके मारनेपर उत्तम साहसका आधा पांचसौ पण दंड होताहै ॥ ९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दर्मः ॥ पश्वंशत्तु भवेद्दण्डः  
शुभेषु मृगपर्षिषु ॥ ९७ ॥ गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्प-  
ञ्चमाधिकः ॥ माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ ९८ ॥

टीका—जिनकी जाति विशेष कहीहै उनसे अन्य वनमें विचरनेवाले छोटं पशु-ओंके मारनेमें और किशोर आदि पक्षियोंके मारनेमें दोसौ पण दंड होताहै और रुरु पृषत आदि शुभ मृगोंके तथा और शुक हंस सारस आदि पक्षियोंके मारने-पर पांचसौ पण दंड होताहै ॥ ९७ ॥ गधा बकरा और भेड़के मारनेमें पांच रुपयेके माप प्रमाण दंड होताहै यहां सोनेके मासेका ग्रहण नहीं है क्योंकि आगे आगे लघु कहिये हलके दंडका कथनहै और कुत्ता तथा सुअरके मारनेमें फिर एक रुपका मासा दंड होताहै ॥ ९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ॥ प्राप्तापराधास्ताड्याः

स्थू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥ ९९ ॥ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नीत्तमाङ्गे

कथंचन ॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्रातः स्याच्चौरकिलिषम् ॥ ३०० ॥

टीका-स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य और सगामाई इनमें जो कोई अपराध करे तो रस्सीसे अथवा बहुत छोटी हलकी बाँसकी लकड़ीसे ताडना करनेयोग्य होतेहैं ॥१९॥ रस्सी आदिसेभी देहके पृष्ठभागमें अर्थात् पीठिमें ताडना करने योग्यहैं शिरमें कभी नहीं कहे हुये प्रकारसे अन्यथा करनेमें वाग्दंड धनदंड ( जुर्माना ) रूप चौरदंडको प्राप्त होय ॥ ३०० ॥

एषोखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ स्तेनस्यातः प्रव-  
क्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ १ ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां  
निग्रहे नृपः ॥ स्तेनानां निर्ग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वैर्धते ॥ २ ॥

टीका-यह दंडपारुष्यका निर्णय संपूर्णतासे कहा इसके उपरांत चौरदंडके निर्ण-  
यका विधान कहेंगे ॥ १ ॥ चोरोंके दंड देनेमें राजा बडा भारी यत्न करे जिस्से चोरोंको  
दंड देनेसे राजाकी ख्याति होतीहै और उपद्रवराहित होनेसे देशभी बढताहै ॥ २ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ संत्रिं हि वैर्धते  
तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३ ॥ सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति  
रक्षतः ॥ अधर्मादपि षड् भागो भवत्यस्य हरक्षतः ॥ ४ ॥

टीका-चोरोंके दंड देनेसे जो राजा साधुओंको अभय देताहै वही सर्वोंका पूज्य  
और प्रशंसायोग्य होताहै और उसका गवायन आदि सत्र कहिये यज्ञविशेष जिसकी  
चोरोंका दंड देनारूप अभयही दक्षिणाहै वह सदा बढताहै और निश्चित समय और  
नियतहै दक्षिणा जिसकी ऐसा होताहै यह तो अभयदक्षिणायुक्त सब कालमें  
होताहै ॥ ३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाका बनिया आदिसे तथा श्रोत्रिय  
आदिसे धर्मका छठा भाग होताहै और नहीं रक्षा करनेवालेको अधर्ममेंसे छठा भाग  
होताहै तिस्से राजा यत्न करिके चोरोंके दंड देनेसे सर्वोंकी रक्षा करे ॥ ४ ॥

यदधीं ते यद्वर्जते यद्वर्दाति; यद्वर्चति ॥ तस्य षड्भागमात्रां  
संम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ५ ॥ रक्षन्धर्मणं भूतानि राजा वर्ध्याश्च  
घातयन् ॥ यजतेऽहरहयज्ञैः स हस्रशतदक्षिणैः ॥ ६ ॥

टीका-जो कोई जप यज्ञ दान देवताका पूजन आदि करताहै उसके छठे भागको  
राजा भलीभांति पालन करनेसे प्राप्त होताहै ॥५॥ राजा शास्त्रके अनुसार दंड देनेपर  
धर्मसे पालन करता हुआ और चोर आदिकोंको दंड देता हुआ प्रातिदिन लक्ष गौहें  
दक्षिणा जिसकी ऐसे यज्ञसे यजन करताहै अर्थात् उनसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त होताहै ॥६॥

यो रक्षन् बलिमादित्ते करं शुल्कं च पार्थिवः॥प्रतिभागं च दण्डं  
च सै संद्यो नैरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥ अरक्षितारं राजानं बलिषड्-  
भागहारिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ८ ॥

टीका—रक्षा न करता हुआ जो राजा बलि कहिये धान्य आदिका छठा भाग  
आदि और कर कहिये ग्राम तथा पुरके वासियोंसे प्रतिमहीने भादों और पूस आदि  
महीनोंके नियमसे लेनेयोग्य अथवा शुल्क कहिये जलके मार्गसे अथवा स्थलके  
मार्गसे वाणिज्य करनेवालोंसे नियत चौकी आदि स्थानोंमें द्रव्यके अनुसार लेनेयोग्य  
जो दान ( महमूल ) के नामसे प्रसिद्ध हैं और प्रतिभाग कहिये फल फूल शाक  
और वृण आदि भेंट जो प्रतिदिन लेनेयोग्य हैं और दंड कहिये और व्यवहार आदिमें  
दंड लेता है वह मरिक्के शीघ्रही नरकका जाता है ॥ ७ ॥ जो राजा रक्षा नहीं करता है  
और बलिरूप धान्य आदिके छठे भागको लेता है उसको सब लोगोंके समस्त पापोंके  
लेनेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम्॥अरक्षितारमन्तारं नृपं  
विद्यादधोगतिम् ॥ ९ ॥ अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रय-  
त्नतः ॥ निरोधेन न वर्धेन विविधेन वर्धेन च ॥ ३१० ॥

टीका—शास्त्रकी मर्यादाके न माननेवालेको और परलोकको न मानकर अनु-  
चित दंड आदिसे धन लेकर बढे हुएको और रक्षा न करनेवालेको और कर तथा  
बलि आदिके खानेवाले राजाको नरकगामी जानै ॥ ९ ॥ अधर्मी चोर आ-  
दिको अपराधकी अपेक्षासे तीनि उपायोंकरि यत्नसे दंड देवै उनको कहते हैं जेल-  
खानेमें डाल देनेसे और वेरी आदिके बंधनोंसे और ताडना तथा हाथ पाँव आदिके  
काटने आदि नानाप्रकारके मारनेसे ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां सार्धूनां संग्रहेण च ॥ द्विजांतय ईवेज्याभिः  
पूर्यन्ते संततं नृपाः ॥ ११ ॥ क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां का-  
रिण्या नृणाम् ॥ बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ १२ ॥

टीका—पापियोंके दंड देनेसे और साधुओंकी रक्षा करनेसे महायज्ञ आदिकोंसे  
ब्राह्मणोंके समान सब काल राजा पवित्र होते हैं तिससे अधर्मियोंको दंड दे और साधु  
ओंपर अनुग्रह करै ॥ ११ ॥ कार्यवाले अर्थी प्रत्यर्थियोंके आक्षेपसे कहे हुए वच-



नोंको और बालक वृद्ध तथा रोगियोंके आक्षेपको आगे जो कहा जायगा ऐसे अपने उपकारकी इच्छा करनेवाला प्रभु सह लेवै ॥ १२ ॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यातैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥ यस्तवैश्वर्यान्नि  
क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ १३ ॥ राजा स्तेनेन गन्तव्यो मु-  
क्तकेशेन धावता ॥ आचक्षणेन तस्तस्तेयमेवंकर्मोस्मि शान्धि  
माम् ॥ १४ ॥ स्कन्धेनादायै मुसलं लंगुडं वापि खादिरम् ॥  
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायैसं दण्डमेव वा ॥ १५ ॥

टीका-दुःखितोंको आक्षेप किया गया जो सह लेताहै वह उसे स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै और जो दर्पसे नहीं सहताहै वह उसे नरकमें जाताहै ॥ १३ ॥ यद्यपि " सुवर्णस्तेयकृद्दिप्र " इत्यादिसे प्रायश्चित्तप्रकरणमें कहेंगे तिसपरभी सुवर्णके चुरानेवाले प्रति इसको राजदंडरूपता दिखानेके लिये दंडप्रकरणमें पंढे ब्राह्मणके सुवर्णके चुराने वाले और बाल खोले हुए वेगसे जाते हुए मैंने ब्राह्मणका सुवर्ण चुराया है ऐसे चोरीको कहते हुए पुरुषको खैरका मुसल नाम आयुध अथवा दोनों ओरसे पैना दंड अथवा लोहेकी शक्तिको कंधेपर रखके राजाके समीप जाना चाहिये तिस पीछे ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला मैं हूं तिस्से इस मुसल आदिसे मुझे मारो ऐसे राजासे कहना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षार्द्रा स्तेनः स्तेयाद्विसुच्यते ॥

अंशासित्वा तु तं राजा स्तेनैर्याप्रोति किं लिवषम् ॥ १६ ॥

टीका-एकवार मुसल आदि मारनेसे प्राण जाते रहें अथवा भरेके समान हुए जीवनको छोड़ि देनेसे वह चोर उस पापसे छूटि जाताहै और जो राजा करुणा आदिसे उस चोरको न मारे तो चोरके पापको भोगताहै ॥ १६ ॥

अन्नादे भ्रूणहा माष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च या  
ज्यश्चस्ते नो राजानि किंलिवषम् ॥ १७ ॥ राजनि धृतदण्डास्तु कृत्वा  
पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा १८

टीका-जो ब्रह्महत्या करनेवालेके अन्न खानेवालेमें उसका पाप आयजाताहै और ऋण जो गर्भहै उसकी हत्या करनेवालेका अन्न जो खाताहै उसका पाप होताहै यह यहां कहा गया परंतु ब्रह्महत्यारेका पाप नष्ट नहीं होताहै और व्यभिचार करनेवाली स्त्रीके जार पतिको क्षमा करनेवाले पतिको पाप लगताहै और शिष्यसंध्या तथा

अग्निहोत्रादि न करनेसे उत्पन्न पापको सहनेवाले गुरुमें स्थापित करताहै और विधिको उलंघन करनेवाला यजमान क्षमा करनेवाले याजकमें अपने पापको डारताहै और चोर उपेक्षा करनेवाला राजाको अपना पाप देताहै तिस्से राजाको चोर दंड देनेयोग्यहै ॥ १७ ॥ सुवर्णकी चोरी आदिक पापोंको कारिके पीछे राजाओंकरि दंड दिये गये मनुष्य रोकनेवाले पापके न होनेसे पहले किये हुए पुण्यके द्वारा सुकृती मनुष्योंके समान स्वर्गको जाते हैं ऐसे प्रायश्चित्तके समान दंडकोभी पापोंसे शुद्ध करनेका कारण कहाहै ॥ १८ ॥

यस्तु रज्जु घटं कूर्पाद्वरोद्भिर्वाञ्चर्यः प्रपाम् ॥ सै दण्डं प्राप्नुयान्मौषं  
तञ्च तस्मिन्समाहरेत् ॥ १९ ॥ धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽ-  
भ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं दीप्यस्तस्य च तद्धनमै ३२०

टीका—कुवाके समीप पानी भरनेके लिये रक्खे हुए रस्ती और घडेमेंसे जो रस्ती अथवा घडेको चुरावै और जो पानी पिलानेके घटको फोडै उसपर सुवर्णका एक मासा दंड होना चाहिये और वह उस रस्ती आदिको कुएपर रक्खे ॥ १९ ॥ दोसौ पलका एक द्रोण होताहै और बीस द्रोणका एक कुंभ होताहै ऐसे दश कुंभोंसे अधिक धान्य चुरानेवालेका वध कहाहै वह तौ स्वामिकी गुणवत्ताकी अपेक्षासे ताडन अंगोंका काटना और मारनारूप जानना चाहिये और शेषमें फिरि एक कुंभसे लगाकै दश कुंभतकके चुरानेमें चुराए हुएसे ग्यारह गुणा दंड दिलवाना चाहिये और चुराया हुआ धान्य स्वामीको दिववै ॥ ३२० ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामु-  
त्तमानां च वासंसाम् ॥ २१ ॥ पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेद-  
नमिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

टीका—जैसे धान्यमें वध कहाहै वैसेही तुलासे प्रमाण करनेयोग्य सुवर्ण रजत आदि कोंके और उत्कृष्ट कहिये बढिके रेशमी कपडे आदिकोंके सौपलसे अधिक चुरानेमें वध करनाही चाहिये ॥ २१ ॥ पहले कहे हुए पचाससे सौ तक चुरानेपर मनु आदिकोंने हाथ काटना कहाहै और शेषमें एक पलसे लगाकै पचास पल तक चुरानेमें चुराये हुए धनसे ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ २२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥ मुख्यानां चैव रत्नानां  
हरणे वधमहेति ॥ २३ ॥ महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य

च ॥ कार्त्तमासाद्य कार्ये च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

टीका-बड़े कुलमें उत्पन्न मनुष्योंके और विशेष करिःत्रियोंके और हीरा वैदूर्य आदि श्रेष्ठ मणियोंके चुरानेमें बधके योग्य होताहै ॥ २३ ॥ हाथी घोडा गौ भैंस आदि बड़े पशुओंके तथा खड्ग आदि शस्त्रोंके और कल्याणवृत्त आदि औषधीके चुरानेवालेको दुर्भिक्ष आदि रूप समय और प्रयोजनको भले बुरे काममें लगा हुआ समुक्षि राजा ताडन अंगच्छेदन और बधरूप दंड करै ॥ २४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने ॥

पशूनां हरणे चैव सद्यः कौर्योऽर्धपादिकः ॥ २५ ॥

टीका-ब्राह्मणकी गौओंके चुरानेमें और लादनेके लिये बांझ गौके नाथनेमें और भेड बकरी आदि पशुओंके चुरानेमें हालही आधा पांव काटि देना चाहिये ॥ २५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ दध्नः क्षीरस्य त-  
क्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ २६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां लव-

णानां तथैव च ॥ मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ २७ ॥

मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥ मांसस्य मधुन-

श्चैव यैश्चान्यैत्पशुसंभवम् ॥ २८ ॥ अन्येषां चैव मांसीनां मद्याना-

मोदनस्य च ॥ पक्वानानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्विगुणो दैमः ॥ २९ ॥

टीका-सूत कपास और किण्व कहिये सुरावीज गोवर गुड दही दूध मद्य पानी तृण और वेणु वैदल कहिये पतले वाँसोंके टुकड़ोंसे बने हुए जल भरनेके पात्र आदिकोंका और सब प्रकारके नोन और मिट्टीके बने हुए वासनोंके चुरानेमें मिट्टीके तथा भस्मके चुरानेमें मडलियों और पक्षियोंके तैल तथा घीके मांसके मधु ( शहत ) के और जो कुछ मृगचर्म गेंडाके सींग आदिके ऐसेही औरभी असा-रसी मनसिल आदिके और बारह प्रकारके मद्योंके और भातको छोडकर पुआं-लड्डू आदि पकानोंका चुरानेमें चुराई हुई वस्तुके मोलसे दूना दंड करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥

अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥

टीका-फूलोंके और खेतमें लगे हुए हरे धान्योंके और गुल्मलता तथा वृक्षोंके और

शुद्ध न किये हुए अन्य धान्योंके जो एक समर्थ पुरुषका भार रहै उनके चुरानेमें देश-काल आदिकी अपेक्षासे सुवर्णकी अथवा रूपेकी पांच रत्ती प्रमाण दंड होताहै ॥ ३३ ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ निरन्वये शतं दण्डः  
सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३१ ॥ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसमं कर्म  
यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्ते यं ह्येत्वापद्व्यते च यत् ॥ ३२ ॥

टीका—साफ किये हुए धान्योंके और शाक मूल तथा फल आदिके चुराने पर अन्वय द्रव्यके स्वामीके संबंधको कहतेहैं जिसमें एक ग्राममें बसने आदिका कुछभी संबंध नहींहै वहां सौपण दंड करना चाहिये और जहां संबंधहै वहां पचा सपण दंड करना चाहिये खलिहानमें पडेहुए धान्योंके पुरानेमें यह दंडहै वहां साफ किये जाते हैं और घरमें स्थित धान्योंके चुरानेमें पहले कहा हुआ ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो धान्यका ले लेना आदि कर्म द्रव्यके स्वामीके सामने बलसे हरलिया जाताहै वह साहस होताहै सहबलको कहतेहैं उससे जो होय उसको साहस कइतेहैं इस्से इस्में चोरीका दंड न करना चाहिये इस लिये इसका चोरीके प्रमाणमें पाठहै और जो स्वामीके पीठि पीछे लिया जाताहै वह चोरी होताहै और जो लेकर छिपाया जाताहै वहभी चोरीहीहै ॥ ३२ ॥

यस्त्वेतान्युपकुर्वानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तमा धं दण्डयेद्रा  
जां यश्चाग्निं चोरं येद्वहात् ॥ ३३ ॥ येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु  
विं चेष्टते ॥ तत्तदेवं हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३४ ॥

टीका—जो मनुष्य संस्कार की हुई इन मूत आदि द्रव्योंको उपभोगके लिये चुरावै और जो तीनों अग्नियोंको अग्निके घरसे चुरावै उसपर राजा प्रथम साहसका दंड करै और अग्निके स्वामीको अग्निके आधानकी हानि दिवावै ॥ ३३ ॥ जिस जिस हाथ पाँव आदि अंगसे संधि फोडने आदि जिस प्रकारसे चोर मनुष्यों में विरुद्ध धन लेने आदिकी चेष्टा करै उसी अंगका राजा उस प्रसंगके दूर करनेके लिये कटवावै ॥ ३४ ॥

पिताचार्यःसुहृन्माता भार्या पुत्रःपुरोहितः ॥ नादण्ड्यो नाम  
राज्ञोऽस्ति यःस्वधर्मं न तिष्ठति ॥ ३५ ॥ कार्पापणः भवेदण्ड्यो य-  
त्रान्यःप्राकृतो जनःतत्र राजा भवेदण्ड्यःसंहस्रमिति धारणा ३६  
टीका—पिता आचार्य मित्र भाई माता स्त्री पुत्र और पुरोहित इनमेंसे कोई

अपने धर्ममें न स्थित रहै वह क्या राजाके दंड देनेयोग्य नहींहै अर्थात् दंड देनेही योग्यहै ॥ ३६ ॥ जिस अपराधमें राजाके व्यतिरिक्त सामान्य जन एक कार्षापण दंडके योग्य होय उस अपराधमें राजा हजारपण दंडके योग्य होताहै यह निश्चयहै अपने दंडको राजा जलमें डाल देवै अथवा ब्राह्मणोंको दे देवै दंडके वरुण स्वामीहैं यह आगे कहाहै ॥ ३६ ॥

अष्टौपाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैर्व तु वै-  
श्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्ण  
वापि शतं भवेत् ॥ द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तदोर्षगुणाविद्धि संः ३८

टीका-जिस चोरीमें जो दंड कहाहै वह दंड चोरीके गुणदोष जाननेवाले शूद्रपर आठ गुणा करनेयोग्यहै और चोरीके गुणदोष जाननेवाले वैश्यपर सोलह गुणा ऐसैही क्षत्रियपर वत्तीस गुणा और गुणदोष जाननेवाले ब्राह्मणपर चौंसठि गुणा अथवा सौ गुणा अथवा एकसौ अष्टाईस गुणा गुणकी अधिकताकी अपेक्षा यह ब्राह्मण हीपर होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दूर्वाद्यर्थं तथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थं  
मंस्तेयं मंनुरर्ब्वीत् ॥ ३९ ॥ योऽदत्तादायिनो हस्ताच्छिप्सते ब्राह्म-  
णो धनम् ॥ याजनाध्यापनेनापि यथां स्तेनंस्तेथैव संः ॥ ३४० ॥

टीका-लता और वनस्पतियोंके फूलोंको अपनेके समान ग्रहण करै और बिना रक्षा किये हुए वानस्पत्य आदिकोंके मूल फलको और होमकी आग्निके लिये काष्ठको और गौके खानेके लिये तृणके लेनेको मनु चोरी नहीं कहतेहैं तिससे इसमें दंड नहींहै और न अधर्महै ॥ ३९ ॥ अदत्तादायी जो चोरहै तिसके हाथसे जो ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रतिग्रहसे पराये धनको जानिके लेनेकी इच्छा करै वह चोरकी तुल्य जानना चाहिये इसीसे चोरके समान दंड देने योग्यहै ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वंगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षूद्रे च मूलके ॥ आददानः परंक्षेत्रा  
न्नं दण्डं दातुमर्हति ॥ ४१ ॥ असंधितानां संधाता संधितानां च  
मोक्षर्कः ॥ दासांश्चरथहता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ४२ ॥

टीका-मार्गका खर्च जिसका चुकि गयहै ऐसा वढोही ब्राह्मण दो ईसों और दो मूलियोंको पराये खेतसे लेता हुआ दंड देनेके योग्य नहीं होताहै ॥ ४१ ॥ नहीं बंधेहुए पराये घोडा आदिकोंका बांधनेवाला और बन्धशाला आदिमें बंधे

हुएओंका खोलनेवाला और दास रथ घोडा इनका चुरानेवाला चोरके दंडको पावे वह दंड तौ भारी हलके अपराधके अनुसार मारण अंगच्छेदन और धनका लेलेना आदि जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यशोऽस्मिन्प्राप्तुया  
ल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ४३ ॥ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्तुयंशश्चा-  
क्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ४४ ॥

टीका-इस कहीहुई विधिसे चोरोंका प्रबंध करता हुआ राजा इस लोकमें बडी ख्याति और परलोकमें उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ सबके अधिपति होने-  
रूप पदके प्राप्त होनेकी और अविनाशी तथा अक्षय यशके प्राप्त होनेकी इच्छा  
करता हुआ राजा बलसे धरके जलानेवाले और धनके लेनेवाले मनुष्यकी क्षणमा-  
त्रमी उपेक्षा न करे तत्काल दंड देवे ॥ ४४ ॥

वाग्दुष्टात्स्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसर्तः ॥ साहसस्य नरः कर्ता  
विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ४५ ॥ साहसे वर्तमानं तु यो मर्पयति  
पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्यागुं विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

टीका-वाक्पारुष्य करनेवालेसे चोरसे तथा दंडपारुष्य करनेवाले मनुष्यसे साहस  
करनेवाला मनुष्य अतिशय करि पाप करनेवाला जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो  
राजा साहस करते हुए मनुष्यको सहताहै अर्थात् क्षमा करताहै वह पाप करनेवालों-  
की उपेक्षा करनेसे अयमकी वृद्धिसे नाशको प्राप्त होताहै और देशका अपकार कर-  
नेसे मनुष्योंके द्वेषकी प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजां विपुलाद्वा धनागमात् ॥ समुत्सृजेत्साह-  
सिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ४७ ॥ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं ध-  
र्मो यत्रोपरुध्यते ॥ द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालका-  
रिते ॥ ४८ ॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ॥  
स्त्रीविप्रोभ्युपपत्तौ च निर्धनधर्मे न दुष्यति ॥ ४९ ॥

टीका-मित्रके कहनेसे अथवा बहुतसे धनकी प्राप्तिसे सब जीवोंके दुःखदेनेवाले  
साहसी मनुष्योंको राजा न छोडे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण आदि तीनि वर्णोंको उस कालमें खंड  
आदि शस्त्र धारण करना चाहिये जिस समय वर्ण और आश्रमी साहस करनेवालोंसे  
धर्म न करनेपावे तथा तीनों वर्णवालोंको राजारहित देशमें पराई सेना आने आदि

कालमें उत्पन्न हुए स्त्री संगर आदिके प्राप्त होनेपर और अपनी रक्षाके लिये और दक्षिणा धन गौ आदिके हरनेके कारण संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त और गति न होनेके कारण धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारता हुआ दोषभागी नहीं होताहै दूसरेके मारनेमें भी यहां साहसका दंड नहीं करनेयोग्यहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुरुं वा वालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

टीका-गुरु बालक वृद्ध और बहुश्रुत ब्राह्मण इनमेंसे जो विद्याव्रत आदिसे उत्कृष्टभी कोई मारनेके लिये आता होय और भागने आदिसेभी अपना वचाव न होसकता होय तो बिना विचारके मारे ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवंति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा  
मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ५१ ॥ परदाराभिसर्षेषु प्रवृत्तान्मन्म-  
हीपतिः ॥ उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ५२ ॥

टीका-मनुष्योंके सामने अथवा एकान्तमें मारनेके लिये उद्यत आततायीके मारनेमें मारनेवालेको कुछ अधर्म दंड तथा प्रायश्चित्त नाम दोष नहीं लगताहै कारण यहहै कि, मारनेवालेमें स्थित मन्यु अर्थात् क्रोधके अभिमानकी देवता हन्यमानमें स्थितहो क्रोधको लौटाय देती है और साहसमें अपराधके गौरवकी अपेक्षासे मारण अंगच्छेदन और धनग्रहण आदि दंड करने चाहिये ॥ ५१ ॥ अब स्त्रीसंग्रहण कहते हैं ॥ पराई स्त्रियोंके भोगमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहको नाक ओट काटने आदि दंडोंसे चिह्नयुक्त करिके राजा अपने देशसे निकाल देवै ॥ ५२ ॥

तत्संभृत्यो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः  
सर्वनाशाय कल्पते ॥ ५३ ॥ परस्य पन्न्या पुरुषः संभाषां यो  
जयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्रामुर्यात्पूर्वसाहसम् ॥ ५४ ॥

टीका-पराई स्त्रियोंमें गमन करनेसे उत्पन्न हुआ वर्णसंकर होताहै जिस वर्णसंकर करि शुद्ध पत्नीयुक्त यजमान न होनेके कारण अग्निमें डालीहुई आहुति अच्छी भांति मूर्यको प्राप्त नहीं होती है इसका अभाव होनेपर वृद्धिनाम जगतके मूलका नाश करनेवाला अधर्म जगतके नाशके लिये होताहै ॥ ५३ ॥ तिसको पहले परस्त्रीगमन आदिका दोष लगी चुकाहै वह पुरुष किसीकी स्त्रीसे एकांतमें बात करै और च्युतवीर्य होवै तो प्रथम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ५४ ॥

यस्त्वेनाक्षरितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्राप्नुयात्किं-  
ञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ५५ ॥ परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽर्-  
ण्ये वनेऽपि वा ॥ नदीनां वापि संभेदे संग्रहणं प्राप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जिसको पहले परस्त्री आदिका दोष नहीं लगाहै वह जो किसी कारण मनुष्योंके आगेभी बात करे तो वह दंडचत्व आदि अर्थात् दंड देने योग्य दोषोंको न प्राप्त होय जिस्से उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ५५ ॥ तीर्थ अरण्य वन आदिके कहनेसे शून्यस्थान जानना चाहिये । जो पुरुष पानी भरनेके घाटमें और अरण्य कहिये ग्रामसे बाहर लता गुल्मोंसे भरे हुए मूने देशमें और वन कहिये बहुत वृक्षोंसे भरे हुए स्थानमें और नदियोंके संगममें निर्दोषभी होनेपर किसी कारणसेभी बात करे वह हजार पणरूप संग्रहण दंड जो आगे कहेंगे उसको पावे ॥ ५६ ॥

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ॥ सहखट्वासनं चैवं  
सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा  
मर्षयेत्तया ॥ परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

टीका—उपचारक्रिया कहिये माला सुगंध तथा चंदन आदि अनुलेपनका भेजना और केलि कहिये हंसना आलिंगन करना आदि और अलंकार भूषण आदिकोंका स्पर्श करना और खट्वापर बैठना इन सबोंको मनु आदिने संग्रहण कहाहै ॥ ५७ ॥ जो छूनेको अनुचित स्तन जघन आदि स्थानोंमें स्त्रीको छुवै अथवा उस स्त्रीकरके वृषण आदि स्थानमें छुआ गया सहि लैवै तो आपसमें अंगीकाररूप सब मनु आदि-  
कोंने संग्रहण कहाहै ॥ ५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां  
दारारक्ष्यतमाः सदा ॥ ५९ ॥ भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः का-  
रवस्तथा ॥ संभार्षणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥

टीका—दंडकी अधिकतासे यहां अब्राह्मण कहनेसे शूद्र जानना चाहिये नहीं इच्छा करती हुई ब्राह्मणीमें उत्तम संग्रहण करनेसे शूद्र वधदंडको प्राप्त होताहै और चारों ब्राह्मण आदि वर्णोंके धन पुत्र आदिकोंमेंसे अधिकतासे स्त्री सदा रक्षा करनेयोग्यहै उससे उस प्रसंगके द्वार होनेके लिये उत्कृष्ट संग्रहणसे भी सब वर्णों करि स्त्रियाँ रक्ष्य करनेयोग्यहैं ॥ ५९ ॥ भिक्षासे जीनेवाले स्तुति पढनेवाले यज्ञकी दीक्षावाले और मूपकार कहिये रसोई करनेवाले आदि तथा भिक्षा आदि अपने कामके लिये गृहस्थोंकी स्त्रियोंके साथ विना रोक ठोकके संभाषण करै इस भांति इनको संग्रहण दोष नहीं होताहै ॥ ३६० ॥



नं संभाषां परस्त्रीभिः प्रंतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भाषमा-  
णस्तु सुवर्णं दण्डं मर्हति ॥ ६१ ॥ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मो-  
पजीविषु ॥ सञ्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढांश्चारयन्ति च ॥ ६२ ॥

टीका-स्वामीकरि मने किया हुआ स्त्रियोंके साथ वात न करै और जो मने किया हुआ वात करै तौ राजा करि सोलह सुवर्णके दंडयोग्य होताहै ॥ ६१ ॥ पराई स्त्रीसे वात न करै यह बोलनेका निषेध नट और गवैया आदिकी स्त्रियोंमें नहीं है क्योंकि भार्या और पुत्र अपना तनु है यह कहाहै अर्थात् भार्याही आत्माहै इस्से वे जीविका करतेहैं धनलाभके लिये उसके जारसे कुछ नहीं कहतेहैं उनमें और नट आदिकोंसे व्यतिरिक्तोंमें जो स्त्रियां हैं उनमेंभी यह निषेधकी विधि नहीं है जिस्से चारण आत्मोपजीवीभीहैं वे परपुरुषोंको लायकै उनसे अपनी भार्याओंका आलिंगन करातेहैं और आप आये हुए परपुरुषोंको छिपकर अपना न जानना प्रगट करतेहुए व्यवहार करातेहैं ॥ ६२ ॥

किञ्चिद्वर्तुं दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ॥ प्रैष्यासु चैक-  
भक्तासु रहैः प्रव्रजितासु च ॥ ६३ ॥ योऽकामां दूषयेत्कन्यां स  
सद्यो वर्धमर्हति ॥ सकामां दूषयस्तुल्यो नैवधं प्रोप्नुयान्नरः ॥ ६४ ॥

टीका-शून्यस्थानमें चारण और आत्मोपजीविकी स्त्रियोंसे वात चीत करता हुआ पुरुष राजा करि थोडासा दंडका लेश दिवानेयोग्यहै क्योंकि वेभी परदारोहै तथा रुकी हुई दासियोंसे और बौद्ध आदिकी ब्रह्मचारिणियोंसे संभाषण करताहुआ कुछ दंडमात्र देनेयोग्य होताहै ॥ ६३ ॥ जो बिना इच्छाकरनेवाली कन्याको जवर्दस्तीसे संग करिकै दूषित करताहै वह ब्राह्मणसे अन्य होय तो लिंगच्छेदनादिसे वध करने योग्यहै और इच्छावाली कन्यासे संग करै तो वधकरने योग्य नहीं ॥ ६४ ॥

कन्यां भ्रजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ॥ जघन्यं सेवमानां  
तु संयतां वासयेद्गृहे ॥ ६५ ॥ उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यां वैधर्म-  
र्हति ॥ शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥ ६६ ॥

टीका-संभोगके लिये उत्कृष्ट जातिके पुरुषका सेवन करती हुई कन्याको थोडाभी दंड न देवै और हीन जातिके पुरुषका सेवन करनेवालीको जवतक उसका काम निवृत्त न होय तबतक बांधिकर रखवै ॥ ६५ ॥ हीनजाति पुरुष उत्कृष्टजातिकी इच्छा करनेवाली अथवा इच्छा न करनेवाली कन्यासे गमन करता हुआ जातिकी अपेक्षासे

अंगका काटने और मारनेरूप दंडके योग्यहै और इच्छा करती हुई समान जातिकी कन्यासे गमन करता हुआ जो पिता राजी होय तौ मोलके अनुरूप धन देवै दंडके योग्य नहींहै और यह कन्या उसीको व्याहनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अभिषेह्य तु यः कन्यां कुर्यादपेण मानवः॥तस्याशुं कृत्ये अङ्गु-  
ल्यौ दण्डं चोहति पटं शतम्॥६७॥सकामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गु-  
लिच्छेदमाप्नुयात् ॥द्विशतं तु दमं दप्यः प्रसंगविनिवृत्तये॥६८॥

टीका—जो मनुष्य समान जातिकी कन्याको दर्पसे गमनको छोडि बलसे अंगुलि डालने मात्रसे नाश करै उसकी दो अंगुली शीघ्रही काटनी चाहिये और छः सौ पण दंड होना चाहिये ॥ ६७ ॥ समान जातिका पुरुष इच्छा करनेवाली कन्याको अंगुलीके प्रक्षेप मात्रसे नाश करता हुआ अंगुली च्छेदको नहीं प्राप्त होताहै किंतु अतिप्रसक्तिके निवारण करनेके लिये दोसौ पण दंड करने योग्यहै ॥ ६८ ॥

कन्यैव कन्यां यां कुर्यात्तस्याः स्याद्विशतो दमः॥गुलकं च द्विगुणं  
दद्याच्छिफाश्चै<sup>१४</sup> वाप्नुयादशं॥६९॥यां तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा स  
द्यो मौण्ड्यमर्हति॥अङ्गुल्योरेव वा<sup>१२</sup> छेदं स्वरे<sup>१३</sup> णोद्धनं तथां ३७०

टीका—जो कन्याही दूसरी कन्याको अंगुलीके प्रक्षेपसे नाश करै उसपर दोसौ पण दंड होना योग्यहै और कन्या दुगुना मोल उसके पिताको देवै और दशशिफा प्रहा-  
रोंको प्राप्त होय ॥ ६९ ॥ जो स्त्री अंगुली प्रक्षेपसे कन्याका नाश करै उसको उसी समय शिर मुंडा अंगुली काटि गधेपर च्छेद सडकमें निकालै ॥ ३७० ॥

भर्तारं लङ्घयेद्यां तु स्त्रीं ज्ञातिगुणदापिता॥तां श्वभिः खोदयेद्वाजा  
संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ७१ ॥ पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त  
आयसे ॥ अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ७२ ॥

टीका—जो स्त्री बडे धनवाले पिता आदि बंधुओंके घमंडसे अथवा सुदरता आदि गुणोंके गर्वसे पतिकी दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेसे उल्लंघन करै उसको राजा बहुतसे मनुष्योंके आगे कुत्तोंसे चुथवावै ॥ ७१ ॥ पीछे कहेहुए पाप करनेवाले जार पुरुषको तपा करि लाल कियी हुई लोहेकी सजापर जलावै और उस सजापर और काष्ठ ऊपरसे डालै जबतक वह पापी जलजाय ॥ ७२ ॥

सर्वेत्सराभिश्स्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः॥ व्रात्यथा सह संवासे

चांडाल्या तांवेदं तु ॥ ७३ ॥ शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्ण-  
मावसन् ॥ अगुप्तमङ्ग-सर्वस्वैर्गुं तं सर्वेण हीयते ॥ ७४ ॥

टीका-परस्त्री गमनसे दूषित जिस पुरुषको दंड नहीं दिया गया उसको एक वर्ष पीछे फिर उसीका दोष लगनेपर पहले दंडसे दूना दंड करना चाहिये तथा व्रात्यकी जायाके गमन करनेमें जो दंड कल्पना किया गयाहै वही चांडालीके गमनमें होना चाहिये अंत्यजकी स्त्रीसे गमन करनेवाले पर एकहजार पण दंड कहाहै संवत्सरके वाति जानेपर जो उसी व्रात्यकी जायासे और उसी चांडालीसे फिर गमन करे तो दूना दंड करना चाहिये ॥ ७३ ॥ भर्ता आदिके भयसे रक्षित अथवा अरक्षित द्विजातिकी स्त्रीसे जो शूद्र गमन करे तो नहीं रक्षा कियी हुईसे गमन करता हुआ लिंगरहित करने योग्य है और रक्षितासे तो गमन करता हुआ शरीर तथा धनसे हीन करने योग्यहै ॥ ७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ॥ सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो  
मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वै-  
श्यपार्थिवौ ॥ वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥ ७६ ॥

टीका-वैश्यको गुप्ता ब्राह्मणीमें गमन करनेपर एक वर्षतक वंधनमें रखकर पीछे सर्वस्व ग्रहणरूप दंड करना चाहिये अर्थात् उसका सब धन आदि छीनले और क्षत्रियमें गमन करनेपर तो 'वैश्यस्य क्षत्रियायां' यह आगे कहेंगे और क्षत्रियको गुप्ता ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे हजार पण दंड देना चाहिये और गधके मूत्रसे इसका मुंडन कराना चाहिये ॥ ७५ ॥ जो अराक्षिता ब्राह्मणीसे वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करे तो वैश्यपर पांचसौ दंड करे और क्षत्रियपर हजार करे वैश्यपर यह पांचसौका दंड शूद्रके भ्रम-आदिसे निर्गुण जातिमात्रसे जीविका करनेवाली ब्राह्मणीके मध्ये जानना चाहिये और उस्से अन्य ब्राह्मणीके गमनमें तो वैश्यकोभी हजारही दंड कहाहै ॥ ७६ ॥

उभावापि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ॥ विप्लुतौ शूद्रवदण्ड्यौ  
दग्ध्व्यौ वा कैटाग्निना ॥ ७७ ॥ सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां  
वलाद्भ्रजन् ॥ शैतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ७८ ॥

टीका-वे दोनोंभी क्षत्रिय वैश्य अराक्षिता ब्राह्मणीके साथ मैथुन करनेसे शूद्रके समान सर्वस्व दंड करने योग्यहैं, अथवा चटाईमें लपेटकर जलाने योग्यहैं उनमें वैश्यको तो लाल कुशोंकी चटाईमें और क्षत्रियको शरपतेके पत्तोंमें लपेटकर जलाने यह वसिष्ठका कहाहुआ विशेष ग्रहण करना चाहिये पहले क्षत्रियपर हजार दंड करना

चाहिये और वैश्यपर सर्वस्व दंड करना चाहिये यह कहा है तिससे यह प्राणांतिक दंड गुणवत् ब्राह्मणीके गमन करनेमें जानना चाहिये ॥७७॥ रक्षिता ब्राह्मणीमें बलसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर हजार पण दंड होवे और इच्छा करनेवालीसे एकवार मैथुन करनेमें पांचसौ दंड करनेयोग्य होता है ॥ ७८ ॥

मौण्ड्यं प्राणांतिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ इतरेषां तु  
वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥७९॥ न जातु ब्राह्मणं हन्या-  
त्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥ रीघ्रदे न वैहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥

टीका—ब्राह्मणका वधदंडके स्थानमें शिरका मुडवा देना दंड है यह शास्त्रने कहा है और क्षत्रियआदिकोंका तौ कहे हुए मारनेसे दंड होता है ॥ ७९ ॥ सब पाप करनेवालेभी ब्राह्मणको कभी न मारे अपितु सर्वस्वसमेत अक्षत शरीरको देशसे निकाल देवे ॥ ३८० ॥

न ब्राह्मणवधाद्भूयानर्धमो विद्यते भुवि ॥ तस्मादस्यै वधं राजा संन-  
सांपि न चिन्तयेत् ॥ ८१ ॥ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो  
ब्रजेत् ॥ यो ब्राह्मण्यामंगुप्तायां तौबुभौ दण्डमर्हतः ॥ ८२ ॥

टीका—ब्राह्मणके वधसे और बडा अधर्म पृथिवीमें नहीं है तिससे राजा सब पाप करनेवाले ब्राह्मणके वधको मनसे भी न विचारै ॥ ८१ ॥ जो रक्षिता क्षत्रियाम वैश्य गमन करै और क्षत्रिय जो रक्षिता वैश्यामें गमन करै तौ उन दोनोंको अरक्षिता ब्राह्मणीमें गमन करनेसे जो दंड कहे हैं जैसे वैश्यपर पांचसौ करै और क्षत्रियपर हजार ये दोनोंही दंड वैश्य तथा क्षत्रियको होते हैं यह तौ वैश्यका रक्षिता क्षत्रियाके गमनमें पांचसौ दंड लघु होनेसे गुणवान् वैश्य और निर्गुण जातिमात्रसे जीविका करनेवाली क्षत्रियाका शूद्राके भ्रम आदिसे गमनविषयक जानना चाहिये और क्षत्रियको रक्षिता वैश्यामें ज्ञानसे हजार दंड योग्यही है ॥ ८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते ब्रजन् ॥ शूद्रायां क्षत्रियं-  
विशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ८३ ॥ क्षत्रियायामंगुप्तायां वैश्ये  
पञ्चशतं दमः ॥ मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत् क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ८४ ॥

टीका—रक्षिता क्षत्रिया वैश्यामें गमन करताहुआ ब्राह्मण सहस्र दंड देनेयोग्य है और रक्षिता शूद्रामें गमन करनेसे क्षत्रिय वैश्य सहस्रही दंडके योग्य होते हैं ॥ ८३ ॥ अरक्षिता क्षत्रियाके गमनमें वैश्यपर पांचसौ दंड होता है और क्षत्रियको अरक्षिता क्षत्रियाके गमन करनेमें गधेके मूत्रसे मुंडन और पांचसौ रुपये दंड होना चाहिये ॥ ८४ ॥

अर्गुते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो ब्रजन् शतानि पञ्च दण्डयः  
 स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ ८५ ॥ यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्य-  
 स्त्रीगो न दुष्टवाक् ॥ न साहसिकदण्डघ्नो स राजा शक्रेलोकभाक् ८६

टीका-अरक्षिता क्षत्रिया वैश्या अथवा शूद्रामें गमन करता हुआ ब्राह्मण पांचसौ दंडके योग्य होताहै और अंत्यज कहिये चांडाल उसकी स्त्रीसे गमन करता हुआ हजार दंडके योग्य होताहै ॥ ८५ ॥ जिस राजाके राज्यभरमें चोर तथा पराई स्त्रीसे गमन करनेवाला और कड़ई वात कहनेवाला और घरोंका जलाना आदि साहस करनेवाला तथा दंडपारुष्य करनेवाला नहीं है वह राजा स्वर्गपुरको जाताहै ॥ ८६ ॥

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृतसजात्येषु  
 लोके चैवं यशस्करः ॥ ८७ ॥ ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं च-  
 त्विषत्यजेद्यादि ॥ शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतशतम् ॥ ८८ ॥

टीका-अपने देशमें इन स्तेन आदि पांचका दंड देनेवाला और समान जातिके राजाओंमें राजाका साम्राज्य करनेवाला इस लोकमें यश करनेवाला होताहै ॥ ८७ ॥ जो यजमान कर्म करनेमें समर्थ और अतिपातक आदि दोषोंसे रहित यजन करानेवालेको अथवा ऋत्विक् जो दुष्ट नहीं ऐसे यजमानको छोड़ै तो उन दोनोंपर सौ सौ दंड करना चाहिये यह दंडके प्रसंगसे कहा ॥ ८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेता-  
 न्नाज्ञा दण्डयः शतानि षट् ॥ ८९ ॥ आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विव-  
 दतां मिथः ॥ न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

टीका-माता पिता स्त्री और पुत्र ये सेवा तथा पोषण आदि न करनेसे त्यागने योग्य नहीं हैं तिस्से पातक आदि दोषोंसे विना इनको त्यागता हुआ एक एकके त्यागमें राजा करि छसौ पण दंड करनेयोग्य होताहै ॥ ८९ ॥ द्विजातियोंके गृहस्थ आश्रमोंके कार्यमें यह शास्त्रार्थ है यह शास्त्रार्थ नहींहै ऐसे आपसके विवादोंका अपना हित करनेकी इच्छा करनेवाला राजा यह शास्त्रार्थ है ऐसे सहसा विशेष कर न कहै ॥ ३९० ॥

यथाहिमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सान्त्विनं प्रशमय्यादौ  
 स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ९१ ॥ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विश-  
 तिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ९२ ॥

टीका—जो जैसी पूजाके योग्यहै उसका वैसेही पूजन करि और ब्राह्मणोंके साथ पहले प्रीतिसे कोप रहित करिकै तिस पीछे इनका जो निज धर्म है उसको चितावै ॥ ९१ ॥ सदा घरमें रहनेवाला प्रातिवेश्य कहाताहै और अंतरसे बसनेवाला आनुवेश्य जिस उत्सवमें वीस अन्य ब्राह्मणभोजन कराये जाँय उसमें भोजनके योग्य प्रातिवेश्य आनुवेश्य ब्राह्मणोंको न भोजन कराता हुआ ब्राह्मण एक रूपेका मासा दण्ड करने योग्यहै ॥ ९२ ॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ॥ तदन्नं द्विगुणं दा-  
प्यो हिरण्यं चै<sup>१३</sup> वं माषकम् ॥ ९३ ॥ अन्धो जडः पीठसर्पा सप्तत्या  
स्थविरश्च यः ॥ श्रोत्रियेषूपकुर्वीश्च नै<sup>३</sup> दाप्याः केनचित्करम् ॥ ९४ ॥

टीका—विद्या और आचारयुक्त तथा नाना प्रकारके गुणों करि युक्तको विवाह आदि विभक्के कार्योंमें प्रातिवेश्य आनुवेश्योंको नहीं भोजन कराते हुएको उस अन्नके न भोजन करनेवालेके लिये दूना दंड दिवाना चाहिये और एक सुवर्णका मासा राजाको दंड देवै ॥ ९३ ॥ अंधा बहिरा पंगा सत्तारि वर्षकी अवस्थाका और श्रोत्रिय और धनधान्यसे उपकार करनेवाला ये किसी करिकै और जिसका कोश क्षीण होग-  
याहै ऐसे राजा करके अपना लेनेयोग्यभी कर लेने योग्य नहींहै ॥ ९४ ॥

श्रोत्रियं व्याधितातौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ॥ महाकुलीनमर्थि  
च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ९५ ॥ शालमलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्ने-  
जकःशनैः ॥ न च वासांसि वासोभिर्नि हरेन्न च वासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विद्या तथा आचारयुक्त ब्राह्मणको रोगीको पुत्रवियोग आदिसे दुःखीको बालकको वृद्धको दरिद्रीको बडे कुलमें उत्पन्नको और उत्तम चरित्रवालोंको राजा दान मान और हितके करनेसे सदा पूजन करै ॥ ९५ ॥ सेमल आदि वृक्षके चिकने पट्टेपर धोत्री हौले हौले कपडे धोवै और पराये वस्त्रोंमें औरके वस्त्र न मिलावै तथा औरके वस्त्र औरके पहिरनेको न देवै जो ऐसा करै तो यह दंडयोग्य होय ॥ ९६ ॥

ततुवायो दर्शपलं दद्यादेकपलाधिकम् ॥ अतोऽन्यथा वर्तमानो  
दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥ ९७ ॥ शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्य-  
विचक्षणाः ॥ कुर्युरर्थं यथापण्यं ततो विशं नृपो हरेत् ॥ ९८ ॥

टीका—कोली कपडा बुननेके लिये दसपल मूत लेकर माडी आदि लगनेके कारण ग्यारह पल कपडा देवै और जो इस्से कम दे तो राजाको वारह पण दंड दे

और स्वामीको राजी करै ॥ ९७ ॥ स्थल तथा जलके मार्गसे व्यवहार करनेवालोंसे राजाके लेनेयोग्य मार्गको शुल्क कहते हैं उनके नियत करनेमें चतुर और सब वेचनेयोग्य वस्तुओंके सार असारके जाननेवाले वे वेचनेकी वस्तुओंमें जितना धन जिसका मोल अनुरूपण करै उस नफेके धनसे वीसवां भाग राजा लैवै ॥ ९८ ॥

**राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रीतिषिद्धानि यानि च ॥ तानि निर्हरतो लो-  
भात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ९९ ॥ शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्र-  
यी ॥ मिथ्यावादी च संख्याने दांप्योऽर्धगुणमत्ययम् ॥ १०० ॥**

टीका—राजाके संबंधसे जो वेचनेकी वस्तु प्रसिद्धहैं जैसे राजाके कामके उसी देशमें उत्पन्न हुए हाथी घोडा आदि तथा जो मने की हुई वस्तुहैं जैसे दुर्भिक्षमें अन्न दूसरे देशमें न लेजाना उनको लोभसे दूसरे देशमें लेजानेवाले वनियाका राजा सर्वस्व ले लैवै ॥ ९९ ॥ शुल्क ( महमूल ) वचानेके लिये जो मार्ग छोडकर चलताहै अथवा अकाल कहिये रात्रि आदिमें लेता वेचताहै और शुल्क घटानेके लिये वेचनेकी वस्तुकी गिनती कम वताताहै वह राजाके देनेयोग्य छुपाये हुएका आठगुण दंड देवै ॥ १०० ॥

**आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥ विचार्य सर्वप-  
र्ष्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ १ ॥ पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽ-  
थवा गते ॥ कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ २ ॥**

टीका—कितनी दूरसे आयाहै और दूसरे देशकी वस्तुका आगम कितनी दूर पहुँचाया जाताहै और अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुका निकलना किस समयतक रहा कितना मोल मिलताहै और इसमें नफा कितनाहै और कर्म करनेवाले नौकर आदि-कोंके भोजन वस्त्र आदिमें कितना खरच हुआ इस भांति किचार करिके जैसे मोल देनेवाले और वेचनेवालेको पीडा न होय ऐसे सब वस्तुओंका क्रय विक्रय करावै ॥ १ ॥ विकनेकी वस्तुओंका आना जाना नियत नहीं है इस्से अस्थिर मोलकी वस्तुओंकी पांचरात्रि वीतनेपर और स्थिर मोलकी वस्तुओंकी पक्ष वीतनेपर अर्धवृत्ति जाननेवाले वनियोंके सामने राजा आप्त पुरुषोंके साथ व्यवस्था करै ॥ २ ॥

**तुलांमानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मां-  
सेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ पैणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं  
तरे ॥ पादं पशुश्च यो पिच्चं पादाधै रिक्तकः पुमान् ॥ ४ ॥**

टीका—तुलामान कहिये सुवर्ण आदिके परिमाणके लिये जो किया जाताहै और प्रतिमान प्रस्थ द्रोण आदि अपना निरूपित जैसे होय छः छः महीने वीतनेपर सभ्य पुरुषोंके साथ फिर उसकी परीक्षा करै ॥ ३ ॥ भांडपूर्णानि यानानि यह आगे कहेंगे तिस्से खाली छकडा आदि यानपर एक पण लेना चाहिये और पुरुषके ले चलने योग्य भारपर आधापण और गौ आदि पशुपर चौथाई पण और भार रहित मनुष्यपर पणका आठवाँ भाग उतराई लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दार्प्यानि सारतः ॥ रिक्तभाण्डानि यान्तिकश्चित्पुमांसश्चापरिच्छेदाः ॥५॥ दीर्घाध्वानि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ॥ नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥६॥

टीका—बैचनेयोग्य द्रव्यसे भरे हुए छकडे आदिपर द्रव्यके उत्कर्षकी अपेक्षासे उतराई देनी चाहिये और खाली गोनी कंडोल आदिपर कुछ थोडी उतराई देनी चाहिये और दरिद्रियोंसे आधेसेभी कम दिवानी चाहिये ॥ ५ ॥ पहले नदीके वार-पार उतरनेके लिये कहाहै अब नदीके मार्गसे जानेयोग्य दूरिके मार्गमें प्रबल वेग तथा स्थिर जलयुक्त नदी आदि देश और ग्रीष्म वर्षा आदि कालकी अपेक्षासे उतराईका मौल कल्पना करने योग्य यह नदीके किनारोंमें जानना चाहिये समुद्रमें तौ जहाजका चलना पवनके आधीन होनेसे अपनी आधीनता न होनेपर अधिक उतराईके द्रव्यका सूचित करनेवालाहै इसमें नदीकी भांति योजन आदि नहीं है इस्से वहां उचितही उतराई लेनी चाहिये ॥ ६ ॥

गर्भिणी तु द्विमौसादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ॥ ब्राह्मणा लिङ्गिन-  
श्चैवं नैर्दार्प्यास्तारिकं तरे ॥७॥ यत्रावि किञ्चिद्दार्शानां विशी-  
यैतापराधतः ॥ तद्दार्शैरेवं दार्तव्यं समागम्य स्वतोऽर्शतः ॥ ८ ॥

टीका—श्री महीनाके उपरांतकी गर्भिणी स्त्री तथा संन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारी ये पार उतरनेमें उतराईका मूल्य न देंवै ॥ ७ ॥ नावमें चढनेवालोंकी नौका केबटोंके दोषसे हानी होजाय तौ गया हुआ धन नाववालेही मिलकर हिस्सेसे देंवै ॥ ८ ॥

एष नौयार्यिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दार्शापराधतस्तोये  
दैविके नास्ति निर्ग्रहः ॥९॥ वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषि-  
मेवं च ॥ पशूनां रक्षणं चैवं दारस्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥

टीका—मल्लाहोंके दोषसे जो पानीमें नष्ट होजाय उसको मल्लाह देंवै यह पहलें



मनुका कहा हुआ दंड देवी उपद्रवमें नहीं है यह विधान करनेके लिये नौकाओंसे जानेवालोंका यह व्यवहार कहा देवसे उत्पन्न हुई आंधी आदिसे नावके टूटने कारि धन आदिका नाश होनेपर मछलाहोंको दंड नहीं है ॥ ९ ॥ वैश्यसे वाणिज्य व्यानकी जीविका खेती पशुओंका पालन ये कर्म करावै और शूद्रोंसे राजा द्विजातियोंका दास्य कहिये सेवा करावै ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं च वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्त्तितौ ॥ विभृयादानृशंस्येनस्वा-  
नि कर्माणि कारयन् ॥ ११ ॥ दास्यं तु कारयन्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृ-  
तान्द्विजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्डेयः शर्तानि षट् १२

टीका—ब्राह्मण पीडित क्षत्रिय वैश्योंसे करुणा करिकै अपनी रक्षा तथा खेती आदि कामोंको करवावै और भोजन वस्त्र आदिसे उनका पोषण करे और जो धनाढ्य ब्राह्मण आये हुए उन दोनोंको न रक्खै तौ राजा करि दंड करनेयोग्य है यह प्रकर-  
णकी सामर्थ्यसे जानाजाता है ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत किये हुए द्विजाति-  
योंसे उनकी इच्छाके विना प्रभुता करि लोभसे पांय धाना आदि दासोंका काम करा-  
ता है उसपर छसौ पण दंड करना चाहिये ॥ १२ ॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेवर्षा ॥ दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ  
ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ १३ ॥ न स्वाभिना निःसृष्टोऽपि शूद्रो दास्या-  
द्विमुच्यते ॥ निसर्गजं हि तत्तस्यं कस्तस्मात्तदपोहति ॥ १४ ॥

टीका—भोजन आदिसे पाले हुए अथवा न पाले हुए शूद्रसे दासका काम करावै जिस्से यह ब्राह्मणके दासभावहीके लिये प्रजापति करि बनाया गया है ॥ १३ ॥ स्वामी करि त्याग किया गयाभी शूद्र दासभावसे नहीं छूटता है जिस्से दास्य शूद्रका सहज कहिये साथ उत्पन्न है कौन इस शूद्रत्व जातिके दास्यको दूर कर सकता है अर्थात् कोई नहीं जो ऐसा न होय तौ जो आगे कही जायगी ऐसी दास्य करनेकी गणनाही व्यर्थ होजाय ॥ १४ ॥

ध्वजान्तो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च स-  
त्ते दास्योनयः ॥ १५ ॥ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृ-  
ताः ॥ यत्ते समीधगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ १६ ॥

टीका—संग्राममें स्वामीसे जीता भोजनके लोभसे आया हुआ भक्तदास तथा अपनी दासीसे उत्पन्न और मौलसे लिया हुआ और दूसरे करि दिया हुआ तथा

पिता आदिके क्रमसे जो चला आताह आर दण्ड आदिके धनकी शुद्धिके लिये जिसने दासपन अंगीकार कियहै ये सात संग्राममें स्वामीसे जीते आदि दासपनके करनेवालेहैं ॥ १५ ॥ भार्या पुत्र तथा दास ये तीनि मनु आदिकों करि अधन कहे गयेहैं कारण यहहै कि जिस धनको वे जोडतेहैं वह धन जिसके वे भार्या आदिहैं उसका होताहै यह तौ भार्या आदिकी पराधीनता दिखानेके लियेहैं क्योंकि आगे अध्यायि आदि छः प्रकार स्त्रीधन कहा जायगा ॥ १६ ॥

विस्वंधं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानं प्राचरेत् ॥ न हि तस्यास्ति किं-  
श्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥ १७ ॥ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्मा-  
णि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥ १८ ॥

टीका-निस्संदेह ब्राह्मण शूद्रसे धन ग्रहण करै जिसे उसका कुछभी स्वत्व (हक ) नहीं है कारण यहहै कि इसका धन स्वामीके लेने योग्यहै ऐसे आपत्तिमें ब्राह्मण बलसेभी इसका धन लेता हुआ राजा करि दंड देनेयोग्य नहींहै इस लिये यह कहा जाताहै ॥ १७ ॥ वैश्यको खेती आदि और शूद्रको द्विजातिकी सेवा आदि कर्म राजा यत्नसे करावै कारण यहहै कि वे अपनी जातिके कर्मसे च्युत हो अशा-स्त्रीय जोडे हुये धनके मद आदिसे जगतको व्याकुल न करदें ॥ १८ ॥

अहन्यहैन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥ आयव्ययौ च नियता-  
वार्करान्कोशमेवं च ॥ १९ ॥ एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समा-  
पयन् ॥ व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

टीका-राजा प्रारंभ किये हुए कार्योंकी सिद्धको प्रतिदिन उनके अधिकारियोंके द्वारा देखै ऐसेही हाथी घोडेको कि आज क्या आया और क्या गया और सोना चांदीके उत्पत्तिस्थानोंको और कोशगार ( खजाने ) को देखै व्यवहारके देखनेमें असंमर्थभी राजा अपने धर्मोंको न छोडै यह दिखानेके लिये कहे कि फिर कयनहै ॥ १९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इन सब ऋणादान आदि व्यवहारोंको तत्त्वसे निर्णय करि पूरा करता हुआ; राजा सब पापोंको छोडकर स्वर्ग आदिकी प्राप्तिरूप उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होताहै ॥ ४२० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुरखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकता-  
यां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## अथ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैवं धर्म्ये वर्तमानि तिष्ठतोः ॥ संयोगे विप्रयोगे च  
धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः  
स्वैर्दिवानिशम् ॥ विषयेषु च सर्जन्त्यः संस्थान्याः आत्मनोर्वशे ॥ २ ॥

टीका-नत्वा पित्रोः पदद्वंद्वं ध्यात्वा शंकरमव्ययम् ॥ नवमाध्यायविवृतिः केशवेन  
मयोच्यते ॥ १ ॥ धर्मके लिये हित और आपसमें कभी चलनेवाला नहीं ऐसे मार्गमें  
स्थित और संयुक्त अथवा विद्युक्त और परंपरासे चले आनेके कारणसे नित्य ऐसे  
पुरुष तथा पत्नीके धर्मोंको कहोंगा स्त्रीपुरुषके आपसके धर्ममें व्यतिक्रम होनेपर  
दोमेंसे एक करि सूचित किये गये राजाको दंडसेभी अपने धर्मकी व्यवस्था स्थापन  
करनी चाहिये इससे व्यवहारमें इसका कथन है ॥ १ ॥ अपने भर्ता आदिकों करि  
स्त्रियां सदा वशमें रखने योग्य हैं निषिद्ध नहीं ऐसे रूप रस आदि विषयोंमें प्रसंग करती  
हुई अपने वश करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारं भर्ता रक्षति यो वने ॥ रक्षन्ति स्थाविरं पुत्रं न  
स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥ कालेऽदातां पितां वार्च्यो वार्च्य-  
श्रानुपयन्पतिः ॥ भृतं भर्तारं पुत्रं स्तुं वार्च्यो भ्रातुररक्षितां ॥ ४ ॥

टीका-विवाहसे पहले स्त्रीकी पिता रक्षा करता है पीछे तरुण अवस्थामें भर्ता  
रक्षा करताहै उसके अभावमें पुत्र, तिस्से स्त्री किसी अवस्थामें स्वतंत्र न होय  
और जिसके पति पुत्र नहीं हैं उसकी पिता आदिभी रक्षा करतेहैं ॥ ३ ॥ प्रदानके  
कालमें नहीं देता हुआ पिता निंदा योग्य होताहै ऋतुके पहले प्रदान काल गौतमने  
कहाहै और पति ऋतु कालमें पत्नीसे नहीं गमन करताहुआ निंदा योग्य होताहै और  
पतिके मरनेपर माताकी न रक्षा करनेवाला पुत्र निंदायोग्य होताहै ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्यां विशेषतः ॥ द्रयोर्हि कुल-  
योः शोकेमांवेहयुररक्षिताः ॥ ५ ॥ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो ध-  
र्मसुत्तमम् ॥ यतन्ते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

टीका-दुःशीलताके करनेवाले थोड़ेभी कुसंगसे स्त्री विशेष करि रक्षा करने  
योग्यहैं और बहुतका तौ क्या कहनाहै, और उनकी उपेक्षा करनेसे पिता  
भर्ताके दोनों कुलोंको संताप कराती हैं ॥ ५ ॥ सब ब्राह्मण आदि वर्णोंके

भार्या रक्षण धर्मको आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिसे सब धर्मोंसे उत्तम जानतेहुए अंधे पंगे आदिभी भार्याकी रक्षा करनेका यत्न करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेवं च ॥ स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जा-  
यां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥ पतिर्भार्या संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जा-  
यते ॥ जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

टीका—जिस्से यत्नपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें असंकीर्ण विशेष करि शुद्ध संतति के उत्पन्न करनेसे अपनी संततिकी तथा शिष्टसमाचारको और पिता पितामह आदि-के वंशको और आपको विशुद्ध संतति है कारण जिसका ऐसे और्ध्वदैहिक कर्मोंके लामसे अपने धर्मकी भी रक्षा करताहै तिस्से स्त्रियोंकी रक्षा करनेका यत्न करै ॥ ७ ॥ पति शुक्ररूपमें भार्यामें प्रवेश करिकै गर्भभावको प्राप्त हो उस भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होताहै । तथा च श्रुतिः “आत्मा वै पुत्रनामासि” इति ॥ जायाका वंही जायात्वहै जिस्से इसमें पति फिर उत्पन्न होताहै ॥ ८ ॥

याहृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥ तस्मात्प्रजाविशु-  
द्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ न कश्चिद्योपितः शक्तः प्रसह्य  
परिरक्षितुम् ॥ एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रसे विहित होय अथवा निषिद्ध होय जैसे पतिका स्त्री सेवन करतीहै वैसा शास्त्रोक्त पुरुषका सेवन करनेसे उत्कृष्ट और निकृष्ट पुरुषके सेवनसे निकृष्ट पुत्रको उत्पन्न करती है तिस्से संततिकी शुद्धिके लिये पत्नीकी यत्नसे रक्षाकरै ॥ ९ ॥ कोई बलसे रोकने आदिसेभी स्त्रीकी रक्षा करनेको नहीं समर्थ हैं वहांभी व्यभिचार होताहै किंतु इन कहेहुए रक्षा करनेके उपायोंके योगसे वे रक्षा करनेको समर्थ हैं ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चैवाव्यये चैव नियोजयेत् ॥ शौचे धर्मेऽन्नपत्तयां  
च परिणह्यस्य वेक्षणे ॥ ११ ॥ अरक्षितां गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तका-  
रिभिः ॥ आर्त्तमानमात्मेना यास्तु रक्ष्युस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

टीका—धनके संग्रहण करने तथा खरच करनेमें द्रव्य तथा शरीरके शुद्ध कर-  
नेमें और पतिकी सेवामें और अन्नके सिद्ध करने अर्थात् रसोईके बनानेमें और  
घरकी सामग्री शय्या आसन कुंड कडाह आदिके देखनेमें इसको लगावै ॥ ११ ॥  
आप्त तथा आज्ञाकारी पुरुषों करि घरमें रोकीहुईभी रक्षित नहीं होती है जो दु-  
श्शीतलासे अपनी रक्षा नहीं करती है और जो धर्मज्ञतासे आप अपनी रक्षा करतीहै,

वेही सुरक्षित होतीहै इसीसे धर्म अधर्मका फल स्वर्ग नरककी प्राप्तिके उपदेशसे उनका संयम करना योग्यहै ॥ १२ ॥

पांनं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च  
नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥ नैतां रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि  
संस्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानि त्येवं भुञ्जते ॥ १४ ॥

टीका-मद्य पीना असत्पुरुषोंका संसर्ग पतिसे वियोग भ्रमण करना कुसमयमें सो-  
ना पराधे घरमें रहना ये छः स्त्रीके व्यभिचार दोषके उत्पन्न करनेवाले हैं तिस्से  
ये इनसे रक्षा करने योग्यहैं ॥ १३ ॥ ये सुंदर रूपका विचार नहीं करतीहैं और  
न इनका यौवन आदि अवस्थामें आदर होताहै किंतु मुरूप होय अथवा कुरूप होय  
पुरुष है यही मानिके उसको भोगतीहैं ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःश्लेह्याच्च स्वभावतः ॥ रक्षिता यत्नतोऽपी-  
हं भर्तृष्वेतां विकुर्वते ॥ १५ ॥ एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजाप-  
तिनि सर्गजम् ॥ परमं यत्नभातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

टीका-पुरुषके दर्शनसे संभोग आदिकी इच्छा होनेके कारण और चित्तकी स्थिरता  
न होनेसे और स्वभावसे श्लेहरहित होनेके कारण यत्नसेभी रक्षा कीगई ये व्यभिचारके आश्र-  
यसे भर्ताओंमें विकार युक्त होजातीहैं ॥ १५ ॥ ऐसे दो श्लोकोंमें कहे हुए इनके स्वभावको  
हिरण्यगर्भकी सृष्टिके समय उत्पन्न जानि पुरुष इनकी रक्षाके लिये उत्कृष्ट यत्नकरै ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कांसं क्रोधमनार्जवम् ॥ द्रोहभावं कुच्ययीच स्त्री-  
भ्यो मंनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ निरिन्द्रियाह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः १८

टीका-शय्या आसन अलंकार करनेका स्वभाव काम क्रोध कुटिलता पराई हिंसा  
कुत्सित आचार ये सब मनुने सृष्टिकी आदिमें स्त्रियोंके लिये बनाये तिस्से यत्नसे ये  
रक्षा करनेयोग्यहैं ॥ १७ ॥ स्त्रियोंकी जातकर्म आदि क्रिया मंत्रोंसे न होतीहै यह  
शास्त्रकी मर्यादाहै तिस्से मंत्रसहित संस्कार न होनेके कारण इनके अंतःकरण पापरहित  
नहीं हेतहैं इंद्रियां प्रमाणहैं और धर्ममें प्रमाण ऐसी श्रुति स्मृतिरहित होनेसे धर्मज्ञ  
नहीं होती हैं और अमंत्र काहिये पापके दूरिकरनेवाले मंत्रोंकरि रहित होनेके कारण  
पाप होनेपर भी उसके दूरि करनेको नहीं समर्थ होतीहैं झूठके समान स्त्रियां अशुभमें  
यह शास्त्रकी मर्यादा है तिस्से यत्नसे रक्षा करने योग्य हैं यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

तथा च श्रुतयो वह्नयो निगीता निर्गमेष्वपि ॥ स्वालक्षण्यपरीक्षायां  
तांसां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥ यन्मे माता प्रलुभे विचरन्त्यप  
तिव्रता ॥ तन्मे रेतः पिता वृद्धामि त्यस्यैतन्निर्दर्शनम् ॥ २० ॥

टीका—व्यभिचारशील होना यह स्त्रियोंका स्वभावहै यह कहा उसमें श्रुतिके प्रमाण लिखतेहैं ॥ बहुतसे श्रुतियोंके वाक्य जैसे “नचैतद्विभ्राह्मणासोऽब्राह्मणावा” इत्यादिक निगमोंमें स्त्रियोंकी स्वालक्षण्य कहिये व्यभिचारशीलताके जाननेके लिये पढी हैं उनमेंसे जो निष्कृतिरूप अर्थात् व्यभिचारके प्रायश्चित्तभूतहैं उन श्रुतियोंको सुनिये ॥ १९ ॥ कोई पुत्र अपनी माताके मानसिक व्यभिचारको जानिके कहताहै, कि मन, वाणी, काय और कर्मसे पतिसे भिन्न पुरुषकी इच्छा नहीं करती है वह पतिव्रताहै उससे अन्य अपतिव्रता होतीहै मेरी माता अपतिव्रता हो पराये घरोंमें जाती हुई जो परपुरुषपर लोभयुक्त हुई उस परपुरुषके संकल्पसे द्रष्टृ माताको रजोरूप वीर्यको मेरा पिता शोधन करो इस प्रकृत स्त्रीकी व्यभिचारशीलताके मध्ये इतिकरणहै अंत जिनका ऐसे मंत्रके तीनिपाद सूचकहैं यह मंत्र चातुर्मास्य आदिमें काम देताहै ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ॥ तस्यैप्यव्यभिचारस्य निह्ववः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥ यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्ये त यथाविधि ॥ तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

टीका—यह मंत्र मानसी व्यभिचारका प्रायश्चित्तरूपहै सो दिखातेहैं ॥ जो स्त्री पति जिसको नहीं चाहता ऐसे दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेको मनसेभी नहीं चाहती है उसके चित्तके चलायमान होनेका यह प्रायश्चित्तका मुख्य मंत्रहै भलीभांतिसे शोधने वाले मनु आदिने कहाहै माता शब्दका श्रवणहै तिससे यह पुत्रहीका मुख्य प्रायश्चित्त रूप मंत्रहै माताका नहीं ॥ २१ ॥ स्त्री विवाह आदिकी विधिसे जैसे भले बुरे पतिसंयुक्त होती है उसके गुण उस भर्ताके समान होजातेहैं जैसे समुद्रमें मिलकर भीठे जलकी नदी खारी जलकी होजाती है ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥

टीका—इस उत्कर्षमें दृष्टांत देतेहैं ॥ जैसे निकृष्टयोनि अक्षमाला नाम वसिष्ठके

साथ व्याही गई और चटकानाम मंदपालनाम ऋषिको व्याही गई ये दोनों पूज्यताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ ये तथा औरभी निकृष्टसे उत्पन्न सत्यवती आदि स्त्रियां अपने २ पतिके गुणोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥

एषोदितां लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोद  
कान्प्रजाधर्मान्निवोर्धत ॥ २५ ॥ प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृह  
दीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गृहेषु न विशे ॥ षोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥

टीका—यह सदा शुभस्त्रीपुरुषोंके विषयक लोकाचार कहा अब इस लोक तथा पर-  
लोकमें आगेको सुखके कारण ऐसे क्या क्षेत्रिका संतानहै अथवा वीजीका इत्यादि  
प्रजाके धर्मोंको सुनिये ॥ २५ ॥ यद्यपि इनकी रक्षाके लिये दोष कहेंहैं तिसपरभी  
उपाय होसकनेके कारण दोषका अभावहै ये स्त्रियाँ बड़े उपकाररूप गर्भके उत्पन्न कर-  
नेके लिये बहुतसे कल्याणके पात्रहैं तिससे बख्ख अलंकार आदिके देनेसे बड़े मानके  
योग्य और अपने घरकी शोभा करनेवाली हैं स्त्री और श्री घरोंमें तुल्यरूपहैं इनमें  
कुछ विशेष नहीं है जैसे श्रीके विना घर शोभित नहीं होताहै ऐसेही स्त्रीके विनाभी  
शोभा नहीं पाताहै ॥ २६ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥ प्रत्येहं लोकयात्रा  
याः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥ अपत्यं धर्मकार्येण शुश्रूषा  
रतिरुत्तमा ॥ दारिणीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च है ॥ २८ ॥

टीका—संतानका उत्पन्न करना और उत्पन्न हुएका पालना और प्रतिदिन अतिथि  
मित्र आदिका भोजन आदि लोकमें व्यवहारकी प्रत्यक्ष भार्याही कारणहै ॥ २७ ॥  
संतानिका उत्पन्न करना कहभी चुके परन्तु पूजाकी योग्यता सूचित करनेके लिये फिर  
कहाहै अग्निहोत्र आदि धर्मके कार्य सेवा और उत्कृष्ट प्रीति तथा संतानके उत्पन्न करने  
आदिसे पितरोंका और अपना स्वर्गका निवास ये सब कार्य स्त्रीके आधीनहैं ॥ २८ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकानाम्प्रोति  
सद्भिः सांघ्वीति चोच्यते ॥ २९ ॥ व्यभिचारानुं भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नो  
ति निन्द्यताम् ॥ शृगालयोनिं चाप्नोति ॥ पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी तथा देहके संयम हो मन वाणी तथा देहसे व्यभिचारकी  
नहीं प्राप्त होतीहै वह पतिके साथ अर्जन किये हुये स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती  
है और इस लोकमें सज्जनोंकी सांघ्वी कही जाती है ॥ २९ ॥ दूसरे पुरुषके

योगसे लोकमें निंदाको और दूसरे जन्ममें स्यारीकी योनिको पातीहै और क्षयरोग आदिसे पीडित होतीहै स्त्रीधर्म कहभी चुके परन्तु ये दो श्लोक उत्तम संतानके निमित्तहैं इसकारण बहुत प्रयोजनको जानि फिरि पढे ॥ ३० ॥

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वंजन्यमिमं  
पुण्यमुपन्यासं निवोधत ॥ ३१ ॥ भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिर्द्रु-  
धं तु भर्तरि ॥ आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

टीका—पुत्रके मध्ये शिष्ट मनु आदिकोंने और पहले उत्पन्न हुए महर्षियोंने यह कहाहै अब सर्व जनोका हितकारी आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ३१ ॥ भर्ताका पुत्र होताहै यह मुनि मानतेहै भर्तामें दो प्रकारकी श्रुति है कोई विना व्याहेभी उत्पन्न करनेवाले भर्ताको उस पुत्रसे पुत्रवाला कहतेहैं और अन्य तो नहीं भी उत्पन्न करनेवाले व्याहनेवाले भर्ताको दूसरे करि उत्पन्न किये हुए पुत्र करि पुत्री कहतेहैं ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ क्षेत्रबीजसमायो  
गात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥ विशिष्टं कुत्रचिद्वीजं स्त्रीयो निस्त्वे  
व कुत्रचित् ॥ उभयं तु समं यत्र सां प्रसूतिः प्रशंस्यते ॥ ३४ ॥

टीका—धान आदिके उत्पत्तिके स्थानको क्षेत्र कहतेहैं उसके तुल्य स्त्री मुनियों करि कही गईहै और पुरुष धान आदिके बीजके तुल्य कहा गयाहै यद्यपि रेत बीजहै परन्तु उसका आधार होनेसे पुरुष बीज कहा जाताहै क्षेत्र और बीजके योगसे सब प्राणि योकी उत्पत्ति होतीहै इस भांति दोनोंकी विशिष्ट कारण होनेसे यह कहना योग्यहै ॥ ३३ ॥ क्या ? जिसका क्षेत्रहै उसका अपत्यहै अथवा जिसका बीजहै उसका? इसपर कहतेहैं ॥ कहीं बीज प्रधानहै जे अनियुक्तमें उत्पन्न हुएहै इस न्यायसे बीजि चंद्रमासे बुध उत्पन्न हुआ तैसेही व्यास ऋष्यशृंग आदि बीजवालोंहीके पुत्र हुए कहीं क्षेत्रकी मुख्यताहै जैसे “ यस्तल्पजः प्रमीतस्य ” यह कहाहै इसीसे विचित्र-बीर्यके क्षेत्र क्षत्रियामें ब्राह्मण करि उत्पन्न कियेगयेभी धृतराष्ट्र आदिक क्षत्रिय क्षेत्रवालेहीके पुत्र हुए और जहां बीज और योनि दोनोंकी समताहै वहां व्याहने-वालाही उत्पन्न करनेवालाहै उसकी अच्छी संतति होतीहै ॥ ३४ ॥

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि  
बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥ यादृशं तूप्यंते बीजं क्षेत्रे कालोपपादि-  
ते ॥ तादृशोर्हति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥



टीका-वहाँ बीजकी प्राधान्यकी अपेक्षासे कहतेहैं ॥ बीज और क्षेत्रमें बीज प्रधान कहा जाताहै तिससे संपूर्ण पंचभूतोंसे बने हुएओंकी उत्पात्ति बीजम स्थित वर्ण रूपके चिह्नोहीसे उपलक्षित दिखाई देतीहै ॥ ३५ ॥ जिस जातिका धान आदि बीज ग्रीष्म आदि कालमें जोतने आदि करि संस्कार किये हुए खेतमें बोया जाताहै उसकी जातिहीका वह बीज अपने वर्ण आदिकों करि उपलक्षित उस खेतमें उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि<sup>१</sup> भूतानां शार्धती यो<sup>२</sup> निरुच्यते ॥ न च योनिं गुणा<sup>३</sup>  
न्कांश्चिद्भी<sup>४</sup> जपुष्यति पुंष्टिषु ॥ ३७ ॥ भूमावप्येककेदारे कालोत्ता  
नि कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायन्ते बीर्जानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

टीका-इस भाँति अन्वयके प्रकार बीजकी प्राधान्यता दिखाकै अव व्यतिरेक मुखसे दिखानेको कहतेहैं ॥ निश्चय यही भूमि भूतोंसे बने हुए वृक्ष गुल्म लता आदिकी नित्य योनि कहिये क्षेत्ररूप कारण सब लीगोंकरि कही जातीहै और भूमिनाम योनिके किन्ही मट्टीरूप आदि स्वरूपधर्मोंको बीज अपने विकार अंकुर शाखा आदिकी अवस्थाओंमें नहीं भजताहै तिससे योनिके गुणोंके न वर्तमान होनेसे क्षेत्रकी प्रधानता नहीं ॥ ३७ ॥ भूमिमें एकही क्यारिमें किसानोंकरी समयमें बोये गये धान मूंग आदि बीजके स्यावसे नानारूप उत्पन्न होतेहैं और भूमिके एक होनेसे एकरूप नहीं होतेहैं ॥ ३८ ॥

ब्रीहयः शालयो मुद्गास्तिलां माषास्तथा यवाः ॥ यथा बीजं प्ररोहं  
न्ति लंशुनानीक्ष्वस्तथा ॥ ३९ ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नो -  
पपद्यते ॥ उप्यते यद्धि यद्भी जं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

टीका-ब्रीहि कहिये साठी धान और शालि कहिये कलम धान आदि और मूंग तिल उडद तथा जव बीजके स्वभावको नहीं छोडकर नाना रूप उत्पन्न होतेहैं ॥ ३९ ॥ धान बोयेसे मूंग आदि उत्पन्न होय यह संभव नहीं होताहै ॥ जिससे जो जो बीज बोया जाताहै सोई उगताहै ऐसे बीजके गुणोंके अनुवर्तन कहिये साथ रहनेसे और क्षेत्रके धर्म न रहनेसे धान आदिमें और मनुष्योंमेंभी बीजकी मुख्यताहै ॥ ४० ॥

तत्प्रज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आर्युष्कामेन वसंव्यं  
न जातुं परयोषिति ॥ ४१ ॥ अत्रं गार्था वायुगीताः कीर्तयन्ति  
पुराविदः ॥ यथा बीजं न वसंव्यं पुंसां परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

टीका-अब क्षेत्रकी प्राधान्यता कहतेहैं ॥ वह बीज स्वाभाविक बुद्धिवाले और

पिता आदि करि सिखाये और वेद तथा उसके अंगोंके माननेवाले आयुकी इच्छा करनेवालेको पराई स्त्रीमें कभी न बोना चाहिये ॥ ४१ ॥ वीते हुए कालके जानने वाले इस अर्थमें वायुकी कही हुई गाथा अर्थात् छंदविशेष करि युक्त वाक्योंको कहतेहैं जैसे परपुरुष करि परस्त्रीमें बीज न बोना चाहिये ॥ ४२ ॥

नश्यतीपुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्धयतः ॥ तथा नश्यति वै<sup>१२</sup>

क्षिप्रं<sup>१</sup> बीजं परंपरिग्रहे ॥ ४३ ॥ पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्वविदो

विदुः ॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

टीका—जैसे और करि वेधे हुए करसायल मृगके उसी छेदमें वेधनेवाले दूसरेका फंका हुआ बाण निष्फल होताहै पहले मारनेवाले करि मारे जानेके कारण उसीको मृगका लाभ होताहै ऐसे परस्त्रीमें बोया गया बीज शीघ्रही निष्फल होताहै क्योंकि गर्भग्रहणके पीछे क्षेत्रीकी अपत्य मिलताहै ॥ ४३ ॥ इस पृथिवीको पहले पृथुराजा के ग्रहण करनेसे अनेक राजाओंका संबन्ध होनेपरभी पृथुकी भार्या पहले भूतकालके जाननेवाले जानतेहैं और स्थाणु जो टूट आदिहै उनको खोदकर जो खेत करताहै उसीका वह क्षेत्र कहतेहैं ऐसेही मृग आदिमें जिसने पहले शर आदि चलायाहै उसीका वह मृग कहतेहैं ऐसे पहले परिग्रह करनेवालेकी स्वामिता होनेसे व्याहनेवालेहीफी संतान होतीहै उत्पन्न करनेवालेकी नहीं ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति हं ॥ विप्राः प्राहुस्तथाचै<sup>११३</sup> तं

द्यो भर्ता सां स्मृताङ्गनां ॥ ४५ ॥ न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुभार्या

विमुच्यते ॥ एवं धर्म विजांनीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥

टीका—पुरुष एकही नहीं होताहै किंतु भार्या अपना देह और अपत्य कहिये संतान इन सर्वोसमेत पुरुष होताहै यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मण कहतेहैं जो भर्ता है वही भार्या कही गई है उसमें उत्पन्न किया हुआ अपत्य भर्ताहीका होताहै ॥ ४५ ॥ निष्क्रय बचन और विसर्ग दान दोनों बातोंसे स्त्री भर्ताके भार्यापनसे नहीं छूटतीहै ऐसे पहले प्रजापतिके कहे हुए नित्य धर्मको हम मानतेहैं इस भाँति मोल आदिसे भी पराई स्त्रीको अपने आधीन करिके उसका उत्पन्न किया हुआ पुत्र आदि संतान क्षेत्रवालेहीका होताहै बीजवालेका नहीं ॥ ४६ ॥

संकुंशो निपतति संकृत्कन्या प्रदीयते ॥ संकुंदाह ददानीति त्री

प्येतांनि सतां संकृत् ॥ ४७ ॥ यथा गोऽश्वोष्टदासीषु महिष्यजा

विकासु च ॥ नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वर्षि ॥ ४८ ॥

टीका-पिता आदिके धनमें भाइयोंका धर्मसे किया हुआ विभाग एकही बार होता है फिर अन्यथा नहीं किया जाताहै तैसेही पिता आदि करि कन्या एकही बार किसीको दी गई फिरि दूसरेको नहीं दी जातीहै ऐसेही और करि पहले औरको दी हुई होनेपर पीछे पिता आदि करि प्राप्त हुई भी उसमें उत्पन्न किया पुत्र वीज-वालेका नहीं होताहै इस लिये यह कहाहै तैसेही कन्यासे भिन्नभी आदि द्रव्यमें एकहीबार देता हों यह कहताहै न कि दूसरेको देता हों यह ये तीनि बातें सज्जनोंकी एकवार होतीहैं ॥ ४७ ॥ जैसे पराई गौ घोडी ऊँटिनी दासी भैंसि बकरी भेड इनमें अपने बैल आदिको छोड बछडे आदिका उत्पन्न करनेवाला उसको नहीं पाता है तैसेही पराई स्त्रियोंमे उत्पन्न करनेवाला संतानको नहीं पाताहै ॥ ४८ ॥

ये<sup>१</sup> ऽक्षेत्रिणो वीजवन्तः परंक्षेत्रप्रवापिणः ॥ ते वै<sup>२</sup> सस्यस्य जातस्य<sup>३</sup>  
नै<sup>४</sup> लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥ यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनं  
येच्छंतम् ॥ गोमिनामेवंते<sup>५</sup> वत्सामो<sup>६</sup> घं स्कन्दितमौषभम् ॥ ५० ॥

टीका-जे क्षेत्रके स्वामी नहीं हैं ऐसे वीजके स्वामी पराये खेतमें वीज बोतेहैं वे उसमें उत्पन्न हुए धान्य आदिके फलको किसी देशमें नहीं पातेहैं यह दृष्टांतहै ॥ ४९ ॥ जो औरकी गौओंमें बैल सौभी बछडे उत्पन्न करै तौ वे सब बछडे स्त्री जो गौ है उसके स्वामीके होतेहैं न कि बैलके स्वामीके और बैलका जो वीर्य सींचनाहै वह बैलके स्वामीका निष्फलही होताहै जैसे "गोऽश्वोष्ट्रे" इस श्लोकसे उत्पन्न करनेवाला प्रजाका पानेवाला नहीं होताहै इसमें यह दृष्टांत कहाहै ॥ ५० ॥

तैथैवा<sup>१</sup>क्षेत्रिणो वी<sup>२</sup>जं परंक्षेत्रप्रवापिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं नै<sup>३</sup>वी  
जी<sup>४</sup> लभते फलम् ॥ ५१ ॥ फलं त्वनाभिसंधाय<sup>५</sup> क्षेत्रिणां वीजं  
नां तथा ॥ प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो वीजाद्यो<sup>६</sup> निर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

टीका-जैसे गौ आदिके गर्भमें वैसेही स्त्रीकी संतानमें स्वामीपनसे रहित होते हुए पराई भार्यामें जो वीज बोतेहैं वे क्षेत्रके स्वामियोंकीका संतानरूप प्रयोजन करतेहैं और वीजका सींचनेवाला संतानरूप फलको नहीं पाताहै ॥ ५१ ॥ जो इसमें संतान उत्पन्न होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा इस भांति जहां नियम नहीं किया गयाहै वहां निस्संदेह कही हुई रीतिसे खेतवालेका संतानहै वीजसे क्षेत्र बलवानहै ॥ ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वैतद्बीजाथं यत्प्रदीयते ॥ तस्यैह भार्गवो नो दृष्टौ  
बीजी क्षेत्रिके एव च ॥ ५३ ॥ ओर्धवाताहृतं वीजं यस्य क्षेत्रे

प्रेरोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वत्तं लभते फलम् ॥ ५४ ॥

टीका—जो इसमें संतान होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा ऐसे कहकर वह क्षेत्रस्वामी करि बीज बोनेके लिये जो बीजवालेकी दिया जाताहै उस संतानके लोकमें बीजवाला और खेतवाला दोनों स्वामी पानेवाले देखे गये हैं ॥ ५३ ॥ जलके वेग तथा पवन करि दूसरेके खेतसे लाया गया बीज जिसके खेतमें उत्पन्न होता है वह बीज उस खेतके स्वामीहीका होताहै जिसने बीज बोयाहै वह उसके फलको नहीं पाताहै ऐसे अपनी भार्याके भ्रमसे पराई भार्याके गमनमें मेरा यह पुत्र होगा ऐसा जाननेपर क्षेत्रवालेहीका पुत्र है यह देखाया गयाहै ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवांश्वस्य दास्युप्राजाविकस्य च ॥ विहंगमहिषीणां च  
विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥ एतद्भिः सारुफल्युत्वं बीजयोन्योः प्र-  
कीर्तितम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥

टीका—गौ, घोडी, दासी, ऊंटनी, बकरी और भेड इनकी संततिमेंभी यही व्यवस्था जाननी चाहिये जो क्षेत्रका स्वामीही गौ आदिकी संततिका स्वामी है वैल आदिका स्वामी नहीं और नियम करनेपर तौ दोनों संततिके स्वामी होतेहैं ॥ ५५ ॥ यह बीज तथा योनिकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही इस पीछे स्त्रियोंके संतान न होनेमें जो करना चाहिये सो कहौंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्यैष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥ यवीयसस्तु यां भा-  
र्यां स्नुषां ज्यैष्ठस्य सां स्मृता ॥ ५७ ॥ ज्यैष्ठो यवीयसो भार्या यवी-  
यान्वाग्रजस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावर्ष्यर्नापदि ॥ ५८ ॥

टीका—जेठे भाईकी स्त्री छोटे भाईकी गुरुपत्नी होती है और छोटे भाईकी स्त्री बड़े भाईकी पुत्रवधू सुनियोंने कहीहै ॥ ५७ ॥ जेठ और छोटा दोनों भाई आपसमें वह उसकी और वह उसकी भार्यामें गमन करिके संतानका अभाव न होनेपर नियुक्त भी पतित होतेहैं ॥ ५८ ॥

देवराद्रां सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥ प्रंजेप्सिताधिगन्त-  
व्या संतानस्य परिरक्षये ॥ ५९ ॥ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो  
वाग्यतो निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कैथंचन ॥ ६० ॥

टीका—संतानके न होनेमें पति आदि गुरुओंकरि आज्ञा दी गई स्त्री देवर अथवा अन्य सपिण्डसे अच्छे प्रकारसे जो आगे कहा जायगा ऐसे घृताक्त आदि नियमवाले

पुरुषके गमनसे वांछित प्रजा उत्पन्न करौबे वांछित कहनेसे कार्यके अयोग्य पुत्र उत्पन्न होनेसे फिरि गमन पाया जाता है ॥ ५९ ॥ विधवामें इस कहनेसे जाना गया कि, संतान उत्पन्न करनेयोग्य पतिके न होनेपर यह है इससे पतिके जीवते हुएभी अयोग्य पति आदि गुरुओंकरि आज्ञा दिया हुआ घीसे सब शरीरसे लेप करि मौन हो रात्रिमें एक पुत्र उत्पन्न करै दूसरा नहीं ॥ ६० ॥

द्वितीयमेके प्रजनं मर्न्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः॥ अनिर्वृतं नियोगार्थं प  
श्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥ विधवायां नियोगार्थं निर्वृत्ते तु  
यथाविधि ॥ गुरुवर्चं स्नुषावर्चं वर्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

टीका-नियोगसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले अन्य आचार्य अपुत्र समानहै यह शिष्टोंके कहनेसे प्राप्त नियोगके प्रयोजनको मानते हुये स्त्रियोंमें दूसरे पुत्रका उत्पन्न करना धर्मसे मानतेहैं ॥ ६१ ॥ विधवा आदिमें नियोगका प्रयोजन गर्भाधान शास्त्रकी रीतिसे संपन्न होनेपर जेठा भाई और छोटे भाईकी स्त्री आपसमें गुरुके समान और पुत्रवधूके समान व्यवहार करै ॥ ६२ ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः॥ तर्बुभौ पति तौ  
स्यौतां स्नुषागगुरुतल्पगौ॥ ६३ ॥ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्त  
व्या द्विजातिभिः॥ अन्यस्मिन्हं नियुञ्जाना धर्म हन्युः सनातनम् ॥

टीका-आपसकी भार्याओंमें नियुक्त जेठ और छोटे भाई दोनों घृत आदिके विधानको छोडि जो अपनी इच्छासे वर्ते तौ स्नुषागामी और गुरुदारगामी दोनों पतित होजाय ॥ ६३ ॥ इस भांति नियोग कहिके दूषण देनेको कहते हैं ब्राह्मण आदिकों करि विधवा स्त्री भर्तासे अन्य देवर आदिमें नहीं नियोग करने योग्यहै जिसे स्त्रीको अन्यमें नियोग कराते हुए वे स्त्रियोंका अनादिसिद्ध एक पतिभावके धर्मको नाश करतेहैं ॥ ६४ ॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥ न विवाहविधावु-  
क्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो  
विगर्हितः ॥ मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेनं राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥

टीका-"अर्यमणनुदेवं" इत्यादिक विवाहके मंत्रोंमें किसी शास्त्रामें नियोग नहीं कहाहै और न कहीं विवाहके विधान करनेवाले शास्त्रोंमें दूसरे पुरुषके साथ विवाह कहाहै ॥ ६५ ॥ जिससे यह पशुसंबंधी मनुष्योंकामी व्यवहार विद्वानों करि निंदितहै जो

यह अधर्मी वेननामराजाके राज्यके समय करनेयोग्य कहा गया इंसी वेनसे लगाकर प्रवृत्त यह नियोग आदि मानहै इसलिये निंदा किया जाताहै ॥ ६६ ॥

स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा ॥ वर्णानां संकरं चक्रे  
कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥ ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां  
स्त्रियम् ॥ नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

टीका—वह वेन पहले समयमें संपूर्ण पृथ्वीका पालन करता भया इसीसे राजर्षि-  
योंमें श्रेष्ठहै धर्मात्मापनसे नहीं, कामसे उपहत कहिये नष्टहै बुद्धि जिसकी ऐसे वेनने इस  
प्रकारसे भार्यामें गमन करनारूप वर्णसंकर चलाया ॥ ६७ ॥ वेनके समयसे लगाकै जो  
जिसका पति मरिगयाहै ऐसे स्त्रीमें शास्त्रका अर्थ न जान संतानके लिये देवर  
आदिमें नियुक्त करताहै सज्जन उसकी निश्चय करि निंदा करतेहैं यह तो अपना  
कहा हुआ नियोगका निषेध कलियुगके लियेहै ॥ ६८ ॥

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥ तामनेन विधा-  
नेन निर्जो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥ यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां  
शुचिव्रताम् ॥ मिथो भजेताप्रसवात्सकृतसकृद्वृतावृतौ ॥ ७० ॥

टीका—नियोगके प्रकरणसे कन्यागत विशेष कहतेहैं ॥ जिस कन्याका वाणीसे दान  
करनेपर भर्ता मरिजाय उसको इस आगे कहे हुए विधानसे भर्ताका सगा भाई व्याहि  
लैवै ॥ ६९ ॥ वह देवर विवाहकी विधिसे इसको अंगीकार करि श्वेतवस्त्रोंको धारण  
करनेवाली और काय तथा मनकी शुद्धतासे शोभायमान उस स्त्रीमें गर्भधारण होनेतक  
एकांतमें ऋतुऋतुमें एकवार गमन करै ऐसे कन्याके नियोग प्रकारसे और विवाहके न  
ग्रहण करनेसे गमनके उपदेशसे जिसके लिये वाग्दत्ता उसीकी वह संतति होताहै ॥ ७० ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्द्विचक्षणः ॥ दत्त्वा पुनः प्रयच्छ-  
न्निर्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥ विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां  
विगर्हिताम् ॥ व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥

टीका—किसीके लिये वाणीसे कन्याको देकर उसके मरनेपर दानके गुणदोषका  
जाननेवाला पुरुष उसको दूसरेके लिये दान न करै जिससे एकके लिये देकर दूसरेको  
देता हुआ पुरुष अनृत दोषको प्राप्त होताहै सप्तपदीकरणके अर्थात् सात्मावरोके न  
होनेसे भार्यापनके सिद्ध न होनेके कारणसे फिर दानकी शंका होनेपर यह वचन  
कहाहै ॥ ७१ ॥ “अद्विरेव द्विजाग्रयाणां” इत्यादि विधिसे ग्रहण करिकैभी वैधव्यआदि

युक्त रोगिणी और जिसकी योनिके क्षत होनेका दोष लगाहै और जो अधिक तथा हीन अंगोंको छुपाकै व्याही गई ऐसी और भावरै पडनेसे पहले जानीगई कन्याको त्याग करै उसके त्यागनेमें दोष नहीं है इस लिये यह कहाहै त्यागके लिये नहीं ॥७२॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोर्पपादयेत् ॥ तस्य ताद्वितीयं कु-  
र्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥७३॥ विधाय वृत्तिं भार्यायां प्रवसेत्का-  
र्यवान्नरः ॥ अवृत्तिकर्पिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥

टीका-जो दोषयुक्त कन्याके दोषोंके विना कहे दान करताहै उस दुरात्मा कन्या देनेवालेके दानको लौटा देनेसे व्यर्थ करै यहभी त्यागमें दोष न होनेके लिये कहाहै ॥७३॥ काम पडनेपर मनुष्य पत्नीके अन्न वस्त्रका प्रबंध करि दूसरे देशको जाय क्योंकि भोजनादिक न होनेसे पीडित शीलवालीभी स्त्री दूसरे पुरुषके मेलको प्राप्त होजायगी ॥७४॥

विधायं प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ॥ प्रोषिते त्वविधायै-  
व जीवेच्छलपैरगर्हितैः ॥७५॥ प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽ-  
ष्टौनरः समाः ॥ विद्यार्थं षड् यंशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वर्त्सरात् ७६

टीका-भोजन वस्त्र आदि देकर पतिके परदेश जानेपर देहका अलंकार करने तथा पराये घरमें जानेसे रहित हो जीवै और भोजन वस्त्र न देकर जानेपर सूतके कातने आदि अनिदित कामोंसे जीविका करै ॥ ७५ ॥ गुरुकी आज्ञाके करने आदि धर्मकार्यके लिये परदेशमें गया पति पत्नीको आठवर्षतक राह देखनेयोग्यहै तिसके उपरांत पतिके समीप जाय साई वसिष्ठने कहाहै कि, परदेशीकी स्त्री आठ वर्षतक स्थित रहै उपरांत पतिके पास जाय और विद्याके लिये परदेशमें गया हुआ पति छः वर्षतक राह देखनेयोग्यहै और अपनी विद्या आदिसे यशके लिये परदेशमें गया हुआभी छःवर्ष और दूसरे भार्यासे भोग आदि करनेके लिये गया हुआ तीनवर्षतक राह देखने योग्यहै ॥ ७६ ॥

सर्वत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरात्पेनां  
दायं हृत्वा न संवसेत् ॥७७॥ अतिक्रामेत्प्रमत्तं यां मत्तं रोगात्तमे-  
व वा ॥ सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥७८॥

टीका-पतिसे द्वेष करती हुई स्त्रीको एकवर्ष तक देखै तिसके उपरांतभी द्वेष माननेवालीको अपने दिये हुए अलंकार आदि धनको लेकर उससे गमन न करै भोजन वस्त्र तौ देना होगा ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जुआ आदि प्रमादवालेको अथवा

मद् उत्पन्न करनेवाले वस्तुके पीने आदिसे मतवारेको अथवा सेवा आदि न करनेसे जो तिरस्कार करै उसके अलंकार शय्या आदि लेकर तीन महीनेतक गमन न करै ॥७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ॥ नं त्यागोऽस्ति द्विष-  
न्त्याश्च न च दार्यापवर्तनम् ॥७९ ॥ मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूल-  
ला च या भवेत् ॥ व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थं प्री च सर्वदा ८०

टीका—उन्मत्त कहिये वात आदि दोषके क्षोभसे जो प्रकृतिमें नहीं स्थितकी और पतितकी और ग्यारहें अध्यायमें जो कहा जायगा ऐसे नपुंसककी और बीजरहितकी और कोठ आदि पापयोग करि युक्त पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्रीका त्याग नहीं है और उसका धनभी नहीं लेना चाहिये ॥७९॥ निषिद्ध मद्यपान करनेवाली और निषिद्ध आचारवाली और पतिसे प्रतिकूल चलनेवाली और कुष्ठ आदि रोग करि युक्त और भृत्य आदिकी ताडना करनेवाली और सदा बहुत खर्च करनेवाली जो स्त्री होय तौ उसके रहनेपरभी दूसरा विवाह करना चाहिये ॥ ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधि वेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकदशे स्त्रीजननी  
सद्यस्त्विप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥ या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव  
शीलतः ॥ सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नवमान्या चैर्हिचित् ॥ ८२ ॥

टीका—पहले ऋतुधर्मसे लगकै जिसके आठ वर्षतक संतति न होय तौ आठमें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और जिसके संतान मरजाते होय उसके रहित दशमें वर्ष और स्त्रीसंततिवालीके ग्यारहें वर्ष और अप्रिय बोलनेवालीके तौ शीघ्रही अन्य विवाह करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगिणी होनेपरभी पतिके अनुकूल होय और शीलवाली होय उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करना चाहिये कभी यह अपमान करनेयोग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्दुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सन्निरो-  
द्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥ ८३ ॥ प्रतिषिद्धापि चैद्यां तु मद्य-  
मभ्युदयेष्वपि ॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वासादण्ड्याकृष्णलांनिषट् ८४

टीका—जो स्त्री दूसरा विवाह करनेपर कुपित होय घरसे निकलै वह उसी दिन रस्सी आदिसे बांधकर राखने योग्यहै और कोप दूर होनेतक पिता आदिके समीप छोडनेयोग्यहै ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रिय आदिकी स्त्री भर्ता आदिके मने करनेपरभी विवाह



आदि उत्सवोंमें भी निषिद्ध मद्यको पीवै अथवा नाच आदिमें स्थित जनोंके समूहमें जाय वह छः रत्नी सुवर्ण व्यवहारके प्रकरणसे राजाको दंड करने योग्य है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाँश्चोपरोश्चैव विन्देरन्योपितो द्विजाः ॥ तांसां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वैश्वं च ॥ ८५ ॥ भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकर्म ॥ स्वाँ चैव कुर्यात्सर्वेषां नीस्वजातिः कथंचन ॥ ८६ ॥

टीका-जो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी जातिकी तथा दूसरी जातिकी स्त्रियोंको व्याहै तो उनका द्विजातिके क्रमसे वाणीका सत्कार और दायवि भागकी उत्कर्षताके लिये वस्त्र अलंकार आदिसे देनेसे जेठेपनकी पूजा घरभी प्रधान होय अर्थात् सबसे ब्राह्मणीकी अधिक होय उससे कम क्षत्रियाकी उससे कम वैश्याकी यही क्रम सब वर्णोंमें जानिये ॥ ८५ ॥ भर्ताके देहकी परिचर्या कहिये रहल और अन्न देना आदि धर्मका काम तथा भिक्षाका देना अभ्यागतोंको परोसना और होमकी द्रव्योंका देना आदि प्रतिदिनका कर्म द्विजातियोंके सजातिहीकी स्त्री करै दूसरी जातिकी कभी न करै ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया ॥ यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सं ॥ ८७ ॥ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सद्दशाय च ॥ अप्राप्तमपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

टीका-जो अपनी जातिकी स्त्रीके निकट होनेपर देहकी सेवा आदि कर्मोंको अन्य जातिकी स्त्रीसे मूर्खताके कारण कराताहै वह जैसे ब्राह्मणोंमें शूद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल होता है वैसेही पूर्व ऋषियों करि देखा गया है ॥ ८७ ॥ कुल तथा आचार आदिसे उत्कृष्ट और सुंदर रूपयुक्त और समान जातिके वरको विवाह समयकं अयोग्यभी आठवर्षकी कन्या व्याहि देवै इस प्रकारसे धर्म नहीं हीन होताहै इस कालसे पहलेभी कन्याको ब्राह्मणविवाहकी विधिसे देवै ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्देहे कन्यतुर्मृत्युर्पि ॥ नैचैव नां प्रयच्छेत्तुं गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तुं कार्त्तदेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

टीका-उत्पन्नहै ऋतुधर्म जिसके ऐसी कन्या मरणपर्यंत पिताके घरमें रहै सो अच्छा परंतु विद्या और गुणों करि रहितको पिता आदि कभी न देवै ॥ ८९ ॥ पिता आदि करि गुणवान् वरको नहीं दी गई कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्ष राह देखै फिरि तीन वर्षके उपरांत अधिक गुणयुक्त वर न मिलनेपर समान जातिगुणवाले वरको आप वरै ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥ नैनः किञ्चिदपामो  
ति न च यं साधिगच्छति ॥ ९१ ॥ अलंकारं नाददीतं पित्र्यं  
कन्या स्वयंवरा ॥ मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥ ९२ ॥

टीका—पिता आदि करि नहीं दी गई कुमारी जो कहे हुए विवाहके कालमें भर्ताको  
आपही वरै तो वह कुछभी पापको नहीं प्राप्त होतीहै और न उसका पति पापको प्राप्त  
होताहै ॥ ९१ ॥ आप पतिको वरनेवाली कन्या वरके अंगीकार करनेके पहले पिता माता  
तथा भाईके हुये दिये अलंकार उन्हीको दे दे और जो न दे तौ चोर होय ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतमतीं हरन् ॥ स हि स्वाम्या  
दतिक्रामेहृत्नां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥ त्रिंशद्द्वेषोद्विहेत्कन्यां हृद्यां  
द्वादशवर्षीकाम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षी वा धर्मं सीदति संत्वरः ॥ ९४ ॥

टीका—ऋतुमती कन्याका व्याहनेवाला पिताको कन्याका मूल्य न देबै कारण यह  
है कि, पिता ऋतुका कार्य संततिके रोकनेसे कन्याके स्वामीपनसे हीन होजाताहै  
॥ ९३ ॥ तीस वर्षका पुरुष वारह वर्षकी मनोहर कन्याके साथ व्याह करै अथवा  
चौबीस वर्षका आठ वर्षकीको व्याहै और शीघ्रता करनेवाला गृहस्थ धर्ममें दुःख  
पाताहै यह योग्यकाल दिखानेके लिये कहाहै कुछ नियमके लिये नहीं ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिभार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ॥ तां सार्धं विभृया  
त्रित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥ प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संता-  
नार्थं च मानवाः ॥ तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ९६ ॥

टीका—“भगोऽर्यमासवितापुरंधिर्महंत्वाद्गर्हापत्यायदेवाः” इत्यादि मंत्रके सूचित  
करनेसे जो देवताओं करि दिई भार्याहै उसको पति प्राप्त होताहै अपनी इच्छासे  
नहीं उस पतिव्रताको देवताओंके प्रिय करता हुआ द्वेषयुक्त होनेपरभी भोजन  
वस्त्र आदिसे सदा पालन करने योग्यहै ॥ ९५ ॥ जिससे गर्भग्रहण करनेके लिये  
स्त्री उत्पन्न की गई है और गर्भ आधान करनेके लिये मनुष्य तिससे गर्भ उत्पन्न  
करनेके समान इन दोनोंका अग्निका आधान आदिभी धर्मपत्नीके साथ साधारण  
कहा है “क्षौमेवसानावग्नीनादधीयातां” इत्यादि वेदमें विहित है तिससे “भार्या  
विभृयात्” पहले कहे हुएका शेषहै ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां प्रियते यदि शुल्कदः ॥ देवराय प्रदातव्या  
यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥ आददीतन शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं

ददत् ॥ शुल्कं हि गृह्णन्कुर्वते छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

टीका-कन्याका शुल्क तौ दे दिया होय परन्तु विवाह न हुआ होय उस समय शुल्क देनेवाला वर मरजाय तौ पिता आदि करि यह कन्या देवरको देने योग्यहै जो वह स्त्री अंगीकार करै तौ ॥ ९७ ॥ शास्त्रका न जाननेवाला गृह्णी कन्याको देता हुआ शुल्कको न लेवै फिरि शास्त्र पढे हुए द्विजातिका तौ क्या कहना है जिससे शुल्कको लेता हुआ मनुष्य गुप्त कन्याका विक्रय करता है ॥ ९८ ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ॥ यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीर्यते ॥ ९९ ॥ नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ॥ शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

टीका-इसको पहले शिष्ट लोगोंने कभी नहीं किया न और वर्त्तमान कालके करते हैं जो औरको कन्या देना अंगीकार करिकै फिरि औरको देवै यह जिसका शुल्क ले लिया है उस कन्याके मध्ये कहा है ॥ ९९ ॥ पहले कल्पोंमेभी यह हुआ यह हमने कभी नहीं सुना है कि, जो शुल्कनाम मोलसे किसी सज्जनमें गुप्त कन्याका विक्रय किया होय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ॥ एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १ ॥ तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ॥ यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ २ ॥

टीका-भार्या और पतिके मरनेतक धर्म अर्थ और काममें परस्पर व्यभिचार न होय यह संक्षेपसे स्त्री पुरुषका उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये ॥ १ ॥ जिन्होंने विवाह किया है ऐसे स्त्रीपुरुष सदा ऐसा यत्न करै जैसे धर्म अर्थ और काममें परस्पर वियुक्त होनेपरभी व्यभिचारयुक्त न होय ॥ २ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ॥ आपद्यपत्यं प्राप्तिश्च दायं भागं निबोधत ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः संस्रम् ॥ भजेरन्यैतृकं रिक्थमनीशांस्ते हि जीवतोः ॥ ४ ॥

टीका-भार्या और पतिका परस्पर अनुरागयुक्त यह धर्म तुमसे कहा और संतानके न होनेमें संततिकी प्राप्ति कही अब दाय जो पिता आदिका धन है उसके विभागकी व्यवस्था सुनिये ॥ ३ ॥ भाई मिलिकै पिताके मरनेके उपरांत पिता के धन-

को और माताके मरनेके पीछे माताके धनको बराबर करके बाँटि लैवै और माता पिताके जीवते हुए उनके धनके स्वामी नहीं होतेहैं ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ एवं तुं गृह्णीयात्पितृभ्यं धनमशेषतः ॥ शेषास्तंमुपैजीवे-  
युर्यं तैव पितरं तथा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भव-  
ति मानवः ॥ पितृणामनृणश्चैवं सं तस्मात्सर्वमहति ॥ ६ ॥

टीका—जो ज्येष्ठ धर्मात्मा होय तौ पिताके संपूर्ण धनको वही लैवै और छोटे उससे पिताके समान भोजन वस्त्र पावै और ऐसे सब साथही रहै ॥ ५ ॥ उत्पन्न हो नेहीसे संस्कारराहित भी जेठे पुत्रसे मनुष्य पुत्रवान् होताहै और पितरोंके ऋणसे छूटि जाताहै इससे ज्येष्ठही सब धनके योग्यहै यह पहलेका शेषहै ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥ स एवं धर्मजःपुत्रःकौ-  
मजानितरान्विदुः ॥७॥ पितेव पालयेत्पुत्राज्येष्ठो भ्रातृन्यवी-  
र्यसः ॥ पुत्रवच्चापि वैतरज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके उत्पन्न होनेपर ऋणका शोधन और जिसके उत्पन्न होनेसे अमृत-  
त्वको प्राप्त होताहै वही पिताका धर्मके कारणसे उत्पन्न पुत्र होताहै और औरोंको तौ काममात्रके कारणसे उत्पन्न मुनीश्वर जानतेहैं तिससे वही सब धनको ग्रहण करै ॥ ७ ॥ विभाग न होनेसे जेठा भाई छोटे भाईयोंको भोजन वस्त्र आदिसे पिताके समान पालन करै और छोटे भाई पुत्रोंके समान जेठे भाईमे धर्मसे वतै ॥ ८ ॥

ज्येष्ठःकुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥ ज्येष्ठः पूज्यतमोलो  
के ज्येष्ठःसद्भिरगर्हितः ॥९॥ यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिःस्यान्मातेव सं  
पिते व संः॥अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्सं संपूज्यस्तुवंधुवत् ॥११०॥

टीका—जिसका विभाग नहीं हुआहै ऐसा जेठा जो धर्मात्मा होय तौ छोटे भी उसके अनुगामी होनेसे धार्मिक होनेके कारण जेठा कुलको बढाताहै और जो अधर्मी होय तौ छोठोंकोभी उसके अनुगामी होनेके कारणसे जेठा कुलका नाश कर देताहै लोकमें गुणवान् ज्येष्ठ अतिपूज्यहै ॥ ९ ॥ जो जेठा छोटे भाई-  
योंमें पिताके समान वर्त्तताहै वह पिताके समान और माताके समान अनिध होता है और जो ऐसे नहीं वर्त्तताहै वह मामा आदि वंधुओंके समान पूजने योग्यहै ॥११०॥

एवं सह वैसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया॥पृथग्विबर्धते धर्मस्तस्मा-

द्वैभ्यां पृथोक्क्रिया ॥११॥ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्द-  
रम् ॥ ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे विना बँटे हुए भाई एकसाथ रहें अथवा धर्मकी कामनासे जुदे जुदे पंचयज्ञ करनेसे उनका धर्म बढ़ता है तिससे विभाग (वाट) करना धर्महीके लिये है ॥ ११ ॥ साझेके साधारण धनसे बीसवां भाग निकालकर जेठको देवें और घरकी सब वस्तुओंमें जो उत्तम होय वहभी जेठको देवें और मध्यम कहिये मझोलोंको चालीसवां भाग दे और छोटेको अस्सीमा भाग देकर सब बराबर बाँटि लें ॥ १२ ॥

ज्येष्ठश्चैवै कानिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥ येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठा-  
भ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ १३ ॥ सर्वेषां धनजातानामादंदिता-  
श्रमप्रजः ॥ यच्च सातिशयं किञ्चिदशतं श्रापुयादरम् ॥ १४ ॥

टीका—जेठा तथा छोटा पहले श्लोकमें कहे हुए । २०।४०।८०।भागोंको लेंवै और जेठ तथा छोटेसे भिन्न जो मध्यमहैं उनके बीचकी छोटाई बडाईकी अपेक्षाको नहीं करिके सब मझोलोंमें प्रत्येकको कहाहुवा चालीसवां भाग देना चाहिये मझोलोंमें छोटाई बँडाईकी अपेक्षासे विभागकी विषमता दूर करनेके लिये यह कहा है ॥ १३ ॥ धनके सब प्रकारोंमेंसे तो जो श्रेष्ठ धन होय उसको ज्येष्ठ लेंवै और दश गौ आदि पशुओंमेंसे श्रेष्ठ एक ज्येष्ठ लेंवै यह वहाँके लिये है जहाँ जेठों गुणवान् होय और अन्य सब निरुणी होय ॥ १४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किञ्चिदेवं दे यं तु  
ज्यार्यसे मानवर्धनम् ॥ १५ ॥ एवं समुद्धृतोद्धारे समानं शान्प्रक-  
ल्पयेत् ॥ उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामि यं स्यादंशकल्पना ॥ १६ ॥

टीका—सब समान गुण होनेमें कहतेहैं दशमेंसे श्रेष्ठको ज्येष्ठ पावै यह जो उद्धार कहा है सो यह पढ़ने आदि कर्म करनेवाले भाइयोंमें जेठका नहीं है तिसपरभी यत्किञ्चित् पूजा बढ़ानेवाला द्रव्य जेठको देना चाहिये ऐसे बराबर गुणवालोंमें उद्धारका निषेध देखा गया है इस कारण पहलेमें गुणोंकी अधिकताकी अपेक्षासे उद्धारकी विषमता जाननी चाहिये ॥ १५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे जिसमेंसे बीसमा भाग निकाल लिया गया है ऐसे धनमेंसे सब भाइयोंके बराबर भाग करै बीसवां भाग बाँटनेमें तो फिर नहीं निकाली हुई भागकी कल्पना आगे कही हुई होती है ॥ १६ ॥

एकाधिकं हरेज्येष्ठः पुत्रोऽप्यर्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयां-

स ईति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥ स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्र-  
दद्युर्भातरः पृथक् ॥ स्वार्त्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्संवः १८

टीका—एक अधिक अंश अर्थात् दो भागोंको जेठा पुत्र ग्रहण करै और अधिक अर्द्ध अर्थात् डेढ भाग जेठेसे छोटा ग्रहण करै और छोटे फिर एक एक भाग ग्रहण करै यह धर्म व्यवस्थितहै यह ज्येष्ठ और उससे छोटेकी गुणवान् होनेकी अपेक्षासे और छोटोके निर्गुण होनेमें जानना चाहिये कारण यहहै कि, जेठका और उससे छोटोका आधिक्य देखा जाताहै ॥ १७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों भाई अपनी जातिकी अपेक्षा “स्वेभ्यश्चतुरोऽशान्हरयेयुः” विप्र इत्यादिसे आगे कहे हुए भागोंमेंसे अपने अपने भागसे चौथा भाग जुदा जुदा भाग कन्याओंके लिये और विना व्याही बहिनीको जो जिसकी सगी बहिनी होय उसीको संस्कारके लिये देवै इसभांति सब जो सगी न होय तौ दूसरी मातासे उत्पन्न जंचे नीचों करि संस्कार करनेही, योग्यहै जो बहिनोके संस्कारके लिये चौथा भाग देना न चाहै तौ पतित होय ॥ १८ ॥

अजाविकं सैकंशफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं  
ज्येष्ठस्यैवं विधीयते ॥ १९ ॥ यवीयां ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदि-  
ति ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

टीका—घोडा आदि एकशफ कहिये एक खुरके कहे जातेहैं एक शफसेमत बकरी भेड आदिके बाँटनेके समय बराबर करके बाँटे और जिसका विभाग न हो सकता होय उसको न बाँटे वह तौ जेठहीका होताहै उसकी बराबर दूसरी वस्तु देनेसे बराबरी करके अथवा बँचिके उसके मूलको न बाँटे ॥ १९ ॥ छोटा जो जेठे भाईकी स्त्रीमें नियोगसे पुत्र उत्पन्न करै तौ उस चाचाके साथ उस क्षेत्र-जका बराबरी विभाग होताहै पिताके समान उद्धारसमेत नहीं होताहै यह भागकी व्यवस्था नियतहै जो नियोगसे नहीं उत्पन्नहै उसका अनंशित्व कहिये भाग न पाना आगे कहेंगे यद्यपि “समेत्यभ्रातरस्समम्” यह कहाहै तिसपरभी इसी सूचनासे जिसका पिता मरिगयाहै ऐसे पौत्रकाभी पितामह कहिये दादेके धनमें पिताके समान विभाग है यह पाया जाताहै ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोर्पपद्यते ॥ पितां प्रधानं प्रजने तस्मा-  
द्धर्मेण तं भजेत् ॥ २१ ॥ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठार्यां कनिष्ठार्यां च  
पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ २२ ॥

टीका-जेठे भाईका क्षेत्रज पुत्रभी पिताके समान उद्धारसमेत भाग पानेके योग्यहै इस शंकाको दूरि करि पहिले कहे हुएहीको दृढ करतेहैं अथवा क्षेत्रज पुत्र प्रधान क्षेत्रवाले पिताका धर्मसे उद्धारसमेत विभागके लेनेसे संबन्धयुक्त नहीं होताहै क्षेत्रीभी पिताके क्षेत्रके द्वारा पुत्रके उत्पन्न करनेमें प्रधान होताहै तिस्से पहले कहे हुएही धर्मसे विभागकी व्यवस्थारूप चाचाके साथ उस क्षेत्रजका विभाग करे यह पहलेहीके शेषहै ॥२१॥ जो पहले व्याही हुईमें छोटा पुत्र उत्पन्न होय और पीछे व्याही हुईमें, जेठा होय तौ वहां कैसा विभाग होय यह जो संदेह होय तौ क्या माताके विवाहके क्रमसे पुत्रका जेठापन अथवा अपने जन्मके क्रमसे तव ॥ २२ ॥

एकं वर्षममुद्धारं संहरत सं पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तंदू-  
नानां स्वमातृतः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठ्यायां हरेद्वर्षभ-  
षोडशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषां भजेरन्नि ति धारणा ॥ २४ ॥

टीका-पहलीमें उत्पन्न हुआ छोटाभी एक बैल उद्धार लेवे तिस पीछे उस श्रेष्ठ बैलसे और जे अश्रेष्ठ बैल होय वे उस जेठेसे उत्पन्न पुत्रसे माताके कारण कम ऐसे छोटोंको प्रत्येक एक एक बैल होतेहैं माताके विवाहके क्रमसे जेठापन होताहै ॥२३॥ पहले व्याहीहुई स्त्रीमें जो जो उत्पन्न हुआ वह जन्मसेभी भाइयोंसे जेठा वह सोलह बैलसमेत पंद्रह गौओंको लेवे तिस पीछे जो और बहुतसी माताओंसे उत्पन्न वे पुत्र अपनी माताके व्याहके जेठेपनकी अपेक्षा बाँकी गौओंको बाँटिलेवे यह निश्चयहै ॥ २४॥

सहस्रस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ॥ न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति  
जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ २५ ॥ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्या  
स्वपि स्मृतम् ॥ यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ २६ ॥

टीका-समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंको जातिमें स्थित विशेष न होनेपर माताके क्रमसे जेठापन ऋषियों करि नहीं कहा जाताहै किंतु जन्महीके क्रमसे इसीसे छोटीसेभी उत्पन्न पहले कहा हुआही वीसमे भाग द्वाचंश आदिको ग्रहण करे ऐसे माताके जेठेपनके विहित तथा निषिद्ध होनेसे सोलहके लेने और न लेनेकाभी विकल्प हुआ वह तौ भाइयोंका गुणवान् तथा निर्गुण होनेके कारण लघुतासे व्यवस्थित हुआ ॥२५॥ स्वब्राह्मण्यनाम मंत्र, ज्योतिष्टोममें इंद्रके बुलानेके लिये पढा जाताहै वह प्रथम पुत्र करि पिताका उद्देश करिके आह्वान किया जाताहै अमुकका पिता यज्ञ करताहै ऐसा ऋषियोंने कहाहै और गर्भमें एकही साथ जिनका निषेक हुआहै ऐसे यम कहिये जोडियोंकी जन्मके क्रमसे ज्येष्ठता कही गईहै ॥ २६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवेद्-  
स्यां तन्मम स्यात्स्वर्धाकरम् ॥२७॥ अनेन तु विधानेन पुराचके-  
ऽथ पुत्रिकाः ॥ विवृद्धयर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥२८॥

टीका—जिसके पुत्र नहीं है वह जो इसमें अपत्य उत्पन्न होय सो मेरा श्राद्ध  
आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंका करनेवाला होय ऐसे कन्यादानके समयमें जमाईके साथ  
नियमरूप विधानसे कन्याको पुत्रिका करै ॥ २७ ॥ पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिसे  
जाननेवाले दक्ष प्रजापति अपना वंश बढ़ानेके लिये इस कहे हुए विधानसे सब वेदि-  
योंको पहले आप पुत्रिका करते भये ॥ २८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य  
प्रीतात्मा संसविंशतिम् ॥२९॥ यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता  
समा ॥ तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥

टीका—होनेवाले पुत्रिकापुत्रके लाभसे प्रसन्न दक्षप्रजापतिने अलंकार आदिसे  
सत्कार करिके दश पुत्रिका धर्मको दीं तेरह कश्यपको सत्ताईस द्विजोंके तथा औप-  
धियोंके राजा चंद्रमाको दीं ॥ २९ ॥ आत्माका स्थानी पुत्रहै और उसीके अंगोंसे उत्पन्न  
होनेके कारण पुत्रके समान कन्याहै इसीसे पिताके आत्मस्वरूप उस कन्याके विद्यमान  
होनेपर पुत्ररहित मरे हुए पिताका धन पुत्रिकासे भिन्न दूसरा कैसे लैवे ? ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्सुर्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौहित्रं एव च हरेत्  
दपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ ३१ ॥ दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य  
पितुर्हरेत् ॥ स एव दद्याद्दौपिण्डो पित्रे मातामहाय च ॥ ३२ ॥

टीका—माताको जो धनहै वह उसके मरनेपर कुमारीका भागहै उसमें पुत्रोंका  
भाग नहीं है कुमारी कहनेसे विना व्याही जाननी चाहिये और पुत्ररहित मरे हुए  
नानाका धन दौहित्र अर्थात् पुत्रिकाका पुत्रही सब लैवे ॥ ३१ ॥ दौहित्र अर्थात् पुत्रि-  
काका पुत्रही अन्यपुत्ररहित पिताका संपूर्ण धन लैवे और वही पिता और नानाके  
लिये दो पिंड देवे ॥ ३२ ॥

पौत्रिदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितरौ  
संभूतौ तस्य देहतः ॥३३॥ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रो-  
ऽनुजायते ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि ॥ द्वियोः ३४ ॥



टीका-पुत्र तथा दौहित्रमें लोकमें तथा धर्मके काममें कुछ विशेष नहीं है कारण यह है कि, दोनोंके माता पिता उसके देहसे उत्पन्न हैं यह पहलेही का अनुवाद है ॥ ३३ ॥ पुत्रिका करनेपर जो करनेवालेके पीछे पुत्र उत्पन्न हांय तौ उनके विभागकालमें समान विभाग होय पुत्रिकाको उद्धार न देना चाहिये जिस्से जेठी होनेपरभी उसका जेठापन उद्धारके समयमें नहीं आदर करनेयोग्य है ॥ ३४ ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभर्ता  
हरेतैवाविचारयन् ॥ ३५ ॥ अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सद-  
शात्सुतम् ॥ पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ ३६ ॥

टीका-पुत्ररहित पुत्रिकाके कैसे हू मरनेपर उसके धनको उसका पतिही विना विचारके ग्रहण करै पुत्रिकाकी पुत्रकी समतासे पुत्र तथा पत्नीरहित मृतपुत्र पिताके धन ग्रहण की प्रसक्ति होनेपर उसके निवारणके लिये यह बचन है ॥ ३५ ॥ पुत्रिका कीहुई अथवा न कीहुई समान जातिके पतिसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै उस दौहित्रकरि पौत्रका काम करनेसे मातामह पौत्री है और वह इसको पिंड देवै और उसके धनको लैवै ॥ ३६ ॥

पुत्रेण लोकांश्चयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्र-  
धस्यांप्रोति विष्टम् ॥ ३७ ॥ पुत्राभ्यो नरकाद्यस्मात्त्रयते पितरं  
सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेवं स्वयंभुवा ॥ ३८ ॥

टीका-उत्पन्न हुए पुत्रसे स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होता है और पौत्रसे बहुत कालतक उन्हींमें रहता है तिस पीछे पुत्रके पौत्रसे आदित्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ जिस्से पुंनाम नरकसे सुत पिताकी रक्षा करता है उस रक्षा करनेसे आपही ब्रह्माने पुत्र यह कहा है ॥ ३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥ दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रै न सं-  
तौरयति पौत्रवत् ॥ ३९ ॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिका-  
सुतः ॥ द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्त्वृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥

टीका-पौत्र तथा दौहित्र इन दोनोंमें लोकमें कुछ विशेष नहीं है जिस्से दौहित्र-  
भी नानाको परलोकमें पौत्रके समान निस्तार करता है ॥ ३९ ॥ पुत्रिकाका पुत्र पहले माताको पिंड दे और दूसरा माताके पिता कहिये नानाको और तीसरा माताके पिता मह अर्थात् परनानाको देवै ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दौत्रिमः ॥ सर्वं हरेतैव तद्विषयं सं-

प्राप्तोऽध्यन्यगोत्रतः ॥ ४१ ॥ गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेर्दात्रिमः क्वचित् ॥ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददंतः स्वर्धा ॥ ४२ ॥

टीका—जिसका दत्तक अर्थात् गोदलिया हुआ पुत्र सब गुणोंसे संपन्न होय और दूसरे गोत्रसे भी आया होय वह औरस कहिये निजपुत्रके होनेपर भी पिताके धनका भाग पावे ॥ ४१ ॥ दत्तक अपने पिताके गोत्र तथा धनको कभी नहीं पाताहै पिंड तौ गोत्र तथा रिक्थ हिस्सेका अनुगामी होताहै जिसके गोत्र और रिक्थको भजता है कहिये प्राप्त होता है उसीको वह पिंड देताहै तिससे पुत्र देनेवाले जनकके उस पुत्र करि करनेयोग्य स्वधा कहिये पिंड श्राद्ध आदि निवृत्त होजाते हैं ॥ ४२ ॥

अनियुक्तासुतश्चैवं पुत्रिण्यात्तश्च देवरात् ॥ उभौ तौ नार्हौ तो भी-  
गं जारजातककामजौ ॥ ४३ ॥ नियुक्तायामपि पुमान्नार्या जातोऽवि-  
धांतः ॥ नैवाहः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि संः ॥ ४४ ॥

टीका—जो गुरु आदिके नियोग विना उत्पन्नहै और जो सपुत्रामें नियोगसे भी देवर आदि करि कामसे उत्पन्न किया गयाहै वे दोनों क्रमसे जारसे कामकी इच्छासे उत्पन्नहैं धनके भागके योग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ नियुक्ताभी स्त्रीमें घृतलेप आदि नि-  
योगकी विधिके विना उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रवाले पिताका धन पानेयोग्य नहीं है जिस्से यह पतित करि उत्पन्न किया गयाहै जे नियुक्ताविधिके विना पुत्र उत्पन्न करतहैं वे पतित होतेहैं ॥ ४४ ॥

हरेत्त्रं नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥ क्षेत्रिकस्य तु तद्द्वीजं-  
धर्मतः प्रसवश्च संः ॥ ४५ ॥ धनं यो विभ्रयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव  
च ॥ सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ ४६ ॥

टीका—नियुक्तामें उत्पन्न हुआ क्षेत्रज पुत्र औरसके समान लैवै जिस्से उसका का-  
रणभूत बीज क्षेत्रके स्वामीकाहै और संतानभी धर्मसे उसीके लिये है ॥ ४५ ॥ जो-  
मरे हुए भाईके रक्षा करनेमें असमर्थ पकरि दिये हुए स्थावरजंगम धनकी रक्षा करे और उसकाभी पोषण करे वह नियोगधर्मसे उसमें भाईका पुत्र उत्पन्न करके उस अपत्यको वह धन दे देवै ॥ ४६ ॥

यां नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्भ्राज्यर्वाप्रुयात् ॥ तं कामजमरिक्थी-  
यं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ ४७ ॥ एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैक-  
योनिषु ॥ वंद्वीषु च कजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका-गुरु आदि करि आज्ञा दी गई जो स्त्री देवरसे व्यथवा अन्यसे कहिये अ-  
सर्पिडसे पुत्रको उत्पन्न करै वह पुत्र जो कामज होय तौ उस वृथा उत्पन्न हुएको  
भाग न पानेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ४७ ॥ समानजातिकी स्त्रियोंमें एक प-  
तिसे उत्पन्न पुत्रोंकी यह विभागविधि जाननीचाहिये अब नानाजातिकी बहुतसी  
स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग सुनिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तासां पुत्रेषु जातेषु  
विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥ कीनाशो गोवृषो यानमलंकार-  
श्च वैश्वं च ॥ विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधातनः ॥ १५० ॥

टीका-ब्राह्मणके क्रमसे जो ब्राह्मणी आदि चारि स्त्रियां होंय तौ उनके पुत्र उत्पन्न  
होनेपर यह आगे कही हुई विभागकी विधि मनु आदिकोंने कही है ॥ ४९ ॥ खेत  
करनेवाला बैल और घोडा आदि सवारी अंगूठी आदि गहना और घर प्रधान जि-  
तने भाग हैं उनमेंसे एक प्रधानभूत अंश ब्राह्मणीपुत्रके उद्धारके लिये देना चाहिये  
और बाकी आगे कही हुई रीतिसे बाँटि लेने चाहिये ॥ १५० ॥

त्र्यंशं दार्याद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ॥ वैश्याजः सार्धमेवांश-  
मंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५१ ॥ सर्वे वा रिक्थजातं तद्दर्शया परि-  
कल्प्य च ॥ धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥ ५२ ॥

टीका-ब्राह्मणीका पुत्र धनमेंसे तीन भाग लेवै दो क्षत्रियाका पुत्र डेढ वैश्याका  
और एक अंश शूद्राका पुत्र ऐसे जहां ब्राह्मणी और क्षत्रियाको पुत्र दोही है तहां  
पांच भाग किये हुए धनमेंसे तीन भाग ब्राह्मणीपुत्रके और दो क्षत्रियापुत्रके इसी  
रीतिसे ब्राह्मणी और वैश्या पुत्र आदिमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें यही कल्पना  
करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सब धनका प्रकार जिसमेंसे उद्धार नहीं निकल है  
उसके दशभाग करिकै विभागके धर्मका जाननेवाला धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसा विभाग  
आगे कही विधिसे करै ॥ ५२ ॥

चतुरोऽशां हरेद्विप्रस्त्रीनांशान्क्षत्रियासुतः ॥ वैश्यापुत्रो हरेद्वयं-  
शमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५३ ॥ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यस-  
त्पुत्रोऽपि वा भवेत् ॥ नाधिकं दशमाहर्द्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ५४

टीका-चारि भाग ब्राह्मण लेवै तीन भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो वैश्याका  
पुत्र और एक शूद्रासे उत्पन्न ऐसे ब्राह्मणी और क्षत्रियाके पुत्र होनेपर धनके सात

भाग करिकै उनमें ये चारि भाग ब्राह्मणके तीनि क्षत्रियापुत्रके ऐसेही ब्राह्मणी वैश्यापुत्र आदिकोंमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें कल्पना करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मण के द्विजातिकी सब स्त्रियोंमें पुत्र होय अथवा न होय तिसपरभी शूद्रापुत्रके लिये अनंतर जो अधिकारी होय वह दशमभागसे अधिक धर्मसे न देवै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिविथभाक् ॥ यदेवांस्यं पिता  
देव्यात्तदेवांस्यं धनं भवेत् ॥ ५५ ॥ समवर्णासु ये जाताःसर्वे पुत्रा  
द्विजन्मनाम् ॥ उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरत्रितरे समम् ॥ ५६ ॥

टीका—शूद्रका पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्याके धनका पानेवाला नहीं होताहै किंतु जो धन इसको पिता देवै वही उसका होताहै ॥ ५५ ॥ द्विजातियोंके समानजाति-की स्त्रियोंमें जे पुत्र उत्पन्नहैं वे सब जेठेको उद्धार देकर बाकीके बराबरि विभाग करिकै जेठेके साथ और सब बाँटि लेंवै ॥ ५६ ॥

शूद्रस्य तु सर्वैर्वे नान्यां भार्या विधीयते ॥ तस्यां जाताःसमांशाः  
स्युर्यदि पुत्रंशतं भवेत् ॥ ५७ ॥ पुत्रान् द्वादश यांनाह नृणां  
स्वायम्भुवो मनुः ॥ तेषां षड् वन्धुदायादाः षड्दायाद्वान्धवाः ५८ ॥

टीका—शूद्रके समानजातीही स्त्री कही गईहै ऊँची नीची नहीं उससे उत्पन्न हुए जो सौभी पुत्र होंय तौ उनका बराबरीही भाग होय किसीको उद्धार न देना चाहिये ॥ ५७ ॥ जिन द्वादश पुत्रोंको स्वायम्भुवमनुने कहाहै उनमेंसे पहिले छः बांधव और गोत्रदायादभी हैं तिससे बांधव होनेके कारण सपिंड तथा समानोदकोंका पिंड तथा जलदान आदि करतेहैं और समीपी न होनेसे गोत्रका भाग लेतेहैं और पिछले ६ गोत्र तथा धनके लेनेवाले नहीं होतेहैं और बांधव तौ होतेहैं तिससे वंधुकार्य जलदान आदि करतेहैं ॥ ५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तःकृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च  
दायादा वान्धवाश्च षट् ॥ ५९ ॥ कानीनश्च सहोढश्च क्रीतःपौन-  
र्भवस्तथा ॥ स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षड्दायाद्वान्धवाः ॥ १६० ॥

टीका—औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ और अपविद्ध ६ ये भाग पानेवाले और बांधव होतेहैं ॥ ५९ ॥ कानीन १ सहोढ २ क्रीत ३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ और शौद्र ६ ये छःगोत्र तथा धनके पानेवाले नहीं होतेहैं और बांधव तौ होतेहैं ॥ १६० ॥

याँदृशं फलमाप्नोति कुंपुत्रैःसंतंरञ्जलम् ॥ ताँदृशं फलमाप्नोति  
कुंपुत्रैःसंतंरस्तमः ॥ ६१ ॥ यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ  
सुतौ ॥ यंस्य यत्पैतृकं रिक्थं सं तद्भूत नेतै रैः ॥ ६२ ॥

टीका-औरसके साथ क्षेत्रज आदि पढ़ेहैं इस्से तुल्यताकी शंका होनेपर उसके दूर करनेके लिये कहतेहैं ॥ फूस आदि वृणोंसे बनी हुई बुरी उड्डप आदि एक भातिकी नावसे जलको उतरता हुआ जिस भातिके फलको पाताहै वैसीही क्षेत्रज आदि कुपुत्रोंसे परलोकमें कठिनतासे पार होने योग्य दुःखको :पाताहै इस्से यह दिखाया गया कि, मुख्य औरस पुत्रके समान क्षेत्रज आदि पुत्रोंकी संपूर्ण कार्य करनेमें योग्यता नहीं होतीहै ॥ ६१ ॥ पुत्ररहित करि परायें क्षेत्रमें नियोगसे उत्पन्न किया हुआ पुत्र “उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचधर्मतः” अर्थात् यह दोनोंको धर्मसे भाग लेनेवाला और पिंड देनेवालाहै इस याज्ञवल्क्यके वचनके मध्ये जब क्षेत्रिक पिताके क्षेत्रजके पीछे और पुत्र होय तब वे औरस और क्षेत्रज यद्यपि एक पिताके रिक्थके योग्य होय तिसपरभी जो जिसके पिताको, धन होय उसीको वह लेवै क्षेत्रज क्षेत्रवाले पिताका नहीं पावै ॥ ६२ ॥

एकै एवौरसःपुत्रैःपिंयस्य वसुनःप्रभुः ॥ शेषाणामानृशंस्यार्थं  
प्रदद्यात्तुं प्रजीवनम् ॥ ६३ ॥ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यां शं प्रदद्यात्पैतृका-  
र्द्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पिंयं पञ्चममे वै वां ॥ ६४ ॥

टीका-पहले रोग आदिसे औरसपुत्रके न होनेमें क्षेत्रज आदि पुत्रोंके करलेनेपर पीछे औषध आदिसे रोग निवृत्त होनेसे जो औरस उत्पन्न होय तिसपर यह कहतेहैं कि औरसही एक पुत्र पिताके धनका स्वामीहै और क्षेत्रजको छौडिकै जो बाकी रहे उनको भोजन वस्त्र देवै ॥ ६३ ॥ पिताके धनका विभाग करता हुआ औरस पुत्र क्षेत्रजको उसका छठा अथवा पांचमां भाग देवै निर्गुण सगुणकी अपेक्षासे यह छः पांचका विकल्पहै ॥ ६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ॥ दर्शापरे तुं कर्मशो  
गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तुं स्वयमुत्पां-  
दयेद्धि धम् ॥ तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ ६६ ॥

टीका-औरस तथा क्षेत्रज पुत्र कहेहुए प्रकारसे पिताका धन लेनेदाले होतेहैं और फिरि दत्तक आदि दश पुत्र गोत्रभागी होतेहैं और “पूर्वाभावेपरः” इस क्रमसे धनकेभी भाग पानेवाले होतेहैं ॥ ६५ ॥ कन्याकी अवस्थामें जिसके विवाह

संस्कार हुआ है ऐसी अपनी स्त्रीमें जिसको आप उत्पन्न करै उस पुत्रको औरस मुख्य जानै सजातीय स्त्रीमें आप उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस जानना चाहिये ॥ ६६ ॥

यस्तर्लपजः प्रेमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ॥ स्वधर्मेण नियु-  
क्तायां सं पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥ ६७ ॥ माता पिता वा दद्यातां यम-  
द्विः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं सं ज्ञे यो दत्रिमः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—जो मरे हुएकी अथवा नपुंसककी अथवा संतति रोकनेवाले रोग करि युक्तकी भार्यामें घृत लगाने आदि नियोगके धर्मसे गुरु करि नियुक्तम उत्पन्न हुए पुत्रको मनु आदि क्षेत्रज कहतेहैं ॥ ६७ ॥ माता तथा पिता आपसकी संमतिसे लंनेवालके समान जिसको जिस पुत्रको उसीकी पुत्र न होनेरूप आपत्तिमें भय आदिके विना प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करिक देवै वह दत्रिम पुत्र जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥ पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं सं वि-  
ज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ ६९ ॥ उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञार्येत कस्य  
सः ॥ सं गृहे गूढं उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तर्लपजः ॥ १७० ॥

टीका—माता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जाननेवाले और माता पिताकी सेवा आदि पुत्रके गुणों करि युक्त जिस समानजातिके पुत्रको पुत्र करतेहैं उसको कृत्रिम पुत्र जानिये ॥ ६९ ॥ जिसके घरमें स्थित भार्यासे जो पुत्र उत्पन्न होय वह सजातिकाहै यह ज्ञान होनेपरभी किस पुरुषसे यह उत्पन्नहै यह न जाना जाय तौ वह घरमें गुप्त उत्पन्न हुआ उसका पुत्र होताहै जिसकी भार्यामें उत्पन्न होय ॥ १७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ॥ यं पुत्रं परिगृह्णीयाद-  
पविद्धः सं उच्यते ॥ ७१ ॥ पितृवेद्मनि कन्या तु यं पुत्रं जन-  
येद्ब्रह्मः ॥ तं कानीनं वेदेनाम्ना बोद्धुः कन्यासमुद्भवम् ॥ ७२ ॥

टीका—माता पिता करि त्यागकिया गया होय अथवा उनमेंसे एकके मरनेपर अथवा अन्य करि त्याग किये हुए पुत्रको जो अंगीकार करता है उसका वह अपवि-  
द्धनाम पुत्र कहा जाता है ॥ ७१ ॥ पिताकेघर कन्या जिस पुत्रको छिपाहुआ उत्पन्न करै उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको नामसे कानीन कहें ॥ ७२ ॥

यां गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा संती ॥ बोद्धुः सं गर्भो भे-  
वतिसहोदरैति चोच्यते ॥ ७३ ॥ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो-

यर्मन्ति कात् ॥ सर्वाः क्रीतकः सुतस्तस्य संदशोऽसदृशोऽपि वा ॥ ७४ ॥

टीका-जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा अथवा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उत्पन्न हुआ वह गर्भ व्याहनेवालेका पुत्र होता है और सहीद कहा जाता है ॥ ७३ ॥ जो पुत्रके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोल लेवै वह क्रीतक उसका पुत्र होता है मोल लेनेवालेके गुणोंके समान होय अथवा हीन होय वहां जातिसे समानता असमानता नहीं है "सजातीयेष्वयंप्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः" अर्थात् समान जातिके पुत्रोंमें मैंने यह विधि कही है यह याज्ञवल्क्यने सबही पुत्रोंको सजातीय कहा है तिससे मानवशास्त्रमें भी क्रीतके सिवाय सब पुत्र सजातीय जानने चाहिये ॥ ७४ ॥

यां पत्या वा पौरित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुन-  
भूत्वां स पौनर्भव उच्यते ॥ ७५ ॥ सा चेदक्षतयोनिः स्याद्भूतप्रत्या-  
गतापि वा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमैर्हति ॥ ७६ ॥

टीका-भर्ता करि छोडी गई अथवा जिसका भर्ता मरगया ऐसी जो स्त्री दूसरेकी फिरि भार्या होकर जिस पुत्रका उत्पन्न करै वह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र होता है ॥ ७५ ॥ जो अक्षतयोनि वह स्त्री दूसरेका आश्रय लेतौ उस पौनर्भव भर्ताके साथ फिरि विवाहनाम संस्कारके योग्य है अथवा कौमार पतिको छोडि औरका आश्रय लेकर फिर उसीके पास लौटकर आवै तौ उस कुमारभर्ताके साथ फिरि विवाह नाम संस्कारके योग्य है ॥ ७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥ आत्मानं स्पर्श-  
येद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु सं स्मृतः ॥ ७७ ॥ यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कौ-  
मादुत्पादयेत्सुतम् ॥ सर्वायन्नेवं शैवस्तस्मात्पौरिशवः स्मृतः ७८ ॥

टीका-जिसके माता पिता मर गये होंय वह अथवा छोडनेके योग्य कारणके विना द्वेष आदिसे उनकरि छोडा गया जिसको अपना आत्मा देता है वह उसका स्वयंदत्तनाम पुत्र मनुआदिकोंने कहा है ॥ ७७ ॥ "विनास्वेषविधिः स्मृतः" अर्थात् विवाहिताओंमें यह विधि कही है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे व्याहीही हुई शूद्रमें ब्राह्मण कामसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह जीवते इएही मरेके समान है यद्यपि यह पिताके उपकारके लिये श्राद्ध आदि करता है तिसपरभी संपूर्णका उपकारक न होनेके कारण मरेके तुल्य कहा है ॥ ७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञातो हरे-

दंशमि<sup>३</sup>ति धर्मो<sup>३</sup> व्यर्वा<sup>३</sup>स्थितः ॥ ७९ ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकां-  
दशयथोदितान् ॥ पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ ८० ॥

टीका—ध्वजाहतादिक कहेहैं लक्षण जिसके ऐसी दासीमें अथवा दासकी दासीमें जो शूद्रका पुत्र होताहै वह पिताकी आज्ञासे व्याहीदुईके पुत्रोंकी बराबर भाग पानेवाला होताहै अर्थात् तुल्यभाग पाताहै यह शास्त्रकी व्यवस्थाहै ॥ ७९ ॥ इन क्षेत्रज आदि उक्त ग्यारह पुत्रोंको पुत्रके उत्पन्न करनेकी विधिका और औरस पुत्र-  
करि करनेयोग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय इस लिये मुनियोंने पुत्रके प्रतिनिधि  
काहिये स्थानी कहेहैं ॥ १८० ॥

यं एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यवीजजाः ॥ यस्मै ते वीजतो  
जातास्तस्य ते<sup>३</sup> नैतरस्मै तु ॥ ८१ ॥ भ्रातृणामेकजातानामेकश्रे-  
त्पुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरर्षवीत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो ये क्षेत्रज आदि अन्यके वीजसे उत्पन्न पुत्र औरस पुत्रके प्रसंगसे कहे वे  
जिसके वीजसे उत्पन्नहैं उसीके पुत्र होतेहैं क्षेत्रवालेके नहीं औरस पुत्रके होनेपर तथा  
पुत्रिकाके होनेपर वे न करने चाहिये इसलिये यह कहाहै ॥ ८१ ॥ एक माता  
पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंमें जो एक पुत्रवाला होय और अन्य पुत्ररहित होंय तौ  
उस एक पुत्रसे सब भाइयोंको मनु पुत्रसहित कहतेहैं तिस पीछे तौ उसके होनेपर  
और पुत्रप्रतिनिधि न करने चाहिये वही पिंडका देनेवाला और भाग लेनेवाला  
होताहै इससे यह कहा गया ॥ ८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेकां चत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण  
ग्रौह पुत्रवतीमनुः ॥ ८३ ॥ श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान्निर्वथ-  
मर्हति ॥ बहवश्चेत्तु संदशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ ८४ ॥

टीका—एकहै पति जिनका ऐसी सब स्त्रियोंमें जो एक पुत्रवती होय तौ उस एक  
पुत्रसे मनुने उन सबोंको पुत्रयुक्त कहाहै तिससे सौतिके पुत्र होनेपर स्त्रीको और  
दत्तक आदि पुत्र न करने चाहिये इस लिये यह कहाहै ॥ ८३ ॥ औरस आदि  
पुत्रोंमें पहला पहला श्रेष्ठहै और वही भाग पानेवालाहै “सचान्यान्विभृयात्” इस  
विष्णुके वचनसे औरस आदि पुत्रोंमें पहले पहलेके न होनेमें अगिला अगिला रिक्थके  
योग्यहै पहलेके होनेमें दूसरेको पालन वही करै ऐसे पुत्रत्व सिद्ध होनेपर शूद्रापुत्रका  
बारह पुत्रोंमें पाठ क्षेत्रज आदिकोंको होनेपर धनकी अयोग्यता दिखानेके लिये होनेसे  
सार्थकहै अन्यथा तौ क्षत्रिया बैश्या पुत्रके समान औरसत्व होनेसे क्षेत्रजआदिकोंके



होनेपरभी धनको पावै और जो समानरूप बहुतसे पौनर्भव आदि पुत्र हों तौ सबही बाँटि करि धनको लेंवें ॥ ८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रो रिक्थहराः पितुः ॥ पिता हरेदपुत्रस्यं  
रिक्थं भ्रातर एव च ॥ ८५ ॥ त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः  
प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातेषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८६ ॥

टीका—न सगे भाई न पिता किंतु औरसके न होनेमें क्षेत्रज आदि गौण पुत्र पिताका धन लेनेवाले होतेहैं यह इससे कहा जाताहै औरसका तौ “एकएवौरसःपुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः” अर्थात् एकही औरसपुत्रपिताके धनका स्वामीहै इसीसे सिद्ध है और जिसके मुख्य गौण दोनों प्रकारके पुत्र नहींहैं और पत्नी तथा दुहिताभी नहीं है उसके धनको पिता पावै और उनकी माताके भी न होनेपर भाई पावै यह भांगे बिस्तारसे कहेंगे ॥ ८५ ॥ अब क्षेत्रज आदिकोंका भी पुत्ररहित पितामह आदिके धनमेंभी अधिकार दिखानेको कहतेहैं ॥ पिता आदि तीनिका जलदान करना चाहिये और उन्ही तीनिके लिये पिण्ड देना चाहिये और चौथा पिण्डोदकका देनेवाला पांचमेंका यहां संबंध नहीं है तिससे पुत्ररहित पितामह आदिके धनमें गौण पुत्रोंका अधिकार योग्यहै औरसपुत्र पौत्रोंका तौ “पुत्रेण लोकान् जयति” इसीसे पितामहके धनमें भागी होना कहाहै ॥ ८६ ॥

अनन्तरः सपिण्डार्थस्तस्य तस्य धनं भवेत् ॥ अत ऊर्ध्वं सकुं-  
ल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥ ८७ ॥ सर्वेषामप्यभवे तुं ब्राह्मणा  
रिक्थं भागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो नहीयते ॥ ८८ ॥

टीका—सपिण्डोंके मध्यमें जो बहुत समीपी सपिण्डस्त्री अथवा पुरुष होय उसका मरे हुये मनुष्यका धन होताहै इसके उपरान्त सपिण्डकी संतान न होनेपर समानोदक आचार्य तथा शिष्य ये क्रमसे धनको लेंवें ॥ ८७ ॥ इन सबोंके न होनेमें तीनों वेदोंके पढ़नेवाले बाहरी भीतरी शौच करि युक्त जितेंद्रिय ब्राह्मण धनके लेनेवाले होतेहैं और वेही पिण्ड देनेवाले होतेहैं ऐसा होनेपर मरेहुये धनीके श्राद्ध आदि धर्मकी हानि नहीं होतीहै ॥ ८८ ॥

अर्हार्थं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णा-  
नां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ८९ ॥ संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्र-  
माहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थं जातं स्यात्तं स्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

टीका—ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है कि, उक्त लक्षण ब्राह्मणके न होनेपर ब्राह्मणमात्रको देना चाहिये और क्षत्रिय आदिकोंका धन कहे हुए धन लेनेवालोंके न होनेपर राजा लेवे ॥ ८९ ॥ पुत्ररहित मरे हुएकी स्त्री पुरुषके गुरुओंसे आज्ञा ले नियोगधर्मसे पुत्रको उत्पन्न करे उस मरे हुएका जो धन होय वह उस पुत्रको देवे ॥ १९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ॥ तयो र्यद्यस्यं  
पित्र्यं स्यात्तत्सं गृहीतने तरः ॥ १९१ ॥ जनन्यां संस्थितायां तु संमं  
सर्वे सहोदराः ॥ भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सर्नाभयः ॥ १९२ ॥

टीका—दोसे उत्पन्न जो पुत्र स्त्रीके समीप स्थित धनमें विवाद करें तौ जो जिसके पिताका धन होय वह उसका पावे और पितासे उत्पन्न दूसरेके पिताकान पावे ॥ १९१ ॥ माताके मरनेपर सगे भाई तथा विना व्याही हुई बहिनै माताके धनको वरावारि बांटे लेवें और व्याही हुई तौ धनके अनुरूप समान पातीहै ॥ १९२ ॥

यास्तांसांस्युर्दुहितरस्तांसामपि यथार्हतः ॥ मातामह्या धनात्किं-  
ञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १९३ ॥ अद्यश्र्यर्घ्यावाहनिकं दत्तं च  
प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ १९४ ॥

टीका—उन बेटियोंकी जो विनाव्याही बेटियां हैं उनके लिये भी नानीके धनसे जैसे उनका सत्कार होय वैसे प्रीतिसे कुछ देना चाहिये ॥ १९३ ॥ विवाहके समय अग्निके समीप जो पिता आदि करि कियागया होय उसको अद्यश्रि कहते हैं और जो पिताके घरसे पतिके घर लेजानेके समय मिलै उसको अघ्यावाहनिक कहतेहैं और जो प्रीतिनिमित्तक कर्ममें भर्ता आदि करि दियागया होय तथा भाई और पिताने जो और समयमें दिया होय इस भांति छः प्रकारका स्त्रीधन कहा गयाहै ॥ १९४ ॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृ-  
त्तायाः प्रजायारतद्धनं भवेत् ॥ १९५ ॥ ब्राह्मदेवार्षगन्धर्वप्राजा-  
पत्येषु यद्भसु ॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेवर्तदिष्यते ॥ १९६ ॥

टीका—विवाहके उपरान्त पतिके कुलसे अथवा पिताके कुलसे जो स्त्रीको मिले और जो पतिने प्रसन्न होके दिया वह और जो अद्यश्रि आदि पहले श्लोकमें कहाहै वह भर्ताके जीवते मरी हुई स्त्रीका सब धन उसके पुत्रोंका होताहै ॥ १९५ ॥ जिनके लक्षण कह चुकेहैं ऐसा ब्राह्मण आदि पांच विवाहोंमें जो स्त्री

संबंधी धनहै वह पुत्ररहित उस स्त्रीके मरनेपर भर्ताहीका मनु आदिने कहाहै ॥ ९६ ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वसुरादिषु ॥ अप्रजायामंतीता-  
यां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ ९७ ॥ स्त्रियां तु यद्भवोद्विष्यति पित्रा दत्तं  
कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ ९८ ॥

टीका-जो उक्त लक्षण आसुर राक्षस और पैशाच विवाहोंमें छः प्रकारकाभी जो स्त्रीका धनहै वह पुत्ररहितके मरनेपर माता पिताका होताहै ॥ ९७ ॥ ब्राह्मण की नाना जातिकी स्त्रियोंमें जो क्षत्रिया आदि स्त्री पुत्रपति रहित मरजाय तौ उसका पिताका दिया हुआ धन सजाति विजाति सौतिके कन्या पुत्रोंके होनेपरभी ब्राह्मणी सौतिकी कन्या लैवे उसके न होनेमें उसके पुत्रका वह धन होताहै ॥ ९८ ॥

न निर्हारं स्त्रियः कुंयुः कुटुम्बाद्द्रुमच्यगात् ॥ स्वकादपि च वित्ता-  
द्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥ ९९ ॥ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो  
धृतो भवेत् ॥ न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २०० ॥

टीका-भाई आदि बहुत साधारण कुटुंबके धनसे भार्या आदि स्त्रियोंको रत्न अलं-  
कार आदिके लिये धनका संग्रह न करना चाहिये और पतिकी आज्ञा बिना पतिके  
धनसेभी न करना चाहिये तिससे यह स्त्रीधन नहीं है ॥ ९९ ॥ पतिके जीवते हुए जो  
अलंकार पतिकी सम्मतसे स्त्रियों करि धारण किया जाय उसके मरनेपर विभागके  
समय पुत्र आदि उसको न बाँटे बाँट करनेसे पापी होतेहैं ॥ २०० ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धवधिरौ तथा ॥ उन्मत्तजडमूकाश्च ये  
च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १ ॥ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या  
मनीषिणा ॥ ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यदं दद्रवेत् ॥ २ ॥

टीका-नपुंसक, पतित, जन्मांध, बहिरा, उन्मत्त, जड, गूंगा और कुण्ठि पंगा आदि  
जिनकी इंद्रियां विगडीहैं वे पिता आदिके धनके पानेवाले नहीं होतेहैं केवल ब्रह्म  
वृक्षके भागी होतेहैं ॥ १ ॥ शास्त्रका ज्ञाता धन लेनेवाला सब इन नपुंसक आदिकोंके  
लिये जीवनेतक अपनी शक्तिसे भोजन बख देवै जो न दे तौ पापी होय ॥ २ ॥

यद्यर्थितां तु दारैः स्यात्क्रीवादीनांकथंचन ॥ तेषामुत्पन्नतनूना-  
मपत्यं दास्यमर्हति ॥ ३ ॥ यत्किञ्चित्पितरि प्रेतं धनं ज्यैष्ठोऽधि-  
गच्छति ॥ भोगो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ ४ ॥

टीका—जो कैसे हू इनकी विवाहकी इच्छा होय तौ स्त्रीके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होनेपर उन उत्पन्न हुए अपत्योंका अपत्य धनका भागी होताहै ॥ ३ ॥ पिताके मरनेपर भाइयोंके साथ नहीं बँटा हुआ जेठा अपने पौरुषसे जो कुछ धन पावे उस धनमेंसे विद्याका अभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंका भाग होताहै औरोंका नहीं ॥४॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहितंश्चेद्धनं भवेत् ॥ संमस्तत्र विभागः स्यादपिच्यं इति धारणा ॥ ५ ॥ विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ॥ मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ ६ ॥

टीका—विद्याहीन सब भाइयोंके खेती वणिज आदि व्यापारसे जो धन उत्पन्न होय अपने जोड़े हुये धनमें उसमें पिताके धनको छोड़िके बराबरि बाँट होय उद्धार न निकाला जाय यह निश्चयहै ॥५॥ विद्या मैत्री और विवाहसे जोड़ा हुआ और माधुपर्किक कहिये मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे जो मिला होय वह उसीका होताहै ॥६॥

भ्रातृणां यस्तु ने हेतु धनं शक्तः स्वकर्मणा ॥ सं निर्भाज्यः स्वकादंशात्किञ्चिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥ ७ ॥ अनुपन्ननिर्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुर्पाजितम् ॥ स्वयमीहितं लब्धं तत्राकांक्षामोदांतुर्महेति ॥ ८ ॥

टीका—राजाके साथ जाने आदि कर्मसे धनके संचय करनेमें समर्थ जो भाइयोंके साधारण धनको नहीं चाहताहै वह अपने भागमेंसे कुछ थोडासा देकर भाइयोंकरि जुदा करने योग्यहै इससे उसके पुत्र कालांतरमें उस धनमें विवाद नहीं करि सकते हैं ॥ ७ ॥ पिताके धनको खर्च न करिके जो खेती आदि क्लेशसे संचय करै तौ उस अपनी चेष्टासे प्राप्त धनको इच्छाके बिना भाइयोंको नहीं देने योग्यहै ॥ ८ ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकांक्षामः स्वयमर्जितम् ॥ ९ ॥ विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

टीका—पिताकरि असमर्थ होनेके कारण उपेक्षा करनेसे नहीं प्राप्त हुए पिताके धनको जो पुत्र अपनी सामर्थ्यसे ले तौ उस अपने संचित धनका इच्छाके बिना पुत्रों साथ न विभाग करै ॥ ९ ॥ पहले उद्धारसमेत अथवा बिना उद्धारके बाँटे हुए भाई धनको इच्छा करि साथ रहकै जीविका करते हुए जो फिरि बाँट करै तौ वहाँ बराबर बाँट करना चाहिये जेठेको उद्धार न देना चाहिये ॥ २१० ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हियेतांशप्रदानतः ॥ त्रियेतान्यंतरो वां-

पिं तस्यै भोगो न लुप्यते ॥ ११ ॥ सोदर्या विभजेरस्तं समेत्य संहिताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ १२ ॥

टीका—जिन भाइयोंमें कोई विभागके समय संन्यास आदि करि अपने भोगसे हीन होजाय अथवा मरजाय तौ उसका भाग लुप्त नहीं होताहै ॥ ११ ॥ सगे भाई मिलि करि और सगी बाहिने इकठे रहते होंय तौ उस भागको वरावरि करि बाँटि लेंवें सगों और सौतेलोंमें जो मिलाये हुए धनके कारण योगक्षेमको बाँटि लेंवै न सब सगे न सौतेले यह तो पुत्र पत्नी और माता पिताके न होनेमें जानना चाहिये ॥ १२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातृन्धनीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्यादं-  
भागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥ १३ ॥ सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति  
भ्रातरो धनम् ॥ न चार्दत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १४ ॥

टीका—जो जेठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको धोखा दे वह जेठे भाईकी पूजासे रहित और उद्धारसहित भागसे रहित हो राजाके दंडयोग्य होय ॥ १३ ॥ नहीं पतितभी जे भाई जुवां तथा वेइयाकी सेवा आदि कुकर्मोंमें लगे हुये वे धन पानेके योग्य नहीं हैं और छोटेके विना दिये जेठा साधारण धनसे अपने लिये मुख्य धन न करै ॥ १४ ॥

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्संहा ॥ न पुत्रभागं विषमं पि-  
ता दद्यात्कथंचन ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेवं हरे-  
द्धनम् ॥ संसृष्टास्तेन वा ये स्याद्विभजेत सं तैः सह ॥ १६ ॥

टीका—पिताके साथ स्थित विना बँटे हुए भाइयोंका जो साथ धनसंचय करनेके लिये उत्थान होय तौ बाँटनेके समय किसी पुत्रको पिता अधिक न देवै ॥ १५ ॥ जब जीवते हुए पिता करि पुत्रोंका इच्छासे विभाग किया गया होय तब विभागके उपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके मरनेपर पिताहीके धनको लेंवै और जिन्होंने बँटे हुए पिताके साथ फिरि धनको मिलाया होय उनके साथ वह पिताके मरनेपर विभाग करै ॥ १६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां  
पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ १७ ॥ ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथा-  
विधि ॥ पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्सर्वं समतां नयेत् ॥ १८ ॥

टीका—अपत्यरहित पुत्रका धन माता ग्रहण करै और माताके मरनेपर पत्नी पिताके भाई और उनके पुत्रोंके होनेपर पिताकी माता अर्थात् दादी धनको लेंवै ॥ १७ ॥

पिता आदि करि लिये हुए सब ऋणमें तथा धनमें शास्त्रके अनुसार विभाग होनेपर जो कुछ पिताका ऋण धन विभागके समय विना जाना निकले वह सब बराबर करके बाँटना चाहिये शोधन करनेयोग्य न लेना चाहिये और न जेठको उद्धार देना चाहिये ॥ १८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥ योगक्षेमं प्रचारं च नै  
विभाज्यं प्रचक्षते ॥ १९ ॥ अयमुक्तो विर्मागो वः पुत्राणां च  
क्रियाविधिः ॥ क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥ २२० ॥

टीका—वस्त्र, वाहन और आभरण साझेके समयमें जो जिस करि भोगा गया वह उसीकाहै बाँटनेयोग्य नहीं है यह तौ अतिन्यून तथा अधिकमूल्यविषयक नहीं है और जो बहुमूल्य आभरण आदिहैं वह बाँटनेही योग्यहैं और कृतान्न कहिये भात सक्तु आदि सो नहीं बाँटने योग्यहैं उदक कहिये कुवा आदिमें स्थित जल संवो-  
करि भोगने योग्यहै बाँटने योग्य नहीं है और स्त्रिया कहिये दासी आदि जिनका बराबर भाग नहीं होताहै वे नहीं बाँटने योग्यहैं किंतु बराबरी काम करवाने योग्यहैं और योगक्षेम कहिये मंत्री पुरोहित आदि और प्रचार कहिये गौ आदिके प्रचारका मार्ग इन सबको मनु आदि अविभाज्य कहिये नहीं बाँटने योग्य कहतेहैं ॥ १९ ॥ यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंका दायभाग अर्थात् क्रमसे विभाग करनेका प्रकार तुमसे कहा अब द्यूत कहिये जुवाकी व्यवस्था सुनिये ॥ २२० ॥

द्यूतं समाह्वयं चैवं राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥ राज्यान्तकरणावेतौ  
द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २१ ॥ प्रकाशमेतत्तार्क्यं यद्देवनेस-  
माह्वयौ ॥ तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—जिनके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे द्यूत और समाह्वय कहिये प्राणिद्यूत इनको राजा अपने देशसे दूर करै जिस्से ये दोनों दोष राजाके राज्यके विनाश करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ ये दोनों द्यूत और समाह्वय प्रत्यक्ष चोरीहै तिस्से इनके निवारणमें राजा नित्य यत्न करता रहै ॥ २२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥ प्राणिभिः क्रियते र्य-  
स्तुं स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २३ ॥ द्यूतं समाह्वयं चैवं यः कुर्यात्कार-  
येत वा ॥ तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्राश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २४ ॥

टीका—पाँसा और शलाका आदि प्राणरहित वस्तुओंसे जो किया जाताहै उसको लोकेमें द्यूत कहतेहैं और जो प्राणि कहिये मेंढा मुरगा आदिसे दांव लगाकै किया

जाताहै उसकी समाह्वय जानिये लोकमें प्रसिद्ध इन दोनोंके लक्षणोंका कहना त्यागके लियेहै ॥ २३ ॥ द्यूत और समाह्वयको जो करै और जो अधिष्ठाता होके करावै उन दोनोंके अपराधकी अपेक्षासे राजा हाथ काटना आदि वध करै और यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोंके चिह्न धारण करनेवाले शूद्रोंको मारै ॥ २४ ॥

किंतवान्कुंशीलवान्कूरान्पाषंडस्थांश्चैर्मानवान् ॥ विकर्मस्था-  
ञ्छौण्डिकांश्चैर्क्षिं प्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥ २५ ॥ एते राष्ट्रैर्वर्तमानाराज्ञः  
प्रच्छन्नतस्कराः ॥ विकर्मक्रियया नित्यं बांधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २६ ॥

टीका—द्यूत आदिके सेवन करनेवालोंको और नाचनेवालोंको गानेवालोंको और वेदसे द्वेष करनेवालोंको और श्रुतिस्मृतिसे बाहर व्रतधारण करनेवालोंको और आपत्तिके विना पराये कर्मसे जीविका करनेवालोंको और मद्य बनानेवालोंको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकाल देवै ॥ २५ ॥ ये कितव आदि छिपे हुए चोर राजाके देशमें बसते हुए नित्य छलनेकी क्रियासे सज्जनोंको पीडा देतेहैं ॥ २६ ॥

द्यूतमेतत्पुरां कल्पे दृष्टं वैरंकरं महत् ॥ तस्माद्द्यूतं नैसेवेतं ही-  
स्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेतं  
यो नरः ॥ तस्य दण्डं विकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २८ ॥

टीका—अभी यह नहीं किंतु पहले कल्पमेंभी यह द्यूत अतिशय करि वैर कराने-वाला देखा गयाहै इस्से बुद्धिमान् हँसीके लियेभी उसका सेवन न करै ॥ २७ ॥ जो मनुष्य उस द्यूतका गुप्त अथवा प्रगट सेवन करताहै उसको जैसी राजाकी इच्छा होय वैसा दंड होय ॥ २८ ॥

क्षत्रविदूच्छूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ॥ आनृण्यं कर्मणा ग-  
च्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥ २९ ॥ स्त्रीवालोनमत्तवृद्धानां दरिद्राणां  
चै रोगिणाम् ॥ शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ ३० ॥

टीका—अब हारे हुएओंके धन न होनेपर यह कहतेहैं ॥ क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातिमें उत्पन्न पुरुषके धन न होनेसे धन देनेको न समर्थ होय तौ उससे उसके योग्य कर्म करवाके धनका शोधन करै और ब्राह्मण तौ जैसा मिलता जाय वैसा क्रमसे देता जाय कर्म करवानेयोग्य नहींहैं ॥ २९ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध, उन्मत्त, दरिद्री और रोगियोंको शिफा वांसका खंड और रस्सी आदि करि बांधने आदिसे राजा दंड करै ॥ ३० ॥  
ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्याणाम् ॥ धनोष्मणा पा-

च्यर्मानास्तांनिःस्वान्कारयेन्नृपैः ॥ ३१ ॥ कूटशासनकर्तृश्च प्रकृती-  
नां च दूर्षकान् ॥ स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्विद्वसेविनस्तथा ॥ ३२ ॥

टीका—जे व्यवहार आदिके देखने अर्थात् निर्णय करनेमें राजा करि नियत किये हुए उत्कोच धन कहिये घूसि लेनेसे तथा तेजीसे विगड कर अर्थात् आदिके कामको विगाडें राजा उनका धन आदि सर्वस्व छीन लेवै ॥ ३१ ॥ छलसे राजाकी आज्ञा ( हुक्म ) लिखनेवालोंको और स्त्री बालक तथा ब्राह्मणके मारनेवालोंको और शत्रुकी सेवा करनेवालोंको राजा मार डालै ॥ ३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र कर्चन यद्भवेत् ॥ कृतं तद्भर्मतो विद्या-  
न्न तद्भूयो निर्वर्तयेत् ॥ ३३ ॥ अमान्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः का-  
र्यमन्यथा ॥ तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्संहसं च दण्डयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जहां ऋणादानआदि व्यवहारमें जिस कार्यका शास्त्रकी व्यवस्थासे निर्णय होगया होय और कहेहुए दंडतक जो पहुँचि गया होय उस किये हुएकी अंगी-कार करै फिरि न लौटावै यह विनाकारण किये हुएकी व्यवस्था है इससे कारणसे किये-हुएकी तौ लौटावै ॥ ३३ ॥ राजाके मंत्री अथवा प्राड्विवाक व्यवहारके देखनेमें नियत किये हुए जो भली भाँति निर्णय न करै तौ राजा आप करै और उनपर हजार पण दंड करै यह तौ घूसिका धन लेनेमें कहा है उसको तौ पहले कह चुकै ॥ ३४ ॥

ब्रह्महाचं सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एते सर्वे पृथग्ज्ञेया  
महापातकिनो नराः ॥ ३५ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रार्यश्चित्तमकु-  
र्वताम् ॥ शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका मारनेवाला मद्यका पीनेवाला अर्थात् पैष्टिका पीनेवाला द्विजाति और पैष्टी माध्वी तथा गौडीका पीनेवाला ब्राह्मण और ब्राह्मणका सुवर्ण चुरानेवाला तस्कर और गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला ये सब प्रत्येक महापातकी जाननेयोग्य हैं ॥ ३५ ॥ प्रायश्चित्त करनेवाले इन चारों महापातकि-योंको शरीरसंबंधी और धनके ले लेनेसे धनसंबंधी अपराधके अनुसार धर्मयुक्त आगे कहे हुए दंडको करै ॥ ३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुरार्ध्वजः ॥ स्तेये च श्वर्पदं का-  
र्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ ३७ ॥ असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपा-  
ठ्यां विवाहिनः ॥ चेर्युः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मवहिष्कृताः ॥ ३८ ॥



टीका-“नांकर्याराज्ञाललाटेस्युः” अर्थात् राजा करि ललाटमें न अंकन करने योग्य है यह आगे कहा है इससे ललाटही अंकनका स्थान जाना जाता है वहाँ गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके ललाटमें तपे हुए लोहसे जीवनेतक रहनेवाले भगकी आकृति गुरुकी पत्नीसे गमनका चिह्न करै ऐसेही मदिरापान करनेपर पीनेवालेके लंबा सुरा ध्वजके आकारका चिह्न करै और सोना चुरानेपर चुरानवालेके माथेमें कुत्तेके पैरका और ब्राह्मणकी हत्या करनेवालेके कबंध पुरुषका अर्थात् विना शिरके पुरुषका चिह्न करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इनको वस्त्र आदि न भोजन करावै और न इनको यजन करावै और न इनको पढावै और इनके साथ कन्यादान आदि संबन्धन करना चाहिये ये तौ निर्द्धन होनेसे याचन आदि दानतायुक्त और सब श्रौत आदि कर्मोंसे रहित पृथिवीमें भ्रमण करै ॥ ३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेतैः त्यक्तव्याः कृतलक्षणैः ॥ निर्दर्यां निर्नम-  
स्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा  
यथोदितम् ॥ नांकर्याराज्ञां ललाटेस्युर्दाप्यास्तूतमसाहसम् ॥ २४० ॥

टीका-ज्ञातिके मनुष्यों करि तथा मामा आदि संबन्धियों करि ये अंकन किये हुए पुरुष छोडनेयोग्य हैं इनके ऊपर दया न करनी चाहिये और न ये नमस्कार करेनेयोग्य हैं यह मनुकी आज्ञा है ॥ ३९ ॥ शास्त्रमें कहे हुए प्रायश्चित्तके करनेवाले ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण ललाटमें नहीं अंकन करनेयोग्य हैं किंतु उत्तम साहस दंड करने योग्य हैं ॥ २४० ॥

आगःसुं ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ॥ विवांस्यो वा भवेद्ग्राह्या-  
त्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ ४१ ॥ इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्य-  
कामतः ॥ सर्वस्वहारमर्हन्ति कार्यतस्तु प्रवासनम् ॥ ४२ ॥

टीका-“इतरे कृतवन्तस्तु” इस आगेके श्लोकमें कहा हुआ “अकामतः” यह यहाँभी योजना करनी चाहिये तिससे अकामसे किये हुए इन अपराधोंमें गुणवान् ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये और पहले कहा हुआ उत्तम साहस निर्गुणिके लिये जानना चाहिये और कामसे इन अपराधोंमें धनधान्य आदि सामग्री समेत ब्राह्मण देशसे निकालने योग्य है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणसे अन्य क्षत्रिय आदि इन पापोंका विना इच्छाके करै तौ सर्वस्व हरनेको योग्य है और इच्छासे इनके इन अपराधोंमें प्रवास कहिये वधके योग्य है ॥ ४२ ॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ॥ आददानस्तुं तच्छो-

भातिने दोषेण लिप्यते ॥४३॥ अज्मुः प्रवेश्यं तं दण्डं वरुणायो-  
पपादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥

टीका-धार्मिक राजा दण्डरूप इन महापातकीयोंके धनको न लेवै और लोभसे लेताहुआ महापातक दोषका संसर्गी होताहै ॥ ४३ ॥ फिरी वह दण्डका धन कहां जाय इस लिये कहते हैं ॥ उस दंडके धनको नदी आदिके जलमें डालकर वरुणको देवै अथवा शास्त्र तथा उत्तम चरित्रयुक्त ब्राह्मणको देवै ॥ ४४ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञा दण्डधरो हि सः ॥

ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ४५ ॥

टीका-महापातकीके दंडके धनके स्वामी वरुण हैं जिसे दंडधारी होनेके कारण राजाओंकेभी स्वामी हैं तैसेही सब वेदोंका पढनेवाला ब्राह्मण सब जगत्का प्रभुहै इसे प्रभुत्वसे वे दोनों दंडके धनके योग्यहैं ॥ ४५ ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्ध्यो धर्मागमम् ॥ तत्र कालेन जायन्ते मा-  
नवा दीर्घजीविनः ॥ ४६ ॥ निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोक्तानि  
विशंपृथक् ॥ बालार्थं न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ ४७ ॥

टीका-जिस देशमें राजा महापातकीके धनको नहीं लेताहै वहां परिपूर्ण कालसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और दीर्घ आयुके होते हैं और वैश्योंके जैसे धान आदि सस्य बोये जातेहैं वैसेही पृथक् पृथक् उत्पन्न होतेहैं और अकालमें बालक नहीं मरते हैं और अंगभंग कोई प्राणी नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्वाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥

हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्रेजनकरैर्नृपः ॥ ४८ ॥

टीका-शरीरकी पीडा और धन लेने आदिसे ब्राह्मणको इच्छासे वाधा देनेवाले शूद्रको हाथ काटने आदि दुःख देनेवाले वधके उपायोंसे राजा मरै ॥ ४८ ॥

यावान्वध्यस्य वैधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अर्धमौ नृपतेर्दृष्टो  
धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ ४९ ॥ उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवद-  
मानयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

टीका-शास्त्रसे अवध्यके मारनेमें जितना अधर्म होताहै उतनाही मारनेयोग्यके छोडने-  
मेंभी शास्त्रके अनुसार दंड देतेहुए राजाका धर्म होताहै तिससे उसको करै ॥ ४९ ॥

ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें परस्पर विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीका यह कार्यनिर्णय विस्तारसे कहा ॥ २५० ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः॥देशानलब्धांलिप्से-  
तं लब्धांश्च परिपालयेत् ॥५१॥ सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्ग-  
श्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

टीका-इस कहे हुए प्रकारसे धर्मयुक्त व्यवहारोंका निर्णय करता हुआ राजा प्रजाकी प्रीतिसे नहीं पाये हुए देशोंके लेनेकी इच्छा करै और पाये हुए देशोंकी भली भाँतिसे रक्षा करै ॥ ५१ ॥ “ जांगलं सस्यसंपन्नं ” इस कही हुई रीतिसे जो भली भाँति आश्रित देशहै उसमें सातमें अध्यायमें कहे हुए प्रकारसे किला बनाकर चौर साहसिक आदि कंटकोंके दूर करनेमें सदा बड़ा यत्न करै ॥ ५२ ॥

रक्षणोदार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिदिवं या-  
न्ति प्रजापालनतत्परः ॥५३॥ अशासत्स्करान्यस्तु वलिं गृह्णा-  
ति पार्थिवः ॥ तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ ५४ ॥

टीका-जिससे साधु आचरणवालोंकी रक्षा करने और चौर आदिकोंको दंड देनेसे प्रजाके पालनमें उद्योगयुक्त राजा स्वर्गको जाते हैं तिससे कंटकोंके उखाड़नेमें यत्न करै ॥ ५३ ॥ जैसे फिरि राजा चौर आदिकोंको न दूर करताहुआ छटा भाग आदि कहे हुए करको लेताहै उसपर देशके बसनेवाले मनुष्य क्रोधित होतेहैं और दूसरे कर्मोंसे प्राप्त हुईभी उसकी स्वर्गकी गति इस पापसे रुक जाती है ॥ ५४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥ तस्य तद्दधत् नित्यं  
सिच्यमानं इव दुमं ॥५५॥ द्विविधांस्तस्करान्विधांत्परद्रव्याप-  
हारकान् ॥ प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ ५६ ॥

टीका-जिस राजाके बाहुबलके आश्रयसे देश चौर आदिकोंके भयसे रहित होता है उसका वह देश नित्य ऐसे वृद्धिको प्राप्त होता है जैसे जलके सींचनेसे वृक्ष ॥५५॥ चार कहिये दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा दूतोंहीके द्वारा प्रकट तथा गुप्त दो भाँतिके परायें धनके लेनेवालोंको जानै ॥ ५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥

प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ ५७ ॥

टीका—उन चोर आदिकोंमेंसे जो तराजू बाँट आदिके घाटे होनेसे सुवर्ण आदि बेचनेकी वस्तुके बेचनेवाले पराये धनको लेते हैं वे खुले ठगनेवाले चोर हैं और सँधिके फोडने आदिसे तथा वनके रहनेवाले जे छूटिसे पराये धनको लेते वे गुप्त चोर हैं ॥ ५७ ॥

उत्कोचकांश्चोपधिकान् वञ्चकांः कितवांस्तथा ॥ मङ्गलादेश-  
वृत्ताश्च भद्रांश्चेक्षणिकैः सिंह ॥ ५८ ॥ असम्यक्कारिणश्चैवं  
महार्मात्राश्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुर्णाः प-  
ण्ययोषितः ॥ ५९ ॥ एवमादीन्विजानीर्यात्प्रकांशांल्लोकक-  
ण्टकांन् ॥ निगूढचारिणश्चान्यानार्यानांर्यालिङ्गिनः ॥ २६० ॥

टीका—झूसि लेनेवाले जे कार्यों जे सुकदमेवाले हैं उनसे धन लेकर अयोग्य कार्य करते हैं और औपधिक जे भय दिखाके छलते हैं और वंचक जे सुवर्ण आदि द्रव्यको लेकर घटकी द्रव्य डालकर छलते हैं और कितव जे द्यूत तथा प्राणिद्यूतसे खेलते हैं और जे धन पुत्रलाभ आदि मंगलोंकी ममताको कहकर जीविका करते हैं वे मंगलादेशवृत्त हैं और जे कल्याण करनेवाले आचारोंसे पापोंको छुपाके धन लेते हैं वे भद्रहैं और जे हाथोंकी रेखा आदिके देखनेसे शुभाग्राम फल कहिके जीविका करतेहैं वे ईक्षणिक हैं और जे हाथीकी शिक्षासे जीवते हैं वे महामात्रहैं और जे चिकित्सासे जीविका करते हैं वे चिकित्सकहैं महामात्र और चिकित्सक ये दोनों असम्यक्कारी अर्थात् अच्छा काम करनेवाले नहीं हैं और शिल्पोपचारयुक्त कहिये जे चित्रके लिखने आदि उपायसे जीवते हैं नियुक्त किये गये ये भी शिल्पका उत्साह दिलाकर धनको ले लेते हैं और पण्यस्त्री कहिये वेश्याभी दूसरेके वश करनेमें चतुर होती हैं इत्यादि खुलेहुए लोकके छलने वालोंको राजा चारोंके द्वारा जानै तथा और भी गुप्तरूपसे विचरनेवाले गूढ आदिकोंको जो ब्राह्मण आदिकोंका वेष धारण करतेहैं उनको धन हरनेवाले जानै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ २६० ॥

तान्विदितां सुचरितैर्गूढस्तत्कर्मकारिभिः ॥ चारैश्चानेकसंस्था-  
नैः प्रोत्साद्य वंशमानयेत् ॥ ६१ ॥ तेषां दोषानभिरुयाप्य स्वस्वै  
कर्मणि तत्त्वतः ॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापरार्थतः ॥ ६२ ॥

टीका—उन कहे हुए वंचकोंको गुप्तरूप सभाके मनुष्योंके द्वारा तथा उस कामके करनेवाले सम्य मनुष्योंके द्वारा जैसे बनियोंकी चोरीकी बनियोंके द्वारा इत्यादिक पुरुषोंकरि तथा इनसे भिन्न सातमें अध्यायमें कहे हुये कापटिक आदि अनेक स्थानों-

में स्थित चारोंके द्वारा जानि उत्साहन करिके अपने वशमें करै ॥ ६१ ॥ उन प्रकट तथा गुप्त तस्करोंके अपने कर्म चोरी आदिमें संधि फोडने आदि पारमार्थिक दोषोंको लोकमें उनसे कहवाय उनके समीपके धन तथा शरीर आदिके सामर्थ्यकी अपेक्षासे तथा अपराधकी अपेक्षासे उनपर राजा दंड करै ॥ ६२ ॥

नै हि दण्डादृते शर्भ्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥

स्तेनानां पापबुद्धीनां निर्भृतं चरतां क्षितौ ॥ ६३ ॥

टीका-जिस कारणसे चोरोंका और विनीत वेषसे पृथिवीतलमें विचरनेवाले पाप करनेकी बुद्धिवाले मनुष्योंको दंडदेनेके विना पापक्रियामें नियम नहीं हो सकताहै इससे इनको दंड देवै ॥ ६३ ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ॥ चतुष्पथांश्चैत्यवृक्षाः  
समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ ६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारु-  
कावेशनानि च ॥ शून्यानि चाप्यर्गाराणि वनान्युपवनानि  
च ॥ ६५ ॥ एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ॥ त-  
स्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुसारयेत् ॥ ६६ ॥

टीका-सभा अर्थात् ग्राम नगर आदिमें नियत जनोंके समूहका स्थान तथा प्याऊ और पूषोंकी शाला जहां पूआ विकतेहैं, वेइयाका स्थान और मद्यके तथाअन्नके विकनेका स्थान, चौराहै तथा प्रसिद्ध वृक्षोंके मूल और जनसमूहके स्थान, पुरानी फुलवाडी, वन, कारीगरोंके घर कहिये कारखाने, शून्यघर, आम आदिके वाग और बनाये हुए वन ऐसे स्थानोंको राजा स्थावर जंगम कहिये एक स्थानमें ठहरीहुई और चलती हुई पयादोंकी सेनाको तथा अन्य दूतोंको चोरोंके निवारणके लिये भेजै बहुधा ऐसे स्थानोंमें अन्नपान तथा स्त्रीसंभोग आदिके दंडनेके लिये चोर बसतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

तत्सहायैरनुमतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ॥ विद्यादुत्सादयेच्च वनिपुणैः  
पूर्वतस्करैः ॥ ६७ ॥ भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्श-  
नैः ॥ शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ ६८ ॥

टीका-उनकी सहायता करनेवाले और उनके चरित्रोंके समान चरित्र और संधि फोडने आदि कामोंके जाननेवाले चोरोंकी मायामें निपुण दूतरूप पहले चोरोंसे अन्य चोरोंको जानै और उनके दूर करनेका प्रबंध करै ॥ ६७ ॥ दूत हुए वे पहले चोर और चोरोंसे ऐसे कहें कि, आइये हमारे घर चलिये वहां लड्डू खीर आदि खीं

देशे भक्ष्य भोज्यके बहानेसे और हमारे देशमें: एक ब्राह्मणाहै वह चाहीहुई अर्थासे-  
द्विको जानताहै उसको देखै ऐसे ब्राह्मणोंके दर्शनोंसे और कोई अकेलाही बहुतोंके  
साथ युद्ध करैगा उसको देखै इस भांति शौर्यकर्मके बहानेसे उन चोरोसे राजाके दंड  
धारण करनेवाले पुरुषोंसे मेल करै और उनको पकडवा देवै ॥ ६८ ॥

ये तत्र नोपसपैयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ॥ तान्प्रसंह्य नृपो ह्यन्यात्स-  
मित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ ६९ ॥ न होढेन विना चौरं घातयेद्वा-  
मिको नृपः ॥ सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

टीका—जो चोर वहां भक्ष्य भोज्य आदिमें पकडे जानेकी शंकासे न आवै और जे  
मूल कहिये राजाकरि नियुक्त पुराने चोरोंके समूहमें सावधान हो उनके साथ संगति  
न करै उनको उन्हीं पुराने चोरोंके द्वारा जानि उनमें मिले हुए मित्र पिता आदि और  
जाति स्वजनसमेत बलसे पकड कर मारै ॥ ६९ ॥ धर्मात्मा राजा चुराए हुए द्रव्यके  
सेंधि फोडने आदिको उपकरण कुदाली आदिके विना चोरपनका निश्चय विना  
किये न मारै किंतु चुराए हुए द्रव्यसे और चोरीकी सामग्रीसे चोरपनका निश्चय करि  
विना विचारके मारै ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ॥ भाण्डार्थकाशदाश्चै-  
वं सर्वास्तां नपि घातयेत् ॥ ७१ ॥ राष्ट्रधुरक्षाधिकृतान्सामन्ताश्चै-  
वं चोदितान् ॥ अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिवंद्रुतम् ७२

टीका—ग्राम आदिकोंमेंभी जे कोई चोरोंका चोरपन जानिके भोजन देतेहैं और  
चोरीके उपयोगी भांड आदिके रखनेको स्थान देतेहैं उनकोभी अपराधी जानि राजा  
मरवावै ॥ ७१ ॥ जे देशोंमें रक्षाके लिये रखे गयेहैं और जे सीमाके समीप  
बसनेवाले क्रूर न होकर चोरीके उपदेश करनेसे मध्यस्थ होंय उनको चोरके समान  
शीघ्र दंड देवै ॥ ७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ॥ दण्डेनैव तं पयोषेत्स्व-  
कांक्षमार्द्धिं विच्युतम् ॥ ७३ ॥ ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभि-  
दर्शने ॥ शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥ ७४ ॥

टीका—यजन कराना तथा दान लेने आदिसे दूसरेके यज्ञ आदि धर्मको उत्पन्न  
करि जो जीवताहै वह धर्मजीवी ब्राह्मण जो धर्मकी मर्यादासे बाहर होजाय तौ  
अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए उसकोभी राजा दंडसे पीडा देवै ॥ ७३ ॥ चोर आदि करि  
ग्रामके लूटने और जलके बांध तोडनेपर और स्वतमें उत्पन्न धान्यके नाश करने

तथा-मार्गमें चौरके देखनेपर उनके समीपके जें अपने शक्तिके अनुसार रक्षा न करै उनको राजा शय्या और गौ आदि पशुओंसमेत देशसे निकाल देवै ॥ ७४ ॥

राज्ञःकोपापहर्तृश्च<sup>१</sup> प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विधिवं धे<sup>१</sup> दं-  
ण्डैररीणांचोपजापकान् ॥ ७५ ॥ संधिच्छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्व-  
न्ति तस्कराः ॥ तेषां छित्त्वां नृपो हस्तौ तीक्ष्णैश्चूले निवेशयेत् ७६

टीका-राजाके मंडारसे धनके चुरानेवालोंको तथा राजाकी आज्ञाके न माननेवालों-  
को और शत्रुओंका राजासे वैर बढ़ानेवालोंको अपराधके अनुसार हाथ पांव जीभ काटने  
आदि नाना प्रकारके दंडोंसे मरवावै ॥ ७५ ॥ जे चोर रातिमें संधि फोड़कर पराये  
धनको चुरातेहैं राजा उनके दोनों हाथ काटिके उनको सूलीपर चढ़ावै ॥ ७६ ॥

अङ्गुलीग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ॥ द्वितीये हस्तचरणं  
तृतीये वर्धमर्हति ॥ ७७ ॥ अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकां-  
शदान् ॥ संनिधातृश्च मोषस्य हन्याच्चौरांमि<sup>२</sup> वैश्वरः ॥ ७८ ॥

टीका-वस्त्रके किनारे आदिमें बंधे हुये सुवर्णको जो गांठि खोलके चुराताहै वह  
ग्रंथिभेदक अर्थात् गंठिकटा होताहै उसके पहले द्रव्य लेनेमें अंगुली कहिये अंगूठा  
और तर्जनी कटवादे और दूसरी वार लेनेमें हाथ पांव दोनों कटवा दे और तीसरी  
वार लेनेमें बंधके योग्य होतेहैं ॥ ७७ ॥ ग्रंथिभेदको कहिये गंठिकटोंको जानिके  
आगि भोजन और शस्त्र रखनेके लिये स्थान देनेवालोंको तथा चोरीका धन रख-  
नेवालोंको राजा चौरके समान दंड देवै ॥ ७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवर्धेन वा ॥ यद्वापि प्रतिसंस्कु-  
र्याद्वाप्यस्तूतमसाहसम् ॥ ७९ ॥ कोष्ठांगारायुधागारदेवतागा-  
रभेदकान् ॥ हस्तयश्चैरथहंतृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ ८० ॥

टीका-जो स्नान आदिसे मनुष्योंके उपकार करनेवाले तालावको बांध आदिके तोड़-  
नेसे बिगाड़ें उनको जलमें डुबवाके अथवा और प्रकारसे मारै अथवा जो तडागका फिरि  
संस्कार करै उसको उत्तम साहस रूप हजार पण दंड देवै ॥ ७९ ॥ राजाके कोठार और  
धन तथा शस्त्रोंके घरके फोड़नेवालोंको और बहुत धनके खरचसे वर्तनयोग्य देवाल्य  
आदिके फोड़नेवालोंको और हाथी घोडा तथा रथ चुरानेवालोंको शीघ्रही मारै ॥ ८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आंगमं वाप्यपां भि-  
द्यांस्सं दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ ८१ ॥ समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्य-

मनापदि॥सं द्रौ कार्षापणो दद्यादमेध्यं चांशु शोधयेत्॥ ८२ ॥

टीका—जो फिर प्रजाके लिये पहले किसीकारि वनायेहुए तालावके जलही ले ले तालावके सब जलके नाश करनेमें पहले कहाहुआ वध दंड करना योग्यहै और जो बांध बांधि करि जलके मार्गका नाश करताहै उसपर प्रथम साहस दंड करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगी न होनेपर राजमार्गमें विष्टा करै वह दो कार्षापण दंड देवै और अपवित्रको शीघ्रही दूरि करै ॥ ८२ ॥

आर्पद्रतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥ परिभार्षणमैहन्ति  
तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ ८३ ॥ चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या-  
प्रचरतां दमः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ ८४ ॥

टीका—रोगी वृद्ध गर्भिणी और बालक ये दंड देनेयोग्य नहीं हैं किंतु उनसे ऐसे कहना चाहिये कि, तुमने यह क्या किया और अपवित्र शुद्ध करानेयोग्य हैं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८३ ॥ सब कायशल्यभिषज अर्थात् चीराफारी करनेवाले वैद्य जो दृष्ट चिकित्सा करें तौ उनको दंड देना चाहिये वहां गौ घोडा आदिकी दुष्ट चिकित्सामें प्रथम साहस दंड दे और मनुष्यमें तौ मध्यम साहस दंड योग्य है ॥ ८४ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं  
पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ८५ ॥ अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे  
भेदने तथा ॥ मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ ८६ ॥

टीका—संक्रम कहिये जलके ऊपर जानेके लिये काष्ठ अथवा शिलाआदिसे बने हुए छोटे पुलको और ध्वज कहिये चिह्न राजद्वार आदिमें और यष्टि पुष्करिणी आदिमें और प्रतिमा कहिये छोटी मट्टी आदिकी बनी हुई इन सबोंके नाश करनेवालेपर पांचसौ पण दंड करै और उस बिगाडेहुएको फिर नया बनावै ॥ ८५ ॥ शुद्ध वस्तुओंमें कम दामकी वस्तु मिलाकर दूषित करनेमें और नहीं तोडनेयोग्य माणिक्य आदि माणियोंके तोडनेमें और वेधनेयोग्य मोती आदिकोंके कुठौर वेधनेमें प्रथम साहस दंड करना चाहिये और सबोंमें पराई वस्तुके नाश करनेमें दूसरी वस्तु आदिके देनेसे स्वामीका संतोष करना चाहिये ॥ ८६ ॥

समैहि विषमं यस्तु चरेद्दे सूल्यतोऽपि वा ॥ समाप्नुयाद्दमं पूर्वं  
नरो मध्यममेव वा ॥ ८७ ॥ बन्धनानि च सर्वाणि राजां मार्गं निवेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पार्षकारिणः ॥ ८८ ॥



टीका-बराबर मोल देनेवालोंके साथ बढकी तथा घटकी वस्तु देनेसे जो विषम व्यवहार करताहै और बराबर मोलकी वस्तुको देकर जो किसीकी बहुत मोलकी किसीकी थोड़े मोलकी इस भांति विषम मोलकी लेताहै वह अनुबंध विशेषकी अपेक्षासे प्रथम साहस अथवा मध्यम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ८७ ॥ बंधनगृह ( जेलखाने ) सब मनुष्योंके देखने योग्य राजा मार्गके समीप बनावै जहां बेड़ी आदि बंधनोंसे बँधे हुए भूखप्याससे दुःखी और जिनके नख डाढी मूछ आदि बाल बँधे हुए दुबले पाप करनेवालोंकी और पाप करनेवाले पाप न करनेके लिये देखें ॥ ८८ ॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥

द्वाराणां चैवं भेत्तारं क्षिं प्रमेवं प्रवासयेत् ॥ ८९ ॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ॥

मूलकर्मणि चानामे कृत्यासु विविधासु च ॥ ९० ॥

टीका-और राजा घर तथा शहरके परकोटेके फोडनेवालेको और उन्हींकी खाईके पूरने वालेको और उनके द्वारोंके तोडनेवालोंको शीघ्रही देशसे निकाल देवै ॥ ८९ ॥ अभिचार होम आदि शास्त्रमें कहे हुए मारनेके उपायोंमें और जड खोदना पैरोंकी धूलि लेने आदि लौकिक मारनेके उपायोंके करनेपर जो मरनेका फल न होय तौ दोसौ पण दंड करना चाहिये और जो मरजाय तौ मनुष्यके मारनेका दंड करै ऐसे माता पिता स्त्री आदिसे भिन्न झूठी बातोंसे मोहित करि धन लेने आदिके लिये बश करनेमें और कृत्या कहिये नाना प्रकारके उच्चाटन आदिके करनेमें दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ ९० ॥

अवीजविक्रयी चैवं वीजोत्कृष्टं तथैवं च ॥ मर्यादाभेदकश्चैवं  
विकृतं प्राभुयाद्बध्मं ॥ ९१ ॥ सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु  
पार्थिवः ॥ प्रवर्तमानमन्याये छेदयेच्छवर्शः क्षुरैः ॥ ९२ ॥

टीका-अवीज कहिये जलसे नहीं उगनेयोग्य धान आदिको उगनेके योग्य कहिके जो बेचै अथवा घटिकी वस्तुको बहुतसी बढिकी वस्तुमें मिलाकै यह सब बढिकीहै से कहिके जो बेचै और जो ग्राम नगर आदिकी सीमाका नाश करै वह नाक हाथ पांव कान काटिके बधके योग्य है ॥ ९१ ॥ सब कंटकोंमें बहुतही पापी तौलमें छल करनेवाले और कसममें बदलकर घटिकी धातु मिलायकै सोने आदिकी चोरी करनेवाले मुनारकी सब देहको छुरोंसे कटवायकै खंड खंड करायदे ॥ ९२ ॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च

राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशद-  
ण्डौ सुहृत्तथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जातीजाती हुई भूमिकी हल कुदाली आदिके चुरानेमें और खड्ग आदि शस्त्रोंके तथा कल्याणघृत आदि औषधके चुरानेपर उपयोगकालसे दूसरे कालकी अपेक्षा और प्रयोजनकी अपेक्षासे राजा दंड करै ॥ ९३ ॥ स्वामी कहिये राजा और अमात्य कहिये मंत्री आदि और पुर कहिये राजाका कियाहुआ दुर्ग वसनेका नगर और राष्ट्र कहिये देश और कोश कहिये धनका समूह और दंड कहिये हाथी रथ पयादे और सातमें अध्यायमें कहे हुए तीन प्रकारके मित्र ये सात प्रकृति कहिये अंगहैं इस्से यह राज्य सप्तांग कहा जाताहै ॥ ९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं  
जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ ९५ ॥ सप्ताङ्गस्यैह राज्यस्य विष्टब्धस्य  
त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥ ९६ ॥

टीका—क्रमसे कहेहुए राज्यके इन सात अंगोंमें अगले २ की अपेक्षा पिछले २ को भारी जानै जैसे मित्रके व्यसनसे अपने बल कहिये सेनाका व्यसन भारी है क्योंकि, संपन्न सेनाहीकी मित्रके अनुग्रहमें सामर्थ्य है ऐसेही सेनासे कोश भारीहै क्योंकि कोशके नाशमें सेनाकाभी नाश होताहै और कोशसे राष्ट्र भारीहै क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशकी उत्पत्ति कहासे होय और ऐसे राष्ट्रसे दुर्ग भारी है, क्योंकि घास ईंधन और रसादिसे भरेहुए दुर्गहीसे राज्यकी रक्षा होतीहै और दुर्गसे मंत्री भारी है क्योंकि प्रधान मंत्रीके नाशमें सब अंग विगड जाते हैं और मंत्रीसेभी आत्मा भारी है क्योंकि सब आत्माहीके लिये है तिस्से अगलेकी अपेक्षासे पिछलेकी यत्नसे रक्षा करै ॥ ९५ ॥ त्रिदंडीके त्रिदंडके समान बंधेहुए इस कहेहुए राज्यके सातों अंगोंमें आपसमें विलक्षण उपकरण होनेके कारण कोईभी अंग अधिक नहीं होताहै यद्यपि पहले श्लोकमें पूर्वपूर्व अंगकी अधिकता कही तिसपरभी इन अंगोंमेंसे अन्य अंगका अपकार अन्य अंग नहीं करसकता है इस्से आगे २ के अंगकी अपेक्षा करनी योग्य है इस लिये यह अधिकताका निषेध है यहां प्रसिद्ध यतीका त्रिदंडही दृष्टांतहै जैसे वह चार अंगुलके गौके वालोंके लपेटनेसे आपसमें बंधे होते हैं और उनमेंसे त्रिदंड धारण शास्त्रार्थमें कोई दंड अधिक नहीं होता है ॥ ९६ ॥

तेषुतेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ॥ येनै यत्साध्यते कार्यं तं  
तस्मिन् चैष्टमुच्यते ॥ ९७ ॥ चारेणोत्साहयोगेन क्रियैयैव चैकर्म-

णाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ ९८ ॥

टीका-जिसे उन २ करने योग्य कार्योंमें वह वह अंग अधिकतायुक्त होताहै क्योंकि, उसका कार्य दूसरा नहीं करसकता है ऐसे तौ जिस अंगसे जो काम होताहै उसमें वही प्रधान कहाजाताहै तिससे आपसमें जो गुणोंकी अधिकता आदि कही जो इससे प्रकट की गई ॥ ९७ ॥ सातमें अध्यायमें कहेहुए कापटिक आदिसें सेनाके उत्साहके योगसे और हस्तिबंध तथा वणिक्पथ आदिके करनेसे उत्पन्न हुई अपनी और शत्रुकी शक्तिको राजा सदा जानै ॥ ९८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ॥ औरभेत तंतः कार्यं  
संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ ९९ ॥ औरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः  
पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारंभमाणं हि पुरुषं श्री<sup>१</sup> निषेवते ॥ ३०० ॥

टीका-पीडन कहिये मारक आदि अपने तथा पराये चक्रमें उत्पन्न काम क्रोधसे उत्पन्न दुःखोंको और उनके भारी तथा हलकेपनको विचारिके संधि विग्रह आदि कार्यका आरंभ करै ॥ ९९ ॥ राजा अपने राज्यकी वृद्धि और शत्रुकी हानि करने वाले कर्मोंको जो बडीकठिनाईसे भी किये गये होंय उन किये हुएभी कार्योंका आरंभ करिके आप खेदयुक्त होनेपरभी उनका वारम्बार फिरभी आरंभ करै कारण यह है कि, कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी बहुतही सेवन करतीहै ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैवं द्वापरं कल्लिरेव च ॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि रा-  
जां हि<sup>२</sup> युगंमुच्यते ॥ १ ॥ कल्लिः प्रसुप्तो भवति सं जाग्रद्द्वारं  
युगम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेतां विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २ ॥

टीका-सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये राजाहीके चेष्टितविशेषहैं उन्हीसे सत्य आदि विशेषोंकी प्रवृत्ति होतीहै तिससे राजाही कृत आदि युग कहा जाताहै ॥ १ ॥ कैसा चेष्टित कृत आदि युगहैं इसपर कहते हैं अज्ञान और आलस्य आदिसें जब राजा उद्योगरहित होताहै तब कलियुगहै और जानते हुएभी नहीं करताहै तब द्वापर और जब कर्म करनेमें अवस्थित होता है तब त्रेता और फिर जब शास्त्रके अनुसार कर्मोंको करताहुआ विचारता है तब सतयुगहै तिससे राजाको कर्म करनेमें तत्पर होना चाहिये वहां यह तात्पर्य है वास्तविक कृत आदिका भेटना नहीं है ॥ २ ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ॥ चन्द्रस्याग्नेःपृथि-  
व्याश्च ते<sup>३</sup> जोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३ ॥ वार्षिकान्श्चतुरो मासान्यथेन्द्रो-

ऽभिप्रवर्षति ॥ तथाभिवर्षेत्स्वं रांष्ट्रं कौमैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ४ ॥

टीका—इंद्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चंद्र, अग्नि और पृथिवीके वीर्यके अनुरूप चरित राजा करे और राजा कंटकोंके उखाडनेसे प्रताप अनुराग करिके युक्त होता है ॥ ३ ॥ जैसे इंद्र आदिका चरित्र करे इसपर कहते हैं ॥ ऋतु संवत्सर और पक्षका आश्रय लेकर यह कहा जाताहै ॥ जैसे श्रावण आदि चारि महिने सस्य आदिकी सिद्धिके लिये इंद्र वरसताहै ऐसे इंद्रके चरितको करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुओंको वाञ्छित अर्थोंसे पूर्ण करे ॥ ४ ॥

अष्टौ मांसान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ तथा हरैत्केरं-  
रांष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ५ ॥ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चर-  
ति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ६ ॥

टीका—जैसे सूर्य अगहन आदि आठ महिने किरणोंसे थोडा २ रस थोडे तापसे ग्रहण करते हैं ऐसेही राजा शास्त्रमें कहे हुए करोंको पीडाके विना देशसे ग्रहण करे जिससे यह सूर्यका व्रत है ॥ ५ ॥ जैसे प्राणनाम पवन सब जीवोंमें भीतर प्रवेश करिके विचरता है ऐसेही चारोंके द्वारा अपने पराये राज्यमंडलमें चिकीर्षित अर्थ जाननेके लिये भीतर प्रवेश करना चाहिये जिससे यह पवनका चरित है ॥ ६ ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञां नियन्त-  
व्याः प्रजांस्तद्धि यमव्रतम् ॥ ७ ॥ वरुणेन यथा पार्श्वेर्द्धे एवाभि-  
दृश्यते ॥ तथा पापान्निगृह्णीयाद्धेतमेतद्धि वारुणम् ॥ ८ ॥

टीका—यद्यपि यमके शत्रु मित्र नहीं हैं तिसपरभी उसके निंदक और पूजकोंका शत्रु मित्र कथन है ॥ जैसे यम शत्रु मित्रके मरनेके समय तुल्यके समान दंड देताहै ऐसेही राजाको भी अपराधके समय रागद्वेषको छोडकर प्रजा शासन करनेयोग्यहै जिससे यह यमका व्रत है ॥ ७ ॥ जो वरुणकी रस्सियोंसे बांधनेको इष्ट है वह जैसे पाशोंसे बंधाही हुआ दीखताहै वैसेही पापकरनेवाले जयतक न कुछ करसके तवतक शासन करे जिससे यह इसका वरुणका व्रत है ॥ ८ ॥

परिपूर्णं यथा चंद्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ॥ तथा प्रकृतयो य-  
स्मिन्सं चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ९ ॥ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं  
स्यात्पापकर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाभ्रंयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

टीका—जैसे चंद्रमाके देखनेसे मनुष्य हर्षित होतेहैं ऐसेही मंत्रीआदि जिसके देख-

नेसे संतोषको प्राप्त होय वह चंद्राचारी राजा है ॥ ९ ॥ पापकरनेवालोंको दंड देनेमें सदा प्रचंड होय और प्रतिकूल मंत्रियोंका मारनेवाला होय यह इसका अभिसंबंधी व्रत कहा गयाहै ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि  
विभ्रंतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ११ ॥ एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमत्त-  
न्द्रितः ॥ स्तेनान् राजा निर्गृह्णीयात्स्वराष्ट्रे परं एव च ॥ १२ ॥

टीका—जैसे पृथिवी सब बड़े छोटे स्थावर जंगम ऊंचे नीचेको समान करिके धारण करती है ऐसेही विद्वान् धनवान् गुणवान् जीवोंको तथा इनसे भिन्न दीन अनाथ आदि सब जीवोंको रक्षा करने और धन देने आदिसे सामान्यता करि धारण करने वाले राजाका पृथिवीसंबंधी व्रत होताहै ॥ ११ ॥ इन कहे हुए उपायोंसे और अपनी बुद्धिसे उत्पन्न हुए बिना कहे हुएओंसे राजा आलस्य रहित हो अपने देशमें जो चोर बसते हैं और पराये देशके बसनेवाले अपने देशमें आके चोरी करते हैं उन दोनों प्रकारके चोरोंको पकड़े ॥ १२ ॥

परामर्ष्यापदं प्रातो ब्राह्मणान्नं प्रकोपयेत् ॥ ते ह्ये न कुपिता ह-  
न्युः सद्यः सर्वलवाहनम् ॥ १३ ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरेपेयश्च  
महोदाधिः ॥ क्षयी च प्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् १४

टीका—कोशके क्षीण होने आदिसे बडी आपत्तिको प्राप्तमी राजा ब्राह्मणोंको क्रो-  
धित न करे जिससे क्रोधित हुए वे सेनावाहनसमेत इसको शीघ्रही शाप तथा अभि-  
चारसे मारेंगे ॥ १३ ॥ जिन ब्राह्मणों करि अभिशापसे अग्नि सर्वभक्षी किया गया  
और समुद्र नहीं पीनेयोग्यहै जल जिसका ऐसा किया गया और चंद्रमा क्षीणतायुक्त  
किया गया पीछे पूर्ण किया गया उनको कुपित करिके कौन नाशको न प्राप्त  
होय ॥ १४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुषं लोकपालांश्च कोपिताः ॥ देवान्कुर्युरदेवां-  
श्च कः क्षिपंस्तान्समृध्नुयात् ॥ १५ ॥ यानुर्पाश्रित्य तिष्ठन्ति लो-  
का देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्मैव धनं येषां को हिंस्यात्तां जीविषुः ॥

टीका—जे स्वर्ग आदि लोकोंको तथा लोकपालोंको दूसरे उत्पन्न कर सकतेंहैं और  
देवताओंको शापसे मनुष्य आदि करते हैं उनको पीडा देकर कोन समृद्धिको प्राप्त  
होय ॥ १५ ॥ जिन यजन याजन करनेवाले ब्राह्मणोंका आश्रय लेकर अग्निमें  
छोडी हुई आहुति इस न्यायसे पृथिवी आदि लोक और देवता स्थितिको प्राप्त होते

हैं और वेदही जिनके अभ्युदयका साधन होनेसे और याजन अध्यापन आदिसे जिनके धनका उपायहै उनको जीवनेकी इच्छा करता हुआ कौन मरै ॥ १६ ॥

अविद्वांश्चैवं विद्वांश्च ब्राह्मणो देवतं महतं ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च  
यथाग्निदेवतं महतं ॥ १७ ॥ इमंशानेष्वपि तेजस्वी पावको  
नैव दुष्यति ॥ हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिर्वर्धते ॥ १८ ॥

टीका—जो ऐसेहै तो विद्वान् ब्राह्मणका सेवन करै इसपर कहतेहैं ॥ जैसे व्याहित और अनाहित अग्नि बडी देवताहै ऐसेही सुख तथा विद्वान् ब्राह्मण उत्कृष्ट देवताहै ॥ १७ ॥ जैसे बडा तेजस्वी अग्नि इमशानमें मुर्दोंके जलानेपरभी नहीं दूषित होताहै किंतु फिरभी यज्ञोंमें होम किया गया बढ़ताहै ॥ १८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परं-  
मं देवतं हि तत् ॥ १९ ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति  
सर्वशः ॥ ब्रह्मैव संनिर्यन्तु स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

टीका—ऐसे ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होतेहैं तितपरभी सब भांति पूज्यहैं कारण यहहै कि, वे उत्कृष्ट अर्थात् सबसे बडे देवताहैं ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंको सब भांति पीडा देनेवाले क्षत्रियोंको शाप अभिचार आदिसे ब्राह्मणही दंड देनेवालेहैं जिसे क्षत्रिय ब्राह्मणसे हुआहै, क्योंकि ब्रह्मकी वाहोंसे उत्पन्नहै ॥ ३२० ॥

अथोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः  
स्वासु यो निषु शाम्यति ॥ २१ ॥ नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं  
ब्रह्म वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिहै चामुत्र वर्धते ॥ २२ ॥

टीका—जल ब्राह्मण और पाषाणसे अग्नि क्षत्रिय और लोह उत्पन्न हुए उनका तेज सर्वत्र जलाना तिरस्कार करना और काटनारूप कर्म करताहै अपने कारण जल ब्राह्मण और पाषाणमें दाहना तिरस्कार और छेदनरूप कार्य नहीं करताहै ॥ २१ ॥ शांति पुष्टता और व्यवहार देखना आदि धर्म न होनेसे ब्राह्मण रहित क्षत्रिय नहीं बढ़ताहै ऐसेही क्षत्रिय रहित ब्राह्मणभी नहीं बढ़ता है, क्योंकि रक्षा विना यज्ञ आदि कर्म नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपसमें संबंध रखतेही हैं इस लोक तथा परलोकमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिसे वृद्धिकी प्राप्त होताहै दंडके प्रकरणमें तो यह ब्राह्मणकी स्तुति है अपराधीभी ब्राह्मणोंके लघु दंडके प्रयोगमें नियमकेलिये हैं ॥ २२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं सर्वासृज्य  
कुर्वीत प्रीयणं रणे ॥२३॥ एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थि-  
वः ॥ हितेषु चैवं लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नि योजयेत् ॥ २४ ॥

टीका—जब अनिष्टके देखनेसे अथवा चिकित्साके योग्य नहीं ऐसे रोगसे जब आसनमृत्यु होय तब महापातकीके धनसे भिन्न विनियोग किये हुएसे बाकी सब दंडका धन ब्राह्मणोंको देकर पुत्रको राज्य सोंपि निकटमृत्यु पुरुष अधिक फलके पानेके लिये संग्राममें प्राण छोड़े संग्रामका संभव न होय तौ अनशन कहिये न खाने आदिसेभी छोड़े ॥ २३ ॥ ऐसे तीनि अध्यायोंमें कहेहुए राजधर्मोंसे व्यवहार करता हुआ राजा सदा यत्नसे भृत्योंको प्रजाके हितोंमें लगावै ॥ २४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिर्भूक्तो राज्ञः सनातनः ॥ ईमं कर्मविधिं विद्या-  
त्क्रमंशो वैश्यशूद्रयोः ॥२५॥ वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दार-  
परिग्रहम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैवं रक्षणे ॥ २६ ॥

टीका—परंपरासे चलेआनेसे नित्य यह राजाके कर्मकी विधि सब कही अब वैश्य शूद्रोंके क्रमसे जो आगे कहा जायगा ऐसा कर्मका अनुष्ठान जायै ॥ २५ ॥ कियागयाहै यज्ञोपवीत तक संस्कार जिसका ऐसा वैश्य विवाह आदिकोंकरिके जो आगे कही जायगी ऐसी जीविकामें खेती आदि कामके लिये पशुओंके पालनेमें सदा लगा रहै ॥ २६ ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च राज्ञे च  
सर्वाः परिददे प्रजाः ॥२७॥ न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षयं पशू-  
निति ॥ वैश्ये च च्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ २८ ॥

टीका—जिससे ब्रह्माने पशुओंकी उत्पन्न करिके रक्षाके लिये वैश्यको दिये प्रसंगसे यह कहाहै इस्से वैश्य करि पशुरक्षा करनेयोग्य है यह पहलेका अनुवादहै और संपूर्ण प्रजाकी उत्पन्न करिके ब्राह्मणके लिये और राजाके लिये रक्षाके निमित्त दी यह प्रसंगसे कहा ॥ २७ ॥ पशुओंकी रक्षा न करौ यह इच्छा वैश्यको कमी न करनी चाहिये इस्से खेती आदि जीविकाके होनेपरभी वैश्यको पशुओंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये वैश्यको पशुकी रक्षा करनेपर दूसरेसे पशुकी रक्षा न करवानी चाहिये ॥ २८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गन्धानां च रसा-  
नं च विद्यादध्वलावलम् ॥२९॥ वीजानामुतिविज्ञं स्यात्क्षेत्रदो-

षगुणस्य च ॥ माँनयोगं च जौनीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

टीका—मणि, मोती, भूंगा, लोह, वस्त्र और कपूर आदि गंधोंका और नोन आदि रसोंका उत्तममध्यमोंका देशकालकी अपेक्षासे मोलका बढ़ना घटना वैश्य जानै ॥ २९ ॥ सब बीजोंके बोनेकी विधिका जाननेवाला होय अर्थात् यह बीज इस कालमें बोया हुआ ऊगता है इसमें नहीं इस भांति वैसेही यह ऊपर है और यह धान्यका देनेवाला है इत्यादि खेतके गुण दोषका जाननेवाला होय और प्रस्थ द्रोण आदि मानके तथा तुलके सब उपायोंको तत्त्वसे जानै जिसमें दूसरा न ठगै ॥ ३३० ॥

सारसारं च भाण्डानां देशानां च गुणांगुणान् ॥ लांभालाभं च  
पर्ण्यानां पर्शूनां परिवर्धनम् ॥ ३१ ॥ भृत्यानां च भृतिं विद्याद्राधा-  
श्च विविधा नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानेयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ३२

टीका—यह बढ़का है यह घटका है इस भांति एक जातिकेभी द्रव्योंका विशेष जानै ऐसेही पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंकाभी अर्थात् कहां क्या थोडा मोल है क्या बहुत मोल है इत्यादिक देशके गुण दोष जानै और बेचनेकी वस्तुओंकाभी कि, इतने कालमें इतना घटा होगा अथवा नफा होगा यह जानै तथा इस देशमें और इस कालमें घट तृण जल जव आदिसे पशु बढ़ते हैं और इससे क्षीण होते हैं इसकोभी जानै ॥ ३१ ॥ गौओंके पालनेवालेको यह और भैंसोंको पालनेवालेको यह देना चाहीये इस भांति देशकालके अनुरूप वेतन जानै और गौड दक्षिणी आदि मनुष्योंकी नानाप्रकारकी भाषा बेचनेके लिये जानै वैसेही यह वस्तु ऐसे रक्खी जाती है इसके साथ बहुत कालतक रहती है इसको जानै वैसेही यह वस्तु इस देशमें और इस कालमें इतनेमें बेची जाती है इसकोभी जानै ॥ ३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेत्तमुत्तमम् ॥ दंयाच्च सर्वभूताना-  
मन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां य-  
शस्विनाम् ॥ शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३४ ॥

टीका—धर्मसे दोषण सैकरे आदि कहे हुए प्रकारसे धनकी वृद्धिमें बडा यत्न करै और सुवर्ण आदि दानकी अपेक्षा प्राणियोंको अन्नही देवै ॥ ३३ ॥ शूद्रका तौ वेदके जाननेवाले और अपने धर्मके करनेसे यश करि युक्त गृहस्थ ब्राह्मणोंकी जो सेवा है वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि कल्याणकारक धर्म है ॥ ३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मुदुवागनहंकृतः ॥ ब्राह्मणार्थाश्रयो नित्यमुत्कृ-



द्या जातिमश्नुते ॥ ३५ ॥ एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः  
शुभः ॥ आपर्थापि हि यंस्तेषां क्रमशस्तन्निवोधतं ॥ ३३६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृशुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

टीका-बाहरी और भीतरी शौच करि युक्त और अपनी जातिकी अपेक्षासे ऊंचे द्विजातिकी सेवा करनेवाला मधुर बोलनेवाला अहंकाररहित और मुख्यता करि ब्राह्मणका आश्रय लेनेवाला और ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यका आश्रय लेनेवाला शूद्रभी अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ आपत्ति-रहित समयमें चारों वर्णोंके कर्मकी शुभविधिरूप यह धर्म कहा और आपत्तिमें जो उनका धर्म है उसको संकीर्ण सुननेके उपरांत क्रमसे सुनिये ॥ ३३६ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरममुखतनयश्रीपाण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृता-  
यां कुल्लुकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अधीर्यो रस्त्रयो वर्णोः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मण-  
स्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वित्यु-  
पायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैवं तथा भवेत् ॥ २ ॥

टीका-वैश्यशूद्रधर्मके उपरांत “ संकीर्णानां च संभवम् ” अर्थात् संकीर्णोंकीभी उत्पत्ति कहेंगे यह प्रतिज्ञा कर चुकेहैं इस्से वह कहना है क्योंकि, वर्णोंहीसे संकीर्णोंकी उत्पत्ति है और तीनों वर्णोंका मुख्य धर्म अध्ययन है और ब्राह्मणका अध्यापन कहिये पढाना सो कहते हैं ॥ ब्राह्मण आदि तीनोंवर्ण अध्ययनसे अनुभव किये हुए अपने कर्मके करनेवाले वेदको पढ़ें और इनमेंसे ब्राह्मणही अध्यापन करै क्षत्रिय वैश्य नहीं यह निश्चय है ॥ १ ॥ सब वर्णोंकी जीविकाका उपाय ब्राह्मण शास्त्रके अनुसार जानै और उनको उपदेश करै और आपही कहे हुए नियमको करै ॥ २ ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ॥ संस्कारस्य वि-  
शेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो व-  
र्णा द्विजातयः ॥ चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥

टीका-जातिकी अधिकतासे और प्रकृति कहिये कारण अर्थात् उत्पत्तिके स्थान जो हिरण्यगर्भ हैं उनके उत्तम अंगरूप कारणकी अधिकतासे और नियम जो वेदहै

उसके पढ़ने पढ़ानेसे और संस्कार जो उपनयननाम तिसकी क्षत्रियकी अपेक्षा मुख्य-  
ताके विधानसे विशेषसे और वर्णोंको पढ़ाने तथा जीविकाका उपदेश करनेमें ब्राह्मण  
ही समर्थ प्रभुहै ॥ ३ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजातिसंज्ञकहैं इन्हीं-  
के यज्ञोपवीतका विधान होनेसे और शूद्र फिर चौथा वर्ण एकजातिहै क्योंकि उसके  
यज्ञोपवीत नहीं होताहै फिर और पांचमा वर्ण नहीं है क्योंकि संकीर्ण जातिवालोंका  
तौ अश्वतर अर्थात् खिचरके समान माता पिताकी जातिसे भिन्न दूसरी जाति होतीहै  
इससे उनको वर्णत्व नहीं है यह दूसरी जातिका कहना शास्त्रमें व्यवहारके लियेहै ॥ ४ ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥ आनुलोम्येन संभूता  
जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥ स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पा-  
दितान्सुतान् ॥ सद्यशानेवं तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंमें शास्त्रकी रीतिसे व्याहीहुई समान जातिकी  
अक्षतयोनि स्त्रियोंमें अनुलोमतासे जैसे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें और क्षत्रियसे क्षत्रि-  
यामें इस क्रमसे जे उत्पन्न हुएहैं वे मातापिताकी जाति करि युक्त उसी  
जातिहीके जानने चाहिये ॥ ५ ॥ आनुलोम्य कहिये क्रममें व्यवधानरहित  
वर्णकी स्त्रियोंमें द्विजातियों करि उत्पन्न किये गये पुत्र जैसे ब्राह्मण करि  
क्षत्रियमें और क्षत्रिय करि वैश्यामें और वैश्य करि शूद्रामें उन पुत्रोंको माताकी  
हीन जातिपनके दोषसे निर्दिष्ट और पिताके सदृश पिताके सजाती नहीं मनु आदि  
कहतेहैं पिताके सदृश कहनेसे माताकी जातिसे ऊंचे और पिताकी जातिसे नीचे  
जानने चाहिये इनके नाम तो मूर्द्धावसिक्त माहिष्य करणसंज्ञक याज्ञवल्क्य आदि-  
कोंने कहेहैं और इनकी वृत्तियां उज्ञाने कही हैं जैसे हाथी घोडा तथा रथकी शिक्षा  
और शस्त्र बांधना ये मूर्द्धावसिक्तकी वृत्ति है और नाचना गाना नक्षत्रोंसे जीविका  
करना और सस्य जे धान्यहैं तिनकी रक्षा करना ये माहिष्योंकी वृत्तियां हैं और  
द्विजातिका सेवा धन धान्यका स्वामी होना राजाकी सेवा दुर्गान्तःपुरकी रक्षा करना  
ये पारश्व उग्र और करणकी वृत्तियां हैं ॥ ६ ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेप सनातनः ॥ द्व्येकान्तरासु जातानां  
धर्म्य विधीदिमं विधिम् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामर्ष्यो नाम  
जार्थते ॥ निषादः शूद्रकन्यायां र्यः पारशवं उच्यते ॥ ८ ॥

टीका—परंपरासे चली आतीहै इस लिये नित्य यह विधि अनंतर जातिकी स्त्रि-  
यामें उत्पन्नोंकी कही एकवर्णसे अथवा दोवर्णोंसे व्यवहित भार्याओंमें उत्पन्नोंकी जैसे

ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रामें और ब्राह्मणसे शूद्राम इस वक्ष्यमाण विधिको धर्म-  
युक्त जाने ॥ ७ ॥ ब्राह्मणसे व्याही हुई वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठनाम पुत्र उत्पन्न  
होताहै और व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें निषाद उत्पन्न होताहै वह दूसरे नामसे पा-  
शवभी कहा जाताहै ॥ ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥ क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तु-  
रुग्रोनामं प्रजायते ॥ ९ ॥ विप्रस्यं त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयो-  
र्द्वयोः ॥ वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेते ऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

टीका-क्षत्रियसे व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें क्रूर चेष्टायुक्त क्रूरकर्म करनेवाला क्षत्रिय  
तथा शूद्रके स्वभावकारि युक्त उग्रनाम पुत्र होताहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके क्षत्रिया आदि  
तीनि भार्याओंमें और क्षत्रियके वैश्या आदि दो स्त्रियोंमें और वैश्यके शूद्रामें तीनों-  
वर्णोंके ये छः पुत्र सवर्ण पुत्रके कार्यकी अपेक्षा अपसद कहिये निकृष्ट कहे गयेहैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ॥ वैश्यान्मागधवैदेहौ  
राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११ ॥ शूद्रादायोगवः क्षता चाण्डालश्चाध-  
मो नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रांसु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

टीका-ऐसे अनुलोमोंको कहिके प्रतिलोमोंको कहतेहैं । क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्या-  
में जातिसे सूतनाम पुत्र होताहै और वैश्यसे यथाक्रम क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें मागध  
और वैदेहनाम पुत्र होतेहैं इनकी वृत्तियाँ मनुही करि कही जाँयगी ॥ ११ ॥ शूद्रसे  
वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे आयोगव क्षता और मनुष्योंमें अधम चाण्डाल ये  
वर्णसंकर होतेहैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥ क्षत्रवैदेहकौ तद्व-  
त्प्रार्तिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥ पुत्रा ये ऽनन्तरघ्नीजाः क्रमेणो-  
क्ता द्विजन्मनाम् ॥ तां नन्तरनाम्रस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

टीका-एकांतरभी वर्णमें ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रियसे शूद्रकी  
कन्यामें उग्र ये दोनों अनुलोमतासे जैसे स्पर्श आदिके योग्यहैं तैसेही एकांतरमें  
प्रतिलोम उत्पन्न होनेपरभी शूद्रसे क्षत्रियामें क्षता वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह ये दोनोंभी  
स्पर्शके योग्य जानने योग्यहैं एकांतर उत्पन्नोंके स्पर्श आदिकी आज्ञासे अनंतर उत्पन्न  
सूत मागध और आयोगवका स्पर्श आदिका योग्यत्व सिद्ध होताहै इससे चाण्डालही  
एक प्रतिलोमज स्पर्श आदिमें निषेध किया जाताहै ॥ १३ ॥ जे द्विजातियोंके अनंतर

एकांतर और जातिकी स्त्रियोंमें अनुलोमतासे उत्पन्न पहले कहे गये पुत्र उनको हीन जातिकी माताके दोषसे माताकी जातिसे व्यपदेश्य कहिये कहनेयोग्य कहतेहैं माता पितासे भिन्न संकीर्ण होनेपरभी माताका व्यपदेश कहना माताकी जातिकी संस्कार आदि धर्मकी प्राप्तिके लियेहै ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ॥ आभीरोऽर्धकन्याया-  
र्मायोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥ आयोगवश्च क्षत्तां च चण्डाल-  
श्चार्धमो नृणाम् ॥ प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादंपसदास्त्रयः ॥ १६ ॥

टीका-ब्राह्मणसे शूद्राम उत्पन्न उग्रकन्या होतीहै उसमें ब्राह्मणसे आवृतनाम पुत्र होताहै ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न अंबष्ठानामकन्या होतीहै उसमें ब्राह्मणसे आभीरनाम पुत्र उत्पन्न होताहै शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगवीनाम कन्यामें ब्राह्मणसे धिग्वणनाम पुत्र होताहै ॥ १५ ॥ आयोगव क्षत्ता और चांडाल ये मनुष्योंमें अधमहैं ये तीनों व्युत्क्रम कहिये उलटपनमें वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रियोंमें पुत्रके कार्यसे रहित तीनों शूद्रसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एवं तु ॥ प्रतीपमे ते जायन्ते परे-  
ऽप्यंपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति  
पुंसः ॥ शूद्राजातो निषाद्यां तु संवे कुकुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

टीका-क्षत्रिया और ब्राह्मणीसे मागध और वैदेह और क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें सूत इस प्रकार प्रतिलोमतासे औरभी तीनि पुत्र कार्यसे रहित उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न जातिसे पुंस होताहै और निषादीमें शूद्रसे जो उत्पन्न हुआ वह कुकुटक नाम कहा गया ॥ १८ ॥

क्षत्रुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥ वैदेहकेन त्वम्ब-  
ष्ठ्यामुत्पन्नो वेणु उच्यते ॥ १९ ॥ द्विजातयः संवर्णासु जनयन्त्य-  
ब्रतांस्तु यान् ॥ तांसां वित्रीपरिभ्रष्टान्ब्रांत्यानिर्तिं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

टीका-शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता होताहै और क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्री उग्रा होतीहै उस क्षत्तासे उग्रामें उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहा जाताहै और वैदेहकसे तौ अंबष्ठामें और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न कन्यामें वेणु कहा जाताहै ॥ १९ ॥ द्विजाति सवर्णा स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करतेहैं वे जो यज्ञोपवीत कर्मसे हीन होतेहैं तौ उन यज्ञोपवीत न किये हुएवर्षोंकी व्रात्य इस नामसे कहै "अत ऊर्ध्व

त्रयोप्येते” यहभी कहा हुआ ब्रात्यका लक्षणहै यहभी प्रतिलोमज पुत्रके समान अयोग्य पुत्रत्व दिखानेके लिये इस संकीर्णप्रकरणमें अनुवाद किया गया ॥ २० ॥

ब्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ॥ आवन्त्यवाटधानो च पुष्पधःशैखं एवं च ॥ २१ ॥ झल्लो मल्लश्च राजन्याद्ब्रात्या-  
त्रिच्छिविरेवं च ॥ नटश्च करणश्च ॥ वैखंसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

टीका-ब्रात्य ब्राह्मणसे सवर्णा ब्राह्मणीमें पापस्वभाव भूर्जकंटकनाम उत्पन्न होताहै तैसेही आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख, उत्पन्न होतेहैं एकहीके ये देशभेदसे प्रसिद्धनामहैं ॥ २१ ॥ ब्रात्य क्षत्रियसे सवर्णामें झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड नाम उत्पन्न होतेहैं येभी एकहीके नामहैं ॥ २२ ॥

वैश्यात्तु जायते ब्रात्यात्सुधन्वाचार्य एवं च ॥ कारुपश्च विजन्मा  
च मैत्रःसात्वत एवं च ॥ २३ ॥ व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेद-  
नेन च ॥ स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

टीका-ब्रात्य वैश्यसे सवर्णा स्त्रीमें सुधन्वा, आचार्य, कारुप, विजन्म, मैत्र सात्वत, नाम होतेहैं येभी एकहीके नामहैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर स्त्रीगमन करनेसे और विवाहके योग्य नहीं ऐसी सगोत्र आदिके विवाहसे और उपनयनरूप अपने कर्मके त्यागसे वर्णसंकर नाम होताहै इस्से इस प्रकरणमें ब्रात्योका कहना योग्यहै ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ अन्योन्यव्यतिप-  
क्ताश्च तान्प्रवेक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥ सूतो वैदेहकश्चैव चण्डा-  
लश्च नराधमः ॥ मागधः क्षत्रजातिश्चैतथाऽऽयोगव एव च ॥ २६ ॥

टीका-जे संकीर्णयोनिहैं और प्रतिलोमोंसे आपसमें संबंध होनेसे उत्पन्न होतेहैं उनको विशेष करि कहौंगा ॥ २५ ॥ जिनके लक्षण कहचुकेहैं ऐसे सूत, वैदेह और मनुष्योंमें अधम चांडाल, मागध, क्षत्रजातिमें तथा आयोगव ॥ २६ ॥

एते षट्सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ॥ मार्तृजात्यां प्रसूयन्ते  
प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥ यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरान्मास्यं  
जायते ॥ आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तर्थां वाह्येष्वपि क्रमात् ॥ २८ ॥

टीका-ये पहले कहे हुए छः प्रतिलोमज अपनी योनियोंमें पुत्रकी उत्पात्ति करते

हैं जैसे शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगव कहाताहै आयोगवीही माताकी जाति वैश्यामें और प्रवर कहिये श्रेष्ठ क्षत्रिया ब्राह्मणी योनियोंमें और चकारसे अपकृष्ट कहिये हीनभी शूद्रजातिमें सर्वत्र सदृश वर्णोंको उत्पन्न करते हैं पिताकी अपेक्षा सदृशता नहीं है किंतु माताकी जातिसे क्योंकि चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंहीमें पितासे अधिक निर्दिष्ट पुत्रकी उत्पत्ति आगे कही जायगी ॥ २७ ॥ जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णोंमेंसे क्षत्रिय वैश्य दो वर्णोंके गमनमें ब्राह्मणकी अनुलोमतासे द्विज उत्पन्न होताहै और सजातियोंमें तौ द्विज उत्पन्न होताहै ऐसे बाह्योंमेंभी वैश्य और क्षत्रियसे क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रोंमें उत्कर्षका अपक्रम होताहै शूद्रसे उत्पन्न प्रतिलोमकी अपेक्षासे द्विज आदिकोंसे उत्पन्न प्रतिलोमकी प्रशस्तताके लिये यह कहा है ॥ २८ ॥

ते चापि वाह्यान्सुवहूस्ततोऽप्यधिकद्रूषितान् ॥ परस्परस्य दौ-  
रेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां वाह्यां  
जन्तुं प्रसूयते ॥ तथा वाह्यतरं वाह्याश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

टीका—वे तौ आयोगव आदिक छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें बहुत अनुलोमता-  
मेंभी अधिक दुष्ट और सत्क्रियासे बहिर्भूत पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयो-  
गव क्षत्रजातिमें अपनेसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै वैसेही क्षत्राभी आयोगवीमें  
आपसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै ऐसेही औरभी प्रतिलोमजोंमें देखना चाहिये  
॥ २९ ॥ जैसे ब्राह्मणीमें शूद्र अपकृष्ट चांडालनाम प्राणीको उत्पन्न करताहै ऐसेही  
बाह्य चांडाल आदि चारों वर्णोंमें चांडाल आदिकोंसेभी नीच पुत्र उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना वाह्या वाह्यान्तरन्पुनः ॥ हीना हीनान्प्रसू-  
यन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥ ३१ ॥ प्रसाधनोपचारज्ञमदासं  
दासैर्जीवनम् ॥ सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

टीका—प्रतिकूल वर्तमान प्रतिलोमज होतेहैं और द्विजोंके प्रतिलोमसे उत्पन्नसे  
निकृष्ट होनेके कारण बाह्य शूद्रसे उत्पन्न आयोगव क्षत्र चांडाल ये तीनि पहले श्लोकसे  
अनुवृत्ति किये जानेपर चातुर्वर्ण्यमें और स्वजातिमें ये छः ' सदृशान् ' यहां सजातिमें  
उत्पन्नभी पितासे गीहृत होनेका कथन होनेसे अपनी अपनी अपेक्षासे बाह्यान्तरोंको  
प्रत्येक पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयोगव चारों वर्णोंकी स्त्रियोंमें और  
आयोगवीमें आपसे निकृष्ट पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे क्षत्र चांडालभी प्रत्येक  
पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे बाह्य तीनि पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं तैसे अनु-

लोमजोंसे हीन वैश्य क्षत्रियसे उत्पन्न मागध वैदेह सूत अपनी अपेक्षासे हीन पहलेके समान चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंमें और सजातिमें प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए हीनभी तीनि पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं. इस भांति ये तीस होतेहैं अथवा बाह्य शब्द छः और हीन शब्द छः प्रतिलोमजोंहीको कहताहै यहाँ बाह्य चांडाल क्षत्रु आयोगव वैदेह मागध सूत छः यथोत्तर कहिये आगे आगेका उत्कर्ष होनेसे प्रतिलोमतासे स्त्रियोंमें वर्त्तमान बाह्यांतर पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसा चांडाल क्षत्रु आदि पांच स्त्रियोंमें क्षत्ता आयोगवी आदि चारिमें और आयोगव वैदेह आदि तीनिमें वैदेह मागधी सूतीमें और मागध सूतीमें सूत तौ प्रतिलोम न होनेसे प्रतिलोमतासे उत्पन्न करताही है ऐसे ये प्रतिलोमतासे पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करताहै और पुनःशब्दके कहनेसे हीन सूत आदि चांडालतक छः यथोत्तर कहिये आगे आगे अपकर्ष कहिये कम होनेसे और आनुलोम्यसेभी प्रतिलोमकी कही हुई रीतिसे अपनी अपेक्षा हीन पंद्रहही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं इस भांति ये तीस होते हैं ॥ ३१ ॥ केश चरण आदि प्रसाधन कहिये शोभित करना उसके उपचारके जाननेवाले और उदास कहिये उच्छिष्ट खाने आदि दासके कर्मसे रहित और देहके दावने आदि दासके कर्मसे जीनेवाले और पाशमें बांधनेसे मृग आदिके वधना वं दूसरी वृत्तिके जीनेवाले जिसका सैरिध्रनाम है ऐसेको " सुखवाहूरुपज्जानां " इस श्लोकमें जो आगे कहा जायगा ऐसा दस्यु आयोगव स्त्रीकी जातिमें और शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्ना स्त्रीमें उत्पन्न करताहै इसका वह मृग आदि मारना देव पितृ और औषधके लिये जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

मैत्रेयकं तु वै देहो माधूकं संप्रसूयते ॥ नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टा-  
ताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥ निर्षादो मार्गिवं सूते दशं नौकर्मजी-  
विनम् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

टीका—वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह आयोगवीमें मैत्रेयनाम मीठा बोलनेवाले पुत्रको उत्पन्न करता है जो प्रातःकाल घंटा बजाकर जीविकाके लिये राजा आदि-  
कोंकी स्तुति करता है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रमें उत्पन्न पहले कहा हुआ निषाद आयोगवीमें जिसका दूसरा नाम दश ऐसे नौकाके व्यवहारसे जीविका करने वाले मार्गवनाम पुत्रको उत्पन्न करता है जिसको आर्यावर्त्तदेशके रहनेवाले कैवर्त्त-  
नामसे कहते हैं ॥ ३४ ॥

मूर्त्तवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ॥ भवंन्त्यायोगवीध्वे-  
ते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥ कारावरो निर्षादात्तु चर्मकारः

प्रमूयते ॥ वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

टीका—सैरिंध्र, मैत्रेय, मार्गव, हीनजाति ये तीनों मृतकके बन्धु पहिरनेवाली, क्रूर, उच्छिष्ट खानेवाली आयोगवियोंमें पिताके भेदसे भिन्न पुत्र होतेहैं ॥ ३५ ॥ निषादसे वैदेहीमें उत्पन्नहुआ कारावर चर्मका काटनेवाला उत्पन्न होताहै औशनसमें काराबारोंकी चर्मका काटनाही जीविका कहीहै और वैदेहक सैरिंध्र्य भेद नाम ग्रामके बाहर बसनेवालेहैं ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वैकसारव्यवहारवान् ॥ आर्हिण्डिको निर्षादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥ चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यस-  
नवृत्तिमान् ॥ पुंक्रूर्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

टीका—वैदेहीमें चांडालसे पांडुसोपाक नाम बांसोंके व्यवहारसे जीविका करनेवाला उत्पन्न होताहै और निषादसे वैदेहीमें आर्हिण्डिक नाम पुत्र होताहै इसकी तौ बंधनके स्थानोंमें बाहरी रक्षा करनेसे आर्हिण्डिकोंकी वृत्ति औशनसमें कहीहै माता पिताके समान होनेपरभी कारावर और आर्हिण्डिककी जीविकाके भेदसे व्यपदेशका भेदहै ॥ ३७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न पुंक्रूसीमें चांडालसे उत्पन्न सोपाक नाम पापात्मा सदा साधुओं करि निर्दित मारणके योग्य अपराधका मूल मारनेयोग्यका राजाकी आज्ञासे मारना जिसकी जीविकाहै ऐसा उत्पन्न होताहै ॥ ३८ ॥

निर्षादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ॥ इमंशानगोचरं सू-  
ते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥ ३९ ॥ संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्र-  
दर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वा प्रकांशा वा वेदितव्याः स्वंकर्मभिः ॥ ४० ॥

टीका—निषादी चांडालसे अन्त्यावसायी नाम चांडाल आदिकोंसेभी अत्यंत दुष्ट इमशानमें बसनेवाले उसीकी जीविका करनेवालेको उत्पन्न करतीहै ॥ ३९ ॥ वर्ण संकरोंके मध्ये ये जातियाँ इसकी यह माता और यह पिता और इस जातिका हुआ इस भांति पिता माताके कहिकर दिखाई तैसेही गूढ अथवा प्रकट उनकी जातिके कहे हुए कर्मोंके करनेसे जाननेयोग्यहैं ॥ ४० ॥

संजातिजानन्तरजाः षट्सुता द्विर्जधर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्मा-  
णः सर्वेऽप्यर्चसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥ तपोवीर्जप्रभावेस्तु ते गच्छं-  
न्ति युंगेयुगे ॥ उत्कर्षे चार्पकर्षे च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

टीका—द्विजातियोंकी समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न तैसेही अनुलोमसे उत्पन्न जैसे



ब्राह्मणसे क्षत्रिया और वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें ऐसे छः पुत्र द्विजधर्मी यज्ञोपवीत करने योग्यहैं और द्विजातिसे उत्पन्न सूत आदि प्रतिलोमज होतेहैं वे शूद्रधर्मी हैं इनका यज्ञोपवीत नहीं होताहै ॥४१॥ सजातिसे उत्पन्न और अनंतर जातिसे उत्पन्न तपके प्रभावसे विश्वामित्रके समान और बीजके प्रभावसे ऋष्यशृंग आदिके समान सतयुग त्रेता आदि युगोंमें मनुष्योंके मध्यमें जातिके उत्कर्ष कहिये उन्नतिको प्राप्त होतेहैं और आगे कहे हुए कारणसे अपकर्ष कहिये हीनताको प्राप्त होतेहैं ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमांः क्षत्रियजातयः॥वृषलत्वं गंता लोके  
ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रकाश्चौड्रविडाः कांभोजा य-  
वनाः शकाः ॥ पारदापह्वाश्चीनाः किराताः दरदाः खंशाः॥४४॥

टीका-ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातें यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोपसे और ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हौले हौले लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥४३॥ पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड, कांभोज, यवन, शक, पारद, अपह्वव, चीन, किरात, दरद, खश ये सब क्रियाके लोपसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

मुखवाहूरुपजानां यां लोके जातयो वहिः॥म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः  
सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥४५॥ ये द्विजांनामपसदा ये चापध्वंस-  
जाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वै तैर्युद्धिजांनामेवं कर्मभिः ॥४६॥

टीका-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंकी जो जातें हैं वे क्रियाके लोप आदिसे बाह्य होगई और म्लेच्छभाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ जे द्विजांकी अनुलोमतासे उत्पन्नहैं ये छः अपसद कहे गयेहैं उनकाभी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द कर पहले कहनेसे जानना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमजहैं वेभी द्विजातिके उपकारकही आगे कहे हुए निन्दित कामोंसे जीवें ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्॥वैदेहकानां स्त्रीकार्य  
मांगधानां वाणिकपथः ॥४७॥ मत्स्यघातो निषादानां तैर्षिस्त्वा  
योगवस्य च ॥ मेदान्ध्रचुचुमद्गूनामरण्यापशुर्हिसनम् ॥४८॥

टीका-सूतोंकी जीविकाके लिये घोड़ोंका सिरवाना जोतना आदि सारथीका कर्म है और अंबष्ठोंका रोगशांति आदि चिकित्सा और वैदेहकोंका अंतःपुरकी रक्षा करना और मागधोंका स्थलमार्गसे वाणिज्य करना कर्म है ॥ ४७ ॥ कहे हुए निषादोंका

मछली मारना और आयोगवका काष्ठ छीलना और मेद, अंध, चुंचु, तथा महु-  
ओंका जंगली पशुओंका मारना चुंचु और महु, वैदेहक और बंदीकी स्त्रियोंमें ब्राह्म-  
णसे उत्पन्न बौधायन कर कहे हुए जानने चाहिये क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न बंदकी  
स्त्री उसी उक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य है ॥ ४८ ॥

क्षत्रुग्रपुष्कसानां तु विलोकौवधवन्धनम् ॥ धिग्बणानां चर्मकार्यं  
वेर्णानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥ चैत्यदुर्मश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु  
च ॥ वसेयुरेते विज्ञाना वृत्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

टीका—क्षत्र आदिकोंका विलमें बसनेवाले गोह आदिका मारना और बांधना और  
धिग्बणोंका चर्मका बनाना और बेंचना और वेणोंका कांस्य मुरज आदि वाद्य भांडोंका  
बजाना ॥ ४९ ॥ ग्राम आदिके समीप प्रसिद्ध वृक्ष चैत्यदुर्म हो उसके नीचे और इमशान  
पर्वत तथा वनके समीप ये प्रकाशक अपने कर्मोंसे जीविका करते हुए वास करें ॥ ५० ॥

चण्डालश्वपचानां तु वहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्रार्थं कर्त्तव्या  
धनमेषां श्वर्गदंभम् ॥ ५१ ॥ वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु  
भोजनम् ॥ काष्ण्यायसर्मलंकारः परिव्रज्या च निरत्यशः ॥ ५२ ॥

टीका—चांडाल तथा श्वपचोंका निवास ग्रामके बाहर होय और ये पात्ररहित  
कर्त्तव्य हैं और जिस लोह आदिके पात्रमें उन्होंने भोजन किया होय वह पात्र संस्कार  
करिके भी नहीं ग्रहण करनेयोग्य है और इनका धन कुत्ते गधे हैं बैल आदि नहीं  
और कपडे तौ इनके मृतकके बख हैं और फूटे सरवाआदि मटीके पात्रमें भोजन और  
लोहेके कडे आदि इनका गहना है और सदा भ्रमण करना इनका काम है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैः समर्थमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथंस्ते-  
षां विवाहः संहशैः संह ॥ ५३ ॥ अन्नमेषां पराधीनं देयं स्या-  
द्भिन्नभाजने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

टीका—धर्म करनेके समय चांडाल और श्वपाकोंके साथ दर्शन आदि व्यवहार न  
करै और उनका तौ ऋण देना धन लेना आदि व्यवहार तथा विवाह समान जाति-  
वालोंके साथ आपसमें होय ॥ ५३ ॥ इनका अन्न पराये आधीन करना चाहिये  
साक्षात् इनको न देवै किन्तु फूटे पात्रमें नौकरोंसे दियवै और वे तौ रात्रिके समय  
ग्राम तथा नगरमें न घूमें ॥ ५४ ॥

दिवां चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ॥ अवान्धव चैव शवं नि-

हरैर्युरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥ वर्ध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृ-  
पाज्ञया ॥ वध्यवासांसि गृहीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

टीका-दिनके समय ग्राम नगर आदिमें खरीदने बँचने आदि कामके लिये राजाकी आज्ञासे चिह्न करि अंकितहो विचरै और जिसका कोई स्वामी नहीं है ऐसे मृतकको ग्रामसे लेजाय यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ५५ ॥ मारनेयोग्योंको शास्त्रकी आज्ञासे शूली आदिपर चढ़ाने करि सदा राजाकी आज्ञासे मारै और उनके कपड़े गहने आदि ले लेंवै ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञानं नरं कलुषयोनियम् ॥ आर्यरूपमिवाचार्यं कर्म-  
भिः स्वर्विभावंयेत् ॥ ५७ ॥ अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रि-  
यात्मता ॥ पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनियम् ॥ ५८ ॥

टीका-वर्णसे रहित संकरसे उत्पन्न मनुष्यको जिसको लोग वैसा नहीं जानते हैं इसीसे आर्यके समान और वास्तवमें वाय नहीं ऐसेको जातिके अनुरूप निदित चेष्टा-  
ओंसे जो आगे कही जायगी निश्चय करै ॥ ५७ ॥ निष्ठुर होना कठोर बोलना हिंसा करना और शास्त्रमें कहे हुएकान करना संकर जातिके मनुष्यको लोकमें प्रकट कर देते हैं ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेवं वा ॥ नैकैश्चन दुय्योनिः  
प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥ कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्या-  
द्योनिंसंकरः ॥ संश्रयत्येवं तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा वैदु ॥ ६० ॥

टीका-यह संकरसे उत्पन्न दुष्ट योनि पिताके दुष्ट स्वभावको सेवन करताहै वा माताके अथवा दोनोंके यह अपने कारणको कभी नहीं छिपा सकता है ॥ ५९ ॥ चडेकुलमें उत्पन्न हुएभी जिस पुरुषका गुण योनि संकर होता है वह मनुष्य थोड़े बहुत पिताके स्वभावका सेवन करताही है ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः संह तद्राष्ट्रं  
क्षिप्रमेवं विनश्यति ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा देहत्यागोऽ-  
नुपस्कृतः ॥ स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

टीका-जिस देशमें वर्णोंके विगाडनेवाले ये वर्णसंकर होते हैं वह देश वहाँके निवासियों समेत शीघ्र नाशको प्राप्त होताहै तिससे राजाको वर्णसंकर दूर करनेयोग्य है ॥ ६१ ॥ गो ब्राह्मण स्त्री बालक इनमेंसे किसीकी रक्षाके लिये प्राण जाय तौ अतिलोमसे उत्पन्नोका स्वर्गकी प्राप्तिका कारण है ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं सामासिकं धर्मं  
चातुर्वर्ण्येऽर्ब्वीन्मनुः ॥ ६३ ॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचे-  
त्प्रजायते ॥ अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासत्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

टीका—हिंसाका त्याग, यथार्थ कहना, अन्यायसे पराये धनका न लेना, मृत्तिका  
जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना इस भांति चारोंवर्णों करि करनेयोग्य धर्म  
मनुने कहा है प्रकरणकी सामर्थ्यसे संकीर्णोंकामी यही धर्म जानने योग्य है ॥ ६३ ॥  
अब तुल्य सवर्णा स्त्रियोंमें यह जो कहा लक्षण है जिसके बिनाभी ब्राह्मणत्व आदि  
दिखानेको कहते हैं ॥ ब्राह्मणसे शूद्रमें पारशवनाम वर्ण उत्पन्न होता है इस  
सामर्थ्यसे स्त्रीरूप होता है वह स्त्री जो ब्राह्मणको व्याही हुई कन्याहीको उत्पन्न करै  
वह कन्याभी अन्यब्राह्मण करि व्याही हुई हो बेटीहीको जैने वह बेटीभी औरको  
व्याही जाय ऐसेही सातमें जन्ममें वह पारशवनाम वर्ण बीजकी प्रधानतामें ब्राह्मण-  
त्वको प्राप्त होता है अथात् सातमें जन्ममें ब्राह्मण होजाता है ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातमेवं  
तुं विद्याद्वैश्यात्तथैवैच ॥ ६५ ॥ अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यद-  
च्छया ॥ ब्राह्मण्यामप्यनार्याञ्च श्रेयस्त्वक्केति चेद्वैवेत् ॥ ६६ ॥

टीका—ऐसे पहले कही हुई रीतिसे शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होता है और ब्राह्मण  
शूद्रताको प्राप्त होता है ब्राह्मण यहाँ ब्राह्मणसे शूद्रमें उपन्न पारशव जानना चाहिये  
वह जो पुरुष केवल शूद्रके व्याहसे और पुरुषहीको उत्पन्न करै वह भी ऐसे सातमें  
जन्मको प्राप्त केवल शूद्रताको बीजके निकर्षके कारण क्रमसे प्राप्त होता है ऐसे  
क्षत्रियसे और वैश्यसे शूद्रमें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष जानै और क्षत्रियसे उत्पन्नके  
उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें जानना चाहिये और वैश्यसे उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष  
तीसरे जन्ममें जानने योग्य है इसी न्यायसे ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष  
पांचमें जन्ममें और क्षत्रियमें उत्पन्नके तीसरेमें और क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नके तीस-  
रेहीमें जानने योग्य है ॥ ६५ ॥ एक बिना व्याही हुईभी शूद्रमें ब्राह्मणसे यदच्छा  
करि उत्पन्न और दूसरा ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न इन दोनोंमें कौनसा उत्पन्न अच्छा है  
कभी यह संदेह होय और संशयका कारण होय तौ जैसे बीजकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणसे  
शूद्रमें उत्पन्न साधु शूद्र होता है ऐसेही क्षेत्रकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणीमेंभी शूद्रसे उत्पन्न  
यह क्या बात है जो साधु शूद्र न होय ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यादायौ भवेद्भूणैः ॥ जातोऽप्यनार्यादा-

र्यायामनार्य ई<sup>३</sup> ति निश्चयः ॥६७॥ तां तु भावप्यसंस्कार्या वि<sup>३</sup> ति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ वैगुण्यार्जन्मनःपूर्वं उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

टीका—वहाँ निश्चय करते हैं ॥ शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न स्मृतिमें कहे हुए किये  
गये पाकयज्ञ आदि गुणों करिके युक्त श्रेष्ठ होता है और शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न  
प्रतिलोमतासे उत्पन्न होनेके कारण शूद्रोंके धर्ममें भी अधिकारी न होनेसे श्रेष्ठ नहीं है  
यह निश्चय है ॥ ६७ ॥ पारशव और चांडाल दोनों यज्ञोपवीत करनेयोग्य नहीं हैं  
यह शास्त्रकी मर्यादा व्यवस्थित है पहला पारशव शूद्रासे उत्पन्न होनेके कारण  
जातिकी विगुणतासे उपनयन करनेयोग्य नहीं है प्रतिलोमतासे शूद्र करि ब्राह्मणीमें  
उत्पन्न होनेसे दूसरा हुआ इससे उपनयन योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुवीजं चै<sup>२</sup> वै सुक्षेत्रे जातं संपद्यते तथा ॥ तथाऽर्यो<sup>३</sup> जात आं-  
र्यायां सर्वे संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥ वीजमे<sup>३</sup> के प्रशंसति क्षेत्रमन्ये  
मनीषिणः ॥ वीजं क्षेत्रे तथै<sup>३</sup> वान्ये तत्रे<sup>३</sup> यं तु<sup>३</sup> व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

टीका—जैसे सुंदर बीज सुंदर खेतमें उत्पन्न भरापूरा होता है ऐसेही द्विजातिसे  
सर्वणा द्विजातिकी स्त्रीमें अनुलोमतासे क्षत्रिया वैश्यामें उत्पन्न वह वर्णसंस्कार और  
क्षत्रियवैश्यसंस्कार और सब श्रौतस्मार्त्तसंस्कारके योग्य हैं और पारशव तथा चांडाल  
संस्कार योग्य नहीं हैं यह पहले कहे हुएकी दृढताके लिये कहा है ॥ ६९ ॥ कोई  
पंडित बीजकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि हरिणी आदिमें उत्पन्न ऋष्यशृंग आदिक  
ब्रह्ममुनित्व देखा जाता है और दूसरे फिरि क्षेत्रकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि क्षेत्रके  
स्वामीका पुत्रत्व देखा जाता है और अन्य फिरि बीज क्षेत्र दोनोंकी प्रशंसा करते हैं,  
क्योंकि सुबीजकी सुक्षेत्रमें समृद्धि देखी जाती है इस मतभेदमें वक्ष्यमाण यह  
व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ ७० ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरे<sup>३</sup> विनश्यति ॥ अवीजकमपि क्षेत्रं केवलं  
स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥ यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽ-  
भवन् ॥ पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशंस्यते ॥ ७२ ॥

टीका—ऊपरके प्रदेशमें बोया हुआ बीज फलको न देकर बीचहीमें नष्ट होजा-  
ता है और सुंदरभी खेत बीजरहित केवल स्थण्डिलही होता है धान्य नहीं उत्पन्न  
होता है तिससे प्रत्येककी निंदासे “सुबीजं चैव सुक्षेत्रे” यह पहले कहा हुआ है  
तिससे दोनोंकी मुख्यता अभिमत है ॥ ७१ ॥ अब बीजकी प्राधान्यताके पक्षमें

दृष्टत कहते हैं जिससे बीजकी प्रधानता करिके तिर्यक जाति हरिषी आदिमें उत्पन्न भी ऋष्यशृंग आदि मुनित्वको प्राप्त हुए और पूजित हुए और नमस्कारकी योग्यता आदिसे वेदके ज्ञान आदिसे प्रशस्त वाणी करि स्तुति किये गये तिससे बीजकी प्रशंसा करतेहैं ऐसे बीजकी प्रधानता हुई बीज और योनिके मध्यमें बीजोत्कृष्टजाति प्रधान होतीहै यह भली भांति जानना चाहिये ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्य चानार्यकर्मिणम् ॥ संप्रधार्याब्रवीद्धाता  
न संमौ नासंमावि<sup>३</sup>ति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणां ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्म-  
ण्यवस्थिताः ॥ ते<sup>३</sup> सम्यगुर्पजीवेयुः षट् कर्मणि यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥

टीका—द्विजातिके कर्म करनेवाले शूद्रको और शूद्रके कर्म करनेवाले द्विजा-  
तिको ब्रह्माने विचार करिके न समहै न असमहै यह कहा जिससे द्विजातिके कर्म  
करनेवालाभी शूद्र द्विजातिके समान नहीं होताहै क्योंकि उस अनधिकारीका  
द्विजातिके कर्मोंके करनेमें उनकी समता नहीं है ऐसेही शूद्रके कर्म करनेवालाभी  
द्विजाति शूद्रके समान नहीं होताहै क्योंकि निषिद्धके सेवनसे जातिके उत्कर्षका  
नाश नहीं होताहै और न असमहै क्योंकि निषिद्ध आचरणसे दोनोंकी समता  
होतीहै तिससे जिसको जो कर्म गहिंतेहै उसको वह न करना चाहिये यह  
संकरपर्यंत वर्णोंके धर्मका उपदेशहै ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंके आपद्धर्मका प्रतिपादन  
करते हुए कहते हैं ॥ जे ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके कारण ब्रह्मके ध्यानमें निष्ठहैं और  
अपने कर्मोंके करनेमें लगेहैं वे आगे कहे जायंगे ऐसे अध्यापन आदि षट् कमाका  
क्रमसे भलीभांति करै ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं यार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं श्रैवं षट् क-  
र्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥ षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि<sup>३</sup> कर्मणि  
जीविका ॥ यार्जनाध्यापने चै<sup>३</sup> वं विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

टीका—उन कर्मोंको कहतेहैं अंगसहित वेदका पढना तथा पढाना और यजन  
याजन, दान और प्रतिग्रह ये छः कर्म ब्राह्मणके जानने योग्यहैं ॥ ७५ ॥ इस  
ब्राह्मणके इन अध्यापन आदि छः कर्मोंमेंसे याजन अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह ये  
तीनि कर्म जीविकाके लिये जानने योग्यहैं ॥ ७६ ॥

त्रयोर्धर्मानिर्वर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षेत्रियं प्रति ॥ अध्यापनं याजनं च तृती-  
यश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥ वैश्यं प्रति तथै<sup>३</sup> वते निर्वर्तन्नि<sup>३</sup>ति स्थि-

तिः ॥ न तौ<sup>१२</sup> प्रति हि<sup>१३</sup> तान्धर्मान्मनुराहं प्रजापतिः ॥ ७८ ॥

टीका-ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, नाम जीविकाके अर्थ नहीं होते हैं अध्ययन, याग, दान तौ उसकेभी होतेहैं ॥ ७७ ॥ जैसे क्षत्रियके अध्यापन याजन और प्रतिग्रह निवृत्त होतेहैं वैसेही वैश्यकेभी यह शास्त्रकी व्यवस्थाहै जिससे मनु और प्रजापति इन दोनोंने क्षत्रिय वैश्योंप्रति वे जीविका निमित्त-कर्म कर्त्तव्यत्वसे कहे ऐसे वैश्यकेभी अध्ययन याग और दान होतेहैं ॥ ७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ॥ अजीवनार्थं धर्मस्तु  
दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥ वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च  
रक्षणम् ॥ वार्ता कर्मैवं वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

टीका-शस्त्र खड्ग आदि और अस्त्र बाण आदि इनका धारण प्रजाकी रक्षाके लिये क्षत्रियका जीविकाके लियेहै और वाणिज्य पशुओंकी रक्षा खेती ये कर्म वैश्यके जीविकाके लियेहैं और इन दोनोंके धर्मके लिये दान अध्ययन और यज्ञ होतेहैं ॥ ७९ ॥ ब्राह्मणका वेद पढाना और क्षत्रियका प्रजाकी रक्षा और वैश्यका वाणिज्य तथा पशुओंकी रक्षा ये इनकी जीविकाके लिये कर्मोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ८० ॥

अजीवस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ॥ जीवैर्क्षत्रियधर्मेण  
सं ह्यस्यै प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥ उभाभ्यामप्यजीवस्तु कथं स्यादिति  
चेद्भवेत् ॥ कृषिगोरक्षमास्थाय जीवैर्द्रैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥

टीका-अब आपद्धर्मोंको कहतेहैं ॥ ब्राह्मण कहे हुए अध्यापन आदि अपने कर्मसे नित्य कर्मोंका करना और कुंडुबके पालनपूर्वक न जीविका करि सकता हुआ ग्राम नगरकी रक्षा आदि क्षत्रियके कर्मसे जीविका करे जिससे क्षत्रियका धर्म इसकी निकट वृत्तिहै ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण दोनों अपनी और क्षत्रियकी वृत्तिसे न जीविका करता हुआ किस प्रकारसे वृत्ति यह जो संदेह होय तौ खेती और पशुरक्षाका आश्रय लेकर वैश्यवृत्तिको करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ॥ हिंसांप्रायां पं-  
राधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥ कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा  
वृत्तिः सद्विर्गाहता ॥ भूमिं भूमिशर्यांश्च वर्हन्ति काष्ठमयोर्मुखम् ८४

टीका-ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य वृत्तिसेभी जीविका करता हुआ जिसमें बटुगसे जीवोंकी हिंसा अधिक होती होय ऐसी बलीवर्द भादिके पराधीन खेतीको यत्नसे त्याग

करै इसीसे पशुपालन आदिके न होनेमें खेती करनी चाहिये यह देखना चाहिये क्षत्रि-  
योपि इसके कहनेसे यह जाना गया कि, क्षत्रियभी अपनी वृत्तिके न होनेपर वैश्यकी  
वृत्तिसे निर्वाह करै ॥ ८३ ॥ यह अच्छी जीविकाहै कोई खेतीको ऐसा मानतेहैं परंतु  
वह जीविका सज्जनों करि निर्दितहै कारण यह है कि, हलकुदाल आदि लोहके लगे  
हुए काष्ठसे भूमिकी और भूमिमें स्थित जीवोंकी हत्या होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्यर्जतो धर्मनैपुणम् ॥ विट्पण्यमुद्ध-  
तोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥ सर्वान्रसानपोहेत कृतात्रं च  
तिलैः सह ॥ अश्मनो लवणं चैवं पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मण और क्षत्रियको अपनी वृत्तिके न होनेपर धर्ममें कुशलताको छोडि जो  
वैश्य वेंचते हैं उन वस्तुओंको आगे कही हुई वर्जन करने योग्य वस्तुओंको छोडि धन  
वढानेवाली वस्तु बेचनी चाहिये ॥ ८५ ॥ उन वर्जनीय वस्तुओंको कहतेहैं सब रसोंको  
तथा सिद्ध अन्न कहिये पूरी आदि तिल पाषाण नोन पशु मनुष्य इन सबोंको न बेंचै ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवरं रक्तं शोणक्षौमाविकानि च ॥ अपि चैत्स्युरं रक्तानि  
फलमूले तथोषधीः ॥ ८७ ॥ अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गर्न्धाश्च  
सर्वशः ॥ क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुंडं कुशान् ॥ ८८ ॥

टीका—सब तागोंसे बने वस्त्र कुसुम आदिके रंगे हुए न बेंचै और सन तथा अल-  
सीके तागोंसे बने हुए तथा भेडके रोमोंसे बने हुए चाहे लालभी न होय तिसपरभी  
न बेंचै तैसेही फल मूल और गुडूची आदिको न बेंचै ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष,  
मांस, सोम, दूध, दही, घी, तेल, गुड, डाम और सुगंधयुक्तसब कपूर आदि माक्षिक  
( शहद ) मोम इन सबोंको न बेंचै ॥ ८८ ॥

औरण्यांश्च पशून्सर्वान्दांष्ट्रिणंश्च वयांसि च ॥ मद्यं नीलीं च ली-  
क्षां च सर्वांश्च कशपांस्तथा ॥ ८९ ॥ कामसुत्याद्य कृष्यां तु स्व-  
यमेवं कृषीवलः ॥ विक्रीणीतं तिलाच्छूद्रान्धर्मोर्थमचिरस्थितान् ९०

टीका—सब जंगली पशु हाथी घोडा आदि और दंष्ट्री कहिये सिंह आदि और पक्षी  
मद्य, लाख और एकरुरवाले घोडा आदिकोंको न बेंचै ॥ ८९ ॥ किसान आप  
जोतनेसे उत्पन्न कर दूसरी वस्तुके साथ मिले हुए तिलोंको उत्पन्न होतेही लाभके  
लिये कालांतरको न देखि धर्मके निमित्त इच्छासे बेंचै ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यञ्जनादानार्थदैन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः श्वविष्टार्या



पितृभिःसंह मंजति ॥ ९१ ॥ सर्वःपतति मांसेन लाक्ष्या लवणे-  
न च ॥ त्र्यहेण शूद्रा भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

टीका-भोजन उबटने तथा दानके सिवाय जो और निषिद्ध विक्रय आदि जो तिलोका करता है वह उस पापसे पितरों समेत कृमि होके कुत्तेकी विश्रामें डूवताहै ॥ ९१ ॥ मांस, लाख और लवणके बेचनेसे ब्राह्मण उसी क्षण पातित होताहै और दूधके बेचनेसे तीन दिनोंमें शूद्र होजाताहै ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिहे कामतः ॥ ब्राह्मणः सर्तरात्रेण वैश्य-  
भावं नियच्छति ॥ ९३ ॥ रसां रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥  
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तर्त्समाः ॥ ९४ ॥

टीका-ब्राह्मण कहे हुए मांस आदिकोंसे अन्य निषिद्ध बेचनेकी वस्तुओंकी इच्छासे प्रमादके बिना दूसरी वस्तुके साथ सात रात्रि तक बेचनेसे वैश्य होजाता है ॥ ९३ ॥ रस कहिये गुड आदि घी आदि रसोंसे बदला करने योग्यहै और नोनका दूसरे रससे बदला न करै और सिद्ध अन्नका कच्चे अन्नसे बदला करै और तिलोका धान्यसे बदला करै और धान्यका धान्यसे अर्थात् प्रस्थ प्रमाणसे प्रस्थ इस प्रकार उनके समान बदला करै ॥ ९४ ॥

जैविदेते न राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥ न त्वेव ज्यायसीवृत्ति-  
माभिर्मन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥ यो लोभादधर्मो जात्या जीविदुत्कृ-  
ष्टकर्माभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका-आपत्तिको प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये निषिद्धभी रस आदिके बेचनेसे वैश्यके समान जीविका करै और फिर ब्राह्मणकी जीविका कभी न करै केवल क्षत्रियही नहीं वैश्य आदिभी अन्य न करै ॥ ९५ ॥ जो निकृष्ट जाति लोभसे उत्कृष्ट जातिके लिये कहे हुए कर्मोंसे जीविका करै उसका सर्वस्व लेकर राजा उसी समय देशसे निकाल देवै ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारुष्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन्हिं स-  
द्यःपतति जातितः ॥ ९७ ॥ वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि  
वर्त्तयेत् ॥ अनाचरन्नकार्याणि निर्वर्त्तत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

टीका-विगुण कहिये बिगडा हुआभी अपना कर्म करनेको योग्य है और संपूर्णभी

पराया कर्म करना उचित नहीं है जिसे दूसरी जातिके लिये कहेहुए कर्मसे जीविका करता हुआ उसी क्षणसेही अपनी जातिसे पतित होताहै ॥९७॥ अपनी वृत्तिसे जीविका करनेको असमर्थ वैश्य द्विजातिकी सेवारूप शूद्रकी और वृत्तिसे उच्छिष्ट भोजन आदिको न करता हुआ वरै और आपत्तिके दूरि होनेपर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होय ॥ ९८ ॥

अशेषनुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ॥ पुत्रदारात्ययं प्राप्तो  
जीवित्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते  
द्विजातयः ॥ तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च १०० ॥

टीका—द्विजातिकी सेवा करनेको असमर्थ और क्षुधासे नष्ट होगयेहैं पुत्र कलत्र जिसके ऐसा शूद्र सूत्रकार आदिकोंके कर्मोंसे जीवै ॥ ९९ ॥ जिन कर्मोंके करनेसे द्विजातिकी सेवा होय उन काष्ठतक्षण आदि कर्मोंको और शिल्पों और चित्र बनाना आदि नाना प्रकारके शिल्पोंके कामोंको करै ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सी-  
र्दन्निभं धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वैनयं  
गर्तः ॥ पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ २ ॥

टीका—जीविका न होनेसे पीडित दुर्बलताको प्राप्त हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यकी वृत्तिको न करता हुआ विगडाभी अपना धर्म श्रेष्ठ है यह कहनेके कारण अपनीही वृत्तिमें स्थित इस आगे कही हुई वृत्तिको करै इस्से विगडा प्रतिग्रह आदि अपनी वृत्तिके न होनेपर पराई वृत्तिका आश्रय लेना जानिये ॥ १ ॥ आपत्तिमें प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब निन्दिततर और निन्दिततम मनुष्योंसे क्रमसे दान लेवै जिसे पवित्र गंगा आदि गलीके जल आदिसे दूषित होतेहैं यह शास्त्रकी मर्यादासे नहीं हो सकताहै ॥ २ ॥

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गार्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्रां-  
णां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ ३ ॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्न-  
मंति यतस्ततः ॥ आकाशमिव पङ्केन नैस पापेन लिप्यते ॥ ४ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको आपत्तिसमयमें निन्दित अध्यापन याजन और प्रतिग्रहसे अधर्म नहीं होताहै कारण यह है कि, वे स्वभावसे पवित्र होनेके कारण अग्नि और जलके शुल्यहैं ॥ ३ ॥ प्राणके नाशको प्राप्त जो प्रतिलोमजसे लेकर धन खाताहै वह कीचसे आकाशके समान पापसे लिप्त नहीं होताहै ॥ ४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्भुक्षितः ॥ न चालिप्येत पापेन  
क्षुप्रतीकारमाचरन् ॥ ५ ॥ श्रमांसमिच्छन्नातोऽत्तु धर्माधर्म-  
विचक्षणः ॥ प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ ६ ॥

टीका-अजीगर्तनाम ऋषि भ्रुवाहो शुनःशेषनाम पुत्रको आप वेंचता भया यत्नमें  
सौ गौओंके लाभके लिये यज्ञस्तंभमें बांधिकै मारी हुई हो मारनेका आरंभ किया  
क्षुधा दूर करनेके लिये न वैसे करता हुआ पापसे लिप्त हुआ यह तो शुनःशेषके  
आख्यानमें बहूच ब्राह्मणमें स्पष्ट कहाहै ॥ ५ ॥ धर्म अधर्मका जाननेवाला वामदे-  
वनाम ऋषि क्षुधासे पीडित हो प्राणत्राणके लिये कुत्तेके मांसको खानेकी इच्छा करता  
हुआ दोषसे लिप्त न हुआ ॥ ६ ॥

भरद्वाजःक्षुधार्तस्तु संपुत्रो विजने वने॥बंही गौः प्रतिग्रहाह वृ-  
धोस्तर्क्ष्णो महातपाः ॥ ७ ॥ क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः  
श्वजाघनीम् ॥ चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ८ ॥

टीका-बडे तपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रसमेत निर्जान वनमें वसिकैक्षुधासे पीडितहो  
वृधुनाम बढईसे बहुतसी गौवें दानमें लीं॥७॥धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्र ऋषिने  
क्षुधासे पीडित हो चांडालके हाथसे लेकर कुत्तेकी जघनके मांसकी खानेकी इच्छा की ८

प्रतिग्रहाद्याजनाद्रा तथैवाध्यापनादीपि॥प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रत्यं  
विप्रस्य गौहितः ॥ ९ ॥ याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृता-  
त्मनाम् ॥ प्रतिग्रहस्तु क्रियेते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

टीका-निंदितभी अध्यापन याजन प्रतिग्रहोंमेंसे ब्राह्मणको निषिद्ध दान लेना  
निकृष्ट है और परलोकमें नरकका कारण है तिस्से आपत्तिमें पहले निंदित अध्या-  
पन और याजनमें प्रवृत्त होना चाहिये उनके असंभवमें तौ असत्प्रतिग्रह लेना  
चाहिये इस लिये यह कहा है ॥ ९ ॥ इसमें कारण कहते हैं ॥ याजन और अध्या-  
पन आपत्तिमें और अनापत्तिमें उपनयनसे संस्कार कियेहुए द्विजातियोंहीको  
कराये जाते हैं और प्रतिग्रह तौ निकृष्ट जाति शूद्रसेभी किया जाता है इस्से वह दोनों  
निंदित नहीं हैं ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्ये नो याजनाध्यापनैः कृतम्॥प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्या-  
गेन तपसैव च ॥११॥ शिलोच्छर्मप्याददीत विप्रोऽजीवन्त्यतस्त-  
तः ॥ प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युच्छैः प्रशंस्यते ॥ १२ ॥

टीका—पापके ग्रहणसे असत्प्रतिग्रह याजन और अध्यापनसे जो उत्पन्न पापहै वह प्रायश्चित्तके प्रकरणमें आगे कहे हुए क्रमसे जप और होमसे नाश होताहै और असत्प्रतिग्रहसे उत्पन्न पाप तौली हुई द्रव्य करिके महीने भरतक गौओंके स्थानमें दूध पीकर रहै इत्यादिक आगे हुए तपसे दूर होताहै ॥ ११ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविकाको न करता हुआ ब्राह्मण जहाँ तहाँसे अर्थात् उपपातकी आदिकोंसेभी शिलोच्छ्र ग्रहण करै और उसके संभव होनेपर असत्प्रतिग्रह न करै जिस्से असत्प्रतिग्रहसे शिल उच्चमहै धान्यकी वालोंके बीननेको शिल कहते हैं उच्छ्र उससेभी श्रेष्ठहै एक एक धान्य बीनकर इकट्ठे करनेको उच्छ्र कहतेहैं ॥ १२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ॥ यांच्यः स्यात्स्रा-  
तकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमंमहति ॥ १३ ॥ अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरैर्जा-  
विकमेवं च ॥ हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ १४ ॥

टीका—धन न होनेके कारण कर्मके लिये अथवा कुटुंबके लिये दुःख पाते हुए ज्ञातक ब्राह्मणोंकरि सुवर्ण चांदीसे भिन्न धान्य वस्त्र आदि कुप्य धन और यज्ञ आदिके उपयोगी सुवर्ण आदिभी आपत्तिके प्रकरणसे शास्त्रसे बाहर चलनेवाला क्षत्रियभी माँगनेयोग्य होताहै और जो देनेकी इच्छा न करै कृपणतासे निश्चय किया हुआ वह त्यागनेयोग्यहै अर्थात् नहीं माननेयोग्यहै और मेघातिथि गोविंदराज दोनों टीकाकार लिखतेहैं कि, वह त्यागके योग्यहै अर्थात् उसके देशमें न बसना चाहिये ॥ १३ ॥ अकृत कहिये विना बोयाहुआ खेत कृत कहिये बोये हुएसे प्रतिग्रह कहिये दान लेनेमें दोषरहितहै तैसेही गौ, बकरा, मेढा, सोना, धान और सिद्धान्न कहिये परिपक्व अन्न, इनमेंसे पहिला पहिला दोष रहितहै तिससे तौ इनमें पहले पहलेके न होनेमें परपर जानिये ॥ १४ ॥

सैत वित्तांगमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥ प्रयोगः कर्मयोग-  
श्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ १५ ॥ विद्या शिल्पं भूतिः सेवां गौरक्ष्यं  
विपणिः कृषिः ॥ धृतिर्भैक्ष्यं कुंसीदं च दर्शं जीवन्हेतवः ॥ १६ ॥

टीका—दाय जो भागहै तिसको आदि लेकर सात प्रकारके धनके आगम (आमदनी) धनके अधिकारके अनुसारं धर्मयुक्तहैं उनमें दाय वंशके क्रमसे आये हुए धनको कहतेहैं और लाभ निधिआदिकी प्राप्तिको अथवा मित्रता आदिसे प्राप्त धनको कहतेहैं और क्रय प्रसिद्धहै ये तीनि चारों वर्णोंके धर्मसंबंधी हैं और जय-धन कहिये विजय करनेसे प्राप्त क्षत्रियका धन धर्मसंबंधीहै, और प्रयोग वृद्धि

आदिके धनका और कर्मयोग कहिये खेती और वाणिज्य ये प्रयोग वैश्यके धर्मसंबंधीहैं और सत्प्रतिग्रह ब्राह्मणका धर्मसंबंधीहैं ऐसे इन्होंका धर्मत्व बचनसे इनक अभावमें आपत्तिरहित समयमें कहे हुए अन्य जीविकाके कार्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये और उनके अभावमें आपत्तिमें कहे हुएओंमें प्रवृत्त होना चाहिये इस लिये यह यहाँ कहाहै ॥ १५ ॥ आपत्तिके प्रकरणमें "जीवनहेतवः" अर्थात् जीवनेके कारण इस कहनेसे इनके मध्यमें जिस वृत्तिसे जिसका जीवन आपत्तिरहित समयमें निषिद्धहै उस वृत्तिसे उसको आपत्तिकालमें जीवनेकी आज्ञा दी जातीहै जैसे ब्राह्मणको भृति सेवा आदि ऐसेही शिल्प आदिमेंभी जानिये और विद्या कहिये वेदविद्याको छोड़के वैद्य तर्क विषया दूर करना आदि विद्या सबोंको आपत्तिकालमें जीवनेके लिये दोष नहीं है शिल्प कहिये लिखना आदि करना और भृति कहिये प्रेष्यभावसे नौकरीका द्रव्य लेना और सेवा कहिये पराई आज्ञाका करना और गौओंकी रक्षा कहिये पशुओंका पालना और विपणि कहिये दूकान करना और खेती अपने हाथसे की हुई और धृति कहिये संतोष उसके होनेपर थोड़ेसेभी जीवन होताहै और भिक्षु कहिये भिक्षाका संग्रह और कुसीद कहिये व्याजके लिये धन देना इन दश जीवनके उपायोंसे आपत्तिमें जीवना चाहिये ॥ १६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्प्राप्यसेऽल्पिकाम् ॥ १७ ॥ चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ॥ प्रजारक्षन्परं शक्त्या किं त्विपात्प्रतिमुच्यते १८ ॥

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय व्याज आदिके धनको आपत्तिकालमें भी न लगावै किन्तु निकृष्ट कर्म करनेवालेके लिये धर्मके निमित्त थोड़ेसेभी व्याज देंवै ॥ १७ ॥ अब राजाओंका आपद्धर्म कहतेहैं राजाका धान्योंमें आठवाँ भाग होताहै इत्यादिक कह चुके हैं वह आपत्तिकालमें धान्य आदिका चौथाभी भाग करके लिये लेता हुआ और परम शक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ अधिक कर लेनेके पापसे युक्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य न हवेस्यात्पराङ्मुखः ॥ शस्त्रेण वैश्यान्-  
क्षित्वां धर्म्यमाहारयेद्गलिम् ॥ १९ ॥ धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विशं  
कार्षापणावरम् ॥ कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा १२०

टीका—राजाका शत्रुको विजय करना स्व कहिये अपना धर्म है और युद्धका फल विजयहै प्रजाकी रक्षामें लगे हुए राजाको जो कहींसे भय होय तौ युद्धसे न हटै ऐसे वैश्योंकी चोर तथा डाकुओंसे रक्षा करके उनसे धर्मयुक्त आश्वपुरुषोंके द्वारा कर

लेवै ॥ १९ ॥ कौनसा कर लेवै सो कहतहै ॥ धान्यमें वृद्धि होनेपर वैश्योंसे आठमा भाग कर लेवै धान्योंका चारहवाँ भाग कहाहै आपत्तिकालमें यह आठमां कहा जाताहै और बडीही आपत्तिमें पहले कहा हुआ चौथा भाग जानना चाहिये तैसेही कार्पाषण-तक सुवर्णोंका बीसमा भाग कर लेवै वहाँभी "पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः" अर्थात् राजाकारि पशु और सुवर्णमें पचासमा भाग लेना चाहिये इत्यादिसे पचा-समा भाग कहाहै आपत्तिमें यह बीसमा कहा जाताहै तैसेही शूद्र, कारु, सूत्रकार, आदि शिल्पि बढई आदि ये कामहीसे उपकार करते हैं इनसे आपत्तिमेंभी कर न लेना चाहिये ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिर्माकांक्षन्क्षत्रमारोधयेद्यदि ॥ धनिनं वाप्युपारोध्यवैश्यं  
शूद्रो जिजीविषेत् ॥ २१ ॥ स्वर्गार्थमुर्भयार्थं वा विप्रानारोधयेत्तु संः ॥  
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ २२ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवासे जीविकाको न करता हुआ शूद्र जो वृत्तिकी चाहना करै तौ क्षत्रियकी सेवा करिकै और उसके न होनेमें घनवान् वैश्यकी सेवा करिकै जीव-नेकी इच्छा करै द्विजातिकी सेवामें समर्थ न होनेपर तौ पहले कहेहुए कर्मोंको करै ॥ २१ ॥ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अथवा स्वर्गमें अपनी वृत्तिकी प्राप्तिके लिये शूद्र ब्राह्मणोंहीकी सेवा करै कारण यहहै कि, यह ब्राह्मणोंहीका आश्रित उत्पन्न हुआहै और यही इसकी कृतार्थताहै ॥ २२ ॥

विप्रसेवैवै शूद्रस्य विंशष्टं कर्म कीर्त्यते ॥ यदतोऽन्यद्विंशतिं कुर्वते  
तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥ २३ ॥ प्रकल्प्या तस्य तै वृत्तिः स्वकुंड-  
म्बाद्यथैर्हतः ॥ शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रको और सब कर्मोंसे शास्त्रमें श्रेष्ठ कर्म कहाहै जिससे इसको छोडकर जिस कर्मको यह करताहै वह इसका निष्फल होताहै ॥ २३ ॥ इस सेवा करनेवाले शूद्रकी सेवामें सामर्थ्य और कर्ममें उत्साह तथा पालनेयोग्य पुत्र स्त्री आदिके परिमाणको देखि उन ब्राह्मणोंको अपने घरसे उसकी जीविका कल्पना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दौतव्यं जीर्णानि वसनानि च ॥ पुलंकाश्चैव धान्या-  
नां जीर्णाश्चैव परिच्छेदाः ॥ २५ ॥ न शूद्रे पौतकं किं श्वित्रं च सं-  
स्कारमर्हति ॥ नौस्याधिकारो धर्मोऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ २६ ॥

टीका-उस शूद्रके लिये भोजनसे वचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको देना चाहिये और जो "न शूद्रायमतिदद्यान्नोच्छिष्टं" अर्थात् शूद्रको मति न दे और न उच्छिष्ट दे यह निषेध, जो शूद्र, आश्रित नहीं है उसके मध्ये जानिये तथा पुराने वस्त्र और असार धान्य पुरानी शय्या तथा औरभी सब पुराने इसको देने चाहिये ॥ २५ ॥ लहशुन आदिक स्वानेमें शूद्रको कुछ पातक नहीं होताहै तौ ब्रह्मवध आदिमें होताहै ॥ क्योंकि "अहिंसा सत्यमस्तेयं" अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारों वर्णोंको साधारणतासे कहै और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके योग्य नहीं है और इसका अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्रको कहे हुए पाकयज्ञ आदि धर्मसे इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाकयज्ञ आदि करै ॥ २६ ॥

धर्मैप्सवस्तु धर्मज्ञाः संतां वृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति  
प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ २७ ॥ यथायथाहि सद्रुतमतिष्ठत्यनसूर्य-  
कः ॥ तथातथेमं चासुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ २८ ॥

टीका-अपने धर्मके जाननेवाले जे शूद्र धर्म प्राप्तिकी कामनासे जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनों वर्णोंके आचारका आश्रय लेते हैं वे नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञोंको करै और दूसरे मंत्रके बिना नमस्कारमंत्रसे पंचयज्ञ आदि धर्मकी करते हुए शूद्र दोषयुक्त नहीं होतेहैं और लोकमें ख्यातिकी प्राप्त होतेहैं ॥ २७ ॥ पराये गुणोंकी निंदा न करने-वाला शूद्र जैसे जैसे द्विजातिके निषिद्ध नहीं ऐसे आचारोंको करताहै वैसा वैसा जनोकरि निन्दित न हो इस लोकमें उत्कृष्ट कहा गयाहै और स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य  
ब्राह्मणानेवं वाधते ॥ २९ ॥ एते चतुर्णां वर्णानामपेक्षमाः प्रकी-  
र्तिताः ॥ यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो ब्रजन्ति परमां गतिम् ॥ ३० ॥

टीका-धनके जोडनेमें समर्थभी शूद्रको कुटुंबके पालने और पंचयज्ञ आदिके योग्य धनसे अधिक बहुतसे धनको संचय न करना चाहिये कारण यहै कि, शूद्र धनको पाके शास्त्र न जाननेके कारण धनके मदसे सेवा न करनेसे ब्राह्मणोंकी वाधा देताहै ॥ २९ ॥ आपत्तिकालमें करनेयोग्य चारों वर्णोंके धर्म ये कहे उनको भली भांतिसे करते हुए विहितके करनेसे और निषिद्धके न करनेसे पापरहित होनेके कारण ब्रह्मज्ञानके लाभसे मोक्षरूप परम गतिकी प्राप्त होतेहैं ॥ ३० ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

टीका—यह चारों वर्णोंका संपूर्ण आचार कहा इसके उपरान्त शुभप्रायश्चित्तका अनुष्ठान कहोंगा ॥ १३१ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां  
कुल्लूकभाट्टाऽनुयायिन्यां मनूक्तभाषाविद्युतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वां  
ध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥ नैवैतान्स्मार्तकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्म-  
भिक्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

टीका—विवाहका प्रयोजन संतानहै इस लिये सांतानिक कहिये विवाह करनेकी इच्छावाला १ और आगे कहा हुआ अवश्य करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करनेकी इच्छावाला २ और अध्वग कहिये वटोही ३ और सर्ववेदस कहिये जिसने सर्वस्व दक्षिणायुक्त विश्वजित् यज्ञ किया है ४ और विद्यागुरुके भोजन वस्त्रके लिये जिसका प्रयोजनहै ५ ऐसेही पिता माताके लियेभी ६।७ और वेद पढनेके समय भोजन वस्त्र आदिको चाहनेवाला ब्रह्मचारी ८ और उपतापी कहिये रोगी ९ इन नव ब्राह्मणोंको धर्मभिक्षाशील स्नातक जानै इन निर्द्धनोंको जो गौ सुवर्ण आदि दिया जाय उस दानको विद्याविशेषक अनुरूप देवै ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजात्र्येभ्यो देयमन्नं सदर्क्षिणम् ॥ इतरेभ्यो वहि-  
वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥ सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं  
प्रतिपादयेत् ॥ ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैवं दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

टीका—इन नव श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके मध्यमें दक्षिणासमेत अन्न देना चाहिये और इनसे जो भिन्न होय उनको वेदीके बाहर सिद्ध अन्न देना चाहिये यह उपदेश किया जाताहै और धनके देनेमें तौ नियम नहीं है ॥ ३ ॥ राजा मणि मोती आदि सब रत्नोंको और यज्ञके उपयोगी दक्षिणाके लिये धन विद्याके अनुरूप वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको देवै ॥ ४ ॥



कृतदारोऽपैरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ॥ रतिमात्रं फलं  
तस्य द्रव्यं दातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥ धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु  
प्रतिपादयेत् ॥ वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समंश्नुते ॥ ६ ॥

टीका—स्त्रीयुक्त जो संतति आदि कारणके विना औरोंसे माँगकर विवाह करताहै उसको रतिमात्रही फल होताहै और उससे उत्पन्न सन्तान धन देनेवालेके होतेहैं तिस्से इस प्रकार धन माँगिकै दूसरा विवाह न करना चाहिये और ऐसेके लिये धन न देना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥ गौ भूमि हिंस्य आदि धन शक्तिके अनुसार वेदके जाननेवाले पवित्र और पुत्र स्त्री आदि करि युक्त ब्राह्मणोंको दान करै उसके वशसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अधिकं वापि विद्येत सं  
सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥ अतःस्वल्पीयसि द्रव्यैः सोमं पिब-  
ति द्विजः ॥ सपीतसोमपूर्वोऽपि न तस्यैभिोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

टीका—जिसके अवश्य पोष्य वर्गके भरणके लिये तीन वर्षके खरचका पूरा व्ययवा उससे कुछ अधिक भोजन आदि होय वह काम्य सोमयाग करनेके योग्यहै ॥ ७ ॥ तीन वर्षके व्यय योग्य धनसे थोडा धन होनेपर जो सोमयागको करताहै उसका प्रथम सोमयाग नित्यभी संपन्न नहीं होताहै और द्वितीय काम्य सोमयाग तौ कैसेहू नहीं ॥ ८ ॥

शक्तः परंजने दाता स्वर्जने दुःखजीविनि ॥ मध्वार्पातो विषा-  
स्वादः सं धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥ भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौ-  
र्ध्वदेहिकम् ॥ तद्भृत्यसुखोदकं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

टीका—जो बहुत धन होनेके कारण दानमें समर्थ होता हुआ अवश्य भरण करने योग्य पिता माता आदि ज्ञातिके जनोंको दुर्गतिसे दुःखयुक्त होनेपर यशके लिये औरोंको देताहै वह उसका दानविशेषः धर्मका प्रतिरूपकहै धर्म नहीं है पहले यश-स्कर होनेसे मधुर तौ उसका वारंभहै और अंतमें नरक फल होनेसे विषका व्यास्वा-दहै तिस्से यह न करना चाहिये ॥ ९ ॥ अवश्य भरण करने योग्य पुत्र स्त्री आदिकों पीडा देकर जो परलोककी धर्मबुद्धिसे दान आदि करताहै उस दाताके जीवतेको तथा मरेको वह दान दुःखरूप फलका देनेवाला होताहै ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशेष-  
णेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्रहुर्षुर्गुर्हा-

नक्रतुरसोमपः॥ कुटुम्बात्तस्यै तद्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

टीका—क्षत्रिय आदि यजमानका और विशेष करि ब्राह्मणका यज्ञ जो और अंगोंके पूर्ण होनेपर एक बंगसे पूरा न होय तौ जिस वैश्यके बहुत पशु आदि धन होय और वह पाकयज्ञ आदि तथा सोमयजन आदि न करता होय उसके घरसे उस बंगके योग्य द्रव्य बलसे अथवा चोरीसे लेलैवै यह तौ राजाके धर्म प्रधान होनेपर करना चाहिये वह शास्त्रके अर्थ करनेवालेको दंड नहीं देता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

आहरेत्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेद्मनः ॥ नहि शूद्रस्य यज्ञे-  
षु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥ योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वां  
च सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—यज्ञके दो तीन अंगोंके विकल होनेपर उन तीनि अंगोंको अथवा दो अंगोंको वैश्यसे न मिलनेपर वेधडक शूद्रके घरसे बल करिकै अथवा चोरीसे लेवै जिससे शूद्रका कोईभी यज्ञसे संबंध नहीं है और न ब्राह्मण यज्ञके लिये धन शूद्रसे माँगे यह आगे कहा हुआ निषेध शूद्र आदिकोंसे माँगनेका है बलसे लेने आदिका नहीं ॥ १३ ॥ जिस अग्निहोत्र न करनेवालेके सौ गौप्रमाण धन होय अथवा अग्निहोत्री होय और सोमयाग न करता होय उसके जो हजार गौप्रमाण धन होय तौ दोनोंके घरोंसे दोनों अथवा तीनों अंगोंके शीघ्र पूरे करनेको ब्राह्मण करि दोनोंसे लेना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रियोंसेभी लेवै ॥ १४ ॥

आदानं नित्याच्चैर्दातुराहरेदप्रयच्छतः ॥ तथा यशोऽस्य प्र-  
थते धर्मश्चैवं प्रवर्धते ॥ १५ ॥ तथैवं सप्तमे भक्ते भक्तानि  
षडनश्रंता ॥ अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

टीका—आदानं नित्य कहिये जिसके प्रतिग्रह आदिसे नित्य धन आवै वह जो इष्टा-  
पूर्त तथा दानसे रहित होय उससे यज्ञके दो अथवा तीनि अंगोंके लिये याचना करने पर न दे तौ बलसे अथवा चोरीसे लेवै ऐसा करनेपर लेनेवालेकी ख्याति प्रकाशित होती है और धर्म बढ़ताहै ॥ १५ ॥ सायंकाल और प्रातःकालके भोजनके उपदेशसे तीनि दिनका उपवास होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल सातमं भोजनकी प्राप्ति होनेपर दान आदि धर्मसे रहित एकादिनका पूर्ण भोजनके योग्य धन चोरीसे लेना चाहिये १६

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपैर्लभ्यते ॥ आख्यातव्यं तु तं त-  
स्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणस्त्वं न हर्तव्यं क्षत्रि-

येण कैदाचन॥दस्युनिष्क्रिययोस्तुं स्वमजीवन्हंतुमहेति ॥ १८ ॥

टीका—खलिहानसे अथवा खेतसे अथवा घरसे अथवा और किसी स्थानसे हीन कर्मसंबंधी धान्य मिले वहाँसे लेना चाहिये । जो यह धनका स्वामी पूछे की, तुमने किस लिये किया तो उससे कारणसमेत चोरी आदि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥ कहेहुए कारणोंके होनेपरभी क्षत्रियको ब्राह्मणका धन उससे हीन होनेके कारण न लेना चाहिये समान न्याय होनेके कारण वैश्यों तथा शूद्रोंको ऊंची जातिसे न लेना चाहिये और निषिद्धके करनेवाले और विहितके न करनेवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रियसे अत्यंत आपत्तिमें क्षत्रिय लेनेके योग्य हैं ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यःसंप्रयच्छति॥ सँ कृत्वा पूर्वमा-  
त्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥ यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्व-  
तद्धिदुर्वुधाः॥अयज्वनां तु यद्विर्त्तमासुरस्व तदुच्यते ॥ २० ॥

टीका—जो हीन कर्म आदि उत्कृष्टोंसे कहे हुएभी कारणोंमें कहेके अनुरूप यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये धनको लेकर साधुओंको और उत्कृष्ट जो ऋत्विक् आदिहैं तिनको देताहै वह जिसका धन लेताहै उसके पापका नाश करताहै और जिसको देताहै उसको दुर्गतिसे बचाताहै इस भांति आपको नाव बनाके दोनोंको दुःखसे छुडाताहै ॥ १९ ॥ यज्ञ करनेवालोंका जो धनहै उसको यज्ञमें लगनेके कारण विद्वान् देवताओंका धन मानतेहैं और यज्ञ आदिसे शून्य पुरुषोंके धनको यज्ञ आदि में न लगनेके कारण आसुर कहिये असुरोंका कहतेहैं इससे उसकोभी हरण करिके यज्ञ आदिसे देवस्व करना चाहिये ॥ २० ॥

नतस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः॥क्षत्रियस्य हि बालि-  
इयाद्ब्राह्मणःसीदति क्षुधा॥ २१ ॥ तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटु-  
म्बान्महीपतिः॥श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्या प्रकल्पयेत्॥२२॥

टीका—उस कहे कारणमें चोरी तथा बलात्कार करनेवालेको धर्मप्रधान राजा दंड न करै कारण यह है कि, राजाकी मूढतासे ब्राह्मण क्षुधासे दुःखी होता है ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मणके अबश्य भरण करनेयोग्य पुत्र आदि वर्गको जानि तथा शास्त्र और आचारको जानि उनके अनुरूप जीविका राजा अपने घरसे नियत करै ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः॥राजा हि धर्मपेडुभागं

तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥ २३ ॥ नयज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत  
कहिंचित् ॥ यंजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥ २४ ॥

टीका—इस ब्राह्मणकी जीविकाको नियत करि सब शत्रु चौर आदिकोंसे रक्षा करै कारण यह है कि रक्षा किये हुए ब्राह्मणसे उसके धर्मका छठा भाग पाता है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण यज्ञकी सिद्धिके लिये शूद्रसे कभी धन न माँगै कारण यह है कि शूद्रसे माँगिकै यज्ञको करता हुआ मरिक्के चांडाल होता है इससे माँगनेका निषेध करनेसे शूद्रसे विना माँगे प्राप्त हुआ धन यज्ञके लिये विरुद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ॥ से याति भ्रासतां वि-  
प्रः कौकतां वा शंतं समाः ॥ २५ ॥ देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोप-  
हिनस्ति यः ॥ स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

टीका—यज्ञकी सिद्धिके लिये धनको माँगिकै जो यज्ञमें सब नहीं लगाता है वह सौवर्षतक भास कहिये नीलकंठ अथवा कौआ होताहै ॥ २५ ॥ देवस्व कहिये प्रतिमा आदि देवताओंके लिये दिये हुए धनको और ब्राह्मणके धनकी जो लोभसे ले लेताहै वह पापस्वभाव दूसरे जन्ममें गीधकी जूठनिसे जीवताहै ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ॥ कृत्तानां पशुसोमानां नि-  
ष्कृत्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥ आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि  
द्विजः ॥ स नामो ति फलं तस्य परत्रे ति विचारितम् ॥ २८ ॥

टीका—वर्षके समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके आरंभ होनेको अर्थात् चैत्रशुक्ल आदि वर्षकी प्रवृत्तिको वर्षपर्यंत कहते हैं उस वर्षांतरमें वैश्वानरी इष्टिको कहेहुए पशु सोम-  
यागके न होनेमें उसके न करनेका दोष दूर करनेके लिये सदा शूद्र आदिसे कहे हुए धनको ग्रहणकर इष्टिको करै ॥ २७ ॥ जो द्विज आपत्तिमें कही हुई विधिसे आपत्तिके विना धर्मको करताहै उसका वह धर्म परलोकमें निष्फल होताहै यह मनु आदिकोंने विचार कियाहै ॥ २८ ॥

विश्वेश्वं देवैः साँध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥ आपत्सु मरणांद्गी-  
तैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥ २९ ॥ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुक-  
ल्पेन वर्तते ॥ न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

टीका—विश्वदेवनाम देवोंसे और साँध्योंसे तैसीही मरनेसे डरे हुए महार्षि ब्राह्मणों

करि आपत्तिमें मुख्य विधि सोम आदिके वैश्वानरी आदि प्रतिनिधि किया हुआ वह मुख्यके न होनेमें करना चाहिये मुख्यके संभवमें नहीं ॥ २९ ॥ मुख्यके करनेमें समर्थ जो आपत्तिमें कहे हुए प्रतिनिधिसे अनुष्ठान करता है उस दुष्टद्विका परलोक संबंधी अभ्युदयरूप और प्रत्यवायका दूरि होनारूप फल नहीं होताहै ॥ ३० ॥

नं ब्राह्मणोऽवेदयेत् किञ्चिद्राजानि धर्मवित् ॥ स्ववीर्येणैव तांश्छि-  
ष्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥ स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं व-  
लवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वे नर्व वीर्येण निर्गृह्णीयादरीन्द्रिजः ॥ ३२ ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछभी अपकार राजासे न कहे अपितु अपनीही शक्तिसे आगे कहे हुए अभिचार आदिसे अपकार करनेवाले मनुष्योंको दंड देवै तिससे तौ अपने धर्मके विरोध आदि प्रकृष्ट अपराध करनेपर अभिचार आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस लिये यह कहा है कुछ अभिचारका विधान नहीं करते हैं अथवा न राजासे कहनेका विषेध करते हैं ॥ ३१ ॥ जिससे अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य इन दोनोंमेंसे पराधीन राजाकी सामर्थ्यकी अपेक्षा अपने आधीन होनेसे अपनाही सामर्थ्य बलवान् है तिससे ब्राह्मण अपनेही पराक्रमसे शत्रुओंको दंड देवै ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथवांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्छस्त्रं वै ब्राह्मण-  
स्य तेन हन्यादरीन्द्रिजः ॥ ३३ ॥ क्षत्रियो वाहुवीर्येण तरेदापा-  
दमात्मनः ॥ धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्रिजोत्तमः ॥ ३४ ॥

टीका—वह कौनसा अपना पराक्रमहै सों कहते हैं। अथर्ववेदमें देखा गया है अभि-  
चार जिनका ऐसी आंगिरसीश्रुतियोंको विना विचारके करे जिससे अभिचारमंत्रके उच्चार-  
णरूप ब्राह्मणकी वाणीही शस्त्रका काम करनेसे शस्त्रहै उस्से ब्राह्मण शत्रुओंको मारै  
शत्रुके दंड देनेके लिये राजासे न कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय अपने बलसे  
शत्रुके तिरस्काररूप अपनी आपत्तिके पार होय और वैश्य तथा शूद्र धनके देनेसे  
और ब्राह्मण अभिचार कहिये मारणरूप जप होमोंसे आपत्तिके पार होय ॥ ३४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूया-  
न्नं शुष्कां गिरमी रयेत् ॥ ३५ ॥ नवै कन्या न युवतिर्नल्पविद्यो  
न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नीतो नासंस्कृतस्तथा ३६ ॥

टीका—कहेहुए कर्मोंका करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकोंका सिखानेवाला और  
प्रायश्चित आदि धर्मोंका कहनेवाला और सबभूतोंकी मित्रतामें प्रधान ब्राह्मण कहा

जाताहै उसके लिये दंड दो ऐसा अनिष्ट वचन न कहै और गाली आदि वाक्दंड तथा थिक्दंडरूप वाणीका उच्चारण उसके लिये न करै ॥ ३५ ॥ कन्या विना व्याही और व्याहीभी तरुणी और थोडा पढा हुआ मूर्ख रोग आदिसे पीडित और उपनयन कर्म-रहित ये सब श्रुतिमें कहे हुए सायं प्रातः होम आदिको न करै ॥ ३६ ॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः सर्वं यस्य तत् ॥ तस्माद्देतानकुशलो  
होता स्याद्देदपीरगः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यमर्दत्त्वाऽश्वमभ्याधेय-  
स्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवंति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

टीका—होमको करते हुए ये कन्याआदि नरकको जातेहैं और जिसकी ओरसे ये अग्निहोत्र करतेहैं वहभी नरकको जाताहै तिससे श्रौतकर्ममें चतुर सब वेदोंका पढने-वाला होता करना चाहिये ॥ ३७ ॥ अग्निके आधानमें ब्राह्मण संपत्तिके होनेपर प्रजापति जिसकी देवताहै ऐसा अश्व दक्षिणामें दिये विना अग्निका आधान करनेपर आहिताग्नि नहीं होताहै और आधानके फलको नहीं पाताहै तिससे आधानमें अश्व दक्षिणा देवै ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैर्य-  
ज्ञैर्यजन्ते हं कथंचन ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं  
प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्माद्भ्रातृल्पधनो यजेत् ॥ ४० ॥

टीका—श्रद्धावान् पुरुष इंद्रियोंको वशमें करिकै यज्ञसे भिन्न तीर्थयात्रा आदि पुण्य कर्मोंको करै और शास्त्रमें कही हुई दक्षिणासे थोडी दक्षिणावाले यज्ञोंसे कैसेहू यजन न करै ॥ ३९ ॥ नेत्र आदि इंद्रियोंको और जीवते हुएके रूपातिरूप यश कीर्तिको और संततिको तथा पशुओंको थोडी दक्षिणाका यज्ञ नाश करताहै तिससे थोडी दक्षिणा देकै यज्ञ न करै ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यर्पविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ॥ चांद्रायणं चरेन्मा-  
सं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥ ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमु-  
पांसते ॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गीहिताः ॥ ४२ ॥

टीका—अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छासे अग्नियोंमें सायंकाल तथा प्रातःकालके होमोंको न करकै एक महीनेभर चांद्रायण व्रत करै जिससे यह वीरपुत्रकी हत्याके समानहै ॥ ४१ ॥ जे शूद्रसे धनको पाकै अथवा साधारण मांगनेसे धनको लेकर आधानपूर्वक अग्निहोत्र करतेहैं वे शूद्रोंकी याजकहैं उनको उसका फल नहीं होताहै इसीसे वे वेदवादियोंमें निंदितहैं ॥ ४२ ॥

तेषां सर्ततमज्ञानां वृषलाभ्युपसेविनाम् ॥ पदां मस्तंकर्माक्रम्य  
दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥ अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च  
समाचरन् ॥ प्रसक्तश्चैन्द्रियार्थेषु प्रार्थयश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

टीका-शूद्रके धनसे आहिताग्नि होनेवाले उन मूर्खोंके मस्तकपर पांव रखिक देने-  
वाला शूद्र दानसे सदा परलोकमें दुःखोंसे निस्तर जाताहै यजमानोंको फल नहीं  
होताहै ॥ ४३ ॥ नित्य कहे हुए संब्योपासन आदिको और नैमित्तिक जैसे मृतकके  
छूनेमें स्नान आदिको न करता हुआ और निषेध किये हुए हिंसा आदिको करता हुआ  
नहीं कहे हुए निषिद्ध कर्मोंमें अत्यंत आसक्तिको करता हुआ नर प्रायश्चित्ती होताहै ॥ ४४ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥ कर्मकारकृतेऽप्या-  
दुरे के श्रुतिनिर्दर्शनात् ॥ ४५ ॥ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन  
शुद्ध्यति ॥ कामतस्तु कृतं मोहांत्प्रार्थयश्चित्तैः पृथंग्विधैः ॥ ४६ ॥

टीका-विना इच्छा किये हुए पापका प्रायश्चित्त होताहै यह पंडित कहतेहैं और कोई  
आचार्य कहतेहैं कि, जानकै किये हुएका प्रायश्चित्त होताहै यह तौ पृथक् करिकै  
कहना प्रायश्चित्तगौरवके लियेहै श्रुतिनिर्दर्शनात् वेदके दृष्टांतसे जैसे " इंद्रोयती-  
नशालावृकेभ्यः प्रायच्छततमश्लीलावागित्यवदत्सप्रजापतिमुपाधावत्तस्मात्तमुपहव्यं प्रा-  
यच्छत् " इति इसका अर्थ यहहै कि, इंद्र यतियोंको बुद्धिपूर्वक कुत्तोंसे खानेको देता  
हुआ वह प्रायश्चित्तके लिये प्रजापतिके समीप गया उसके लिये प्रजापतिके उपहव्य  
नाम कर्म प्रायश्चित्त दिया इसीसे जानकै किये हुएमेंभी प्रायश्चित्तहै ॥ ४५ ॥  
इच्छाके विना किया हुआ पाप वेदके अभ्याससे शुद्ध होताहै अर्थात् नाशको प्राप्त  
होताहै और रागद्वेष आदिकी व्यामूढतासे जानकर किया हुआ पाप नाना प्रकारके  
प्रायश्चित्त अर्थात् विद्या धन तथा तपसे शुद्ध होताहै ॥ ४६ ॥

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥ न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रा-  
यश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥ इह दुश्चरितैः कैचित्केचित्पूर्वकृतै-  
स्तथा ॥ प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नराः रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

टीका-दैवात् कहिये प्रमादसे इस शरीर करि किये हुए अथवा पूर्वजन्ममें संक्य  
किये हुए पापसे क्षयरोग आदि करि सूचितसे प्रायश्चित्ती होकर प्रायश्चित्तके दिना  
किये साधुओंके साथ याजन आदिसे संसर्गको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ इह  
जन्ममें तिषिद्ध काम करनेसे और कोई पूर्वजन्ममें किये हुएओंसे दुष्ट स्वप्न

मनुष्य कुनखी आदिहोना रूपके विपर्यय कहिये अन्यथाभावको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्रयोवदन्तताम् ॥ ब्रह्महा क्षयरोगि-

त्वं दोश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥ पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः

पूतिवक्त्रताम् ॥ धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः

॥ ५० ॥ अन्नहर्ताभयावित्वं मौक्त्यं वांगपहारकः ॥ वस्त्रापहा-

रकः श्वेत्यं पड्डुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥ दीपहर्ता भवेदन्धः

काणो निर्वापको भवेत् ॥ हिंसया व्याधिभूतस्तु स्फीतोऽन्य-

स्त्वभिर्मशकः ॥ ५२ ॥ एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्भिर्गहिताः ॥

जडमूकान्धवधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

टीका—सुवर्ण चुरानेवालेके नख कुत्सित होजातेहैं और निषिद्ध मद्य पीनेवा-  
लेके दांत काले होजातेहैं और ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होताहै गुरुकी भायार्यो गमन कर-  
नेवालेका लिंग बंद नहीं होताहै खुला रहता है और पिशुन कहिये विद्यमान दोषोंके  
कहनेवालेकी नाकमें दुर्गंध आती है और नहीं विद्यमान दोषोंके कहनेवालेके मुखमें  
दुर्गंध आती है और धान्यका चोर अंगहीन होताहै और धान्य आदिकोंमें कुछ और  
मिलानेसे अधिक अंग होजाते हैं और अन्न चुरानेवालेकी अग्नि मंद होजाती है और  
बिना आज्ञाके पढनेवाला मूक होताहै और वस्त्रोंका चुरानेवाला श्वेतकुष्ठी होताहै और  
घोड़ेका चुरानेवाला पंगा होताहै दीपको चुरानेवाला नेत्र इंद्रियसे रहित अर्थात् अंध  
होताहै और दीपकको बुझानेवाला काना अर्थात् एक आंखीवाला होताहै यज्ञदेवता  
आदिकोंके उद्देश बिना केवल जिज्ञाके स्वादसे जो पशुओंकी हिंसा करताहै उसको रोग  
बहोत होतेहैं और जो दूसरेके स्त्रीको दूषण करनेवाला अर्थात् संभोग आदिक करनेवाला  
वातसंबंधि रोगोंकरिके स्थूलदेहवात् होताहै ऐसे बुद्धि बाणी नेत्र कानोंसे विकल  
विकृतरूप साधुओंकरि निर्दिष्ट पूर्वजन्ममें संचय कियेहुए भोगनेसे शेष रहे हुए  
बापोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रार्थश्चित्तं विशुद्धये ॥

निन्द्योर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५४ ॥

टीका—अनिष्कृतैनसः कहिये जिन्होंने प्रार्थश्चित्त नहीं किये हैं वे परलोकमें भोगों  
इष्ट पापके शेषसे कुनखीपन आदि निम्न लक्षणों करि युक्त उत्पन्न होते हैं बिससे  
शुद्धिके लिये अर्थात् पाप दूर करनेके लिये प्रार्थश्चित्त सदा करना चाहिये ॥ ५४ ॥



ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥

महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ५५ ॥

टीका-ब्राह्मणके प्राणवियोगरूप जिसका फल है ऐसे व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं वह तो साक्षात् अथवा दूसरेको नियुक्त करिके तैसेही गौ भूमि और सुवर्णका लेना आदि जिसका कार्य है उसके लिये ब्राह्मणके मरनेमें ब्रह्महत्या होती है ऐसी ब्रह्महत्या और निषिद्ध सुराका पीना और स्तेय कहिये ब्राह्मणका सुवर्णले लेना और गुरुकी स्त्रीमें गमन करना और इनके साथ संसर्ग करना इनको महापातक कहतेहैं ५५

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्वधः  
सर्मानि ब्रह्महृत्यया ॥ ५६ ॥ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं  
सुहृद्बधः ॥ गर्हितान्नाद्ययोजर्गिधः सुरापानसर्मानि पट्ट ॥ ५७ ॥

टीका-जातिकी बडाईके लिये बढके बोलना जैसे जो ब्राह्मण नहीं है वह आपको ब्राह्मण कहै और जिसमेंउनका मरण होय ऐसा चोर आदिकोंका दोष राजासे कहना और गुरुको झूठा दोष लगाना ये सब ब्रह्महत्याके समानहैं ॥ ५६ ॥ पढे हुए वेदका अभ्यास न करनेसे भूलना और असत् शास्त्रके आश्रयसे वेदकी निंदा करना और साक्ष्य (गवाही)में झूठ बोलना और ब्राह्मणसे अन्यमित्रका वध और निषिद्ध लग्न आदिका खाना और अभक्ष्य विष्टा आदिका भक्षण ये सब सुरापानके समानहैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्म-  
स्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्य-  
जासुं च ॥ सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५९ ॥

टीका-ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न धरोहडका ले लेना तैसेही मनुष्य, घोडा, चांदी, भूमि, हीरा और मणियोंका ले लेना ये सब सुवर्णकी चोरीके तुल्यहैं ॥ ५८ ॥ सगी बहिनी, कुमारी, चांडाली और भिन्न तथा पुत्रकी स्त्रीमें वीर्यका सींचना गुरुपत्नीमें गमन करनेके समानहैं ॥ ५९ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्याग-  
स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिवित्तितानुजेऽनूढे प-  
रिवेदनमेवं च ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेवं च याजन-  
म् ॥ ६१ ॥ कन्यायां दूषणं चैवं वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ॥ तडा-

गारामदारानामंपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ व्रात्यता बान्धव-  
 त्यांगो भृत्याध्यापनमेव च ॥ भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च  
 विक्रयः ॥ ६३ ॥ सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥  
 हिंसोषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूर्लकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्ध-  
 नार्थमशुष्काणां दुर्माणामवर्षातनम् ॥ आत्मार्थं च क्रिवारम्भो  
 निन्दितांन्रादनं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामन-  
 पक्रिया ॥ अर्सच्छास्त्राधिगमनं कौशील्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥  
 धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपेयानिषेवणम् ॥ स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधो  
 नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

टीका—अब उपपातकोंको कहतेहैं ॥ गौका मारना जाति कर्मसे दुष्टोंको यजन करना  
 पराई स्त्रीमें गमन करना अपना बेचना माता पिता गुरु आदिकी सेवा न करना सदा  
 ब्रह्मयज्ञका त्याग स्मार्त्त अग्निका त्याग और पुत्रका संस्कार भरण आदि न करना  
 पहले छोटेका विवाह करनेसे ज्येष्ठ परिवृत्ति होताहै और छोटा परिवेत्ता होताहै  
 उन दोनोंको कन्या देना और उन्हीका विवाह होम आदिमें ऋत्विक् होना मैथुनके  
 विना अंगुली आदिके डालनेसे कन्याको दूषित करना वृद्धि कहिये व्याजसे  
 जीविका करना व्रतलोपन कहिये ब्रह्मचारिका मैथुन करना तलाव बाग भार्या और  
 संतानका बेचना कालमें यज्ञोपवीत न होना व्रात्यताहै पितृव्य आदि बांधवोंकी  
 अनुवृत्ति न करना नियत वेतन लेकर पढाना नियत वेतन देकर पढना नहीं बेचने  
 योग्य तिल आदिका बेचना सुवर्ण आदिकी खानिमें राजाकी आज्ञासे अधिकार  
 लेना बडे जलके प्रवाह रोकनेके कारण पुल आदि प्रवृत्त करना औषधियोंकी हिंसा  
 भार्या आदि स्त्रियोंको वेश्या बनायकै जीविका करना ज्येन आदि यज्ञसे अपराधरहि-  
 तका मारना मंत्र औषध आदिसे वशीकरण करना ईधनके लिये हरित वृक्षका  
 काटना रोगरहितका देवता पितृ आदिके उद्देश विना पाक आदिका करना निन्दित  
 अब लशुन आदिका एकवार इच्छाके विना खाना अधिकार होनेपर अग्निहोत्र न  
 करना सुवर्णसे अन्य सारद्रव्यका हरण करना तीनि प्रकारके ऋणोंको न दूर करना  
 श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रका सीखना नाचने गाने बजानेका सेवन करना धान्यकी  
 तांबे लोहे आदिकी और पशुओंकी चोरी करना द्विजातियोंका मद्य पीनेवाली स्त्रीमें  
 गमन करना स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियका मारना और नास्तिक्य कहिये अदृष्टार्थ

कर्ममें अभावकी बुद्धि होना ये प्रत्येक उपपातकहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥  
॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्यां प्रातिरत्रेयमैद्ययोः ॥ जैह्वयं च मैथुनं  
पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजावि-  
कवधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

टीका-ब्राह्मणको दंड कहिये दंडा और हाथ आदिसें पीडा देना और अत्यंत दुर्गंध होनेके कारण न सूंघनेयोग्य लशुन पुरीष आदिकी तथा मद्यकी गंधका सूंघना और कुटिलता और पुरुषकी गुदा आदिमें मैथुन ये एक एक जातिके भ्रंश करनेवालेहैं ॥ ६८ ॥ गधा, घोडा, उंट, मृग, हाथी, वकरा, मेढा, मछली, सांप, भैंसा, इनमेंसे प्रत्येकका मारना संकरीकरण जानिये ॥ ६९ ॥

निदितेभ्यो धनोदानं वाणिज्यं शूद्रसेर्वनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयं-  
मसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यालुग-  
तभोजनम् ॥ फैलैघःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

टीका-नहीं लेनेयोग्यसे धनका दान लेना, वाणिज्य, शूद्रकी टहल और झूठ बोलना, ये प्रत्येक अपात्र करनेवालेहैं ॥ ७० ॥ कृमि कहिये शुद्र जीव तिनसें कुछ स्थूल कीट तिनका और पक्षियोंका वध और मद्यके साथ एक पिटारीमें धरकै लये हुए शाक आदि भोज्य वस्तुका भोजन और फल काष्ठ तथा फूलोंकी चोरी करना और थोडीभी हानिमें बहु व्याकुल होना ये प्रत्येक मलिनकरनेवालेहैं ॥ ७१ ॥

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ येयैर्व्रतैरपोहान्ते  
तानि सम्यन्निवोधंत ॥ ७२ ॥ ब्रह्महा द्वादशं समाः कुटीं कृत्वा  
वने वसेत् ॥ भैक्षाश्यात्मविशुद्धयर्थं कृत्वा शर्वशिरोन्वजम् ॥ ७३ ॥

टीका-भेदसे कहे हुए ये सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका जिन जिन प्रायश्चित्तरूप व्रतोंसे नाश होताहै उनको यथावत् सुनिये ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला वनमें कुटी बनायकै मारे हुएके शिरके कपालको अथवा उसके न होनेमें और किसीका चिह्न करिकै भिक्षा खाताहुआ अपने पापके दूर करनेके लिये बारह वर्ष वनमें वसे और व्रत करे ॥ ७३ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ॥ प्रीत्येदात्मानं-

गौर्वा समिद्धे त्रिरंवाक्छिरीः ॥७४ ॥ यजेत वांश्वमेधेन स्वर्जिता  
गोसवेन वा ॥ अभिजिद्विश्वजिद्ध्यां वा त्रिवृताग्निधुंतापि वा ॥७५ ॥

टीका—धनुष वाण आदि शस्त्रके धारण करनेवाले शुद्ध करनेवालोंका ब्राह्मण वधके पापकी क्षीणताके लिये यह प्रायश्चित्तहै कि, अपनी इच्छासे विद्वान् शस्त्रधारियोंके वाणका लक्ष्य ( निशाना ) होकै स्थित होय जबतक मरजाय अथवा मरेके समान होजाय तौ शुद्ध होय सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे “संग्रामेवाहतो लक्ष्मीभूतः शुद्धिम-  
वाप्नुयात् । मृतकल्पः प्रहरतो जीवन्नापि विशुद्ध्यति” ॥ अर्थात् संग्राममें लक्ष्य होकै मारा जाय तौ शुद्धिको प्राप्त होय अथवा प्रहारोंसे पीडित हो मरेके समानहोकै जीवता हुआभी शुद्ध होताहै अथवा जलती हुई अग्निमें नीचेको मुख करिकै तीनि-  
वार शरीरको डारै तौ शुद्ध होय ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसे अथवा स्वर्जित नाम याग-  
विशेषसे अथवा गोमेधसे अथवा अभिजित्यज्ञसे अथवा विश्वजितसे त्रिवृतासे अथवा  
अग्निधुतसे यजन करै ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तहै ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय मि-  
तमुद्भिद्यतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥ सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपंपादये-  
त् ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा संपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

टीका—वेदोंमेंसे एक वेदको जपता हुआ स्वल्प आहार और जितेंद्रिय हो  
ब्रह्महत्याके पापके दूर करनेके लिये सा योजन अर्थात् चारसौ कौस चला जाय  
यह भी अज्ञानसे किये हुए जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें तीनों वर्णोंका प्रायश्चित्तहै  
॥ ७६ ॥ अथवा वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्व दान करदेवै जितना धन उसके  
जीवनके लिये समर्थ होय अथवा गृह और घरकी उपयोगी सब धन धान्य आदि  
वस्तुओं समेत इसीसे सर्वस्व अथवा सब सामान समेत घर देवै “जीवनायमलं”  
इस वचनसे जीवनके लिये पूर्ण सर्वस्व अथवा घर देवै उस्से थोडा न होय यह तौ  
अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणका प्रायश्चित्तहै सोई भविष्यपुराणमें लिखा-  
है । जैसे “जातिमात्रं यदा हन्यात् ब्राह्मणं ब्राह्मणो गृह ॥ वेदाभ्यासविहीनो वै धनवा-  
नशिवर्जितः ॥ प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिदं पापविशुद्ध्ये ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सप-  
रिच्छदम्” ॥ अर्थ—हे कार्तिकेय! जो ब्राह्मण जातिमात्र ब्राह्मणको मारै वेदाभ्याससे  
हीन होय धनवान् होय अग्नि करि वर्जित होय तौ वह शुद्धिके लिये इस प्रायश्चित्तको  
करै अर्थात् जीवनके लिये पूर्ण धन अथवा धान्य आदि सामग्री समेत घर देवै ॥ ७७ ॥

हविष्यभुग्वाऽनुंसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ॥ जैपेद्रां नियर्ताहार-

द्विं वै वेदस्यं संहितांम् ॥ ७८ ॥ कृतवापनो निर्वसेद्रामान्ते  
गोव्रजेऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणंहिते रतः ॥ ७९ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्य अन्नका भोजन करनेवाला विख्यात वृक्षखणसे लगाकर पश्चिम समुद्रके स्रोताके प्रति सरस्वतीकी जाय यह तौ प्रायश्चित्त जातिमात्र ब्राह्मणके ज्ञानपूर्वक वधमें ब्राह्मणके लिये कहाहै अथवा परिमित कहिये थोडासा आहार करिकै तीनिवार वेदकी संहिताकी जैपै संहिता शब्दसे पदक्रमका व्युदास हुआ ॥ ७८ ॥ अथवा बारह वर्षके समाप्त होनेपर इसकी उपस्थित होनेपर द्वादशवार्षिकका विशेष कहतेहैं कटेहैं केश नख डाढी मूच्छ जिसके ऐसा तथा गौ ब्राह्मणके हितमें लगा हुआ अर्थात् गौ ब्राह्मणका हित करताहुआ ग्रामके समीप गौओंके स्थानमें वृक्षके नीचे इनमेंसे कहीं रहै “वनेकुटीकृत्वा ” इसका यह विकल्पहै ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणांथै गैवाथै वा सर्वैः प्राणांन्परिज्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्यां-  
या गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ८० ॥ त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमव-  
जित्यं वा ॥ विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

टीका—बारह वर्षके आरंभ होनेपर बीचमें अग्नि जल तथा हिंसक आदिकों करि दबाये हुए ब्राह्मणकी अथवा गौकी रक्षाके लिये प्राणोंको छोडता हुआ ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै गौ अथवा ब्राह्मणको उनसे बचाकै जीवता हुआ बारहभी वर्षोंके न समाप्त होनेपरभी ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै ॥ ८० ॥ चौर आदिकों करि ब्राह्मणका सर्वस्व हरि लेनेपर उसके लानेके लिये कपटको छोडिकै यथाशक्ति यत्नकरै वहां तीनिवार युद्धमें प्रवृत्तहो सर्वस्वके न लानेपरभी ब्रह्महत्याके पापसे छूटि जाताहै अथवा पहली-वार हरे हुए ब्राह्मणके सर्वस्वको जीतिकै जो देताहै वह ब्रह्महत्यासे छटि जाताहै अथवा धनके हरि जानेके कष्टसे ब्राह्मण आपही युद्धसे मरनेमें प्रवृत्त होय तब यद्यपि हरे हुए धनके बराबर देनेसे उसको जिवाताहै तबभी उसके निमित्त उसका प्राणालाभ होने-पर ब्रह्महत्याके पापसे छूटि जाताहै ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे  
ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥ शिष्टां वा भूमिदेवानां नरेदेव-  
समागमे ॥ स्वमेनोऽवभृथस्नातो ह्यमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे सदा नियुक्त स्त्रीसंयोग आदिसे रहित मनको रोकै हुए बारह वर्षके समाप्त होनेपर ब्रह्महत्याके पापको नाश करताहै ॥ ८२ ॥ अवधमेध

यज्ञमें ऋविज ब्राह्मणोंके और यजमान क्षत्रियके समागम होनेपर ब्रह्महत्याके पापको निवेदन करिके यज्ञांतस्नानमें न्हाया हुआ ब्रह्महत्याके पापसे छूटि जाताहै ॥ ८३ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राज्ञ्य उच्यते ॥ तस्मात्समागमे तेषा-  
मेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि  
देवतम् ॥ प्रमाणं च वै लोकेस्य ब्रह्मैत्रिवं हि कारणम् ॥ ८५ ॥

टीका—जिससे ब्राह्मण धर्मका कारणहै ब्राह्मण करि धर्मका उपदेश करनेपर धर्मके करनेसे राजा उस धर्मका आगेका भाग मनु आदिको करि कहा गयाहै उन दोनों ब्राह्मण क्षत्रियों करि मूलसहित धर्मरूप वृक्षकी सिद्धि होती है तिससे उनके समागमरूप अवश्यमेघमें पापका निवेदन करि अवश्यमें न्हाया हुआ शुद्ध होताहै ॥ ८४ ॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रहीसे देवताओंकाभी पूज्यहै और श्रुत आदि करि संपन्न होय तौ फिर क्या कहनहै मनुष्योंका और लोकका तौ बहुतही पूज्यहै क्योंकि उसके उपदेशकी प्रामाण्यताहै जिससे उसमें वेदही कारणहै और उपदेशका मूल वेदहै ॥ ८५ ॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम् ॥ सां तेषां पावनाय  
स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥ ८६ ॥ अतोऽन्यतममांस्थाय विधिं  
विप्रः समाहितः ॥ ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥

टीका—उन विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे वेदके जाननेवाले तीनिभी अधिक होय तौ फिर क्या कहनाहै पाप दूर करनेके लिये जिस प्रायश्चित्तको कहें वह पापियोंकी शुद्धिके लिये होताहै कारण यह है कि, विद्वानोंकी वाणी पवित्र करनेवाली होती है तिससे प्रकाशे प्रायश्चित्तके लिये पंडितोंकी समा अवश्य करनी चाहिये और रहस्य कहिये गुप्त प्रायश्चित्तमें तौ यह नहीं है ॥ ८६ ॥ इस प्रायश्चित्तके समूहसे किसी एक प्रायश्चित्तका आश्रय लेकर सावधानमन ब्राह्मण आदि प्रशस्ततासे ब्रह्महत्यासे किये हुए पापको दूरि करताहै ॥ ८७ ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव ब्रतं चरेत् ॥ राज्ञ्यवैश्यौ चैजानांवा-  
त्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥ उर्वत्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य  
गुरुं तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्भयम् ॥ ८९ ॥

टीका—स्त्री पुरुष तथा नपुंसकपनसे न जाने हुए ब्राह्मणके गर्भको मारिके और यज्ञ करनेमें लगे हुए क्षत्रिय तथा वैश्यको और आत्रेयी कहिये रजस्वला ब्राह्मणी स्त्रीको मारिके इसी ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८८ ॥ हिरण्य भूमि आदि युक्त

साक्षमें झूठ बोलके और गुरुको मिथ्या दूषण देकै और धरोहडका ब्राह्मणके सुवर्णको छोडि अन्य रजत आदि द्रव्यका और क्षत्रिय आदिके सुवर्णकाभी अपहरण करिकै और कहे हुए स्त्रीवधको करिकै और ब्राह्मण नहीं ऐसे मित्रको मारिकै ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णा सुरां पिबेत् ॥ तर्था सर्काये निर्दग्धे मुच्यत किं लिषात्ततः ॥ ९१ ॥

टीका—यह प्रायश्चित्त अकामसे ब्राह्मणके वधमें कहा है और कामसे ब्राह्मणके वधमें यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इससे द्विगुण करनारूपहै यह प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है कुछ प्रायश्चित्तके अभावकेलिये नहीं है ॥ ९० ॥ द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अज्ञानसे सुराका पान करिकै अग्निवर्ण सुराका पान करै उस सुरासे शरीरके दग्ध होनेपर द्विज उस पापसे छूटि जाताहै यह प्रायश्चित्त गुरुत्वके कारण कामसे किये हुए सुरापानमें जानना चाहिये सोई बृहस्पतिने कहा है जैसे ॥ “सुरापाने कामकृते ज्वलंती तां विनिःक्षिपेत् ॥ मुखे तथा स निर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्” ॥ अर्थ—कामसे सुराका पान करनेपर जलती हुई सुराको मुखमें डारै उससे जलकर मरा हुआ वह शुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमाग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥ पयो घृतं वा मरणाद्गोशं कृद्रसमेव वा ॥ ९२ ॥ कर्णान्वा भक्षयेददं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

टीका—गौका मूत्र जल गौका दुध गौका घृत और गोबरका रस इनमेंसे किसी एकको अग्निसम तपाके जबतक मरै तबतक पीवै ॥ ९२ ॥ अथवा गौके रोम आदिसे बनेहुए वस्त्र धारण किये हुए और जटाओंको रखाये हुए सुराके पात्रका चिह्न लिये हुए चावलके किनकोंको अथवा तिलोंकी खलीको रातिमें एकवार एक वर्षतक सुरापानके पापके नाशके लिये भक्षण करै यह अशुद्धिपूर्वक अमुख्य सुरापानमें देखना चाहिये ॥ ९३ ॥

सुरां वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥ गोडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथैवैका तर्था सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

टीका—सुरा चावलोंके पिष्टकी बनतीहै इस कारण अन्नका मंलहै और मलशब्दसे पाप कहा जाताहै तिससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैष्टी सुराको न पीवै इस्से निषेध होने-पर इसके अतिक्रमसे “सुरांपीत्वा” इस प्रायश्चित्तके विधानसे पैष्टीका निषेध तीनोंवर्णोंके लिये मनुने स्फुट कहाहै ॥ ९४ ॥ जो गुडसे की गई होय सो गौडी और जो पिष्टसे की गई होय सो पैष्टी और महुषाके वृक्षको मधु कहते हैं उसके फूलोंसे की गई होय सो माध्वी ऐसे तीन प्रकारकी सुरा जाननी चाहिये जैसे एक पैष्टी मुख्यहै तैसेही गौडी माध्वीभी द्विजोत्तमोंको न पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्त-  
व्यं देवानामश्रता हविः ॥ ९६ ॥ अमध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं  
वाप्युदांहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुंयाद्रौ ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

टीका—ग्यारह प्रकारका मद्य मांस और तीन प्रकारकी सुरा तथा आसव ये चारों यक्ष राक्षस तथा पिशाचोंका अन्नहै सो ये देवताओंकी हवि खानेवाले ब्राह्मणको न खाने चाहिये यहाँ कोई कहते हैं कि “देवानामश्रताहविः” यह जो पुंलिङ्गका लिखनाहै तिससे पुरुषही ब्राह्मणको मद्यपानका निषेधहै स्त्रीको नहीं सो अच्छा नहीं है क्योंकि याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें लिखाहै जैसे “पतिलोकंनसायाति ब्राह्मणीया सुरां पिबेत् ॥ इहैवसाशुनीगृध्रीशूकरीचोपजायते ” ॥ अर्थ—जो ब्राह्मणी सुराको पीती है वह पतिके लोकको नहीं जाती यही वह कुतिया गीधनी तथा सुभारिया होतीहै ॥ ९६ ॥ ब्राह्मण मद्यपान करिके मदसे मूढबुद्धि हो अशुद्ध स्थानमें गिरे अथवा वेदके वाक्योंका उच्चारण करै अथवा नहीं करनेयोग्य ब्रह्महत्या आदिको करै इससे उसको मद्यपान न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

यस्य कांयगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं  
शूद्रत्वं च सं गच्छति ॥ ९८ ॥ एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य  
निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

टीका—जिस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित वेद अर्थात् संस्काररूपसे स्थित एकवारभी मद्यसे डुबाये जाय अर्थात् एकवारभी जो ब्राह्मण मद्यको पीताहै उसका ब्राह्मणत्व चला जाताहै और वह शूद्रताको प्राप्त होताहै तिससे सर्वथा मद्य न पीना चाहिये ॥ ९८ ॥ यह सुरापानसे उत्पन्न पापका नानाप्रकारका प्रायश्चित्त कहा तिससे परे अब सुवर्णका चुरानेके पापका प्रायश्चित्त कहौंगा ॥ ९९ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्भिर्प्रो राजानमभिगम्य तु ॥ स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां



भवाननुंशास्तिवति ॥ १०० ॥ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यातुं  
तं स्वयम् ॥ वधेनं शुद्धयति स्तेनो ब्राह्मणंस्तपसेवै तु ॥ १ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाके ब्राह्मणके सुवर्ण  
चुरानेरूप अपने कर्मको कहता हुआ मुझे दंड दीजिये ऐसे कहे ॥ १०० ॥ चोर कंधे-  
पर मुसल रखके राजाके समीप जाय तब राजा उसके दिये हुए मुसलसे चोरको  
एकवार आप मारै वह चोर मुसलकी चौटसे मारा हुआ मरे अथवा न मरे मरेके  
समान हो जीवै तौभी शुद्ध होय अर्थात् उस पापसे छूटि जाय और ब्राह्मण तौ तप-  
हीसे शुद्ध होताहै सोई कहाहै जैसे ॥ “ न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्व पापेष्ववस्थि-  
तम् ” इति ॥ अर्थ—सब पापोंमें स्थितभी ब्राह्मणको कभी न मारै ॥ १ ॥

तपसाऽपनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ॥ चिरवासा द्विजो-  
र्ऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ २ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं  
द्विजः ॥ गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ३ ॥

टीका—उसी तपको कहतेहैं ॥ तपसे सुवर्णकी चोरीके पापको दूर किया चाहता  
द्विज वल्कलवस्त्रोंको धारण करि वनमें वासिकै ब्रह्महत्यारेके लिये कहे हुए व्रतको करै  
॥ २ ॥ ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको इन व्रतोंसे द्विज दूर करै और  
गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेके पापको तौ इन आगे कहेहुए प्रायश्चित्तोंसे दूर करै ॥ ३ ॥

गुरुतल्प्यभिभाष्येनस्तप्ते स्वप्यादयोर्मये ॥ मूर्ध्नि ज्वलन्तीं स्वां-  
श्लिष्येन्मृत्युना सं विशुद्धयति ॥ ४ ॥ स्वयं वां शिश्रुवृषणावुत्कृ-  
त्याधाय चाञ्जलौ ॥ नैर्व्रतैर्दिशमाति ष्टेदानिपातादजिह्वगः ॥ ५ ॥

टीका—गुरुतल्प जो गुरुकी भार्या है तिसमें गमन करनेवाला गुरुभार्यामें गमन  
करनेसे उत्पन्न पापको विख्यात करिकै लोहेकी तत्ती सेजपर सोवै और लोहकी बनी  
हुई जलती स्त्रीकी प्रतिमाका आलिंगन करि वह मरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ अथवा  
आपही अपने लिंग और वृषणोंको काटिकै अंजलीमें रखि जबतक शरीर न गिरै तबतक  
सीधा दक्षिण पश्चिम दिशाको चला जाय ये कहे हुए दोनों प्रायश्चित्त भारी होनेके  
कारण सवर्णों गुरुकी भार्यामें ज्ञानसे वीर्यके त्यागपर्यंत मैथुनके मध्ये जानने चाहिये ॥ ५ ॥

खट्वाङ्गी चिरवासा वां श्मश्रुलो विजने वने ॥ प्राञ्जापत्यं चैरेत्कृ-  
च्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ ६ ॥ चान्द्रायणं वां त्रीन्मासानभ्यं-  
स्येन्नियतेन्द्रियः ॥ हविष्येण यवाङ्वा वां गुरुतल्पापनुत्तये ॥ ७ ॥

टीका—खट्वांगको धारण किये हुए कपडोंके चीथरोंको पहिरे हुए केश नख लोम और डाढी मूँछोंको रखाये हुए सावधान मन निर्जन वनमें एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतको करै यह तौ आगे कहे हुए प्रायश्चित्तकी लघुतासे अपनी भार्याके भ्रमसे अज्ञान-विषयके जानना चाहिये ॥ ६ ॥ अथवा गुरुभार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न पापके दूर करनेके लिये इंद्रियोंको वशमें करि फल मूल आदिसे अथवा हविष्य नीवार आदिसे की हुई यवागूसे तीनि महीने चांद्रायणोंको करै यह तौ पहले कहे हुएसेभी लघु होनेसे असाध्वी वा असवर्णामें गमन करनेसे जानना चाहिये ॥ ७ ॥

एतैर्व्रतैरैपो हेयुर्महापातकिनो मर्लंम् ॥ उपपातकिनस्त्वेवमे भिर्ना-  
नाविधै व्रतैः ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मांसं यवान्पिपेत् ॥  
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ९ ॥ चतुर्थकालमंश्री-  
यादक्षारलवणं मितम् ॥ गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्रौ मांसौ नियतेन्द्रि-  
यः ॥ ११० ॥ दिवानुर्गच्छेद्गस्तास्तु तिष्ठन्नुर्ध्वं रजः पिपेत् ॥  
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रौत्रौ वीरिसनं वसेत् ॥ ११ ॥ तिष्ठन्ती-  
ष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ आसीनासु तथासीनो नियं-  
तो वीतमत्सरः ॥ १२ ॥ आतुरामभिश्चस्तां वा चौरव्याघ्रादि-  
भिर्भयैः ॥ पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ १३ ॥  
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मन-  
स्त्राणं गोरकृत्वां तु शक्तितः ॥ १४ ॥ आत्मनो यदि वान्येषां  
गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्तीं न कथयेत्पिपन्तं चैवं वत्स-  
कम् ॥ १५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥  
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ १६ ॥

टीका—इन कहे हुए व्रतोंसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले पापको दूर करै और गोवध आदि उपपातकोंके करनेवाले तौ आगे कहे हुए प्रकारसे अनेक रूप व्रतों करिके पापको दूर करै ॥ ८ ॥ 'उपपातकसंयुक्तः' यहाँसे 'अनेनविधिनायस्तु' यहाँ-तक कुलकहै उपपातक युक्त गौका मारनेवाला जबकी पतली दलियां पहले महीनेमें पीवै और शिखासमेत मूँड मुडवा और डाढी मूँछोंको मुंडवा उस मारी हुई गौके चर्मसे शरीरको ढके डुये तीनि महीनेतक गोष्ठ कहिये गौओंके रहनेके स्थानमें वसै

और गोमूत्रसे स्नान करे जितेंद्रिय हो बनये हुए नोनके बिना हविष्य अन्नको एक दिन खायके दूसरे दिन सायंकाल थोडा दूसरे तीसरे महीनोंमें खाय ऐसे तीनि महीने करे और दिनमें सबेरे उन गौओंके साथ जाय उन गौओंके खुरोंसे उठी हुई धूलिको खड़े होके खाय और सुजाने आदिसे उनकी सेवा करिके और प्रणाम करिके रातिम भीति आदिका सहारा लेकर बैठा रहै तथा शुद्ध और क्रोध रहित हो गौओंके उठने-पर पीछे उठै और वनमें घूमतियोंके पीछे घूमे और गौओंके बैठनेपर बैठै और रोगिणीको तथा चोर व्याघ्र आदिके भयके कारणोंसे दवाई हुईको गिरी हुईको अथवा कीचसे लिसी हुईको शक्तिके अनुसार छुड़ावै तथा उदय सूर्यके तप-नेपर मेघके वरसनेपर और शीतके उपस्थित होनेपर और पवनके बहुत चलने-पर गौकी यथाशक्ति रक्षा न करके अपनी रक्षा न करे तैसेही अपने तथा औरोंके घरमें खेतमें और खलिहानमें अन्न आदि खाती हुई गौको और दूध पीते हुए बछ-डेको न कहै इस कहे हुए विधानसे जो गौका मारनेवाला गौओंकी सेवा करताहै वह गौके मारनेसे उत्पन्न पापको तीनि महीनोंमें दूर करताहै ॥ ९ ॥ ११० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

वृषभैकादशा गाँश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ॥

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ १७ ॥

टीका-सम्यक् प्रकारसे व्रत करनेवाला ग्यारहवां है वैल जिनमें ऐसी दश गौओंका दान करे जो इतना धन न होय तौ वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्वका दान करे ॥ १७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ॥ अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्धयर्थं  
चान्द्रायणमथापि वा ॥ १८ ॥ अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन  
चतुष्पथे ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ १९ ॥

टीका-और तौ उपपातकी आगे जो कहा जायगा ऐसे अवकीर्णीको छोडकर पापके दूर करनेके लिये इसी गोवधके प्रायश्चित्तको अथवा चान्द्रायण व्रतको करे चान्द्रायण तौ लघुहै इस लिये छोटे उपपातकमें करना चाहिये अथवा जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे योजित करने योग्यहै ॥ १८ ॥ आगे कहा हुआ अवकीर्णी नै काने मर्धेसे रातिमें चौराहेमें पाकयज्ञके मंत्रसे निर्ऋतिनाम देवताका यजन करे ॥ १९ ॥

हृत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां  
जुह्यात्संपिषाहुतीः ॥ १२० ॥ कामतो रेतसः सकं व्रतस्थस्य

द्विजन्मनः ॥ अतिक्रमं व्रतस्थान्दुर्धर्मज्ञां ब्रह्मवादिनः ॥ १२१ ॥

टीका—तिसपीछे निरुद्धतिके लिये चौराहेमें गर्दभरूप आदि होमोंको यथावत् करिके उसके अंतमें “समासिञ्चन्तु मरुतः” इस ऋचासे मरुत्, इंद्र, बृहस्पति, तथा अग्निके लिये घीसे आहुती होमें ॥ १२० ॥ प्रसिद्ध न होनेके कारण अवकीर्णिका लक्षण कहतेहैं ॥ इच्छासे ब्रह्मचारी दिजस्त्रीमें वीर्यको सींचिके अवकीर्णी होताहै इस बचनसे स्त्रीकी योनिमें शुक्रका त्याग करिके ब्रह्मचर्यका अतिक्रम अवकीर्णीरूप सर्वज्ञ वेदके वेत्ता कहतेहैं ॥ १२१ ॥

मार्तुतं पुरुहूतं चं गुरुं पावंकमेवं चं ॥ चंतुरो व्रतिनोऽभ्येति  
ब्राह्मतेजोऽवकीर्णिनः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्द-  
भाजिनम् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ २३ ॥

टीका—ब्रह्मचारीका वेद पढ़नेके नियमके करनेसे उत्पन्न हुआ तेज भवकीणा होने-पर मरुत्, इंद्र, बृहस्पति और अग्नि, इन चारोंमें चला जाताहै इसीसे उनके लिये घीकी आहुतियां होमें ॥ २२ ॥ इस अवकीर्णनाम पापके उत्पन्न होनेपर पहले कहे हुए गर्दभासन आदिको करिके गर्दभचर्मको ओढे हुए में अवकीर्णी हों ऐसे अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंमें भीख मांगे उनसे पाये हुए भीखके अन्नसे एकवार खायके रहै ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपैस्पृशस्त्रिष्वणं  
त्वद्धेनं सं विशुद्धयति ॥ २४ ॥ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यत-  
ममिच्छया ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ २५ ॥

टीका—उन सात घरोंसे मिले हुए भिक्षाके अन्नसे एककाल व्याहार करता हुआ संख्या सबेरे और दुपहरमें स्नान करता हुआ वह अवकीर्णी एक वर्षमें शुद्ध होताहै ॥ २४ ॥ “ब्राह्मणस्यरुजःकृत्वा” इत्यादिसे जातिके भ्रंश करनेवाले कर्म कह भायेहैं उनमेंसे किसीको इच्छासे करिके सात दिनतक करनेयोग्य सांतपन व्रतको करे और इच्छाके बिना करिके आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करे ॥ २५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मांसं शोर्धनमैन्दवम् ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तः  
स्याद्यौवकैस्त्र्यहम् ॥ २६ ॥ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वैधे  
स्मृतः ॥ वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तुं षोडशः ॥ २७ ॥

टीका—साराशोध इत्यादि करिके संकरीकरण कहें उनमेंसे एकको इच्छासे करिके

शुद्धिके लिये एक महीनेतक चांद्रायण करै और कृमिकोटवयोहत्या इत्यादिसे मलिनीकरण कहैहैं उनमेंसे एककोभी इच्छासे करिकै तीनि रातितक कथिता यवागूको खाय ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्याका चौथा भाग अर्थात् वारह वर्षकी चौथाई तीनि वर्षरूप प्रायश्चित्त स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियके वधमें कहाहै उपपातकत्व करिकै कहे हुए त्रैमासिककी अपेक्षा गुरुत्व होनेसे वृत्तमें स्थित क्षत्रियके कामसे किये हुए वधमें देखना चाहिये और साधु आचारवाले वैश्यके कामसे वधमें अठवां भाग अर्थात् डेढ वर्षका व्रत और व्रतस्थ शूद्रके कामनासे मारनेपरः सोलहवां भाग अर्थात् नव महीनेका देखना चाहिये ॥ २७ ॥

अकामतस्तु रोजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥

वृषभैकसहस्रा गां दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ २८ ॥

टीका-अबुद्धिपूर्वक कहिये विना जाना हुआ क्षत्रियको मारकै एक बैल करि अधिक गौओंको सहस्र अर्थात् एक हजार गौ और एक बैल अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको दान करै ॥ २८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्गं नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामाद्दृ-  
क्षमूलनिकेतनः ॥ २९ ॥ एतदेवं चरेद्द्वंदं प्रायश्चित्तं द्विजो-  
त्तमः ॥ प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकं शतं गवाम् ॥ १३० ॥

टीका-अथवा नियमयुक्तही जटाओंको धारण किये हुए ग्रामसे दूर वृक्षके नीचे निवास करता हुआ ब्रह्महत्यारेके लिये जो व्रत कहाहै “ ब्रह्महादादशसमा ” इत्यादि वह तीनि वर्ष “ तुरीयो ब्रह्महत्याया ” इस्से पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि “ जटीदूरतरे ग्रामाद्दृक्षमूलनिकेतनः ” इस वचनमें कहेहुएसे व्यतिरिक्त शवके शिरका ध्वजाको धारण आदि सब धर्मोंकी निवृत्तिके लिये होनेसे और आकारसे यह अकाममें जानना चाहिये ॥ २९ ॥ इसी वारह वर्षके व्रतको विना कामनाके साधु आचारवाले वैश्यको मारिकै एकवर्ष ब्राह्मण आदि करै अथवा एकसौ एक गौओंका दान करै ॥ १३० ॥

एतदेवं व्रतं कृत्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ॥ वृषभैकां दशा वापि ॥  
दद्याद्द्विप्रायं गौःसितीः ॥ ३१ ॥ मांजारनकुलौ हत्वा चौषं म-  
ण्डूकमेवं च ॥ श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३२ ॥

टीका-कामनाके विना शूद्रका मारनेवाला इसी व्रतको छ महीने करै और दश सपेद गौएं और एक बैल ब्राह्मणको दान करै ॥ ३१ ॥ बिलाव नौला चाष मेढक कुत्ता

गोह उलूक काजा इनमेंसे किसीएकको मारिकै शूद्रकी हत्याके व्रतको करै ॥ ३२ ॥

पयः पि वेत्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ॥

उपैरूपशैस्त्रिवन्त्या वा सूक्तं वाऽद्वैतं जपेत् ॥ ३३ ॥

टीका—विना जाने मार्जार आदिके वधमें तीन रात्रितक दूध पीवै, जो मंदाग्नि आदिसे समर्थ न होय तौ तीन रात्रितक एक योजन अर्थात् चारकोश मार्ग चलै इसमें अशक्त होय तौ तीन राति नदीमें स्नान करै उसमेंभी अशक्त होय तौ “आपो-हिष्ठा” इत्यादि सूक्तको जपै यथोत्तर लघु होनेसे पूर्व पूर्वके असंभवमें आगे आगेका परिग्रह है विकल्प नहीं है ॥ ३३ ॥

अग्निं काष्ण्यायसौ दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ॥ पलालभारकं  
षण्डे सैसकं चैकमांषकम् ॥ ३४ ॥ घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं  
तु तित्तिरौ ॥ शुकं द्विर्हायनं वर्त्सं क्रौंचं हत्वा त्रिर्हायणम् ॥ ३५ ॥

टीका—सर्पको मारिकै ब्राह्मणके लिये तीक्ष्णहै अग्र जिसका ऐसा लोहका दंड दैवै और नपुंसकको मारिकै पयारका भार और एकमासे सीसा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३४ ॥ शुकके मारनेपर घीका भरा घट ब्राह्मणोंको दैवै तीतरके मारनेपर चारि आढक प्रमाण तिलोंका दान करै शुकके मारनेमें दोवर्षका बछरा और क्रौंच पक्षीको मारिकै तीनवर्षका बछरा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३५ ॥

हत्वौ हंसं बलाकां चैकं बार्हिणमेव च ॥ वानरं श्येनं भासौ च  
स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गौम् ॥ ३६ ॥ वासो दद्याद्ध्वयं हत्वा पञ्च नी-  
लान्वृषान्गजम् ॥ अजमेषावनङ्गाहं खरं हत्वैकर्हायनम् ॥ ३७ ॥

टीका—हंस, बलाका, मयूर, वानर, श्येन और भास इन पक्षियोंमेंसे किसी को मारै तो ब्राह्मणको गोदान करै ॥ ३६ ॥ घोडेको मारिकै बखका दान करै, हाथीको मारिकै पांच नलि बैल दान करै, बकरे तथा मेंढेको मारै तो एक बैल दान करै, गधेको मारिकै एक वर्षका बछरा दान करै ॥ ३७ ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा घेतुं दद्यात्पर्यस्विनीम् ॥ अक्रव्यादान्वं  
त्सतरिसुष्टं हत्वा तु कृष्णलम् ॥ ३८ ॥ जीर्णकार्मुकवस्तावीन्पृथ-  
ग्दद्याद्विशुद्धये ॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीहत्वाऽर्नवस्थिताः ॥ ३९ ॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवाले मृगों अर्थात् व्याघ्र आदिको मारिकै बहुत दूधकी

गौ देवै और मांसके न खानेवाले हरिण आदिकोंको मारिकै जवान बछिया देवै और ऊंटको मारिकै सुवर्णकी रत्तीका दान करै ॥ ३८ ॥ लोभसे उत्कृष्ट अपकृष्ट पुरुषोंमें व्यभिचार करनेवाली ब्राह्मण आदि वर्णोंकी स्त्रियोंको मारिकै ब्राह्मण आदिके क्रमसे चर्मपुट, धनुष्य, छाग, मेढा इनका शुद्धिकेलिये दान करै ॥ ३९ ॥

दानेन वधनिर्णोकं सर्पादीनामर्शक्नुवन् ॥

एकैकशश्चैरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥ १४० ॥

टीका-अग्नि आदिकोंके न होनेसे दान करि संपूर्ण पाप दूर करनेको असमर्थ ब्राह्मण आदि प्रत्येकके वधमें कृच्छ्रकी प्रथमतासे द्विज पाप दूर करनेके लिये प्राजापत्यको करै और सर्प आदिका तो "अग्नि काष्णायिती दद्यात्" इस्ते लगाकै यहां तक ग्रहण किये जाते हैं ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णे चान्नस्यनस्त्रां  
तु शुद्धहत्याव्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां  
वधे ॥ अनस्त्रां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति ॥ ४२ ॥

टीका-हड्डीवाले कृकलास ( गिर्गट ) आदि हजार जीवोंके वधमें शूद्रके वधका प्रायश्चित्त करै और अस्थिरहित खटमल आदिकोंके छकडे प्रमाण मारनेमें उसी प्रायश्चित्तको करै ॥ ४१ ॥ हड्डीवाले कृकलास आदि शुद्ध जीवोंके प्रत्येकके वधमें कुछ थोडासा दे देवै "अस्थिमतां वधे पणो देयः" अर्थात् हड्डीवालोंके वधमें पण देना चाहिये इस सुमंतुके वचनसे किंचिदेवसे पण जानना चाहिये और बिना हड्डीके जुवाँ खटमल आदिकोंमें प्रत्येकके वधमें प्राणायामसे शुद्ध होता है और प्राणायाम तो व्याहृतियोंसमेत प्रणवसहित सावित्रीका शिरसमेत तीनिवार जपहै जैसे "त्रिःपठेदाय-तप्राणःप्राणायामस्त उच्यते" अर्थात् प्राणोंको चढाकै तीनिवार पढै उसको प्राणा-याम कहतेहैं यह वसिष्ठ करि कहेहुए लक्षणोंका जानना चाहिये ॥ १४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जैप्यमृक्छतम् ॥ गुल्मवल्लीलतानां  
च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥ ४३ ॥ अन्नार्थजानां सत्त्वानां रसजानां  
च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४४ ॥

टीका-फलोंके देनेवाले आम्र आदि वृक्षोंके और कुञ्जक आदि गुल्मोंके और बलियोंके तथा गुडूची आदि लताओंके और वृक्षोंकी शाखाओंमें लिपटी हुई पुष्पित वीरुधोंके कूष्मांड आदिकोंमें प्रत्येकके काग्नेमें पाप दूर करनेके लिये

सावित्री आदि सौ ऋचा जपनी चाहिये “इंधनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्”  
इत्यादि उपपातकोंके मध्यमें पढ़े हुएका गुरु प्रायश्चित्तके कहनेसे यह फलवाले  
बुझोंके काटनेमें लघु प्रायश्चित्त एकवारके बुद्धिपूर्वक करनेमें जानना चाहिये  
॥ ४३ ॥ वन आदिकोंमें उत्पन्न और गुड आदिके रसोंमें उत्पन्न और गूलर  
आदिके फलोंमें उत्पन्न और महुआदिके फूलोंमें उत्पन्न हुए सब प्राणियोंके वधमें  
धीका खाना पापका शोधनेवाला है ॥ ४४ ॥

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ॥ वृथालम्भेऽनुर्गच्छेद्ग्रीं  
दिनेमेकं पयोव्रतः ॥ ४५ ॥ एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमु-  
द्भवम् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुर्तान्नाद्यभक्षणे ॥ ४६ ॥

टीका—जौतनेसे उत्पन्न हुई औषधी साठी आदिके और वनमें आपसे उत्पन्न हुए नीवार  
आदिके बिना प्रयोजन काटनेमें एकादिन दूधका आहार और गौओंका अनुगमन  
करै ॥ ४५ ॥ इस कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे हिंसासे उत्पन्न ज्ञान तथा अज्ञानसे किये  
हुये पाप दूर करने चाहिये अब अमद्यभक्षणका प्रायश्चित्त जो आगे कहेगे उसको  
मुनिये ॥ ४६ ॥

अज्ञानाद्धारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ॥ मतिपूर्वमनिर्देश्यं  
प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥ ४७ ॥ अर्पःसुराभाजनस्थामद्यभाण्ड  
स्थितास्तथा ॥ पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीशृतं पयः ॥ ४८ ॥

टीका—अज्ञानसे गौडी तथा माघ्वीको पीकर गौतमका कहा हुआ तप्तकृच्छ्र सांत  
पन व्रत करके फिर पुनस्संस्कारसेही शुद्ध होताहै सोई गौतमने कहाहै जैसे—  
“अमत्या मद्यपाने पयोधृतमुदकंवायुं प्रतिव्यहं तप्तकृच्छ्रः ततोऽस्यसंस्कारः” अर्थ—  
बिना जाने मद्य पीनेमें दूध धी पानी और पवन प्रतिव्यहं अर्थात् तीने दिन बरा-  
बर एक एक पीवे फिर तप्तकृच्छ्र करै तिस पीछे इसका संस्कार करना चाहिये ।  
भविष्यपुराणमेंही ऐसाही व्याख्यान किया है । जैसे “अकामतः कृते पाने गौडी-  
माघ्व्योर्नराधिप ॥ तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्गौतमेन यथोदितम्” इति । अर्थ—हे नरा-  
धिप कामनाके बिना गौडी माघ्वीका पान करनेपर तप्तकृच्छ्रका विधान होता है जैसा  
गौतमने कहाहै इति । और बुद्धिपूर्वक तो पैसेसे भिन्न मद्य पीनेमें प्राणांतिक अनि-  
र्देश्य दंड चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है तैसेही ज्ञानसे गौडी माघ्वीके पीनेपर मर-  
णके निषेधसे और अन्यमद्योंकी अपेक्षासे और गुरुत्वसे मनुकाही कहा “कणान्वा भक्ष-  
येद्वद्” अर्थात् वर्षार कणोंका भक्षण करै यह प्रायश्चित्त कहाहै इसीसे गौडी



तथा माध्वीके, ज्ञानसे पीनेमें भाविष्यपुराणका वचनहै अथवा इसी विषयमें मनुसं-  
बंधी करौजैसे—“कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुस्यर्थं तालवा-  
साजटीध्वजी” इति ॥ अर्थ—एकवर्षतक कर्णोंका भक्षण करै अथवा रातिमें एकबार  
तिलकी खली खांय सुरापानके पाप दूरि करनेके लिये तालके वज्र पहिरै जटा रखाये  
रहै और मद्यका ध्वजा लिये रहै ॥ ४७ ॥ पैठी सुराके पात्रमें अथवा उससे  
अन्यसुराके पात्रमें रखे हुए सुराके रस तथा गंधसे रहित जलको पीकै शंखाहूली  
नाम औषधिको डाल औटायके पांचरातितक दूध पीवै ॥ ४८ ॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मंदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ॥ शूद्रोच्छिष्टाश्च पी-  
त्वापिः कुशवारिपिवेद्यहम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमा-  
घ्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्रीश्य विशुद्धयति ॥ ५० ॥

टीका—सुराको छूकै देकै और स्वस्तिवचनपूर्वक दान लेकै और शूद्रका उच्छिष्ट  
जल पीकै ब्राह्मण दर्भ डालकै औटाए हुए जलको तीन दिन पीवै ॥ ४९ ॥ सोम-  
याग करनेवाला ब्राह्मण सुरा पीनेवालेके मुखके गंधको सूंधि और जलके मध्य तीन  
प्राणायाम कीर घी खायकै शुद्ध होताहै ॥ ५० ॥

अज्ञानात्प्राश्य विषमूत्रं सुरासंपृष्टमेव च ॥ पुनः संस्कारमहं-  
न्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ५१ ॥ वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या  
व्रतानि च ॥ निर्वर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ५२ ॥

टीका—विना जाने मनुष्यके मूत्र तथा पुरीष खायकै और सुरा कीर स्पर्श किये  
हुए भक्त आदिके रसको खायकै द्विजाति तीनों वर्ण फिर यज्ञोपवीत करनेयोग्य  
होते हैं ॥ ५१ ॥ शिरका मुडना मेखलाका धारण दंडधारण और भैक्षचर्याव्रत मधु  
मांस स्त्रीवर्जनकरि युक्त ये सब प्रायश्चित्तके लिये दूसरीवार यज्ञोपवीत करनेमें द्विजा-  
तियोंके नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वात्रं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ॥ जग्ध्वा मांसम-  
भक्ष्यं च समैरात्रं यवान्पिबेत् ॥ ५३ ॥ शुक्तानि च केषायांश्च पीत्वा  
मेघ्यान्यपि द्विजः ॥ तार्वद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्नं व्रजत्यधः ॥ ५४ ॥

टीका—“अश्रोत्रियकृते यज्ञे” इत्यादि करि कहे हुए अभोज्य जिनका अन्न है ऐतों  
का खायकर जलसे मिले हुए सत्तुओंके रूपसे अथवा गूजो दलिया है तिसके  
रूपसे यवोंको पीनेयोग्य करिकै सातरात्रि पीवै इसी विषयमें “मत्या मुक्त्वा चोत्कृ-

च्छ्रम्” अर्थात् जानिकै खायके कृच्छ्र करै यह चौथे अध्यायमें कहाहै उसके साथ विकल्पितहै । विकल्प तौ कर्त्ताको शक्तिकी अपेक्षासे होताहै तैसेही द्विजातिकी स्त्रियोंका उच्छिष्ट अथवा शूद्रका उच्छिष्ट खायकै इसी व्रतको करै । तैसेही “क्रव्यादशूकरोष्ट्राणाम्” इत्यादिसे जो विशेष प्रायश्चित्त कहाहै सो निषिद्ध मांसको खायकै इसी प्रायश्चित्तको करै ॥ ५३ ॥ जे स्वभावसे मधुर आदि रसहैं और कालके योगसे जलमें वास आदिसे खट्टे होजातेहैं वे शुक्तहैं और कपाय कहिये बड़ेडा आदिको और नहीं निषेध किये हुएमी कथितोंको पीकर जबतक न पचिजाय तबतक पुरुष अशुद्ध होताहै ॥ ५४ ॥

विद्वरोहखरोष्ट्राणां गोमांयोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि  
द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५५ ॥ शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमा  
नि कवकांनि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—गांवका सुअर, गधा, ऊंट, स्यार, वानर, कौवा इनके मूत्र अथवा विष्टाको द्विजाति खायकै चांद्रायण व्रत करै ॥ ५५ ॥ पवन आदि फरि सुखाये गये मांसोंको खायकै और भूमि आदिमें अथवा वृक्षमें उत्पन्न हुए छत्राकोंको जो खातेहैं उनको ब्रह्मघाती जानै इस्से यमने वृक्षमें उत्पन्नकामी निषेध कियहै । हरिणका मांसहै अथवा भैंसेका मांसहै इस प्रकार भक्ष्याभक्ष्यके विना जाने हिंसाके स्थानसे लाये हुए मांसको खायकै चांद्रायणही करै ॥ ५६ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकरवराणां च त-  
प्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ ५७ ॥ मांसिकान्नं तु योऽश्रीयादसमाव-  
र्तको द्विजः ॥ स त्रीर्ण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ ५८ ॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवालोंका और गांवके शूकर, ऊंट और गांवके सुरगेका तथा मनुष्य, कौवा, गधा इनमेंसे जानकै किसीका मांस खानेसे आगे कहा हुआ तप्त-कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहाहै और ग्राम्य शूकर तथा कुक्कुटको जानकै खानेमें पांचमें अध्यायमें पतित होना कहाहै सो तौ अभ्यासमें व्याख्यान किया गयाहै वह तौ अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र कहाहै यह अविरोध हुआ ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मांसिकश्राद्धके अन्नको खाताहै यह तौ सर्पिंडी करनेसे पहले एकोदिष्ट श्राद्धके अन्नका उपलक्षणहै वह तीनिराति उपवास करै तीनिरातिके मध्यमें एकदिन जलमें वसे ॥ ५८ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्रीयान्मधु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृ

च्छ्रं व्रतशेषं समीपयेत् ॥ ५९ ॥ विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा  
श्वनकुलस्य चोकेशकीटावपत्रं चैपि वेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १६० ॥

टीका—जो ब्रह्मचारी शहद अथवा मांसको अनिच्छासे अथवा आपत्तिमें खाय वह प्राजापत्यको कारिके आरंभ किये हुए ब्रह्मचर्य व्रतके शेषको समाप्त करे ॥ ५९ ॥ विलाव, कौवा, मूसा, कुत्ता और नौला इनके उच्छिष्टको अथवा केश कीटरूप संसर्गसे दूषितको एकवार मिट्टी डालनेसे शुद्ध जानि खायके ब्रह्मसुवर्चलासंज्ञक कथित जलको पीवै ॥ १६० ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तू-  
त्तार्य शोध्यं वाऽप्याशुं शोधनैः ॥ ६१ ॥ एषोऽन्नाद्यदनस्योक्तो व्र-  
तानां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ६२

टीका—अपनी शुद्धि चाहनेवाले पुरुषको निषिद्ध अन्न न खाना चाहिये और प्रमा-  
दसे खाया हुआ वमन कर देना चाहिये उसके असंभवमें प्रायश्चित्तसे शीघ्र शोधन  
करना चाहिये वमनके पक्षमें तौ लघु प्रायश्चित्त होताही है और ज्ञानसे पहले कहा  
हुआ प्रायश्चित्तहै ॥ ६१ ॥ अभक्ष्यके भक्षणमें जे प्रायश्चित्तहै तिनका यह नात्रा  
प्रकारका विधान कहा अब चोरीके पापोंके दूर करनेवालोंका विधान सुनिये ॥ ६२ ॥

धान्यान्नघनचौर्याणि कृत्वा कौमाद्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेव  
कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृ-  
हस्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

टीका—ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भोजन आदिकी चोरीको इच्छासे कारिके  
अपनेके भ्रमसे नहीं लेकर एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६३ ॥  
पुरुष स्त्री खेत घर इनमेंसे किसीके हरनेमें और कुआके जलके तथा बावडीके सब  
जलके हरि लेनेमें चांद्रायण व्रत मनु आदिकोंने प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ॥ चरेत्सान्तपनं  
कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्ध्ये ॥ ६५ ॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्या  
सनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ६६ ॥

टीका—जिनका मूल्य थोडाहै और जिनका प्रयोजनभी कम पडताहै और जिनका  
प्रायश्चित्त विशेषभी नहीं कहाहै ऐसी रांगा सीसा आदि वस्तुओंके पराये घरसे

चुराकै वह चुराया हुआ द्रव्य उसके स्वामीको देकर सांतपन कृच्छ्र जो आगे कहा जायगा उसको अपनी शुद्धिके लिये करै ॥ ६५ ॥ लाइडू आदि भक्ष्यके और खीर आदि भोज्यके और शकट आदि यानके और शय्या तथा आसनके और पुष्प मूल फल इनमसे प्रत्येकके चुरानेमें पंचगव्यका पीना शोधनहै ॥ ६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥ चैलचर्माभिषाणां च  
त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ६७ ॥ मणिंसुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रज्ज  
तस्य च ॥ अर्यःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कर्णात्रता ॥ ६८ ॥

टीका-तृण काष्ठ तथा वृक्षोंके और चावल आदि सूखे अन्नके चुरानेमें और भारी वल्क चर्म तथा मांस इनमसे एककेभी चुरानेमें तीन रात्रि उपवास करै ॥ ६७ ॥ मणि, मोती, मूसा, तामा, रूपा, लोह, कांसा और उपल इनमसे एककेभी चुरानेमें बारह दिनतक चावलोंके कनोका खाना करै ॥ ६८ ॥

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिर्गन्धौपधीनां  
च रज्ज्वाश्वैर्वै त्र्यहं पयः ॥ ६९ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेतं पापं स्तेर्य-  
कृतं द्विजः ॥ अगम्यागमनीयर्तुं व्रतैरेभिरेपांनुदेत् ॥ १७० ॥

टीका-कपास रेशम तथा उनके बखोंके और दो खुरके तथा एक खुरके गौ घोडा आर्दिके और तोता आदि पक्षियोंके और चंदन आदि गंधोंके और रस्तीके इनमें प्रत्येकके चुरानेमें तीन दिन दूधका आहार करै ॥ ६९ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे द्विजाति चोरीसे उत्पन्न पापकी दूरि करै और नहीं गमन करने योग्यमें गमन करनेसे उत्पन्नको तौ इन आगे कहे हुए व्रतोंसे दूरि करै ॥ १७० ॥

गुरुतैल्पव्रतं कुर्याद्व्रतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ॥ सख्युः पुत्रस्य च  
स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ ७१ ॥ पैतृष्वसेर्यां भगिनीं स्वस्त्रीयां  
मातुरेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ७२ ॥

टीका-सगी वहिनीमें तैसेही मित्रकी भार्याओंमें और गुरुकी पत्नियोंमें कुसारियोंमें और चांडालियोंमें इन सबोंमेंसे प्रत्येकमें वीर्यको सींचिकै गुरुभार्याके गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ ७१ ॥ पिताके वहिनीकी तथा माताकी वहिनीकी पुत्री वहिनीमें और माताके सगे भाईकी पुत्रीमें जिनका गमन सगी वहिनीके समान निषिद्धहै उनमें गमन करिकै चांद्रायण व्रत करै एकवार अज्ञानसे करनेमें यह प्रायश्चित्तहै ॥ ७२ ॥

एतास्तिस्वस्तु भार्याथै नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ॥ ज्ञातित्वेनानुपे-  
यास्ताः पतति ह्युपयन्नर्थः ॥ ७३ ॥ अमानुषीषु पुरुषउदक्याया-  
मयोनिषु।रेतःसिद्धत्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ७४ ॥

टीका—तीन ये पिताकी बहिनीकी पुत्री आदिकोंको भार्याके निमित्त पंडित न  
व्याहै ज्ञातिपनसे और वांछवपनसे ये गमन करनेयोग्य नहीं हैं जिससे इनको व्याही  
गमन करता हुआ नरकको जाताहै ॥ ७३ ॥ अमानुषी कहिये गौको छोडिकै घोडी  
आदिमें गौओंमें अबकीणी एकवर्ष प्राजापत्य करै यह शंखलिखित आदिकोंने भारी  
प्रायश्चित्त कहाहै तथा रजस्वलाम और योनिसे अन्यत्र स्त्रीमें और जलमें वीर्यसेचन  
कारिकै पुरुष सांतपन कृच्छ्र करै ॥ ७४ ॥

मैथुनं तु सर्मासेव्य पुंसि योषिति वां द्विजः।गोयानेऽप्सु दिवां चैव  
सवासाःस्नानमां चरेत् ॥७५॥चण्डालान्त्यस्त्रियोगत्वा भुक्त्वा च  
प्रतिगृह्य चै।पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥७६॥

टीका—जिस किसी स्थानमें पुरुषमें अथवा स्त्रीमें मैथुनका सेवन करि अथवा  
वैलोंकी सवारी छकडे आदिमें जलमें और दिनमें मैथुनका सेवन करि सचैल स्नान  
करै ॥ ७५ ॥ चांडालकी और अंत्यजोंकी और म्लेच्छ शबर आदिकोंकी स्त्रियोंमें  
ब्राह्मण अज्ञानसे गमन करिकै और उनका अन्न लायकै और उनसे दान ले करि  
पतित होताहै वह पतितका प्रायश्चित्त करै यह तौ गुरुत्वसे और अभ्याससे भोजन  
और प्रतिग्रहविषयकहै और ज्ञानसे तौ उनकी स्त्रीमें गमन करिकै समानताको प्राप्त  
होताहै यह तौ प्रायश्चित्तके गौरवके लियेहै ॥ ७६ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेद्मनि ॥ यत्पुंसःपरदारेषु तै-  
र्ज्ञानां चरयेद्द्वैतम् ॥ ७७ ॥ सां चेत्पुनःप्रदुष्येत्तु सदृशेनोपय-  
न्त्रिता ॥ कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैवैतदस्याःप्रावनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

टीका—विशेष कर प्रदुष्ट अर्थात् इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको भर्ता रोकै  
अर्थात् पत्नीके कामोंसे निवृत्त करिकै वेडियोंमें वँदीके समान एक घरमें रखै जो  
तौ पुरुषके सजातीय पराई दाराके गमनमें प्रायश्चित्तहै वही इस्से करौवै तिस पीछे  
तौ “स्त्रीणामर्द्धप्रदातव्यं” अर्थात् स्त्रियोंको आधा देना चाहिये यह वसिष्ठ आदिकोंने  
कहाहै सो अनिच्छासे व्यभिचारमें करना चाहिये ॥ ७७ ॥ सजातीयके गमनसे एक

चार दूषित और कियाहै प्रायश्चित्त जिसने ऐसी वह स्त्री जो फिर सजातीय करी  
प्राथित हुई उरसे गमन करै तौ इसका प्रायश्चित्त प्राजापत्य और कृच्छ्रचांद्रायण  
शीघनेवाला मनु आदिकोने कहहै ॥ ७८ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्विजः ॥ तद्भैक्षभुग्जंपात्रित्यं त्रिं  
भिर्वषड्यपोहंति ॥ ७९ ॥ एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि नि  
ष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमांः शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

टीका—चांडालीमें गमनसे ब्राह्मण जिस पापका एक रात्रिमें संचय करताहै उसको  
पिक्षाका खानेवाला और नित्य सावित्री आदिका जप करता हुआ तीन वर्षमें दूरि  
करताहै ॥ ७९ ॥ हिंसा अथदयभक्षण चोरी अगम्यागमन करनेवाले इन चारों पाप  
करनेवालोंकी यह विशुद्धि कही अब साक्षात्पाप करनेवालोंके साथ संसर्ग करनेवा-  
लोंके लिये इन आगे कही हुई शुद्धियोंको सुनिये ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौना-  
त्रं तु यौनासनाशनात् ॥ ८१ ॥ यो येन पतितेनैषां संसर्ग  
याति मानवः ॥ स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ८२ ॥

टीका—पतितके साथ संसर्ग करता हुआ मनुष्य अर्थात् एक स्वारीमें जाना एक  
आसनपर बैठना और एक पंक्तिमें भोजनरूप संसर्गोंको करताहुआ एक संवत्सरमें  
पतित होताहै और याजन अध्यापन तथा यौनसंबंधसे संवत्सरमें नहीं पतित होत  
है किंतु शीघ्रही पतित होताहै अध्यापन यहां उपनयनपूर्वक सावित्री मंत्रको सुना  
नाहै ॥ ८१ ॥ इन पतितोंमें जो जिस पाप करनेवालेके साथ पहलेके कहे हुए  
संसर्गको करताहै वह उस संसर्गकी शुद्धिके लिये उसीके व्रतरूप प्रायश्चित्तको करै  
मरणांतिक न करै यह कहा गया ॥ ८२ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सैपिण्डैर्वान्धवैर्वहिः ॥ निन्दितेऽहनि साया  
हे ज्ञात्यूत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्ये-  
त्प्रेतवत्पदां ॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं वान्धवैः सह ॥ ८४ ॥

टीका—सर्पिड और समानोदकोंको जीवतेही महापातकीकी प्रेतक्रिया आगे कही हुई  
रीतिसे ग्रामके बाहर जाके ऋत्विक् और गुरुके निकट रिक्ता नवमीतिथिमें संध्या  
समय करनी चाहिये ॥ ८३ ॥ सर्पिड समानोदकों करि प्रेरणाकीहुई दासी जलके भरे  
हुए घटको प्रेतवत् ऐसे कहिके दक्षिणको मुख करि लातसे मारै जैसे वह निरुदक

होजाय अर्थात् तर्पणके योग्य न रहै तिसपीछे वे सर्पिंड समानोदकों समेत एक राति-  
दिनका आशौच करै ॥ ८४ ॥

निर्वृत्तैरंश्चै तस्मात्तु संभाषणसहासने॥दायाद्यस्य प्रदानं च यथा  
चै व हि लौकिकी ॥ ८५ ॥ ज्येष्ठता च निर्वृत्तै ज्येष्ठावाप्यं च  
यद्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकं ॥ ८६ ॥

टीका-उस पतितसे सर्पिंड आदिकोंका बोलना एक आसनपर बैठना और उसके  
लिये हिस्सा देना और सांवत्सारिक आदिमें निमंत्रण आदि लोकव्यवहार ये सब दूरि  
होजाते हैं ॥ ८५ ॥ जेठेका जो प्रत्युत्थान आदि किया जाता है सो इस पतितका  
न करना चाहिये और जेठके मिलने योग्य है जो उसका वीस उद्धार आदिका धनहै  
सोभी उसको न देना चाहिये यद्यपि भाग देनेके निषेधहीसे उद्धारका निषेध सिद्धहै  
तिसपरभी छोटेको उसके पानेके लिये कहा जाता है उसी जेठके धनको उद्धारसमेत  
गुणमें आधक उसका छोटा भाइ पाताहै ॥ ८६ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम्॥ते नैव सार्धं प्रास्येयुः  
स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ ८७ ॥ सं त्वप्सु तं घटं प्रांस्य प्रविश्य  
भवनं स्वकम्॥संवाणि ज्ञातिकायाणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ ८८ ॥

टीका-पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सर्पिंड और समानोदक उसी प्रायश्चित्त किये  
हुएके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करिकै जलसे भरे हुए नवीन घटको डाल देवै  
॥ ८७ ॥ जिसने प्रायश्चित्त किया है वह उस पहले कहे हुए घटको जलमें डालकै  
तिसपीछे अपने घरमें आकै पहलेके समान सब ज्ञातिके कर्मोंको करै ॥ ८८ ॥

एतमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ वस्त्रान्नपानंदेयं तु  
वसेयुश्चै गृहान्तिके ॥ ८९ ॥ एनस्विभिरनिर्णितैर्नार्थं किञ्चित्सं-  
हाचरेत् ॥ कृतनिर्णैर्जनाश्चैव नै जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १९० ॥

टीका-पतितस्त्रियोंमेंभी ऐसेही "पतितस्योदकं कार्यं" इत्यादि विधिको भर्ता आदि  
सर्पिंड और समानोदक समूह करै और इनको भोजन वस्त्र देने चाहिये और घरके  
समीप इनको रहनेके लिये कुटी देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये  
हैं ऐसे पाप करनेवालोंके साथ दान प्रतिग्रह आदि अर्थ कुछभी न करै और  
जिन्होंने प्रायश्चित्त कियाहै उनकी पहले किये हुए पापसे कभी निंदा न करै पहलेके  
समान व्यवहार करै ॥ १९० ॥

वालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥ शरणागतहंतृंश्च स्त्री  
हंतृंश्च न संवसेत् ॥९१॥ येषां द्विजानां सावित्री नानृच्येत यथा  
विधि ॥ तांश्चारायित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनीययेत् ॥ ९२ ॥

टीका—जिसने बालकको मारा और जिसने किये हुए उपकारको अपकार करनेसे  
नाश किया और प्राणोंकी रक्षाके लिये आयेहुएको और स्त्रीको जिसने मारा होय  
इनको यथायोग्य प्रायश्चित्त करनेपरभी संसर्गों करिके समीप न बंसावै ॥ ९१ ॥ जिन  
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गौणकालमेंभी शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत न किया गया  
उनको तीन प्राजापत्य करवाके शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत करै ॥ ९२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ॥ ब्रह्मणा च प-  
रित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशतं ॥९३॥ यद्गृहितेनार्जयन्ति कर्मणा  
ब्राह्मणा धनम् ॥ तस्योत्सर्गेण शुद्धयन्ति जप्येन तैपसैव च ॥९४॥

टीका—जे निषिद्ध शूद्रकी सेवा करनेवाले द्विज हैं वे यज्ञोपवीत होनेपरभी वेदको  
न पढ़े हुए जो प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करें तौ उनकोभी यह तीन प्राजापत्य  
करनेका उपदेश करै ॥ ९३ ॥ निर्दिष्ट कर्मसे अर्थात् निषिद्ध बुरे प्रतिग्रह आदिसे  
ब्राह्मण जिस धनको जोड़तेहैं उस धनके त्यागसे और आगे कहे हुए जप और  
तपसे शुद्ध होतेहैं क्योंकि धनका त्यागही प्रायश्चित्तका विधान है ॥ ९४ ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥ मांसं गोष्ठे पयः  
पीत्वा मुच्यतेऽसंतप्रतिग्रहात् ॥ ९५ ॥ उपवासकृशं तं तु गोब्रजा  
त्पुनरागतम् ॥ प्रणतं प्रतिपृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ९६

टीका—सावित्रीका तीन हजार जप करिके गौओंके स्थानमें वास करि दुग्धका  
आहार करनेवाला बुरे दानके लेनेसे उत्पन्न पापसे छूट जाताहै शूद्रके प्रतिग्रह आदि-  
मेंभी यही प्रायश्चित्त है ॥ ९५ ॥ केवल दूधके आहारसे और अन्य भोजन न करनेसे  
दुर्बल जिसका देह गौओंके स्थानसे लौटि हुए नमस्कार करते नम्र उस मनुष्यसे पूछे  
कि, हमारे साथ बराबरी चाहताहै फिर बुरा दान लेगा? ऐसे धर्मको ब्राह्मण पूछै ॥ ९६ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ॥ गोभिः प्रवर्तिते ती-  
र्थैर्कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥ ९७ ॥ ब्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषाम-  
न्त्यकर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहीति ॥ ९८ ॥



टीका-यह सत्य है फिरि बुरें दानको न लेऊंगां ऐसे ब्राह्मणोंमें कहिकै गौओंको घास डारै उस घास खाए हुए पवित्रभूत स्थानमें ब्राह्मण उसको व्यवहारमें अंगीकार करै ॥ ९७ ॥ त्रात्यस्तौम आदि याजन कराकै और पितां गुरु आदिसे भिन्नोका निषिद्ध और्ध्वदेहिक दाह श्राद्ध आदि करिकै और अभिचार तथा अहीनयागविशेष करिकै तीनि कृच्छ्रोंसे शुद्ध होताहै ॥ ९८

शरणगतं परित्यज्य वेदं विप्राव्य च द्विजः ॥ सर्वत्सरं यवाहारं  
स्तत्पापमपसेधंति ॥ ९९ ॥ श्वसृगालखरैर्दृष्टो प्राम्यैः क्रव्या-  
द्विरेव च ॥ नरांश्चोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २०० ॥

टीका-रक्षाके लिये शरणमें आये हुएको जो समर्थ होनेपर त्याग करताहै और द्विजाति नहीं पढानेयोग्यको वेद पढाकै उससे उत्पन्न हुए पापको एक वर्ष तक जवका आहार करकै दूरि करताहै ॥ ९९ ॥ कुत्ता, स्यार, गधा, नर, अश्व, वराह आदि ग्रामके और कच्चे मांसके खानेवाले विलाव आदि करि काटाहुआ पुरुष प्राणायामसे शुद्ध होताहै ॥ २०० ॥

षष्टांनकालता मांसं संहितां जप एवं वा ॥ होमांश्च सर्कला नित्यम्  
पाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥ १ ॥ उष्ट्रयानं समारूह्य खरयानं तु काम-  
तः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २ ॥

टीका-विशेषकरि जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ऐसे पंक्तिसे बाहर जो स्तेन, पतित, क्लीब, आदिकोंको १ मासतक दो दिन न खाकै तीसरे दिन सायंकालके समय भोजन करना और वेदकी संहिताका जप और “ देवकृतस्यै-  
नसोऽवयजनमसि” इत्यादिक आठ मंत्रोंसे आठ होम प्रत्येक करै यह समुदित पापका शोधनहै ॥ १ ॥ ऊंट जिसमें जुते हैं ऐसा छकडा आदि यान (सवारी) में और गधेके यानमें इच्छासे चढिकै और ऊंट तथा गधेपर चढिकै चलनेमें और नंगे होके स्नान करनेमें बहुतसे प्राणायामोंके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥

विनाद्रिरप्सु वाप्यार्तः शरीरं सन्निवेश्य च ॥ सचै लो वंहिरौप्लु-  
स्य गौमालेभ्य विशुद्धयति ॥ ३ ॥ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां  
संमतिक्रमे ॥ स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तर्मभोजनम् ॥ ४ ॥

टीका-जलके समीप न होनेपर अथवा जलमें वेगसे पीडितहो मूत्र अथवा पुरीषको करकै गांवके बाहर नदी आदिमें सचैल स्नान कर गौको लूकै शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥

वेदमें कहे हुए और जिनके न करनेका प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहाहै ऐसे अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मोंमें लोप होनेपर और चौथे अध्यायमें कहे हुए स्नातकव्रतोंके अतिक्रम होनेपर एक रातिदिनका उपवास प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ४ ॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्तत्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥ स्नात्वाऽनंश्रुर्ब्रह्मशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कर्ण्ठेर्वाव्यवांससा ॥ विवेदे वा विनिर्जित्य प्रणिर्पत्य प्रसादयेत् ॥ ६

टीका—हूँ चुप बैठिये ऐसे ब्राह्मणका आक्षेप करिकै और विद्या आदिमें अधिकको तु ऐसे कहिकै उस कहनेके समयसे लगाकै जितना दिन वाकी होय उसमें भोजन न करै और पावोंमें पडके उसको कोपरहित करै ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको तिनकेसे मारिकै अथवा गलेमें कपडेसे बांधिकै अथवा वातोंके कलहमें जीतिकै प्रणाम करिकै प्रसन्न करै ॥ ६ ॥

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥ तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥ ८ ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंडको उठाकै सौ वर्षतक नरकमें रहताहै और दंड आदिसे ताडन करिकै हजार वर्षतक नरकमें रहता है ॥ ७ ॥ प्रहार किये हुए ब्राह्मणका रुधिर जितने धूलिके कणोंका भूमिमें भिगोयकै पिंड करता है उतनीही हजार वर्षातक वह रुधिर निकालनेवाला नरकमें वसता है ॥ ८ ॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निर्पातने ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्यं शोणितम् ॥ ९ ॥ अनुक्तानिष्कृतीनां तु पापानामर्षनुत्तये ॥ शौर्लिकं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंड आदिके उठानेमें कृच्छ्र करै और दंड आदिके मार देनेमें आगे कहे हुए अतिकृच्छ्रको करै और रुधिरको उत्पन्न करिकै कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै ॥ ९ ॥ जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ऐसे प्रतिलोमज आदिके बंधसे किये हुए पापोंके दूर करनेके लिये करनेवालेके शरीर और धन आदिकी सामर्थ्यको देखिकै और पापको ज्ञानसे अथवा आज्ञानसे अथवा एकवारका किया हुआ जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै ॥ २१० ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि भानवो व्यपकर्षति ॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्या

मि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ११ ॥ ॐयहं प्रातरुयहं सायं ॐयहमर्घां द  
याचितंम् ॥ ॐयहं परं च नान्श्रीयात्प्राजापत्यं चरन्द्भिजः ॥ १२ ॥

टीका-जिन कारणोंसे मनुष्य पापकी दूर करता है उन पापके नाश करनेवाले और देवता ऋषि तथा पितरों करि किये हुये कारणोंको तुमसे कहौंगा ॥ ११ ॥ प्राजापत्य व्रतको करता हुआ द्विजाति पहले तीनि दिन प्रातःकाल भोजन करै प्रातःशब्द यहां भोजनोंकी उचिततासे प्राप्त दिनके कालका । सूचक है इसीसे वसिष्ठने कहा है ॥ जैसे “ ॐयहंदिवाभुंक्ते नक्तमत्तिच ॐयहं ॐयहं अयाचितव्रतं ॐयहं न भुंक्ते इति कृच्छ्रः ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन दिनमें खाता है और तीनि दिन रातिमें और तीनि दिन अयाचित खाता है और तीनि दिन नहीं खाता है यह कृच्छ्र है आपस्तंबनेभी कहा है ॥ ॐयहंनक्ताशी दिवाशीच ततरुयहं ॐयहमयाचितव्रतरुयहं नाश्राति किञ्चन इति” ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन रातिमें न खाय और तीनिदिन दिनमें न खाय और तीनि दिन अयाचित खाय और तीनि दिन कुछ न खाय इस भांति कृच्छ्रकी वारह रात्रिकी विधि है अपरंच-“दिनत्रयंसायंसंध्यायामतीतायां भुंजीत अन्यदिनत्रयमयाचितंतावद् अंभुंजीतशेषंचदिनत्रयंनर्किंचिदश्रीयात्” उसका वही अभिप्राय है यहां ग्रासकी संख्या और परिमाणकी अपेक्षामें पराशरने कहा है जैसे ॥ “सायंद्वात्रिंशतिग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा ॥ अयाचितेचतुर्विंशं परंचानशनंस्मृतम् ॥ कुक्कुट्यंडप्रमाणंचयावांश्चप्र विशेन्मुखम् ॥ एतंग्रासंविजानीयाच्छुद्धचर्यंकायशोधनम् ॥ हविष्यंचान्नमश्रीयाद्यथारा त्रैतयादिवा ॥ त्रींस्त्रीण्यहानिशास्त्रीयान्ग्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥ अयाचितंतत्रैवाद्या- दुपवासरुयहंभवेत्” ॥ अर्थ ॥ संध्याको बत्तीस ग्रास और सबेरे छब्बीस और अया- चितमें चौबीस तिसके पीछे न खाना कहा है कुक्कुटके अंडके बराबर और जितना मुखमें समाय शुद्धिके लिये शरीरका शोधनेवाला यह ग्रास जानिये । हविष्य अन्न खाय जैसे रात्रिमें वैसेही दिनमें तीनि तीनि दिन शास्त्रमें कहे हुए ग्रासोंको संख्याके समान खावै तैसेही तीनि दिन अयाचित खावै और तीनि दिन उपवास करै ॥ १२ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च  
कृच्छ्रं सांत्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥ एकैकं ग्रासमश्रीयात्त्रैहाणि  
त्रीणि पूर्ववत् ॥ ॐयहं चोपवसेदन्त्यंमतिकृच्छ्रं चरन्द्भिजः ॥ १४ ॥

टीका-गोमूत्र गोबर गौका दूध तथा दही घी और कुशोंका जल इन सर्वोंको मिलाकै एक दिन भक्षण करै और कुछ न खाय और दूसरे दिन उपवास यह सांतपन कृच्छ्र है जब तौ गोमूत्र आदि छः प्रत्येक छः दिन खायकै सातमें दिन तौ उपवास

करै तौ महासांतपन होताह सोई याज्ञवल्क्यने जैसे । “ कुशोदकचगोक्षीरं दधिमुत्रंशकृद्घृतम् । जग्ध्वापरेहृद्युपवसेत्कृच्छ्रंसान्तपनंचरन् ॥ पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहस्सोपवासिकः ॥ सप्ताहेनतुकृच्छ्रोऽयंमहासान्तपनंस्मृतम्” ॥ इति ॥ अर्थ ॥ कुशोंका जल गौका दूध तथा दही मूत्र गोबर और घी इनको खायकै कृच्छ्र सांतपनको करताहुआ पुरुष दूसरेदिन उपवास करै और जुदी जुदी सांतपनकी वस्तुओंको छः दिन खायकै सातवें दिन उपवास करै तौ सातदिनमें यह कृच्छ्रमहासांतपन होताहै इति ॥ १३ ॥ अतिकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति प्रातःकाल सायंकाल अयाचित आदिके रूपसे एक एक ग्रास ऐसे तीनि तीनि दिन पहलेके समान खाय और पिछले तीनि दिन कुछ न खाय ॥ १४ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्रयहं पिबेदुष्णा-  
न्संकृत्स्नायी समाहितः ॥ १५ ॥ यत्तात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम-  
भोजनम् ॥ परांको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ १६ ॥

टीका—तप्तकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति तीनिदिन उष्णजल और तीनि दिन गौका उष्ण दूध और तीनि दिन उष्ण घी और तीनि दिन उष्ण पवन और एकवार स्नान करिकै नियमवान् होकै पीवै यहां पराशरका कहाहुआ विशेषहै ॥ जैसे ॥ “पदपलंतुपिबेदम्भस्त्रिपलंतुपयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते” इति अर्थ—जल तौ छःपल पीवै और दूध तीनि पल पीवै और घी एक पल पीवै यह तप्त-कृच्छ्रका विधानहै ॥ १५ ॥ स्वस्थाचित्त और संयतेंद्रिय पुरुषका वारह दिनोंतक न भोजन करनाही पराकनाम कृच्छ्रहै एकवार अथवा आवृत्ति करनेसे भारी तथा हलके प्रापका दूरी करनेवालाहै ॥ १६ ॥

एकैकं द्वांसयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले चैवर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषव-  
णमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १७ ॥ एतमेव विधिंकृत्स्नमांचरे-  
द्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं वर्तम् ॥ १८ ॥

टीका—सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नान करताहुआ पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको खायकै तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके क्रमसे एक एक ग्रास घटावै ऐसे चतुर्दशीको एकग्रास खाय तिस पीछे अमावास्याको व्रत करिकै शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लगाकै एक एक ग्रास बढ़ाता जाय ऐसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होतेहैं यह पिपीलिकामध्यनाम चान्द्रायण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इसीको पिंडे घटाने और बढ़ाने तथा तीनिवार स्नानरूप विधानको यवमध्यनाम चान्द्रायणमें शुक्लपक्षकी

आदिसे करिकै जितेंद्रिय चांद्रायणको करता हुआ आंचरण करै तिस पीछे तौ शुक्ल प्रतिपदाको आरंभ करिकै एक एक पिंडको बढ़ावै जैसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको आरंभ करिकै एक एक पिंड बढ़ावै जैसे अमावस्याको उपवास होय ॥ १८ ॥

अष्टावष्टौ सर्गश्रीयात्पिण्डान्मध्यदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हवि-  
ष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ १९ ॥ चतुरः प्रातरश्रीयात्पिण्डा-  
न्विप्रः समाहितः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं संमृतम् ०

टीका—यतिचांद्रायणको करता हुआ शुक्लपक्षसे अथवा कृष्णपक्षसे लगाकै एक महीनेतक जितेंद्रिय हो मध्याह्नके समय प्रतिदिन आठ ग्रास खाय मध्यन्दिनका कहना गृहस्थ और ब्रह्मचारीको सायंकालमें भोजनकी निवृत्तिके लियेहै ॥ १९ ॥ प्रातःकाल चारि ग्रास खाय और सूर्यके अस्त होनेपर चारि ग्रासोंका भोजन करै यह शिशुचांद्रायण मुनियोंने कहाहै ॥ २० ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ॥ मासेर्नाश्रन्ह-  
विष्यस्य चन्द्रस्यैति संलोकताम् ॥ २१ ॥ एतद्गुद्रास्तथादित्या  
वसंवश्वाचरन्व्रतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२ ॥

टीका—नववार आदि हविष्यके ग्रासोंको दोसो चालीस कभी दशककी पांच और कभी सोलह और कभी उपवास इत्यादि नियमसे जैसे कैसेहू पिंडोंको एक महीनेमें जितेंद्रियहो खाता हुआ चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै ऐसेही पापके क्षयके लिये और अभ्युदयके लिये यह कहाहै इसीसे याज्ञवल्क्यने कहाहै । जैसे ॥ “धर्मार्थ यश्च-  
रेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ कृच्छ्रकृच्छर्मकामस्तुमहतीश्रियमाप्नुयात्” ॥ अथ—जो इस व्रतको धर्मके लिये करताहै वह चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै और जो कृच्छ्रका करनेवाला सुख चाहताहै वह बडी लक्ष्मीको प्राप्त होताहै इति ॥ इस्से प्राजा-  
पत्य आदि कृच्छ्रभी अभ्युदयरूप फलका देनेवालाहै यह याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ २१ ॥ इस चांद्रायणनाम व्रतको ऋषियोंसमेत रुद्र आदित्य वसु और मरुतोंने सब पापोंके नाशके लिये गुरु लघु पापोंकी अपेक्षासे एकवार आवृत्तिके प्रकारसे किया ॥ २२ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् ॥ अहिंसा सत्यमर्मा  
धर्माज्वं च समाचरेत् ॥ २३ ॥ त्रिहस्त्रिनिशायां च सर्वासा जलमा-  
विशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतितांश्चैवं नाभिर्भेषेत कीर्हचित् ॥ २४ ॥

टीका—“भूर्भुवःस्वः” इन महाव्याहृतियोंसे आज्य जो धीहै तिस्से प्रतिदिन होम करै और अहिंसा सत्य अक्रोध और कुटिलता न करना इन सबोंको करै यद्यपि ये पुरुषार्थतासे विहितहैं तिसपरभी व्रतके अंगपनसे कहे गये हैं ॥ २३ ॥ दिनमें अथवा रातिमें आदि मध्य तथा अंतमें स्नानके लिये बस्त्रोंसमेत नदीआदिके जलमें प्रवेश करै यह तौ पिपीलिकामध्य और यवमध्य चांद्रायणसे अन्य चांद्रायणके मध्ये हैं क्योंकि उनमें वाचमन और तीनिवार स्नान कहाहै और स्त्री शूद्र तथा पतितोंके साथ जबतक व्रत करै तबतक संभाषण न करै ॥ २४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदर्शक्तोऽर्धः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रती च  
स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २५ ॥ सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि  
च शक्तितः ॥ सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २६ ॥

टीका—दिनमें और रातिमें उठाहुआ तथा बैठाहुआ रहै सोवै नहीं असमर्थ होने-पर तौ भूमिमें सोवै खट्वा आदिमें न सोवै ब्रह्मचारी स्त्रीके संयोगसे रहित व्रती मौंजी दंड आदि करि युक्त गुरु, देवता और ब्राह्मणोंका पूजक होय ॥ २५ ॥ सावित्रीको सदा जपै और पवित्र अघमर्षणआदिकोंको शक्तिके अनुसार जपै यह तौ जैसे चांद्रायण आदिमें है वैसेही प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमेभी यत्नवाला प्रायश्चित्तके लिये करै ॥ २६ ॥

एतौद्विजातयःशोर्ध्या व्रतैराविष्कृतैःनसः ॥ अनाविष्कृतपापांस्तु  
मंत्रैर्हो मैश्वं शोर्धयेत् ॥ २७ ॥ ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्य-  
यनेन च ॥ पापकृन्मुच्यते पापान्तथा दानेन चापदि ॥ २८ ॥

टीका—लोकमें विदितपापोंसे द्विजाति इन कहे हुए प्रायश्चित्तों करि आगे कहाहुई परिषद् कहिये सभाकरि शोधनेयोग्यहैं और अप्रकाशित पापोंको तौ मंत्रोंसे और होमोंसे समाही शोधन करै यद्यपि परिषदमें निवेदन करनेसे रहस्यपनका नाश होताहै तिसपरभी लोकमें नहीं विदित ऐसे इस पापके किसीके करनेपर क्या प्रायश्चित्त होताहै इस भांति सामान्यतासे पूछनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ २७ ॥ पाप करनेवाला मनुष्य लोकमें अपना पाप कहनेसे और मुझ पाप करनेवालेको धिक्कार है इस भांति पश्चात्ताप करनेसे शुद्ध होताहै और उग्ररूप तपसे तथा सावित्रीके जप आदि करि पापसे शुद्ध होताहै और तपमें असमर्थ होय तौ आपत्तिमें दान करनेसेभी पापसे मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

यथा यथा नरोऽर्धमै स्वयं कृत्वानुभाषते ॥ तथार्तथा त्वंचेर्वा

हि<sup>१३</sup> स्तेना<sup>१३</sup>धर्मेण मुच्यते ॥ २९ ॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं  
कर्म गर्हति ॥ तथा तथा शरीरं तत्तेना<sup>१३</sup>धर्मेण मुच्यते ॥ २३० ॥

टीका-मनुष्य पापको करिकै जैसे जैसे पापको लोकमें कहता है वैसे वैसे उस पापसे जीर्ण त्वचा करि सापके समान मुक्त होताहै ॥ २९ ॥ उस पाप करनेवालेका मन जैसे जैसे बुरे कर्मकी निंदा करताहै वैसे वैसे उसका शरीर जीवात्मा उस अधर्मसे मुक्त होताहै ॥ २३० ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ नैव कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु संः ॥ ३१ ॥ एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ॥ मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ ३२ ॥

टीका-पापको करिकै पीछे संतापयुक्त होनेसे उस पापसे छूटि जाता है जब पश्चात्तापयुक्त हो ऐसे कहता है कि मैं फिरि कभी ऐसा न करौंगा तब तौ बहुतही उस पापसे पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मोंका परलोकमें इष्ट अनिष्ट फलको मनसे विचारकै मन वाणी और शरीरसे सब शुभही करै क्योंकि उसका फल इष्ट है और नरक आदि दुःखका कारण होनेसे अशुभ कर्म न करै ॥ ३२ ॥

अज्ञानार्थं वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥ तस्माद्रिसुक्तिमन्विच्छन्द्भिर्नित्यं न समाचरेत् ॥ ३३ ॥ यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ॥ तस्मिन्स्तावत्तपः कुर्याद्यत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ ३४ ॥

टीका-भूलसे अथवा इच्छासे निषिद्ध कर्म करिकै उस पापसे मुक्तिको चाहता हुआ फिरि उसको न करै यह तौ फिरि करनेमें प्रायश्चित्तकी गुरुताके लिये है ॥ ३३ ॥ जिस प्रायश्चित्त नाम कर्मके करनेपर इस पाप करनेवालेको संतोष न होय तौ उसमें उसी प्रायश्चित्त हो तबतक लौटवै जबतक मनका संतोष और प्रसन्नता होय ॥ ३४ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं देवं मानुषकं सुखम् ॥ तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेदेदर्शिभिः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ३६ ॥

टीका-इस सब देवताओं और मनुष्योंके सुखका कारण तपही है और तपहीसे उसकी स्थिति है और तपही मध्यहै यह पंडितोंने कहाहै और तपही अंतहै यह

वेदका अर्थ जाननेवाले कहते हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणका ब्रह्मचर्यरूप जो वेदांतका ज्ञानहै वही तपहै और क्षत्रियका रक्षा करना तपहै और वैश्यका खेती वाणिज्य और पशुओंकी पालना आदि तपहै और शूद्रका ब्राह्मणकी सेवा तपहै यह वर्णविशेषसे उत्कर्षसूचनके लिये है ॥ ३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ॥ तपसैव प्रपश्यन्ति त्रै  
लोक्यं सचराचरम् ॥ ३७ ॥ औषधान्यगदो विद्या देवी च विविधा  
स्थितिः ॥ तपसैव प्रसिद्धयन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ ३८ ॥

टीका—वाणी मन और कायके नियमोंकरि युक्त फल मूल तथा वायुके खाने चाले ऋषि तपहीसे जंगम स्थावर सहित पृथिवी आकाश स्वर्गरूप तीनों लोकोंकी एकस्थानमें बैठे हुए पापरहित अंतःकरणसे प्रकर्ष करि देखते हैं ॥ ३७ ॥ रोगकी शांतिके कारणरूप औषध और नीरोग होना तथा ब्रह्मकर्मरूप वेदके अर्थका जानना और वेदसंवाधिनी विद्या और नानारूप स्वर्ग आदिमें स्थिति ये सब तपहीसे प्राप्त होते हैं जिससे तपही इनकी प्राप्तिका कारण है ॥ ३८ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ॥ सर्वं तु तपसा साध्यं त-  
पो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३९ ॥ महापातकिनश्चैव शेषाश्चाका-  
र्यकारिणः ॥ तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ ४० ॥

टीका—जो दुःखसे पार होनेयोग्यहै जैसे ग्रहोंके दोषसे सूचित आपत्ति आदि और जो दुःखसे क्षत्रिय आदिकों करि प्राप्त होनेयोग्यहै जैसे विद्वामित्रका बसी शरीरसे ब्राह्मणत्वका पाना और जो दुःखसे जाने योग्यहै जैसे सुमेरुका शिखर और जो दुःखसे करनेयोग्यहै जैसे गौओंका बहुतसा दान आदि सो सब तपसे साधन करि सकतेहैं जिसे अतिकठिन कार्यके करनेमें तपकी शक्तिका कोई उल्लंघन नहीं करि सकताहै ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्या आदि पातकोंके करनेवाले तथा उपपातक आदि नहीं करनेयोग्यके करनेवाले उक्तरूपहीके करनेसे उस पापसे छूटि जातेहैं कहे हुएका फिर कहना प्रार्थश्चित्तकी प्रशंसाके लियेहै ॥ ४० ॥

कीटांश्चाहिपैतद्गाश्च पशवश्च वयांसि च ॥ स्थावराणि च भूतानि  
दि वं यांति तपोवलात् ॥ ४१ ॥ यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवा-  
इभूर्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्देहन्त्याहुं तपसैव तपोधनाः ॥ ४२ ॥

टीका—कीड़े, सोंप, पतंगे, पशु, पक्षी और वृक्ष, गुल्म आदि स्थावर आदि सब



भूत तपके माहात्म्यसे स्वर्गको जातेहैं इतिहास आदिकोंमें कपोतोंके उपाख्यान आदिमें पक्षी अग्निमें प्रवेश आदि तपको करिकै और कीटोंका उनकी जातिका स्वामाविक दुःखका सहना तपहै उससे क्षीणपाप हो विकाररहित जन्मांतरमें किये हुए सुकृतसे स्वर्गको जाते हैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य मन वाणी और देहसे जो कुछ पाप करतेहैं उस सब पापको तपोधन तपहीसे जलादेतेहैं ॥ ४२ ॥

तपसैव विद्मदस्य ब्राह्मणस्य दिवोकसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति  
कामान्संवर्धयन्ति च ॥ ४३ ॥ प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासं-  
जत्प्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसां प्रति पोदरे ॥ ४४ ॥

टीका-प्रायश्चित्तरूप तपसे क्षीणपाप ब्राह्मणके यज्ञमें देवता हविको ग्रहण करते हैं और वाञ्छित अर्थको देतेहैं ॥ ४३ ॥ संपूर्ण लोककी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयमें समर्थ हिरण्यगर्भ पहले तपको करिकै ही इस ग्रंथको बनाते भये तैसे वसिष्ठ आदि ऋषि तपहीसे मंत्रब्राह्मणरूप वेदोंको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्त-  
पसः पुण्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्यता महार्थज्ञ-  
क्रिया क्षमा ॥ नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ४६ ॥

टीका-इस सब संसारके जीवोंका जो दुर्लभ जन्म है सो तपहीसे होताहै उसको देखते हुए देवता 'तपोमूलमिदंसर्व' इत्यादि तपके माहात्म्यको कहतेहैं ॥ ४५ ॥ शक्तिके अनुसार प्रतिदिन वेदका पठना और पंचयज्ञोंका करना और अपराधका सहनशील होना ये महापातकसे उत्पन्न पापोंको शीघ्रही नाश करदेते हैं और पापोंकी तो क्या चलाई है ॥ ४६ ॥

यथैर्धस्तेजसा वैद्विः प्राप्तं निर्देहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना-  
पापं सर्वं देहति वेदवित् ॥ ४७ ॥ इत्येतदेनैसामुक्तं प्रायश्चित्तं  
यथाविधि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका-जैसे अग्नि समीपके काष्ठोंको तेजसे निःशेष करि देती है तैसेही वेदके अथ का ज्ञाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको नाश करि देता है ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्मत्या आदि प्रकाश पापोंका प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इसके उपरान्त अप्रकाश कलि गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त सुनिये ॥ ४८ ॥

सव्याह्नेप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपिभ्रूणहणं मां-

सात्पुनन्त्यहरहः कृताः॥४९॥कौत्सं जप्त्वापि इत्येतद्रासिष्ठं च  
प्रतीत्यृचम्॥माहित्रं शुद्धवैत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्धयति ॥५०॥

टीका—व्याहृतियों तथा प्रणव करि युक्त और सावित्री शिर करि युक्त पूरक कुंभक रेचक आदिकी विधिसे प्रतिदिन कियेहुए सोलह प्राणायाम एक महीनेमें भूणहत्या-रेकोमी पापरहित करदेते हैं ॥ ४९ ॥ कौत्सऋषि करि देखे हुए “अपनःशोशुचदधं” इस सूक्तको और वासिष्ठऋषिकरि देखे हुए “प्रतिस्तोमेभिरुषसंवसिष्ठा” इस ऋचाको और माहित्र कहिये “महित्रीणामवोस्तु” इस सूक्तको और शुद्धवैत्यः “एतोन्विन्द्रंस्त-वाम” इन तीनि ऋचाओंको एक महीनेपर प्रतिदिन सोलहवारमी जपिकै सुराक पीनेवालाभी शुद्ध होता है ॥ २५० ॥

सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षि-  
णाद्भवति निर्मलः ॥ ५१ ॥ हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमहो इती-  
ति च ॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकै ‘अस्यवामीयं’ “अस्यवामस्यपलितस्य” इस सूक्त-को एक महीने प्रतिदिन एकवारमी जपिकै और “शिवसंकल्पं” “यज्जाग्रतोदूरं” इसको जो वाजसनेयकमें पढाहै जपिकै सुवर्णको चुरायकै शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ ५१ ॥ “हविष्पान्तमजरंस्वाविदि” इन उन्नीस ऋचाओंको और “नतमहोनदुरितं” इन आठको अथवा हविष्पान्त इसको और “इति वा इति मे मनः” इस सूक्तको और “सहस्र-शीर्षा पुरुष” इस षोडश ऋचा सूक्तको एकमहीने प्रतिदिन सोलहवारके अभ्याससे जपिकै गुरुकी क्षीर्म गमन करनेवाला उस पापसे छूटि जाता है ॥ ५२ ॥

एनेसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदैनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं  
यत्किञ्चेदमितीति वा ॥ ५३ ॥ प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचौत्रं  
विं गर्हितम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवरूपहात् ॥ ५४ ॥

टीका—स्थूलपाप जे महापातकहैं उनके और सूक्ष्म जे उपपातकहैं तिनके दूरि कर नेकी इच्छा करता हुआ “अवेवेहोवरोरुणनमोभिः” इस ऋचाको और “यत्किञ्चेदंवरुण दैव्येजने” इस ऋचाको और “इतिवाइतिमेमनः” इस सूक्तको एकवर्ष प्रतिदिन जपै ॥ ५३ ॥ स्वरूपसे महापातकीके धन आदिके कारण नहीं लेनेयोग्य प्रतिग्रहको लेकरि और स्वभाव काल तथा प्रतिग्रहके संसर्गसे दुष्ट अन्नको खायकै “तरत्समन्दीघावति” इनचारि ऋचाओंको तीनिदिन जपिकै मनुष्य उस पापसे पावित्र होताहै ॥ ५४ ॥

सोमारौद्रं तु वहेनां मासैर्मभ्यस्य शुद्धयति॥सर्वन्त्यामां चरन्स्नानमर्थमणामिति च त्र्यं चम्॥५५॥अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी संसकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सुं मासमासीत भैक्षमुक्त्वा॥५६॥

टीका—“सोमारुद्राधारयेथामसूर्यम्” इन चारि ऋचाओंको और “अर्थमपुंवरुणमिंत्रं च” इन तीनि ऋचाओंको नदीमें स्नान करि एक महीने प्रत्येकका अभ्यास करिकै बहुतपापवाला शुद्ध होता है ॥ ५५ ॥ एनस्वी कहिये पाप करनेवाला मनुष्य सब पापोंमें “ इन्द्रमिंत्रवरुणमग्रिसूतये ” इन सातऋचाओंका छः महीने जप करै और अप्रशस्त मूत्रपुरीष आदिका त्याग जलमें करिकै एक महीनेभर भिक्षाका भोजन करनेवाला होय ॥ ५६ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजैः ॥ सुगुर्वप्यर्पहन्त्येनो जपत्वा वा नम इत्यृचम्॥५७॥महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्द्रांस माहितः ॥ अभ्यस्यौब्दं पावमानीभैक्षोहारो विशुद्धयति॥५८॥

टीका—“देवकृतस्य” इत्यादि शाकल होममन्त्रोंसे एकवर्ष घीका होम करिकै “नम इन्द्रश्च” इस ऋचाका एक वर्ष जप करिकै महापातकसे उत्पन्नभी पापको द्विजातिनाश करता है ॥ ५७ ॥ ब्रह्महत्याआदि महापातकोंसे युक्त पाई हुई भिक्षासे आहार करता हुआ एक वर्ष जितेंद्रिय हो गौओंका अनुगमन करता हुआ पावमानी ऋचाओंका प्रतिदिन जप करता हुआ उस पापसे शुद्ध होताहै ॥ ५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम्॥मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैःशोधितस्त्रिभिः ॥ ५९ ॥ त्र्यहं तूपर्वसेद्युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपय नृपः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिजपित्वाऽर्धमर्षणम् ॥ २६० ॥

टीका—तीनि पराकों कर शुद्ध मंत्रब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका वनमें तीनिवार अभ्यास कर प्रयत कहिये बाहरी भीतरी शौच कर युक्त सब महापातकोंसे छूटि जाताहै ॥५९॥ तीनि रात्रि उपवास करताहुआ जितेंद्रिय प्रतिदिन प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल स्नान करता हुआ तीनिवार स्नानके समयहीमें जलमें गोता लगाकै “ऋतंचसत्यंचा” इस सूक्तसे अथमर्षण तीनि आवृत्तिसे जपिकै सब पापोंसे छूटि जाताहै ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनम्॥तथाऽर्धमर्षसूक्तं च सर्वपापापनोदनम् ॥ ६१ ॥ हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्रन्नपि तस्ततः ॥ ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नै नैः प्राप्नोति किञ्चन ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और सब पापोंके क्षयका कारणहै तैसेही अघमर्षणसूक्तभी सब पापोंके क्षयका कारणहै ॥ ६१ ॥ भू आदि तीनों लोकोंकोभी मारिकै और महापातकी आदिकोंकोभी अन्न खाता हुआ ऋग्वेदको धारण किये हुए विभ्र आदि किंचित्भी पापकी नहीं प्राप्त होताहै ऋग्वेदका धारण तौ रहस्य प्रायश्चित्तके लिये कहाहै तिस्से रहस्य पापके करनेपर मंत्रब्राह्मणरूप ऋक्संहिताका अभ्यास करै ॥ ६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्यै यजुषां वा समाहितः ॥ सार्त्रां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६३ ॥ यथा मर्हा हृदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ॥ तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृतं मज्जति ॥ ६४ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप ऋग्वेदकी संहिताका केवल मंत्रात्मिकाहीका नहीं अथवा यजुर्वेदकी मंत्रब्राह्मणरूप संहिताका अथवा सामवेदकी मंत्रब्राह्मण उपनिषद्रूप संहिताका तीनिवार अभ्यास करिकै सब पापोंसे छूटि जाताहै ॥ ६३ ॥ ऋक् आदि रूपसे जो तीनिवार लौटै उसको त्रिवृत कहते हैं ॥ जैसे बड़े कुंडमें प्राप्त होकै मट्टीका ढेला विखर जाताहै तैसे सब पाप त्रिवृतवेदमें नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥

ऋचो यजुषि चान्यानि समानि विविधानि च ॥ एष ज्ञेयस्त्रिवृद्धे दा-  
यो वेदे न संवेदवित् ॥ ६५ ॥ आद्यं यस्याक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मि-  
न्प्रतिष्ठिता ॥ स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्धे दो यस्तं वेदं संवेदवित् ॥ २६६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

टीका—त्रिवृतपनको कहते हैं ॥ ऋग्वेदके मंत्र और यजुके मंत्र और वृहद्रथंतर आदि नाना प्रकारके साम और परस्पर तीनोंके पृथक् पृथक् मंत्र ब्राह्मण यह त्रिवृद्धे जानना चाहिये जो इसकी जानताहै वह वेदका वेत्ता होताहै ॥ ६५ ॥ सब वेदोंका आद्य कहिये प्राथमिक और सब वेदोंका सार अक्षर उकार मकार रूपसे तीनि अक्षरका जो ब्रह्म है उसमें तीनों वेद स्थितहैं सो दूसरा त्रिवृद्धे प्रणवनाम गुह्य वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठ होनेसे छिपाने योग्यहै परमार्थका कहनेवालाहै ॥ इस्से और परमार्थक होनेसे धारण तथा जपसे मोक्षका कारण है जो उसको स्वरूपसे जानताहै वह वेदका जाननेवाला है ॥ २६६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां  
कुल्लुकभट्टाऽनुयायिन्यां मनुक्तभाषां त्रिवृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ॥ कर्मणां फलनि-  
वृत्तिं शंसं नैस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥ संतानुवाचं धर्मात्मा महर्षी-  
न्मानवो भृगुः ॥ अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

टीका-हे पापराहित ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका और अन्तरप्रभवोंका यह धर्म तुमने कहा अब कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी प्राप्तिकी और परां कहिये जन्मांतरोंमें हुई परमार्थरूपको हमसे कहौ महर्षियोंने यह श्रुत्यसे कहा ॥ १ ॥ वह धर्म-प्रधान मनुका पुत्र श्रुत्य इस सब कर्मसंबंधके फलके निश्चयको सुनिये यह उन महर्षियोंसे बोला ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ॥ कर्मजां मतं यो नृणां-  
मुत्तमाधर्ममध्यमाः ॥ ३ ॥ तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य  
देहिनः ॥ दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

टीका-मन वाणी देह जिसका कारण ऐसा सुखदुःखरूप फलका देनेवाला विहित निषिद्धरूप कर्म और उसीसे उत्पन्न मनुष्य तिर्यक् आदिके भावसे उत्कृष्ट मध्यम और अधमकी अपेक्षा मनुष्योंकी गति अर्थात् जन्मांतरोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥ उस देहकी कर्मकी उत्कृष्ट मध्यम अधमतासे तीन प्रकारके मन वाणी तथा कायके आश्रित और आगं कहे हुए दश लक्षणोंकारि युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन करि संकल्प किया हुआ कहा जाताहै और किया जाताहै सोई तैत्तिरीय उपनिषद्में कहाहै जैसे "तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचावद तित्कर्मणा करोति" इति ॥ अर्थ तिसै पुरुष जिसको मनसे जानताहै उसको वाणीसे कहाताहै और कर्मसे करताहै ॥ ४ ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितर्थाभिनवेश-  
श्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमनृतं चै वै पैशुन्यं  
चापि सर्वशः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

टीका-उन दशलक्षणोंके कर्म दिखानेको कहते हैं ॥ कैसे कि, पराये धनको अन्या-यसे ले लो इस भांति सोचना और मनसे ब्रह्मवधआदिकी निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देहही आत्माहै; इस भांति तीन प्रकारका अशुभफल मानस कर्म

ये तीनों और विपरीतबुद्धि तीनि प्रकारका शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥ अप्रियका कहना झूठ बोलना पीठि पीछे पराये दूषणोंका कहना और सत्यमी राजा देश और पुरवासियोंकी वार्त्ता आदिका विनाप्रयोजन वर्णन करना इस भांति चारि प्रकारका अशुभफल वाचिक कर्म होताहै इस्से विपरीत प्रिय सत्य और परगुणोंका कहना और श्रुति पुराण आदिमें राजा आदिकोंके चरित्रका कहना शुभफल है ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारी  
रं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥ मानसं मनसैर्वायमुपभुङ्क्ते शुभाशु-  
भम् ॥ वांचा वांचा कृतं कर्म कायेनैव चैकाधिकम् ॥ ८ ॥

टीका—अन्यायकरिकें पराये द्रव्यका हरण करना वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसाका करना और पराये स्त्रीके साथ संभोग करना, इन तीन प्रकारका अशुभफल देने-वाला शारीरकर्म होताहै और इनसे विपरीत अर्थात् न्यायसे द्रव्यका संग्रहकरना वेदादिकशास्त्रोंसे यज्ञादिकोंमें विहित पशुओंकी हिंसा करना और अपने स्त्रीके साथ ऋतुकालमें संभोग करना ए तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीर कर्म होताहै ॥ ७ ॥ मन करिके जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किया उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसेही यह भोगता है ऐसे वाणी करि किया हुआ शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद, बोलने आदिसे और शरीरसंबंधी शुभ अशुभ शरीरके द्वारा स्रक् चंदन आदि मियाके उपभोगसे व्याधित आदि होनेसे भोगताहै तिस्से यत्न करिके शारीर मानस और वाचिक धर्मरहित और धर्मजनक कर्मोंको छोडै तथा करै ॥ ८ ॥

शरीरं जैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरैः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां  
मानसैरन्त्यजांतिताम् ॥ ९ ॥ वाग्दण्डोऽर्थं मनोदण्डः कायदण्ड-  
स्तथैव च ॥ यस्यै ते निहितां बुद्धौ त्रिदण्डी ति सं उच्यते ॥ १० ॥

टीका—यद्यपि पापिष्ठोंके शारीर, वाचिक और मानसिकही तीनि पाप होतेहैं तिसपरभी वह जो बहुधा अधर्मही करै धर्म थोडा करै तौ बाहुल्यके अभिप्रायसे यह व्याख्यान कियाहै जैसे अधिकतासे शरीरके कर्मोंसे उत्पन्न पापोंकरि युक्त मनुष्य स्थावरत्वको प्राप्त होताहै और बाहुल्यसे वाणी करि किये हुए ओंसे पक्षिभाव और मृगभावको अथवा बाहुल्यसे मनकरि किये हुएओंसे चांडाल आदिके भावको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ वाणीका दण्ड, मनका दंड, तैसेही कायदंड ये तीनों दंड जिसकी बुद्धिमें स्थितहैं वह त्रिदंडी कहा जाताहै और तीनि दंडोंके धारणमात्रसे त्रिदंडी नहीं होताहै ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवं ॥ कामक्रोधौ तु संयम्य तं-  
तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥ योऽस्यात्मनः कारयित्वा तं क्षेत्रज्ञं  
प्रचक्षते ॥ यः करोति सं कर्माणि भूतात्मैत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

टीका—इस निषिद्ध वाणी आदिकोंका सब भूतोंकी गोचरतासे दमन करिकै और इन्हींके दमनके लिये काम तथा क्रोधकी रोकिकै तिसपीछे मनुष्य मोक्षप्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ कौन सिद्धिको प्राप्त होताहै सो कहतेहैं ॥ जो इस लोकसिद्ध शरीरनाम आत्माकी कर्माँमें प्रवृत्त करनेवालाहै उसको पंडित क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जो यह व्यापारोंकी करताहै वह शरीरनामहै वह पृथिवी आदि भूतोंसे वननेके कारण पंडितोंकरि भूतात्मा कहा जाताहै ॥ १२ ॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यःसहजःसर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं  
सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥ तांषुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ  
एवं च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

टीका—शरीर तथा क्षेत्रज्ञसे भिन्न शरीरके भीतर आत्मा नाम होनेसे आत्मा जीवनामसे क्षेत्रज्ञोंको सहज आत्मानामकी प्राप्ति है क्योंकि उनसे उसका विनियोगहै अहंकार और इंद्रियोंके रूपसे परिणामको प्राप्त कारणभूत जिस जीवात्माकरि क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखका अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ वे दोनों महत् और क्षेत्रज्ञ पृथिवी आदि पांच भूतोंसे मिले हुए आगे जो कहा जायगा और सब लोकमें तथा वेद स्मृति और पुराण आदिमें प्रसिद्ध होनेसे जो तं शब्दसे निर्देश किया गया और उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंमें स्थित ऐसे परमात्माको आश्रय लेकर दोनों स्थित रहतेहैं ॥ १४ ॥

असंख्यां मूर्तयस्तस्य निर्षपतन्ति शरीरतः ॥ उच्चावचानि भूतानि  
संततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥ पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्यं दुष्कृ-  
तिनां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

टीका—इस परमात्माके शरीरसे असंख्यहैं मूर्तियाँ जिनकी ऐसे जो क्षेत्रज्ञ शब्दसे पीछे कही हुई लिंगशरीरमें स्थित और वेदांतके कहे हुए प्रकारसे आगिकी चिनगारियोंके समान जे मूर्तियाँ निकली वे देहरूपसे परिणामको प्राप्त उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंको सदा कर्माँमें प्रेरणा करतीहैं ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पांचही भूतोंके भागोंसे दृष्कृत करनेवाले मनुष्योंको पीडाका अनुभव करानेवाले जरायुज आदि देहोंसे भिन्न दुःख सहनेवाला शरीर परलोकमें उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥

तेनानुभूय तां यामीः शरीरेणेहं यातनाः ॥ तार्स्वेवं भूतमात्रासु  
प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥ सोऽनुभूयांसुखोर्दकार्न्दोषान्विषय-  
संगजान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

टीका—उस निकलेहुए शरीरसे पापी जीव यमकी कीहुई यातनाओंको भोगिकै स्थूल शरीरके नाश होनेपर उन्ही आरंभ करनेवाले भूतोंके भागोंमें जो जिसका भागहै वह उसमें इस क्रमसे लीन होजाताहै अर्थात् उन भूतोंके संयोगी होकर स्थित रहताहै ॥ १७ ॥ वह शरीरी भूतसूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें स्थित हो निषिद्ध शब्द स्पर्शरूपरसगंधनाम विषयोंके भोगसे उत्पन्न यमलोकके दुःख आदिको भोगिकै तिस पीछे अनंतर भोगसे नाश हुएहैं पाप जिसके ऐसा हो उन्ही बडे पराक्रमी दोनों महत् और परमात्माका आश्रय लेताहै ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति सं-  
पुंक्तः प्रेत्येह च सुखांसुखम् ॥ १९ ॥ यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽ-  
धर्ममल्पशः ॥ तैरेव चावृतौ भूतैः स्वर्गे सुखमुपाईनुते ॥ २० ॥

टीका—वे दोनों महत् और परमात्मा आलस्यरहित हो उस जीवके धर्मको और भोगनेसे बाकी रहे पापका साथ विचार करते हैं जिन धर्म अधर्मों करि युक्त जीव परलोक और इसलोकमें सुख तथा दुःखको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ वह जीव जो मनुष्यकी दशामें अधिकतासे धर्मको करताहै और थोडा अधर्म तब स्थूलशरीरके रूपसे परिणामको प्राप्त उन्ही पृथिवी आदि भूतों करि युक्त स्वर्गके सुखको भोगताहै ॥ २० ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥ तैर्भूतैः सं परित्यक्तो  
यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥ यामीस्तां यातनाः प्राप्यं स जीवो  
वीतकल्मषः ॥ तान्येवं पञ्च भूतानि पुनरप्येति विभागशः ॥ २२ ॥

टीका—जो वह जीव मनुष्यकी दशामें अधिकतासे पाप करताहै और पुण्य थोडा तब मनुष्यके देहरूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं भूतोंकरि त्याग किया हुआ मरिक्के पीछे पाचोंही मात्राओंसे उक्तरीति करि यातना भोगनेके योग्य हुआहै कठिन देह जिसका ऐसा हो यमकी पीडाओंको भोगताहै ॥ २१ ॥ वह जीव यमकी उन यातनाओंको उस कठिन देहसे भोगिकै उसके भोगसे पापरहित हो उन जरायुज आदि शरीरोंके आरंभकरनेवाले पृथिवीआदि भूतोंके भागोंमें अधिष्ठितहो मनुष्यआदिके शरीरको ग्रहण करता है ॥ २२ ॥



एतां दृष्ट्वास्मिन् जीवस्य गतिः स्वेनैव चेतसा ॥ धर्मतोऽधर्मतश्चैवं धर्म-  
में दृष्ट्वात्सदा मनः ॥ २३ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैवं त्रीन्विद्यादात्मनो  
गुणान् ॥ यैर्व्याप्येमान् स्थितो भावोऽन्महान्सर्वानशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—धर्म अधर्म हैं कारण जिनका ऐसी इस देहकी स्वर्ग नरक आदिके भोगनेके उचित प्रिय अप्रिय देहकी प्राप्तिर्योको अंतःकरणमें जानिकै धर्ममें मनको सदा लगावै ॥ २३ ॥ जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे सत्व रज तम आदि तीन गुणोंको आत्माके उपकारक होनेसे आत्मा जो महत् है उसके गुणोंको जानै जिन करिकै व्याप्त महान् इन स्थावर जंगमरूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होके स्थितहै ॥ २४ ॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ॥ स तदा तद्गुणंप्राप्य तं  
करोति शरीरिणम् ॥ २५ ॥ सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः  
स्मृतम् ॥ एतद्व्याप्तिमंदेतेषां सर्वभूतांश्रितं वपुः ॥ २६ ॥

टीका—यद्यपि यह सब त्रिगुणमय है तिसपरभी जिस देहमें इन गुणोंमेंसे जो गुण सकलरूपसे अधिक होताहै तब उस गुणके बहुतेहैं लक्षण जिसमें ऐसे उस देहीको करताहै ॥ २५ ॥ अब सत्त्व आदिकोंके लक्षण कहते हैं ॥ यथार्थका जो अभास ज्ञानहै वह सत्त्वका लक्षणहै इससे विपरीत जो अज्ञानहै वह तमका लक्षणहै विषयोंका अभिलाषरूप जो मनका कार्य है वह रजोगुणका लक्षणहै और सत्व रज तमका स्वरूप तौ प्रीति अप्रीति और विषादरूपहै सोई पढते हैं जैसे “ प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशवृत्तिनियमार्थाः अन्योन्याभिभवजननामिथुनवृत्तयश्चगुणाः ” ॥ इति ॥ अर्थ ॥ प्रीति अप्रीति और विषादरूप तथा प्रकाशवृत्तिका नियम है अर्थ जिनका और आपसमें अभिभवका करना और मिथुनवृत्तिगुणहैं इति ॥ यह तौ इनका स्वरूप आगेके तीन श्लोकसे कहेंगे इन सत्व आदि गुणोंका यह सब ज्ञान आदि सब प्राणि-  
योंमें व्याप्त लक्षणहै ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ॥ प्रशान्तमिव शुद्धा-  
भं सत्त्वं तंदुपधोरयेत् ॥ २७ ॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमा-  
त्मनः ॥ तद्गोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥

टीका—उस आत्मामें जो कुछ संवेदन प्रीतियुक्त लक्षित होय क्लेशनामकोन होय शान्त तथा शुद्धरूप होय उसको सत्व जानिये ॥ २७ ॥ जो तौ दुःखकारि युक्त और आत्माकी प्रीतिका नहीं उत्पन्न करनेवाला और सदा विषयोंमें शरीरियोंकी इच्छाके

उत्पन्न करानेवाले उसके दुर्निवार होनेसे सतोगुणके प्रतिपक्षको रज जानो ॥ २८ ॥  
 यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं  
 तमस्तदुपर्यारयेत् ॥ २९ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणानां यः फलो  
 दयः ॥ अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

टीका—जो सत् असत्के विचारसे शून्य और नहीं प्रगट है विषयोंके आकारका स्वभाव जिसमें और नहीं तर्क करने योग्य है स्वरूप जिसका और अंतःकरण वही करणोंसे जो नहीं जाननेयोग्य उसको तम जानिये इन गुणोंके स्वरूपका कहना इस लिये है कि, मनुष्यको सत्ववृत्तिमें स्थित होनेको यत्नकरना चाहिये ॥ २९ ॥ इन सत्व आदि तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम अधमरूप जो फलका उत्पन्न करनेवाला है उसको विशेष करिके कहेंगे ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च  
 सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥ आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्य  
 परिग्रहः ॥ विषयोपसेवा चाजसं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

टीका—वेदमें अभ्यास और प्राज्ञपत्य आदिका करना और शास्त्रके अर्थका ज्ञान और मिट्टी जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना और दान आदि धर्मोंका करना और आत्माके ध्यानमें तत्पर होना ये सत्त्वनाम गुणके कार्य हैं ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मोंका करना और थोडेमी अर्थमें व्याकुल होना और निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयोंका भोगना यह रजनाम गुणका कार्य है ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता  
 प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणा-  
 नां त्रिषु तिष्ठताम् ॥ ईदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशोगुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

टीका—अधिक धनकी इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता और नास्तिक्य कहिये परलोकके न होनेकी बुद्धि और आचारका लोप और याचनका स्वभाव होना और प्रमाद कहिये संभव होनेपरभी धर्म आदिकोंमें मनका न लगाना ये तामसनाम गुणके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ इन सत्व आदि तीनोंही गुणोंका भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनोंकालोंमें विद्यमानोंका यह आगे जो कहा जायगा वह संक्षेपके क्रमसे लक्षण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वन्श्च करिष्यन्श्चैवं लज्जति ॥ तं ज्ञेयं विदुषा सर्व-  
 वै तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३५ ॥ येनास्मिन्कर्मणां लोके ख्यातिमि-  
 च्छति पुष्कलाम् ॥ न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ३६

टीका-जिस कर्मको करिकै करता हुआ और आगे करनेकी इच्छा करता हुआ लज्जित होय तो वह सब तमका कार्य होनेसे तमहै नाम जिसका ऐसे गुणका लक्षण शास्त्रके जाननेवालेको जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ इस लोकमें बड़ी ख्यातिको प्राप्त होउ इस लियेही जो जिस कर्मको करताहै परलोकके लिये नहीं और उस कर्मक फलके न होनेपर दुःखी होताहै वह रजका कार्य होनेसे रजोगुणका लक्षण जानिये ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणैच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यति चात्मो-  
 स्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्व-  
 र्थ उच्यते ॥ सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

टीका-जो कर्म सब प्रकारसे वेदके अर्थकी जाननेकी इच्छा करता है और जिस कर्मको करता हुआ तीनों कालमें भी लज्जित नहीं होताहै और जिस जिस कर्मसे इसके आत्माको संतोष होय वह सत्त्वनाम गुणका लक्षण जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता होना यह तमका लक्षण है और धनमें निष्ठ होना रजका लक्षण है धर्मकी प्रधानता होना यह सत्त्वगुणका लक्षण है इन कामआदिकोंमें आगे आगे वालीकी श्रेष्ठताहै कामसे अर्थ श्रेष्ठ है क्योंकि कामका अर्थ मूलहै और उन दोनोंसे धर्म श्रेष्ठहै क्योंकि उन दोनोंका वही मूलहै ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ॥ तान्समासेन वक्ष्यामि सर्व-  
 स्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च  
 राजसाः ॥ तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषां त्रिविधा गतिः ॥ ४० ॥

टीका-इन सत्त्व आदि गुणोंमेंसे जिसके गुणसे जीव जिन गतियोंको प्राप्त होता है इस जगत्की उन सब गतियोंको संक्षेपसे क्रम करि कहूंगा ॥ ३९ ॥ जे सत्त्व-  
 गुणकी वृत्तिमें स्थितहै वे देवत्वको प्राप्त होतेहैं और जे तौ रजोवृत्तिमें स्थितहैं वे मनुष्यत्वको और जे तमोवृत्तिमें स्थितहैं वे तिर्यक् योनिको प्राप्त होतेहैं यह तीनि प्रकारकी जन्मकी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

त्रिविधात्रिविधेषां तु विज्ञेयां गौणिकी गतिः ॥ अधमां मर्ध्यमा-  
 र्थ्या च कर्मविद्यां विशेषतः ॥ ४१ ॥ स्थावराः कृमिकीटाश्च मर्त्स्याः

सर्पाः सर्कच्छपाः॥पशवश्च मृगैश्चैवं जघन्यां तामसी गतिः ॥४२॥

टीका—सत्व आदि तीन गुणहैं कारण जिसके ऐसी तीन प्रकारकी जन्मांतरोंकी प्राप्ति कही वह देशकाल आदिके भेदसे और संसारके कारण भूत कर्मोंके भेदसे और ज्ञानके भेदसे अधम मध्यम उत्तम इन भेदोंसे तीनप्रकारकी जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥ स्यावर वृक्ष आदि कृमि सूक्ष्म प्राणी उनसे कुछ मोटे कीट तथा मछली, सांप, कछुआ, और मृगोंतक यह सब तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी जघन्य कहिये अधम गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः॥सिंहा व्याघ्रौ वरी-  
हाश्च मध्यमां तामसी गतिः ॥ ४३ ॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषा-  
श्चैवं दाम्भिकाः॥रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीपूत्तमां गतिः॥४४॥

टीका—हाथी, घोडा, शूद्र और गर्हित, म्लेच्छ, सिंह, बाघ, मुअर, यह तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी यह मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, नट, आदि और सुपर्ण-पक्षी और कपटसे धर्म करनेवाले पुरुष और राक्षस तथा पिशाच यह तामसी गति-योंमें उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

श्लाल मल्लौ नटाश्चैवं पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः॥द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघ-  
न्यां राजसी गतिः ॥ ४५ ॥ राजानःक्षत्रियाश्चैवं राज्ञश्चैवं पुरो-  
हिताः ॥ वांद्युद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

टीका—व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न दशम अघ्यायमें कहे हुए श्लाल मल्ल उनमें लाठी धारण करनेवाले (छडीवरदार) और मल्ल बांहोंसे युद्ध करनेवाले, और रंगभूमिमें उतरनेवाले नट और शस्त्रोंसे जीविका करनेवाले और जुवामें तथा मद्यके पीनेमें लगे हुए पुरुष यह अधम राजसी गति जाननी चाहिये ॥ ४५ ॥ राजा कहिये अभिषेक किये हुए देशके स्वामी, तैसेही क्षत्रिय और राजाके पुरोहित और जिनको शास्त्रार्थ तथा कलह प्यारा है, यह राजसी गति मध्यम जानिये ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ॥ तथैवाप्सरसःसंवा  
राजसीपूत्तमां गतिः ॥ ४७ ॥ तापसा येतयो विप्रा ये च वैमा-  
निका गणाः॥नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमां सौत्विकी गतिः ॥४८॥

टीका—गंधर्व, गुह्यक, यक्ष, देवता और उनके अनुचर विद्याधर आदि और अप्सरा सब ये राजसीमें उत्तम गति है ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण और जे विमानमें चलनेवाले अप्सराओंसे भिन्न, पुष्पक आदि विमानमें चलनेवाले और नक्षत्र, तथा दैत्य, यह सत्त्वनिमित्त अधम गति जाननी चाहिये ॥ ४८ ॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतीषि वत्सराः॥पितरश्चैव साध्यां-  
श्चद्वितीया सात्विकी गतिः॥४९॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मा महान-  
व्यक्तमेव च॥उत्तमांसात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञ करनेवाले तथा ऋषि और देवता और वेदके अभिमानी. देवता और ध्रुव आदि ज्योति कहिये तारागण और वत्सर कहिये इतिहासमें देखे हुए विग्रह-वाले और पितर कहिये सोमपा आदि और देवयोनिविशेष साध्य, यह सत्त्वनिमित्त मध्यम गति जानिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा कहिये चतुर्मुख और विश्वसृज कहिये मरीचि आदि और देह धारण किये हुए धर्म और महान् तथा अव्यक्त सांख्यमें प्रसिद्ध दो तत्त्व उनके अधिष्ठाता दोनों देवता, इस चतुर्मुख आदिरूप सृष्टिको सात्विक निमित्त उत्कृष्ट गति पंडित कहते हैं ॥ ५० ॥

एष सर्वः संमुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृ-  
त्स्नः संसारः, सार्वभौतिकः॥५१॥इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्या-  
सर्वनेन च ॥ पापान्संयाति संसारानविद्भांसो नराधमाः ॥५२॥

टीका—यह मन, वाणी और कायरूप, तीनि साधनोंके भेदसे तीनि प्रकारके कर्म सत्त्व रज तमके भेदसे फिर तीनि प्रकारका फिर प्रथम मध्यम उत्तमके भेदसे तीनि प्रकारका सब प्राणियोंमें स्थित गतिविशेष संपूर्णतासे कहा और सार्वभौतिक इस कहनेसे नहीं कहीहुई भी गतियां देखनी चाहिये और उक्त गतियां तौ दिखानेके लिये हैं ॥ ५१ ॥ इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे और निषिद्ध आचरणसे और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करनेसे मूढ मनुष्योंमें नीच कुत्सित गतियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यां यीयोनिं तु जीवोऽयं येन ये नेह कर्मणा॥ऋमशो याति लो-  
केऽस्मिंस्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥ बहून्वर्षगणान्घोरांन्नरकां  
न्प्राप्यतक्षयात्॥संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान्५४॥

टीका—यह जीव जिस जिस किये हुए पापकर्मसे इस लोकमें जिस जिस जन्मको प्राप्त होताहै उन सबको क्रमसे मुनिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके

करनेवाले बहुतसे वर्षोंके समूहोंतक भयंकर नरकोंमें प्राप्त हो उनके भोगके पूरे होने पर पापके शेषसे आगे कहे हुए जन्मविशेषोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वंसूकरखरोष्ट्राणां गोजां विमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुक्कसानां च  
ब्रह्मर्हा यो निमृच्छति ॥ ५५ ॥ कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पं-  
क्षिणाम् ॥ हिंसाणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ ५६ ॥

टीका—कुत्ता, सुअर, गधा, ऊंट, गौ, बकरा, भेडा, मृग, पक्षी, चांडाल और जो निषादसे शूद्रमें उत्पन्न व पुक्कस इनकी योनिमें ब्रह्महत्यारा जन्म लेताहै यहां शेष पापकी गुरुता और लघुताकी अपेक्षासे क्रमसे सब योनियोंकी प्राप्ति जाननी चाहिये ऐसेही आगेभी जानिये ॥ ५५ ॥ कृमि, कीट, पतंग और विषा खानेवाले पक्षी और हिंसा करनेवाले व्याघ्र आदि इनकी जातिमें सुरा पीनेवाला ब्राह्मण उत्पन्न होताहै ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंसाणां च पिशा-  
चानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां  
दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

टीका—मकड़ी, सांप, गिरगट और जलमें विचरनेवाले पक्षी और हिंसा करने-वाले पिशाच आदि, इनकी योनिमें सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण हजारोंवार प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ दूब, तृणोंकी और गुल्मोंकी और गुडूची आदि लताओंकी और कच्चा मांस खानेवाले गीघआदिकी और सिंह आदि दंष्ट्रियोंकी और क्रूर कर्म करनेवाले वधशील व्याघ्रआदिकोंकी जातिमें, सौवार गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

हिंसा भवन्ति क्रव्यादाः कूर्मयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परंस्परादिनः स्ते-  
नाः प्रेतान्तर्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वां परंस्थैव च  
योषितम् ॥ अपंहृत्य च विप्रस्त्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

टीका—जे प्राणियोंके वध करनेवाले हैं वे कच्चे मांसके खानेवाले विलाव आदिकी योनिमें उत्पन्न होतेहैं और जे अभक्ष्यभक्षी हैं वे कृमि होते हैं और जे महापातकि-योंसे भिन्न चोर हैं वे आपसमें मांस खानेवाले होतेहैं और जे चांडाल आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं वे प्रेत नाम प्राणिविशेष होतेहैं ॥ ५९ ॥ जितने कालमें पतितके संयोगसे पतित होताहै उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि चारिके साथ संस-र्गको करिके और औरोंकी स्त्रीमें गमन करिके और ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न अन्य-

वस्तुको चुराकै एकएक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस प्राणिविशेष होता है ॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हत्वा लोभेन मानवः॥वि विधानि च रत्नानि  
जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो  
जलं प्लवः ॥ मधुं दंशं पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

टीका—माणिक्य आदि मणियोंको, मोती मूगोंको और नाना प्रकारके वैदूर्यहीरा  
आदि रत्नोंको, अपनेके भ्रमाविना लोभसे चुराकै सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होताहै  
काइ तौ हेमकार पक्षीको कहते हैं ॥ ६१ ॥ धान्यको चुराकै मूसा होताहै  
और कांसेको चुरायकै हंस होता है और जलको चुरायकै प्लवनाम पक्षी होताहै और श-  
हद चुरायकै डांस और दूध चुरायकै कौआ और विशेष करि कहेहुए गुड नोन आदिसे भिन्न  
ईख आदिके रसको चुरायकै कुत्ता होताहै और घी चुरायकै न्योला होताहै ॥ ६२ ॥

मांसं गृध्रो वर्षां मद्भ्रुस्तैलं तैलपकः खगः॥ चीरिवाकस्तुं लवणं व-  
लाका शकुनि दधि ॥ ६३ ॥ कौशेयं तित्तिरिहत्वा क्षौमं हत्वा तुं  
दुर्दुरः ॥ कर्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोर्धा गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

टीका—मांस चुरायकै गीध होता है और वसा ( चरबी ) को चुरायकै मद्भ्रुनाम  
जलचर पक्षी होताहै और तेल चुरायकै तैलपायिकनाम पक्षी और नोन चुरायकै  
चीरीवाक नाम ऊंचे स्वरवाला कीट और दही चुरायकै वलाकानाम पक्षी होताहै  
॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चुरायकै तीतरनाम पक्षी होताहै और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरा-  
यकै मेढक और कपासके बने हुए वस्त्रको चुरायकै क्रौंचनाम प्राणी और गौको चुरा-  
यके गोह और गुडको चुरायकै वाग्गुदनाम पक्षी होता है ॥ ६४ ॥

लुच्छुन्दरिः शुभागन्धान्पत्रशाकं तुं वर्हिणः॥श्रावित्कृतांत्रं विं-  
विधमकृतांत्रं तुं शल्यकः ॥ ६५ ॥ वैको भवति हत्वाग्निं गृहकारी  
ह्युपस्करम् ॥ रत्नानि हत्वा वासांसि जायते जीवन्जीवकः ॥ ६६ ॥

टीका—कस्तूरी आदि सुगन्ध द्रव्योंको चुरायकै लुच्छुन्दरी होता है वसुआदि पत्र-  
शाकोंको चुरायकै मोर और लड्डू सबतू आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरायकै  
श्राविधनाम प्राणी और विनाकिये हुए अन्न धान जव आदि चुरायकै शल्यकनाम  
होता है ॥ ६५ ॥ अग्निको चुरायकै वकनाम पक्षी होता है और घरके उपयोगी सूप  
मूसलआदि चुरायकै भीति आदि मट्टीका घर बनानेवाला पराकर युक्त कीट अर्थात्  
कुह्लारकीडा होताहै सुंभ आदिसे रंगे वस्त्रोंको चुरायकै चकोरनाम पक्षी होताहै ॥ ६६ ॥

बुको मृगेभं व्याघ्रोऽथं फलमूलं तु मर्कटः ॥ स्त्रीमृक्षःस्तोर्केको  
 वारि यानैर्न्युष्टः पशून्नैः ॥ ६७ ॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहत्य व-  
 लान्नैः ॥ अवेश्यं यतिं ति र्यक्त्वं जग्ध्वा चैर्वाहुतं हं विः ॥ ६८ ॥

टीका—मृग अथवा हाथीको चुरायकै भेडियानाम हिंसक पशु होता है और घोडा  
 चुरायकै व्याघ्र होता है और फल मूल चुरायकै बंदर होता है और स्त्रीको चुरायकै  
 रीछ होता है और पीनेके लिये जल चुरायकै चातकनाम पक्षी होता है और शकट  
 आदि यानोंको चुरायकै ऊँट होता है और कहेहुए पशुओंसे अन्य पशुओंको  
 चुरायकै बकरा होता है ॥ ६७ ॥ यत्किंचित् असारभी पराई वस्तुको इच्छासे  
 चुरायकै और विना होम हुए पुरोडाश आदिको खायकै मनुष्य निश्चय तिर्यक्  
 योनिमें प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेर्पामेवं जंतूनां  
 भार्यात्वमुपर्यान्ति तां ॥ ६९ ॥ स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्यु-  
 ता वर्णा ह्यनापदि ॥ पांपान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ७०

टीका—स्त्रियांभी इसी प्रकारसे इच्छा करिकै पराई वस्तुको चुरायकै पापको प्राप्त  
 होती हैं और उस पापसे कहेहुए जीवोंकी स्त्री होती हैं ॥ ६९ ॥ इस भांति निषिद्ध  
 काम करनेके फलोंको काहिकै अब कहेहुएको न करनेके फलका परिपाक कहते हैं  
 ब्राह्मण आदि चारों वर्ण आपत्तिके विना पंचकर्मोंके त्याग करनेसे आगे कहीहुई कुत्सित  
 योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दासभावको प्राप्त होते हैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्चुल्कासुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ अंभेच्याकुण-  
 पाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो  
 भवति पूर्यभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ७२ ॥

टीका—अपने कर्मसे भ्रष्ट और वांतका खानेवाला ब्राह्मण, ज्वालासुख नाम एक  
 भांतिका प्रेत होता है और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विद्या खानेवाला कटपूतन नाम  
 एक भांतिका प्रेत होता है ॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे भ्रष्ट वैश्य, मैत्राक्षज्योतिक नाम  
 पीवका खानेवाला दूसरे जन्ममें प्रेत होता है और अपने कर्मसे भ्रष्ट शूद्र चैलाशक  
 नाम प्रेत होता है ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयांस्विषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता



तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥ तं ऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पवृ-  
द्धयः ॥ संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विहं योनिषु ॥ ७४ ॥

टीका-विषयोंमें लोभी जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करते हैं तैसै-  
तैसै उनकी विषयोंमें प्रवीणता होती है ॥ ७३ ॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध  
विषयोंमें उपभोगके अभ्याससे उन उन निन्दिततर और निन्दिततम तिर्यक् आदि  
योनियोंमें दुःखको भोगते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि वन्ध-  
नच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥ विविधाश्चैव सपीडाः काकोलूकैश्च भक्ष-  
णम् ॥ करम्भवालुकातार्पान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

टीका-तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकोंमें दुःखके अनुभवको  
प्राप्त होते हैं तैसैही असिपत्रवन आदि वंधन च्छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते हैं  
॥ ७५ ॥ नाना प्रकारकी पीडाओंको और कौआ उलूक आदिसे खायाजाना  
और तप्तवालुका आदि तथा कुम्भीपाक आदि दारुण नरकोंमें प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायांसु नित्यंशः ॥ शीतातपाभिधातां-  
श्च विविधानि भयानि च ॥ ७७ ॥ असंकृद्गर्भवासेषु वासं जन्मं च  
दारुणम् ॥ वन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

टीका-जिनमें दुःख बहुतहै ऐसी तिर्यक् आदि योनियोंमें उत्पन्न होना उन शीत  
घामआदिकी पीडा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥  
चौरवार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनियंत्र आदिकोंसे दुःख देनेवाली उत्प-  
त्तिकी और संकल आदिसे वंधनेकी पीडाको प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

वन्धुप्रियविद्योगांश्च संवासंचैव दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नाशं च  
मित्रामित्रस्थैर्वाजनम् ॥ ७९ ॥ जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चो-  
पपडिनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तांन्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

टीका-वांधवों और मित्रोंसे विद्योगोंको और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको  
और धन जोड़नेके श्रमको और धनके नाशको और कष्टसे मित्रके अर्जनको और  
शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी वृद्धवयः

स्थाको और रोमोंसे तथा भुख प्यास आदिसे पीडित होनेको और नानाप्रकारके क्लेशोंको और जो रुके नहीं सकती ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं  
लक्षुर्पांश्नुते ॥ ८१ ॥ एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वैः फलोद्दयः ॥  
निःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्ये<sup>०</sup> दं निबोधत ॥ ८२ ॥

टीका—जिस प्रकारके सात्विक राजस अथवा तामस चित्तसे ज्ञान दान योग आदि जिस कर्मको करताहै वैसेही सत्वअधिक रजअधिक अथवा तमअधिक शरीरसे उस ज्ञान आदिके फलको भोगताहै ॥ ८१ ॥ यह तुमसे विहित और प्रतिषिद्ध कर्मोंके फलके उदयको संपूर्ण कहा अब ब्राह्मणके कल्याणके लिये तथा मोक्षके लिये हितकारी कर्मोंको करना जो आगे कहाजायगा उसको सुनिये ॥ ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसां गुरुसेवां च  
निःश्रेयसकरं परमं ॥ ८३ ॥ सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह  
कर्मणाम् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

टीका—उपनिषद् आदि वेदका ग्रंथसे और अर्थसे आवृत्ति करना और कृच्छ्र आदि तप और ब्रह्मविषयक ज्ञान और इंद्रियोंका वश करना और नहीं कही हुई हिंसाका न करना और गुरुकी सेवा ये उत्कृष्ट मोक्षके साधनहैं ॥ ८३ ॥ इन सब वेदाभ्यास आदिक शुभकर्मोंमें कुछ कर्म अतिशय करिके मोक्षका साधन होय यह वितर्क होनेपर ऋषियोंकी जिज्ञासाविशेषसे आगेके श्लोकसे निर्णय कहते हैं ॥ ८४ ॥

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां  
प्रार्थ्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥ षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य  
चेहं च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

टीका—इन वेदाभ्यास आदि सर्वोंमेंसे उपनिषद् करि कहा हुआ परमात्माका ज्ञान उत्कृष्ट कहाहै जिस्से सब विद्याओंका प्रधान है इसीसेहेतु कहते हैं कि जिस्से उसके द्वारा मोक्ष मिलताहै ॥ ८५ ॥ पहले कहे हुए इन वेदाभ्यास आदि छः कर्मोंमें परमात्मज्ञानरूप वैदिक कर्म इस लोक तथा परलोकमें अत्यंत कल्याण करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति कर्मशस्त-

स्मिस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥ सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसि-  
कमेव च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

टीका-अब आत्मज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें श्रेयका साधन होना स्पष्ट करते हैं ॥ परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्मयोगमें ये सब पहले श्लोकमें कहे हुए इस लोक तथा परलोकके श्रेय उस उस उपासनाविधिमें क्रमसे संभावित होते हैं ॥ ८७ ॥ वैदिक कर्म यहां ज्योतिष्टोम आदि और प्रतीकोपासना आदि ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि स्वर्ग आदिके सुखका देनेवाला संसारकी प्रवृत्तिका कारण है इससे वैदिक कर्मका प्रवृत्तनाम है तैसेही निःश्रेयस मोक्षको कहते हैं उसके लिये जो कर्म है उसको नैःश्रेयसिक कहते हैं क्योंकि वह संसारकी निवृत्तिका कारण है इससे प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

इह चांमुत्रैवां काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु  
निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तं कर्म संसेव्यं देवानामेति साम्य-  
ताम् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूतानत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

टीका-इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इस लोकमें कामनाका साधन करनेवाला यज्ञ आदि और पर स्वर्ग आदिका साधन ज्योतिष्टोम आदि जो कामनासे किया जाता है वह संसारकी प्रवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्त कहा जाता है और दृष्ट अदृष्ट फलकी कामनाराहित ब्रह्मज्ञानके अभ्यासपूर्वक किया जाता है वह संसारकी निवृत्तिका कारण होनेसे निवृत्त कहा जाता है ॥ ८९ ॥ प्रवृत्त कर्मके अभ्याससे देवताओंके समानगतित्वको अर्थात् उसके फलको कर्मसे प्राप्त होता है यह तौ प्रदर्शनके लिये है अन्यफलके देनेवाले कर्मके प्रवृत्त होनेसे दूसरा फलभी प्राप्त होता है और निवृत्त कर्मके अभ्याससे शरीरके धारण करनेवाले पंचभूतोंको अतिक्रमण करजाता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

सर्वभूतेषु चात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ सप्तं पश्यन्नात्मयाजी  
स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥ यथोक्तान्यैपिकर्माणि परिहाय द्वि-  
जोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने शमे च स्याद्देहाभ्यासे च यत्नवान् ॥ ९२ ॥

टीका-स्थावरजंगमरूप सब जीवोंमें मैंही आत्मरूप हूँ और परमात्माके परि-  
णामसे सिद्ध सब जीव मुझ परमात्मामें हैं सामान्यतासे यह जानता हुआ आत्माका  
यजन करनेवाला ब्रह्ममें अर्पण करनेके न्यायसे ज्योतिष्टोमादिकोंको करता हुआ

स्व जो ब्रह्म है तिससे प्रकाशित होता है स्वराद् ब्रह्मको कहते हैं तिसके भावको स्वाराज्य अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ वेद करि प्रेरणा किये गये भी अग्निहोत्र आदि कर्मोंको त्याग करिकै ब्रह्मके ध्यानमें इंद्रियोंसे उत्पन्न प्रणव और उपनिषद् आदि वेदके अभ्यासमें ब्राह्मण यत्न करै ॥ ९२ ॥

एताद्धिं जन्मसौफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्यैतत्कृतकृत्यो  
हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ९३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्वशुः स-  
नातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ ९४ ॥

टीका—यह आत्मज्ञान और वेदका अभ्यास आदि द्विजातिके जन्मकी सफलता-  
का करनेवाला है जिससे द्विजाति इसको प्राप्त होके कृतार्थ होता है और भाँति नहीं ॥  
॥ ९३ ॥ अब वेदहीसे ब्रह्म जाननेयोग्य है यह दिखानेके लिये वेदकी प्रशंसा क्रहते  
हैं ॥ पितृ देवता और मनुष्योंका हव्यकव्यके दानोंमें वेदही चक्षुके समान अविनाशी  
चक्षु है और वेदशास्त्र करनेको अशक्य है इससे वेदकी अपौरुषेयता कही गई और  
अप्रमेय कहिये मीमांसा तथा न्यायशास्त्रके विना इसका प्रमेय नहीं जाना जास-  
कता है यह व्यवस्था है तिससे मीमांसा करिकै और व्याकरण आदि अंगोंसे कर्म  
तथा ब्रह्मरूप वेदके अर्थको जानै यह कहा गया ॥ ९४ ॥

यां वेदवाह्याः स्मृतयो यांश्च कांश्च कुहर्षयः ॥ संवास्तां निष्फलाः  
प्रेत्यं तमोनिष्ठां हि तां स्मृतां ॥ ९५ ॥ उत्पद्यंते च्यवन्ते चैथान्यतोऽ-  
न्यानि कानिचित् ॥ तान्यर्वाङ्गालिकतयानि ष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

टीका—जो स्मृतियां वेदसे वाह्य हैं अर्थात् वेद नहीं हैं जैसे चैत्यकी वंदना  
करनेसे स्वर्ग मिलता है इत्यादि दृष्टार्थ वाक्य हैं और जे देवताओंका अपूर्व निरा-  
करणरूप असत्कर्मूल है और जे वेदाविरुद्ध चार्वाकोंके शास्त्र हैं वे सब परलोकमें  
निष्फल हैं वे सब मनुआदिकों करि नरकरूप फलके देनेवाले कहे गये हैं ॥ ९५ ॥  
इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इस्से वेदसे अन्य जिनका मूल है ऐसे जे कोई शास्त्र हैं वे  
पौरुषेय कहिये पुरुषोंके वनाये हुए होनेसे होते हैं और शीघ्रही नष्ट होजाते  
हैं वे आधुनिक होनेसे निष्फल और असत्यरूप हैं और स्मृति आदिकोंका तौ  
वेद मूल होनेसे प्रामाण्य है ॥ ९६ ॥

चार्तुर्वर्ण्यं त्रयो लोकांश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं  
चं सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ ९७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रंसो

गंधैश्च पञ्चमः ॥ वेदादेवँ प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

टीका—“ब्राह्मणोऽस्यसुखमासीत्” इत्यादि वेदहीसे चारों वर्ण सिद्ध होतेहैं तैसेही स्वर्ग आदि तीनों लोकभी वेदहीसे प्रसिद्धहैं ऐसे ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमभी वेदमूलक होनेहीसे प्रसिद्धहैं बहुत कइनेसे क्याहै जो कुछ भूत वर्त्तमान और भविष्य है वह सब “अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्पद्” इत्यादि न्यायसे वेदहीसे प्रसिद्ध होताहै ॥९७॥ जो इस लोकमें और परलोकमें शब्द आदि विषय :उपयोगी होतेहैं वे प्रसूतिगुण सत्त्व रज तमोरूप वेदहीसे प्रसिद्ध होतेहैं ॥ ९८ ॥

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परमं न्येय-  
जन्तोरस्य साधनम् ॥९९॥ सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव  
च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रं विदुर्हति ॥ १०० ॥

टीका—वेदशास्त्र नित्य सब भूतोंको धारण करताहै सोई कहतेहैं कि हवि अग्निमें होमीजातीहै उसको अग्नि सूर्यके लिये पहुंचाती है उसको सूर्य किरणोंसे वरसतेहैं उसमें अन्न होताहै “अथेहभूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेतिहविर्जायते” यह ब्राह्मणमें लिखाहै अर्थ—इस पीछे यहां भूतोंकी उत्पत्ति और स्थिति हवि होतीहै इति ॥ तिससे वेदशास्त्र इस जंतुके वैदिक कर्ममें अधिकारी पुरुषके प्रकृष्ट पुरुषार्थको साधन जानतेहैं ॥९९॥सेनाका पति होना राजदंडका करना और सब भूमिका स्वामी होना यह सब जिसका प्रयोजन कहचुकेहैं उसको वेदरूप शास्त्रके जाननेवालेही योग्यहैं ॥ १०० ॥

यथा जातवलो वह्निर्देहत्यार्द्रानिर्पि दुर्मान् ॥ तथा देहति वेदेज्ञः  
कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वस-  
न् ॥ इहैव लोकेतिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २ ॥

टीका—जैसे बड़ी दुई अग्नि गीलेभी वृक्षोंको जलादेती है ऐसेही ग्रंथसे तथा अर्थसे वेदका जाननेवाला निषेध किये हुए कर्मोंके करनेसे उत्पन्न पापोंका आप नाश करताहै ऐसे तौ वेद केवल स्वर्ग अपवर्ग आदिहीका हेतु नहीं हैं किंतु अहितका नाश करनेवालाभीहै ॥ १ ॥ जिस्से जो कर्म और ब्रह्मात्मक वेदको और उसके अर्थको तत्त्वसे जानताहै वह नित्यनैमित्तिक कर्मों करि अनुगृहीत ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मचारी आदिके आश्रममें स्थित इसी लोकमें रहता हुआ ब्रह्मतत्त्वके लिये समर्थ होताहै ॥ २ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठां ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ॥ धारिभ्योज्ञानि-

नः श्रेष्ठां ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥३॥ तपो विद्यां च विप्रस्य निः-  
श्रेयसकरं परम् ॥ तपसां किल्बिषं हन्ति विद्ययांऽमृतमर्जुते ॥४॥

टीका—जे थोडा पढे हैं वे अज्ञाँ हैं उनसे संपूर्ण वेदके पढनेवाले श्रेष्ठ हैं उनसे पढे हुए ग्रंथके धारणमें समर्थ श्रेष्ठ हैं और धारणकरनेवालोंसे पढे हुए ग्रंथके अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और उनसे करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ तप कहिये आश्रमके लिये विहित कर्म और विद्या कहिये आत्मज्ञान ये दोनों ब्राह्मणको पर कहिये उत्कृष्ट निःश्रेयसकर अर्थात् मोक्षका साधन हैं उनमेंसे तपसे पापको नाश करता है और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधांगमम् ॥ त्रयं सुविदितं कथं  
धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥५॥ अर्षे धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधि-  
ना ॥ यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेदं नेतरैः ॥ ६ ॥

टीका—धर्मके तत्त्वको जानना चाहता पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमान और स्मृति आदि नानाप्रकारके वेदमूलक शास्त्र धर्मका मूल जाननेके लिये सुविदित कहिये मलीभाँतिसे ज्ञान करना चाहिये येही तीनों प्रमाण मनुको अभिमत हैं उपमान और अर्थापत्ति आदिकोंका अनुमानमें अंतर्भाव है ॥ ५ ॥ ऋषियों करि सेवित होनेसे धर्म जो वेद है तिसको और धर्मके उपदेशको और धर्ममूलक स्मृति आदिको जो धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसे मीमांसा आदि न्यायसे जो विचार करता है वह धर्मको जानता है और मीमांसाका न जाननेवाला नहीं जानता है ॥ ६ ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ॥ मानवस्यास्यं शास्त्रस्य  
रहस्यमुपदिश्यते ॥७॥ अनाम्रतेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भ-  
वेत् ॥ यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ ८ ॥

टीका—यह कल्याणका साधन कर्म संपूर्णतासे यथावत् कहा इसके उपरांत इस मानव शास्त्रके छुपानेयोग्य इस वक्ष्यमाण रहस्यको सुनिये ॥ ७ ॥ इस शास्त्रका सब धर्मोंके न कहनेकी शंका करिकै इस सामान्य उक्तिसे समग्रधर्मका उपदेश करना सूचित करते हैं ॥ सामान्य विधिसे प्राप्त और विशेष करि नहीं कहे गये धर्मोंमें कैसे करना चाहिये यह जो संदेह होय तौ जिस धर्मको जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे शिष्टब्राह्मण कहें वह वहाँ निश्चित धर्म होय ॥ ८ ॥

धर्मैणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ॥ ते शिष्टां ब्राह्मणा ज्ञेयाः  
श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ९ ॥ दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पये-  
त् ॥ त्र्यवरा वापि वृत्तस्था<sup>११</sup> तं धर्मं<sup>१२</sup> न विचारयेत् ॥ ११० ॥

टीका—ब्रह्मचर्य आदि कहे हुए धर्मसे जिन्होंने अंग मीमांसा धर्मशास्त्र और पुराण आदि करि उपवृंहित वेद पढाहै वे ब्राह्मण श्रुतिके प्रत्यक्ष करनेमें कारण हैं और जे श्रुतिको पाठिकै उसके अर्थका उपदेश करत हैं वे शिष्ट जानने चाहिये ॥ ९ ॥ जो बहुतसे इकठे न होयें तौ कमसे कम दश अथवा कमसे कम तीन जिनके लक्षण आगे कहे जायेंगे ऐसे जिसमें सदाचार होय वह परिषत् कहिये सभा जिस धर्मका निश्चय करै अर्थात् धर्मत्वसे स्वीकार करै उसमें विवाद न करै ॥ ११० ॥

त्रैविद्यो हेतुकस्तैर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्र्यंश्चांश्रमिर्णः  
पूर्वैः परिषत्स्योद्देशावरा ॥ ११ ॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवे-  
दविदेव च ॥ त्र्यवरा परिषज्ज्ञेयां धर्मसंशयनिर्णये ॥ १२ ॥

टीका—तीनों वेदोंकी तीन शाखाओंका पढनेवाला और श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध नहीं ऐसे न्यायशास्त्रके जाननेवाले और मीमांसात्मक तर्कोंके जाननेवाले और निरुक्तके ज्ञाता और मानव आदि धर्मशास्त्रोंके वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ, वह कमसे कम दशकी सभा होय ॥ ११ ॥ ऋक् यजु और सामवेदकी शाखाओंके पढनेवाले और उनके अर्थके जाननेवाले तीन ब्राह्मण जिसमें होयें वह धर्मसंदेह दूर करनेके लिये त्र्यवरा परिषत् जाननी चाहिये ॥ १२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥ सविज्ञेयः परो धर्मो  
नाज्ञानांमुदि<sup>१३</sup> तोऽर्थात् ॥ १३ ॥ अत्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोप-  
जीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १४ ॥

टीका—एकभी वेदके अर्थ और धर्मका जाननेवाला जिस धर्मका निश्चय करै वह प्रकृष्ट धर्म जानना चाहिये और वेदके न जाननेवालोंके दशसहस्रोंसेभी युक्त परिषत् नहीं होती है यह वेदवित् शब्द वेदका अर्थ और धर्मज्ञको कहता है यह तौ उपलक्षण है स्मृति पुराण मीमांसा तथा न्यायशास्त्रका ज्ञाताभी गुरुपरंपरासे उपदेशका वेत्ताभी जानना चाहिये तथा “ केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः ॥ युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ” इति ॥ अर्थ—केवल शास्त्रका आश्रय लेकर

निर्णय न करना चाहिये युक्तिसे हीन विचारमें तौ धर्मकी हानि होती है इति ॥ तिस्से बहुतसी स्मृतियोंका जाननेवालाभी जो भलीभांतिसे प्रायश्चित्तआदि धर्मको जानता होय तौ उस एक करिकैभी कहाहुआ धर्म उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये इसीसे यमने कहाहै जैसे “एको द्वौ वा त्रयो वापि यद्ब्रह्मधर्मपाठकाः ॥ स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ ” इति ॥ अर्थ—एक दो अथवा तीनि धर्मपाठक जो जो कहें वह धर्म जानना चाहिये औरोंके हजारों नहीं ॥ १३ ॥ सावित्री आदि ब्रह्मचारीके व्रतों करि रहितों और मंत्रवेदाध्ययन रहितोंके तथा ब्राह्मण जातिमात्रके धारण करनेवाले हजारोंके मिलनेका परिषद्भाव नहीं होता है धर्मके निर्णयका अभाव होनेसे ॥ १४ ॥

यं वदन्ति तमोभूता भूर्ध्वा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शर्तधा भूत्वा तद्वृत्तननुगच्छति ॥ १५ ॥ एतद्ब्रह्मिहितं सर्वं निःश्रेयकरं परमम् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

टीका—तमोगुण बहुत जिनमें ऐसे मूर्ख धर्मका प्रमाण और वेदका अर्थ न जाननेवाले होते हैं इसीसे श्रवणविषयधर्मके न जाननेवाले जिस प्रायश्चित्त आदि धर्मका उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुना होकरि बहुतसे कहनेवालोंमें जाताहै ॥ १५ ॥ यह कल्याणका साधन उत्कृष्ट धर्म आदि सब तुमसे कहा इसको करताहुआ ब्राह्मण आदि स्वर्ग अपवर्गरूप परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकानां हितकाम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं ममे दं सर्वमुक्तवान् ॥ १७ ॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चैसच्च समाहितः ॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्ना धर्मे कुरुते मनः ॥ १८ ॥

टीका—वह भगवान् ऐश्वर्यआदि करि युक्त देव मनुने नहीं सुननेकी इच्छावाले शिष्योंसे छिपानेयोग्य यह सब धर्मका परमार्थ लोकके हितकी इच्छासे मेरे लिये कहा भृगु महर्षियोंसे कहते हैं ॥ १७ ॥ ऐसे उपसंहार करिकै महर्षियोंके हितके लिये कहे हुएभी आत्माके ज्ञानको प्रकृष्ट मोक्षका उपकारक होनेसे जुदा करिकै कहते हैं ॥ सद्भाव और असद्भाव इस सब ब्रह्मको जानता हुआ अपनेमें उपस्थित ब्रह्मके स्वरूपको तद्रूप एकाग्रमनहो ध्यानके प्रकर्षसे साक्षात् करै जिस्से सबको आत्मत्वसे देखता हुआ रागद्वेषके न होनेसे अधर्ममें मनको नहीं करता है ॥ १८ ॥

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥

आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ १९ ॥



टीका—इसीको स्पष्ट करतेहैं ॥ इंद्र आदि सब देवता परमात्माही हैं परमात्माके सर्वात्मा हींसे सब जगत् आत्माहीमें अवस्थित है क्योंकि परमात्माका परिणाम जिस्से परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदिकोंके कर्मसंबंधको उत्पन्न करता है ॥ १९ ॥

खं संनि<sup>१</sup>वेशयेत्वेषु<sup>२</sup> चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्टयोः परं ते-  
र्जःस्रोहेऽ<sup>३</sup>पो गीं<sup>४</sup> च मूर्तिषु<sup>५</sup> ॥ १२० ॥ मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे कृति  
विष्णुं बले हरम् ॥ वाच्यमिन्द्रि मित्तुत्संगै प्रजने च प्रजापतिम् ॥ २१ ॥

टीका—वक्ष्यमाण ब्रह्मके ध्यानविशेषका उपयोगी होनेके कारण देहमें स्थित आकाश आदिमें बाहरी आकाश आदिकोंका लय करतेहैं ॥ बाहरी आकाशको पेट आदिमें स्थित देहके आकाशमें लीन करै अर्थात् एकतासे धारण करै तैसेही चेष्टा और स्पर्श कारणभूत वायुमें बाहरी वायुको और उदरके तथा नेत्रोंके तेजमें बाहरी अग्नि तथा सूर्यके उत्कृष्ट तेजको और देहके जलमें बाहरी जलको और शरीरसंबंधी पृथिवीके भागोंमें बाहरी पृथिवीको और मनमें चंद्रमाको और कानमें दिशाओंको और पाद इंद्रियमें विष्णुको और बलमें हरको और वाक् इंद्रियमें अग्निको और पायुहं-द्रियमें मित्रको और उपस्थ इंद्रियमें प्रजापतिको लीन कहिये एकतासे भावना करै ऐसेही आत्मामें स्थित भूतादिकोंमें बाहरी भूतादिकोंको लीन करि अर्थात् एकतासे भावना करि जो यह अग्नि आदिकोंका दैहिक आदि नियमहै और जो कर्मोंका प्रतिनियत फलहै उस सबको आत्माके आधीन करै ॥ १२० ॥ २१ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥

रुक्मामं स्वप्रधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ २२ ॥

टीका—ब्रह्माको आदिले स्तंबपर्यंत सब चेतन अचेतन अर्थात् जडचैतन्य जातिका प्रशासिता कहिये निर्यता और “अणोरणीयांसं” अर्थात् छोटेसेभी बहुत छोटाहै सोई श्रुति कहतीहै जैसे “बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ॥ भागो जीविति विज्ञेयः सचान्त्याय कल्पते ॥” इति ॥ अर्थः—बालकी नोकका जो सौभाग्य है उसके सौभाग्य कल्पना करनेसे जो भाग होय वह जीव जानना चाहिये वही अनंत होजाताहै इति ॥ और रुक्मामं यद्यपि शब्दरहित स्पर्शरहित अविनाश इन विशेषणोंसे उपनिषद्ने परमात्माके रूपका निषेध कियाहै तिसपरमी उपासना विशेषमें शुद्ध सुवर्णके समान क्रांतिहै इसीसे “य एषोन्तरादित्ये हिरण्यमयः” अर्थात् जो यह सूर्यके भीतर वर्णमयहै

इत्यादि छांदोग्य उपनिषदमें लिखा है और “स्वप्नधीगम्यं” यह दृष्टान्त है स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्य है जैसे स्वप्नकी बुद्धि चक्षु आदि बाहरी इंद्रियोंके उपराममें मनमात्रसे उत्पन्न होती है ऐसे आत्मबुद्धिभी जानिये इसीसे व्यासने कहा है जैसे—“ नैवासौ चक्षुषा ग्राह्यो न च शिष्टैरपीन्द्रियैः ॥ मनसा तु प्रसन्नेन गृह्यते सूक्ष्मद-  
र्शिभिः ॥ ” अर्थ—यह नेत्रोंसे ग्रहण करने योग्य नहीं है और शेष इंद्रियोंकारिकेभी नहीं ग्रहण किया जाता है सूक्ष्म दृष्टिवाले मनुष्यों करि प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाता है ॥ इस प्रकारके परमात्माका चिंतन करै ॥ २२ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इंद्रमेके परे प्राणैम-  
परे ब्रह्मं शश्वतम् ॥ २३ ॥ एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य  
मूर्तिभिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ २४ ॥

टीका—कोई याज्ञिक इस परमात्माकी अग्निभावसे उपासना करते हैं और फिर मनुनाम प्रजापतिके रूपसे उपासना करते हैं और कोई फिर ऐश्वर्यके योग्य आदिसे इंद्ररूपसे उपासना करते हैं अपर फिर प्राणभावसे उपासना करते हैं अपर फिर अपगत प्रपंचात्मक सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माकी उपासना करते हैं मूर्ति और अमूर्त्तिमान् स्वरूप ब्रह्ममें श्रुतिप्रसिद्ध सबही उपासना होती हैं ॥ २३ ॥ यह आत्मा सब प्राणि-  
योंको शरीरके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे ग्रहण करिके पूर्व-  
जन्मके अर्जित कर्मोंकी अपेक्षासे उत्पत्ति स्थिति विनाशोंसे रथ आदिके चक्रके समान चारचार फिरनेसे मोक्षतक संसारी करता है ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य  
ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ २५ ॥ इत्येतेन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठ-  
न्निर्द्वजः ॥ भवत्याचारवान्त्रित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्भक्तिर्म् ॥ १२६ ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

टीका—अब मोक्षके कारण भावसे कहे हुए सब धर्मोंकी श्रेष्ठतासे सर्वत्र परमात्माके दर्शनकी अनुष्ठेयतासे उपसंहार करते हैं ॥ इस भांति सब जीवोंमें आत्माको इत्यादि कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंमें स्थित आत्माको आत्माकारि देखता है वह ब्रह्मके साक्षात्कारसे पर श्रेष्ठस्थान जो ब्रह्म है तिसको प्राप्त होता है उसमें अत्यंत लीन होजाता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ २५ ॥ इति शब्द समाप्तिके लिये है यह

स्मृतिशास्त्र भृशुने प्रकर्षकारि क्हा द्विजाति इसको पढता हुआ विहितके करने और निषेध कियेहुएके त्यागनेरूप आचारवान् होताहै जैसे चाहीहुई स्वर्ग अपवर्गरूप गतिको प्राप्त होय ॥ १२६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितवर्यश्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ द्वादशोऽध्यायस्समाप्तः ॥ १२ ॥

तर्काऽव्यङ्गनिशाकराङ्गणिते वर्षे शुभे वैक्रमे-  
माघे भास्यसिते दले शुभतिथौ नीता समाप्ति मया ॥  
श्रीमन्मानवधर्मशास्त्रविवृतिर्नृणां गिरा स्वच्छया  
श्रीमत्केशवशर्मणाऽर्गलपुरेश्रीभानुजाभूषिते ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-  
खेमराज श्रीकृष्णदास,  
“श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना-मुंबई.

## क्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची ।

नाम.	की.रू.आ.	नाम.	की.रू.आ.
<b>धर्मशास्त्र ग्रंथाः ।</b>		याज्ञवल्क्यस्मृति मिताक्षरा पं०	
मनुस्मृति सटीक कुल्लूकभट्टकृत		मिहिरचंद्र कृत पद योजना	
संस्कृत टीकासहित जिल्द-		भावार्थ और तात्पर्यार्थ टिप्-	
वँधी. .... .. २-०		णी तथा भाषाटीकासहित	५-०
मनुस्मृति सान्बय भाषाटीका		धर्मसिंधु * .... .. ३-०	
ग्लेज .... .. २-८		धर्मसिंधु भाषाटीका समेत ( छ-	
तथा रफ् .... .. २-०		पता) है ... .. ०-०	
व्रतराजअतिउत्तमटिप्पणीसहित		निर्णयसिंधु टिप्पणीसहित अत्यु-	
जिस्में वर्षभरकीसवतिथियों-		त्तम ... .. ३-०	
केव्रतउद्यापननिर्णयकथाहैं	४-०	तथा रफ्कागज .... .. २-८	
व्रतराजटिप्पणीसहित रफ् ....	३-०	निर्णयसिंधु भाषाटीका समेत	
निर्णयामृत ( अनेक प्राचीन ग्रं-		( छपताहै ) ... .. ०-०	
थोंसे शुद्धहुवाहै ).... .. १-८		अष्टादशस्मृति उत्तम शुद्ध मोटा	
धर्मप्रदीपः-धर्मशास्त्रीय प्रमाण-		अक्षर ... .. २-०	
संबद्ध द्वादशमासीयतिथ्या-		विवादार्षवसेतु ( धर्मशास्त्र व न्याय	
दि निर्णय ग्रन्थः .... .. १-०		राजनीति ).... .. २-०	
जयसिंहकल्पद्रुमः यत्र द्वादशमा-		बृहत्पाराशरीस्मृति. ( धर्मशास्त्र )	१-०
सीय व्रतोत्सवनिर्णयः ....	५-०	पाराशरीस्मृतिका उत्तरखंड ...	०-४
स्मृतिरत्नाकर ( धर्मशास्त्रका		शांतिमयूख * ... .. १-०	
प्रामाणिकग्रन्थ ).... .. २-०		प्रपंचसारविवेक (इस जन्ममें मनु-	
प्रायश्चित्तनिर्णयः अग्निपुराणोक्तः	०-१॥	ष्यका अवश्य कर्त्तव्य कर्म )	१-०
आशौचनिर्णयः अग्निपुराणोक्तः	०-१॥	दयानन्दतिमिरभास्कर भाषाटी-	
अधिकमास परीक्षा .... .. ०-४		का पं० ज्वालाप्रसादजीकृत	
एकादशी तिथि व्रतनिर्णयः....	०-४	( दयानन्दमत खण्डन )... .. ३-०	
जन्माष्टमी व्रतनिर्णयः ....	०-३	विवादचिन्तामणि हिंदूधर्मशास्त्र	१-४
		क्षौरनिर्णयसटीक. ... .. ०-४	

नाम.	की.सं.आ.	नाम.	की.सं.आ.
क्षौरनिर्णय मूल ... ..	०-१	द्वर्णन आदि अनेक २ शा-	
तिथिनिर्णय ... ..	०-२	स्त्रोका स्वरूप वर्णितहै) ....	२-०
प्रायश्चित्तेन्द्रशेखर ... ..	०-१०	शान्तिप्रकाश (समंत्रक अनेक	
आशौचनिर्णय ... ..	०-२	प्रकारकी शांतिपद्धतियाँ ए-	
आशौचनिर्णय भाषाटीका ... ..	०-४	फत्रितहै).... ..	१-४
भवाब्धिसंतु भाषाटीकासहित....	०-१२	<b>पुराणइतिहास ग्रंथाः ।</b>	
वर्णविवेकचंद्रिका. .... ..	०-२	पद्मपुराण सम्पूर्ण ५५००० ग्रंथ	
स्मृत्यर्थसागर माध्वसंप्रदायी ध-		बहुतपुस्तकोंके द्वारा शुद्ध हो-	
र्मशास्त्र वैष्णवोंको परमोप-		कर छपा तयारहै .... ..	१६-
योगी .... ..	१-४	हरिवंश पुराण सटीक.... ..	५-
शुद्धिविवेक (सूतकोंसे शुद्धिका		हरिवंशपुराण भाषाटीका समेत	१०-
निर्णय) .... ..	०-८	हरिवंशपुराण केवल भाषावार्तिक	
दानचंद्रिका .... ..	०-१०	जिलदबंधा .... ..	५-
शांतिसार (सब प्रकारकी शा-		श्रीवाल्मीकीयरामायण संस्कृत	
न्तिहै) ... ..	१-४	मूल और अत्युत्तम भाषाटी-	
आचारार्क. .... ..	०-१२	का माहात्म्य और अनुक्रम-	
आचारादर्श ... ..	०-१२	णिका सहित मोटा कागज	
प्रतिष्ठामयूख .... ..	०-६	सुंदर अक्षर ... ..	२१-
सनातनधर्मदीपक भाषा (उदा-		वाल्मीकीयरामायण केवलभाषा	
हरणों समेत) .... ..	०-८	दो जिल्दोंमें ... ..	१०-
मातृकाविलास (अकारसे लेकर		श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण तनि-	
सब अक्षरमात्रोंका अर्थ और		श्लोकी रामानुजी भूषण सं-	
तिनसे विस्तारपाकर बनेहुए		स्कृत टीकासहित... ..	१६-
अनेकप्रकारके वाणीमय सर्व		वाल्मीकीयरामायण रामाभिरा-	
मंत्रशास्त्र, व्याकरणशास्त्र,सं-		मीटीका .... ..	८-
गीतशास्त्र, नीतिशास्त्र, राज-		श्रीवाल्मीकीर्ष्यायण मुंदरकांड	
नीतिशास्त्र, धनुर्वेदशास्त्र, यु-		मूल बद्ध ... ..	२-

पता-खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम प्रेस, खेतवाडी-बंबई.

